CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

6.3

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

अशोक

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अशोक

राधाकुमुद मुखर्जी

मोतीलाल बनारसीदास
दिल्ली वाराणसी पटना बंगलौर मद्रास

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रथम संस्करण : १९७४
पुनर्मुद्रण : दिल्ली, १९८५, १९९५

© मोतीलाल बनारसीदास

बंगलो रोड, जवाहरनगर, दिल्ली ११० ००७
१२० रॉयपेट्टा हाई रोड, मैलापुर, मद्रास ६०० ००४
१६ सेन्ट मार्क्स रोड, बंगलौर ५६० ००१
अशोक राजपथ, पटना ८०० ००४
चौक, वाराणसी २२१ ००१

मूल्य : रु० ७५

नरेन्द्रप्रकाश जैन, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड,
दिल्ली ११० ००७ द्वारा प्रकाशित तथा जैनेन्द्रप्रकाश जैन, श्री जैनेन्द्र प्रेस,
ए-४५ नारायणा, फेज़-१, नई दिल्ली ११० ०२८ द्वारा मुद्रित

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मेरी माताजी

जगन्मोहिनी देवी

१८४८-१९२०

की

पुण्य स्मृति में

या देवी सर्व-भूतेषु मातृ-रूपेण संस्थिता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विषय-सूची

पृष्ठ

आमुख (७)

अध्याय १

प्रारम्भिक जीवन और परिवार १

अध्याय २

इतिहास १०

परिशिष्ट क : जनश्रुतियों के आधार पर अशोक का कालक्रम ३७

अध्याय ३

प्रशासन ४०

अध्याय ४

धर्म ५०

अध्याय ५

अशोक के निर्माण-कार्य ६६

अध्याय ६

सामाजिक व्यवस्था ८४

अध्याय ७

धर्म लेखों का अनुवाद और उनकी व्याख्या

क. लघु चट्टान लेख ८९

ख. भाब्रू या बैराट सं० २ चट्टान लेख ९८

ग. कलिंग चट्टान लेख १००

घ. चौदह चट्टान लेख १०८

ङ. सात स्तंभ लेख १४५

च. चार लघु स्तंभ लेख १६२

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

छ. स्मारक स्तंभ लेख १६८
ज. गुफा लेख १७२
परिशिष्ट—ख : अशोक के लेखों का कालक्रम १७४
अध्याय ८
मूल अभिलेख १८०
परिशिष्ट—ग : अशोक के लेखों की लिपि, विभाषा और व्याकरण २१५
परिशिष्ट—घ : अशोक के अन्य लेख २२७
अनुक्रमणिका २४१
अशोक का साम्राज्य अन्त मे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आमुख

लखनऊ विश्वविद्यालय में इस विषय पर मैं व्याख्यान देता रहा हूँ। यह पुस्तक इन्हीं व्याख्यानों का संशोधित परिवर्धित रूप है। इससे यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि जब इस विषय पर अनेक ग्रंथ पहले से ही विद्यमान हैं तो एक नई पुस्तक की आवश्यकता क्यों हुई। अशोक के अद्वितीय व्यक्तित्व और कृतित्व की व्याख्या में अनेक ग्रंथ लिखे गए हैं। इनमें कुछ पुराने हैं, कुछ नए भी। पुस्तकें पालि, संस्कृत, अंग्रेजी, फ्रेंच और जर्मन आदि सभी भाषाओं में लिखी गई हैं, किन्तु उसके व्यक्तित्व और कृतित्व के संबंध में अभी अन्तिम शब्द नहीं कहा गया है। व्याख्या का आधार ही बदलता, बढ़ता और सुधरता रहा है। अशोक अपनी कहानी स्वयं कहता है। उसके लेख पत्थरों पर खुद कर अमिट हो चुके हैं। किन्तु इन लेखों का पता एकाएक नहीं लगा था। विभिन्न स्थानों और समयों में उसके लेख स्फुट रूप में मिलते रहे हैं। ये लेख अशोक के समय में उन स्थानों पर खुदवाए गए होंगे जहाँ धनी बस्तियाँ थीं। किन्तु अब वहाँ उजाड़ बियाबान जंगल हैं, जहां इक्के दुक्के ही कोई आदमी पहुंचता है। घने जंगलों से घिरे इन लेखों की खोज शुरू में बड़ी साहसिक और रोमांचकारी रही है। जान की जोखिम उठाकर ही अनेक बार ये लेख खोजे जा सकते हैं। किन्तु इन लेखों का मिलना ही खोज का अन्त न था। समस्या उनके पढ़ने की थी। समस्या थी उस लुप्त और विस्मृत लिपि की कुंजी प्राप्त करने की, जिसमें अशोक के ये लेख लिखे हुए हैं। भारत में उसका ज्ञान सदियों से लुप्त हो चुका था। उदाहरण के लिए फाहियान और युवाङ् च्वाङ् भारत में क्रमशः चौथी और सातवीं शताब्दी में आए थे। ये दोनों स्वयं अच्छे भाषाविद् थे। अपनी यात्रा के दौरान उन्होंने अशोक के अनेक लेख देखे थे। किन्तु उस समय उन्हें यहाँ कोई ऐसा विद्वान् नहीं मिला था जो इन लेखों के सही पाठ बताने में उनकी मदद कर सकता। इन यात्रियों ने लेखों के गलत पाठ लिखे हैं। ये पाठ लाल बुझक्कड़ी प्रवृत्ति के परिचायक हैं या फिर लोगों ने लेखों के बारे में अपना अज्ञान छिपाने के लिए सुनी-सुनाई बातें इन चीनी यात्रियों को बता दी थीं। चिरकाल तक लुप्त इस ज्ञान का उद्धार आधुनिक पांडित्य का एक रोमांस ही रहा है। जब लिपि का खुलासा हो गया तो अशोक के शब्द पढ़ लिए गए, फिर समस्या उनकी सही व्याख्या की हुई।

अशोक संबंधी ज्ञान अब एक सौ वर्षों से अधिक पुराना हो चुका है। इस काल में इसके लेखों की खोज, पाठ और व्याख्या—इन तीनों दिशाओं में काफी प्रगति हुई है। इस प्रगति की मुख्य घटनाएं निम्नलिखित हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करीव १७५० ई० में अशोक का पहला लेख मिला था जव पादरी टीफेनथेलर ने दिल्ली में दिल्ली-मेरठ स्तंभ के टुकड़े देखे थे।

सन् १७८५ में जे० एच० हेरिंग्टन सबसे पहली बार वरावर और नागार्जुनी पहाड़ियों की गुफाओं में गए थे। उनसे कुछ साल पहले होजेज ने वहाँ तक पहुँचने की कोशिश अवश्य की थी। किन्तु चेतसिंह के एक मित्र राजा के आदमियों ने रास्ते में ही उनकी हत्या कर दी थी।

सन् १७८५ के आस-पास ही दिल्ली-टोपरा स्तंभ की खोज कैप्टन पोलियर ने की थी। इस लेख के कुछ रेखाचित्र उन्होंने सर विलियम जोंस को दिए थे।

सन् १८०१ में दिल्ली-टोपरा स्तंभ लेख एशियाटिक रिसर्चेज में प्रकाशित हुआ था। इलाहाबाद-कोसम स्तंभ लेख के कुछ अंश कैप्टन जेम्स होर की अनुकृतियों के थे।

सन् १८२२ में मेजर जेम्स टाड को गिरनार चट्टान लेख मिला था।

सन् १८३४ में लेफ्टिनेंट टी० एस० वर्ट की बनाई इलाहावाद स्तंभ लेख की अनुकृति और जेम्स प्रिंसेप की तैयार की हुई अशोक के अक्षरों की एक वर्गीकृत तालिका वंगाल एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल में प्रकाशित हुई थी। प्रिंसेप उस समय तक अशोक की पूर्ण वर्णमाला नहीं पढ़ पाया था। वह आ, ए की मात्राएँ और अनुस्वार के चिन्ह ही अनुमान कर सका था। छः महीने के अध्ययन के वाद उसने य्, व्, और स् अक्षर भी पहचान लिए थे।

सन् १८३६ में महाराजा रणजीत सिंह के एक फ्रांसीसी अधिकारी एम० ए० कोर्त ने शाहवाजगढ़ी चट्टान लेख खोजे।

अशोक संवंधी ज्ञान के इतिहास में सन् १८३७ वड़े महत्त्व का वर्ष रहा है। इस वर्ष में सवसे पहली वार प्रिंसेप ने अशोक का एक लेख पढ़ने में सफलता प्राप्त की। दिल्ली-टोपरा स्तंभ लेख का पाठ और उसका अनुवाद उसने जे. ए. एस. बी, खंड vi में प्रकाशित कराया। उस समय उसके पास लौड़िया अरराज और लौडिया नन्दनगढ़ के दो स्तंभों के लेखों की प्रतिलिपियाँ भी थीं। इस वर्ष उसने मेजर पी० एल० प्यू की तैयार की हुई दिल्ली-मेरठ स्तंभ लेख की प्रतिलिपि की लिथोग्राफ और रानी के लेख की लिथोग्राफ भी प्रकाशित कराई। इस वर्ष की अन्तिम घटना भारत के एक सुदूर प्रदेश में लेफ्टिनेंट किट्टो द्वारा धौली के चट्टान लेख की खोज थी।

सन् १८३८ में प्रिंसेप ने अशोक संवंधी अध्ययन की दिशा में और प्रगति की। वह गिरनार और धौली के अशोक के लेखों का तुलनात्मक अध्ययन कर इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि इनकी लिपि, भाषा और विषय एक ही हैं। ज० ए० सो० बं०, खंड vii में उसने इनके पाठ और अनुवाद प्रकाशित किए। सन् १८३५ में कैप्टन लैंग ने वंबई के पादरी डा० जे० विल्सन के लिए कपड़े पर गिरनार के लेख की अनुकृति वनाई थी। विल्सन ने यह अनुकृति प्रिंसेप को पढ़ने के लिए भेज दी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

थी। सन् १८३८ में किट्टो की बनाई धौली के लेख की प्रतिलिपि भी प्रिंसेप के पास थी। ये उसकी संशोधित प्रतियां थीं जिन्हें किट्टो ने अपने जान की जोखिम उठाकर बनायी थीं। जैसा उसने कहा है, "धौली में वह दिन निकलने से पहले ही पहुंच गया था। वह प्रकाश होने की प्रतीक्षा कर रहा था। उस समय उस जगह पर दो भालू कब्जा किए बैठे थे। पिछले साल जब वह यहाँ आया था तो भालुओं के एक जोड़े को उसने अपनी बंदूक का निशाना बनाया था। उस समय वे भालू तो मर गए थे, पर उनके दो बच्चे किसी तरह बच रहे थे, अब वे पूरे पट्ठे हो गए थे और वे जगह छोड़ने को तैयार न थे" (ज० ए० सो० बं०, खण्ड vii २१९)।

सन् १८३९ में—ई० एल० राविंशा ने शाह कबीरुद्दीन से सहसराम के चट्टान-लेख की प्रतिलिपि प्राप्त की थी।

सन् १८४० में सी० मैसन ने शाहबाजगढ़ी चट्टान लेख की प्रतिलिपि तैयार की थी। इसके लिए जान की जोखिम उठाकर वह स्वयं वहाँ गया था। यूरोप में नोरिस ने इन प्रतिलिपियों की परीक्षा की। उसने सबसे पहले इनमें खरोष्ठी में देवानंपियस पढ़ा।

सन् १८४० में बैराट में तथाकथित भाब्रू का लेख कैप्टन बर्ट ने खोजा था। कैप्टन किट्टो ने विद्वान् पंडित कमला कांत की सहायता से बर्ट वाली प्रति का लिप्यंतरण और अनुवाद किया था (जे० ए० सो० बं०, खंड ix, ६१७)।

सन् १८५० में सर वाल्टर एलियट ने जोगड के चट्टान लेख की प्रतिलिपि तैयार की। एलियट ने जान लिया था कि यह अशोक के ही लेख हैं। तब तक अशोक के लेख शाहबाजगढ़ी, गिरनार और धौली में मिल चुके थे।

सन् १८६० में फारेस्ट ने कालसी के चट्टान लेख की खोज की। फारेस्ट को जब ये लेख मिले थे तो उस शिला पर सैंकड़ों साल से काई जमी हुई थी।

सन् १८७२ में कार्लाइल ने बैराट के लघु चट्टान लेख की खोज की थी। रामपुरवा के स्तंभ लेख की खोज का भी श्रेय उसे ही है।

सातवें दशक से पहले रूपनाथ का लघु चट्टान लेख भी मिल चुका था। मिलने से पूर्व कर्नल एलिस का एक नौकर इसकी खोज कर चुका था। बंगाल एशियाटिक सोसायटी के लिए उसने इसकी एक नकल भी तैयार की थी।

तब १८७९ में कनिंघम ने अशोक के लेखों का एक संग्रह कार्पस इंस्क्रिप्शनम् इंडिकेरम् खंड १ नाम से प्रकाशित कराया। इस ग्रंथ से एक नए युग का प्रारंभ हुआ। यह ग्रंथ अशोक संबंधी अध्ययन के इतिहास मे दूसरे चरण के श्रीगणेश का सूचक है। पहले चरण में प्रिंसेप, बर्नोफ और विल्सन (१८५०) की रचनाएँ आती हैं। ऐसा लगता है कि प्रिंसेप और बर्नोफ चट्टान लेखों में सिर्फ तीन—शाहबाजगढ़ी, गिरनार और धौली के लेखों से ही परिचित थे। बर्नोफ और विल्सन भाब्रू के लेख से भी परिचित थे। जहाँ तक गुफा लेखों का प्रश्न है प्रिंसेप

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सिर्फ नागार्जुनी के लेख, वर्नोफ नागार्जुनी और बराबर दोनों से परिचित था। स्तंभ लेखों में प्रिसेप कौशांवी और सांची को छोड़कर सभी अन्य लेखों से परिचित था। कनिंघम के कार्पस के समय तक अशोक के दूसरे बहुत से लेखों का भी ज्ञान हो चुका था, जैसे सहसराम, रूपनाथ और वैराट के लघु चट्टान लेख और सांची और कौशांबी के लघु स्तंभ लेख।

इसके बाद भी अशोक के कई लेख मिलते रहे हैं।

सन् १८८२ में डा० भगवान लाल इंद्रजी ने सोपारा में चट्टान लेख ८ का एक टूटा हुआ भाग खोज निकाला था। हाल ही में एक शिलाखण्ड प्राप्त हुआ है जिसमें चट्टान लेख ९ का प्रथम आधा हिस्सा है (ए० इं०, ३२)। इसमें सं० का ल् प्राकृत का र् है।

मानसेहरा चट्टान लेख दो बार में सन् १८८९ में खोजे गए। इसका एक हिस्सा कैप्टन ली ने खोजा था और दूसरा पंजाब पुरातत्त्व सर्वे के एक भारतीय कर्मचारी ने।

मैसूर के तीन लघु चट्टान लेख सन् १८९१ में लुई राइस ने ढूंढे थे।

फुहरेर ने सन् १८९५ में निगाली सागर स्तंभ लेख और सन् १८९६ में रुम्मिनदेई स्तंभ लेख का पता लगाया था।

सन् १९०५ में ओर्टेल ने सारनाथ स्तंभ लेख का पता लगाया था।

अंतिम खोज सन् १९१५ में बीडेन ने मास्की के चट्टान लेख की की। बीडेन निजाम सरकार में सोने की खानों का इंजीनियर था।

इस बीच अशोक-संबंधी अध्ययन में काफी प्रगति हुई और कई प्रकाशन इस विषय पर हुए। इनमें सेनार्ट का लेस इंस्क्रिप्शनीज डे पियदसि (१८८१) और बुइलर के जेड० डी० एम० जी०, ए० इं० खण्ड i और ii में अशोक के लेखों के संस्करण प्रमुख हैं। इनके अलावा अन्य विद्वान् भी समय-समय पर अशोक के बारे में लिखते रहे हैं। उनमें ओ० फ्रंके, विन्सेन्ट स्मिथ, फ्लीट, माडकेलसन, लुडर, एफ. डब्ल्यू० थामस, हुल्ट्ज, देवदत्त भंडारकर, काशी प्रसाद जायसवाल, वेणी माधव वरुआ और ए० सी० वूलनर प्रसिद्ध हैं।

अशोक के अध्ययन की दिशा में अंतिम चरण आगामी कुछ समय के लिए सन् १९२५ में हुल्ट्ज के कार्पस का प्रकाशन है। खेद है कि अभी हाल ही में इनका स्वर्गवास हो गया। इनकी मृत्यु से सामान्य तौर पर भारतीय इतिहास की, पर विशेषकर अशोक के अध्ययन की गहरी क्षति हुई है।

अब अशोक के लेखों के पाठ और उनकी व्याख्या भी करीब-करीब निश्चित हो चुकी है। इस विषय के विद्यार्थियों के लिए एक उपयोगी पाठ्य-पुस्तक की बड़ी आवश्यकता थी। विश्वविद्यालयों में अब विद्यार्थी विशेष परीक्षा के लिए अशोक को अधिकाधिक संख्या में चुन रहे हैं। इस पुस्तक में अशोक के कालक्रम और कुछ लेखों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के अंशों को छोड़कर किसी प्रकार की मौलिकता का मेरा दावा नहीं है। लेखों के इन अंशों के बारे में विद्वानों में काफी समय से मतभेद रहा है। इन अंशों की व्याख्या में मैंने कुछ नए सुझाव दिए हैं। अशोक के चरित के बारे में भी मैंने सामान्य परिपाटी से कुछ हटकर ही लिखा है। लेखों के बारे में टिप्पणियां किंचित् विस्तार से दी गई हैं जिनमें विभिन्न विद्वानों के मतों और उनकी व्याख्याओं का भी जिक्र आया है। इनकी व्याख्या में मैंने संस्कृत और पालि के समानान्तर प्रयोग भी दे दिए हैं। कौटिल्य के अर्थशास्त्र और लेखों की संगतियां विशेष रूप से दी गई हैं। लेख का जो सबसे अच्छा पाठ रहा है उसे ही ग्रहण किया गया है। महत्त्वपूर्ण पाठभेद पादटिप्पणियों में दे दिए गए हैं। अशोकनिर्मित महत्त्वपूर्ण स्मारकों के चित्र देकर पाठकों की उत्सुकता की तृप्ति की गई है। चित्रों के लिए अधिकांश फोटोग्राफ भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण से प्राप्त हुए हैं। कुछ फोटोग्राफ मैंने स्वयं उन स्थानों की यात्राओं में लिए थे, जैसे धौली और कालसी के हाथी के, बखरा, लौडिया अरराज और रुम्मिनदेई के स्तंभों के। धौली के फोटोग्राफ के लिए मैं श्री निर्मल बसु का आभारी हूं। रुम्मिनदेई के फोटोग्राफ का प्रबंध नरहरिया, बस्ती के मेरे शिष्य श्री पी० पी० पांडेय एम० ए० ने किया है। अशोक के लेखों का मूल रूप में अध्ययन करने वाले पाठकों की सुविधा के लिए उसकी वर्णमाला का एक फलक अलग से दे दिया गया है (यह लखनऊ के आर्ट एंड क्राफ्ट्स स्कूल के प्रिंसिपल ए० के० हाल्दार के रेखांकन के आधार पर बनाया गया है)। अनेक बहुमूल्य हवालों और सुझावों के लिए मैं लखनऊ विश्वविद्यालय भारतीय इतिहास विभाग में अध्यापक श्री चरण दास चैटर्जी, एम० ए० का ऋणी हूं।

सुविधानुसार संस्कृत और प्राकृत दोनों रूपों का प्रयोग किया गया है।

मैं बड़ौदा के हिज हाइनेस सर सयाजी राव गायकवाड़, और उनकी सरकार और काशी हिंदू विश्वविद्यालय के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं। महाराजा ने मुझे सयाजी राव गायकवाड़ पुरस्कार दिया था जिसके साथ इस ग्रंथ का संबंध है। काशी विश्वविद्यालय में मैंने इस ग्रंथ के कतिपय अंशों के आधार पर मणींद्र चंद नंदी व्याख्यान (सन् १९२७) दिए थे।

राधाकुमुद मुखर्जी

लखनऊ विश्वविद्यालय
अप्रैल १९२७

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अध्याय १

प्रारम्भिक जीवन और परिवार

राजाओं के इतिहास में—चाहे एक सामान्य मनुष्य के रूप में हों या शासक के—अशोक की जोड़ का दूसरा राजा शायद नहीं हुआ। उसके बड़प्पन को आंकने के लिए इतिहासकारों ने दूसरे राजाओं से उसकी तुलना की है। इन तुलनीय राजाओं में कुछ पूरब के हैं तो कुछ पश्चिम के रहे हैं। कुछ प्राचीन राजा हैं तो कुछ आधुनिक, कुछ पगान (व्रात्य) हैं तो कुछ मुसलमान और ईसाई भी। उसने धर्मतंत्र के उच्चतम आदर्शों के अनुरूप सदाचार के राज्य की स्थापना का यत्न किया था। इस दृष्टि से उसकी तुलना डेविड और सोलोमन से की गई है। ये राजा उस युग में हुए थे जब इज़राइल अपने गौरव के उच्चतम शिखर पर था। उसने बौद्ध धर्म को राजाश्रय प्रदान कर उसे एक स्थानीय धर्म से विश्व धर्म के मार्ग पर खड़ा कर दिया था। इस दृष्टि से उसकी सेवाओं की तुलना ईसाई धर्म के लिए कांस्टेंटाइन[1] की सेवाओं से की जाती है। साम्राज्य विस्तार और कतिपय अर्थों में साम्राज्य के प्रबन्ध की दृष्टि से वह चार्लमैंने[2] था। "रूखे, सौंदर्यहीन, जटिल और पुनरावृत्तियों से भरे उसके शिलालेखों की शैली ओलिवर क्रामवेल के भाषणों से मिलती-जुलती है" (राइज डेविड्स)। अंत में, उसकी तुलना खलीफा उमर और बादशाह अकबर से की गई है क्योंकि कुछ बातों में उसकी इनसे भी समानता है।

जैसे किंग आर्थर और उसके राउंड टेबिल के नाइटों, साधु अल्फ्रेड या फ्रांस के राजा सेंट लुई जैसे महान् व्यक्तियों को लेकर अनेक दंतकथाएं चल निकलीं वैसे ही अशोक के संबंध में भी दंतकथाओं का अकाल नहीं। इन कथाओं में कल्पना और आख्यायिका का खूब मिश्रण हुआ है—खासकर लंका के उष्ण जलवायु में। इनके जंजाल से सच्चे इतिहास का उद्धार करना दुष्कर ही होता यदि वे लेख न होते जिन्हें

---

१. ध्यान देने की बात यह है कि इस तुलना के संबंध में विद्वानों में किंचित मतभेद है। राइज डेविड्स का मत है कि अशोक का बौद्ध होना इस धर्म के पतन का पहला कदम था। यह भारत से इस धर्म के निष्कासन का भी पहला कदम था। एक अन्य समालोचक की राय में जब कि "कांस्टेंटाइन ने एक विजयोन्मुख हेतु का समर्थन किया, अशोक ने एक अलोकप्रिय धार्मिक सुधार का नेतृत्व किया था।"

२. चार्लमैंने के *missi dominici* की अशोक के लेखों के पुरुषों से और *Markgrafen* की अंत-महामात्रों से तुलना कीजिए।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्वयं अशोक ने अपनी प्रजा के नाम संदेशों के रूप में लिपिबद्ध कराये थे। इन लेखों में एक तरह से उसकी आत्म-कथा ही सुरक्षित है। उसके ये संदेश पत्थर की चट्टानों या पत्थर के ही सुगढ़ और पालिशदार स्तंभों पर खुदे हैं। इन लेखों में उसने अपनी आत्मा ही उडेल दी है, इनमें उसका जीवन-दर्शन निहित है। इनसे यह भी पता चलता है कि राजधर्म की उसकी कल्पना क्या थी और किस सीमा तक वह उन ऊँचे आदर्शों के अनुरूप आचरण कर पाया था जिनका उपदेश वह करता था। ये प्रमाण उसके समकालीन ही नहीं हैं, बल्कि उसके निजी दस्तावेज भी हैं। भारतीय इतिहास में फिर किसी राजा के संबंध में ऐसे प्रमाण नहीं मिले। उनकी प्रेरणा स्थानीय रही हो या कहीं विदेश से आई हो, हमारा यह सौभाग्य ही है कि अपने इस महान् सपूत के बारे में ऐसे प्रमाण उपलब्ध तो हैं: "अहो! मेरे शब्द लिपि-बद्ध हुए। लोहे की कलम और सीसे से पत्थरों में सदा के लिए खोदे गए।" जॉब की यह पूत कामना अशोक के संबंध में उसके अभिलेखों के रूप में पूर्णतया साकार हुई है। उसके ये लेख पत्थर की चट्टानों और खंभों पर प्रकाशित किए गए थे। इनमें से कुछ तो उसके साम्राज्य की सीमाओं पर मिलते हैं।

अशोक के इतिहास की जानकारी के लिए जहाँ तक दंतकथाओं का संबंध है—चाहे वे लंका की हों या भारतीय—वे उसके प्रारम्भिक जीवन के बारे में ही अधिक कहती हैं जबकि उसके लेख बाद के जीवन पर, जब वह सम्राट था—प्रकाश डालते हैं जहाँ दंतकथाएं प्रायः मौन हो जाती हैं। इन दोनों साधनों में यदाकदा मतैक्य भी मिलते हैं। वैसे घटनाक्रम के बारे में इनमें वैषम्य ही अधिक है। इस वैषम्य की स्थिति में हमें अभिलेखों के प्रमाण को ही मान्यता देनी होगी क्योंकि वे उसके समकालीन और निजी दस्तावेज हैं। अपरंच, स्वयं इन दंत-कथाओं में भी आपस में विरोध है। उन पर अधिक विश्वास न करने का एक कारण यह भी है।

लंका की परंपरा में (जिसका आख्यान दीपवंश और महावंश में हुआ है) बिंदुसार की सोलह पटरानियों और १०१ पुत्रों का उल्लेख है। पुत्रों में केवल तीन के नामोल्लेख हैं, वे हैं सुमन (उत्तरी परंपराओं का सुसीम) जो सबसे बड़ा था, अशोक और तिष्य। तिष्य अशोक का सहोदर भाई और सबसे छोटा था। उत्तरी परंपराओं में अशोक की माता का नाम सुभद्रांगी[1] मिलता है जिसे चंपा के एक ब्राह्मण की रूपवती कन्या बतलाया गया है। इससे बिंदुसार को एक दूसरा पुत्र भी हुआ था जिसका नाम विगताशोक (वीताशोक) था न कि तिष्य जैसा लंका की परंपरा में आता है। दक्षिणी परंपरा में उसकी माता का नाम धर्मा आया है। धर्मा को

१. इसका उल्लेख अशोकावदानमाला में तो है, पर दिव्यावदान में नहीं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अग्रमहिषी (अग्ग-महेसी) (महावंशटीका, अध्या० iv, पृ० १२५)[1] कहा गया है। उसके परिवार के गुरु का नाम जनसान था जो एक आजीविक साधु था। इससे इस बात का खुलासा हो जाता है कि अशोक आजीविकों को आश्रय क्यों देता था। धर्म का जन्म मोरियों के क्षत्रिय वंश में हुआ था।[2]

उस काल की परिपाटी के अनुसार साम्राज्य के एक दूर के प्रांत में अशोक को वाइसराय के रूप में नियुक्त किया गया था। यह प्रांत पश्चिमी भारत में था जिसका नाम अवंतिरट्टम्[3] (महाबोधिवंश, पृ० ९८) था। लंका की परंपरा के अनुसार इसकी राजधानी उज्जैन थी पर भारतीय परंपराओं के अनुसार वह उत्तरापथ (दिव्या०) में स्वशों[4] के राज्य में वाइसराय था जिसकी राजधानी तक्षशिला थी। यहाँ अशोक को अस्थायी रूप में तब भेजा गया था जब सुसीम तक्षशिला में विद्रोह का दमन न कर पाया था। यह विद्रोह उसके कुप्रबंध के कारण हुआ था। तक्षशिला में सुसीम के समय में ही एक दूसरा विद्रोह उस समय हुआ था जब पाटलिपुत्र का सिंहासन रिक्त हुआ। सुसीम इस विद्रोह को भी शांत न कर सका, जब अशोक ने अवसर का लाभ उठाकर मंत्री राधगुप्त की सहायता से सिंहासन पर अधिकार कर लिया। सिंहासन को लेकर सुसीम से अशोक का युद्ध हुआ जिसमें सुसीम मारा गया [दिव्या०[5] (अध्याय, २६)]। पर सिंहल की कथाओं में उत्तराधिकार

---

१. इस उद्धरण के लिए मैं लखनऊ विश्वविद्यालय में प्राचीन भारतीय इतिहास के लेक्चरर श्री चरण दास चटर्जी का ऋणी हूँ।

२. मोरियवंसजा (महावंशटीका, वही व महाबोधिवंश, पृ० ९८ भी)।

३. अर्थात् अवंतिराष्ट्र या अवंति का प्रांत।

४. संभवतः मनु, x, २२ और एक लेख (एपि० इंडि० i, १३२) में उल्लिखित खसों से तात्पर्य है।

५. दिव्यावदान के अनुसार उत्तराधिकार की लड़ाई दो भाइयों के बीच ही हुई थी, जबकि महाबोधिवंश में इस युद्ध में एक ओर अशोक था और दूसरी ओर ९८ भाई थे जिन्होंने अपने सबसे बड़े भाई सुसीम का साथ दिया था जो उस समय युवराज और दरअसल सिंहासन का वास्तविक अधिकारी था। दिव्यावदान अशोक के दावे के समर्थन में कहता है कि जब बिंदुसार जीवित था तो उसने एक बार आजीविक साधु पिंगलवत्स को बुलाया था। पिंगलवत्स ने फैसला किया था कि सभी राजकुमारों में अशोक सिंहासन के सबसे उपयुक्त है। इस ग्रंथ के अनुसार अशोक के समर्थन में बिंदुसार के सभी मंत्री खल्लाटक (प्रधान-मंत्री) और ५०० अन्य मंत्री थे। ध्यान देने की बात यह भी है कि चीनी यात्री इ-त्सिंग ने एक जनश्रुति का उल्लेख किया है जिसमें स्वयं भगवान बुद्ध ने अशोक के चक्रवर्तित्व की भविष्यवाणी की थी। जनश्रुति है कि बिंदुसार ने एक रात स्वप्न देखा कि कपड़े का एक टुकड़ा और सोने की छड़ी दोनों अट्ठारह भागों में विभक्त हो गए थे। इसका भाष्य करते हुए भगवान् बुद्ध कह रहे हैं कि "उनके निर्वाण के सौ से अधिक साल बीतने पर उनके उपदेश १८ भागों में विभक्त हो जाएँगे" जब अशोक नाम का एक राजा पैदा होगा जो सकल जंबु-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की घटना एक दूसरे ही रूप में वर्णित है। इसमें अशोक ने उज्जैन से सिंहासन प्राप्त किया। उसकी नियुक्ति वहीं थी। काफी समय से वह उज्जैन में ही वाइसराय था। अशोक ने उत्तराधिकार के इस युद्ध में तिष्य को छोड़कर सभी भाइयों का वध कर दिया।

सिंहासन के उत्तराधिकार के लिए युद्ध हुआ था, इस संबंध में उत्तरी और दक्षिणी दोनों परम्पराओं में मतैक्य है। दक्षिण की कथाओं का यह कथन कि अशोक ने राज्य के लिए अपने ९९ भाइयों की हत्या की थी जिसके लिए उसे चंडाशोक (महावंश, १८९) कहा गया है अतिरंजित है। मेनार्ट (इंस्क्रिप्शंस ii, १०१) ने अच्छी तरह से सिद्ध कर दिया है कि अशोक की क्रूरता के वर्णन में इन दंतकथाओं में भी मतैक्य नहीं है। तारानाथ के अनुसार उसने सिर्फ ६ भाइयों का वध किया था। अशोक-अवदान में कहा गया है कि उसने अपने अधिकारियों और उनकी पत्नियों का वध करा दिया था। उसने एक नरक का निर्माण कराया था जहाँ लोगों को तरह-तरह से यातनाएँ दी जाती थीं।[1] महावंश में कथा आई है कि अशोक के आदेश से उसके मंत्री ने झूठे भिक्षुओं के शिरच्छेद का बीड़ा उठाया था। यह नरमेघ तब तक चलता रहा जब तक कि उसके भाई ने इसे बंद नहीं कराया। अशोक-अवदान में कहा गया है कि उसने मुनादी करा दी थी जो भी एक ब्राह्मण-संन्यासी का सिर लाएगा उसे इनाम मिलेगा। ब्राह्मण-संन्यासियों ने भगवान बुद्ध की प्रतिमा के अपमान का अपराध किया था। यह हत्याकांड उसके भाई वीताशोक के हस्तक्षेप से बंद हुआ था। युवाङ् च्वाङ् ने एक दंतकथा का उल्लेख किया है कि "अशोक और उसकी रानी ने बारी बारी से बोधि वृक्ष को नष्ट करने के प्रयत्न किए"। जब हर बार असफलता हाथ लगी और वृक्ष बढ़ता ही गया तो "अशोक ने एक पत्थर की दीवार से उसे घिरवा दिया"। (वैटर्स, ii, ११५)। फाहियान (गाइल्स, पृ० ५९) के अनुसार अशोक एक कट्टर बौद्ध था। वह हर समय बोधि वृक्ष की उपासना में ही लीन रहता था। ईर्ष्यावश

(जारी)
द्वीप पर शासन करेगा।" (तककुसु का इ-त्सिंग, पृ० १४)। दिव्यावदान (२६, पृ० ३६८) में भी अशोक के बारे में बुद्ध की एक भविष्यवाणी का उल्लेख है जिसमें भगवान ने कहा था कि यह धर्मात्मा राजा उनकी धातुओं पर ८४००० "धर्म-राजिक" बनवाएगा।

१. युवाङ् च्वाङ् ने एक बड़ा ऊँचा स्तम्भ देखा था जिसके बारे में प्रसिद्धि थी कि यह उसी स्थान पर है जहाँ कभी अशोक का नरक था जिसमें मनुष्यों को यातना देने के लिए तरह-तरह के यंत्रों की कल्पना की गई थी। चीनी यात्री एक अनुश्रुति का उल्लेख करता है कि अशोक को एक अर्हत् ऐसा भी मिला जिसे किसी प्रकार की यातना का कष्ट नहीं हुआ। इससे अशोक को अपने पाप का ज्ञान हुआ। उसने जेल को गिरवा दिया और अपने दंड-विधान को उदार बना दिया (वैटर्स ii, ८९)। फाहियान ने अशोक के नरक का और विस्तार से वर्णन किया है। (गाइल्स का अनुवाद, पृ० ५६-५८)।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उसकी रानी ने पवित्र वृक्ष के ही मूलोच्छेद का यत्न किया। सच तो यह है कि इन कहानियों में यही दिखलाने का उत्साह है कि बुद्ध की शरण में आने से पूर्व अशोक कितना क्रूर था और उसके बाद उसमें कितना परिवर्तन आ गया। इनका उद्देश्य अपने धर्म का कीर्तिगान है जिसमें एक खोटी धातु को भी सोना बना देने की सामर्थ्य है। इस दृष्टि से चंडाशोक के रूप में उन्होंने अशोक को बुरा से बुरा दिखाने की कोशिश की है। बौद्ध धर्म ने इस चंडाशोक को भी धर्माशोक बना दिया। (वही) राक्षस को बदलकर साधु बना दिया।[1]

इनकी साक्षी का खंडन स्वयं अशोक ही कर गया है। चट्टान लेख ५ में उसके भाइयों का (बहनों और अन्य संबंधियों का भी) उल्लेख है।[2] लघु चट्टान लेख २, चट्टान लेख ३, ४, ६, ११ और १२, स्तंभ लेख ७ और रानी के लेख में भी इनके उल्लेख हैं। इन लेखों में अशोक ने अपने दूर के रिश्तेदारों के भी कल्याण की कामना की है। इनसे हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अशोक का अपना भरा-पूरा परिवार था जिसमें भाई थे, बहिनें थीं। ये पाटलिपुत्र और दूसरे प्रांतीय नगरों में रहते थे। उसके 'बेटे थे पोते थे', (चट्टान लेख १३ और ५) और राजा की ओर से इनका भरण-पोषण होता था। स्तंभ लेख ७ में लिखा है "यहाँ (पाटलिपुत्र में) तथा प्रांतों में मेरे सभी रनवासों में" (मिला० चट्टान लेख ५)। विभिन्न प्रांतीय राजधानियों में उसके भाइयों के रनिवास थे—इस बात के प्रमाण तो हैं ही साथ ही इस बात के भी प्रमाण हैं कि ये भाई (जिन्हें कुमार और आर्यपुत्र कहते थे) विभिन्न राजधानियों में जैसे तक्षशिला, तोसली और उज्जैनी (कलिंग लेख) और सुवर्ण गिरि (लघु

---

१. अशोक की पूर्व क्रूरताओं के कारण उसे 'चंडाशोक' नाम मिला था। यदि हम यह मानें कि उसने सिंहासन के लिए अपने एक भाई की हत्या करायी थी और उसके अन्य भाई उसके शासन में जीवित थे (चट्टान लेख ५ और १३) तो उसे यह 'चंडाशोक' नाम देना उचित न होगा। हो सकता है कि उसके ये भाई सगे भाई ही रहे हों। इनमें से तिष्य का नाम जनश्रुतियाँ बतलाती हैं। जनश्रुतियों में जितने भाइयों की हत्या का वर्णन है उसमें अत्युक्ति हो सकती है। जनश्रुतियों में ऐसी अत्युक्ति स्वाभाविक है। उस दोष से तो उसके लेख भी बरी नहीं हैं। हम यह भी मान सकते हैं कि मृत भाई उसके सौतेले भाई रहे हों। महाबोधिवंश (पृ० ९९) के अनुसार जैसा ऊपर कहा गया है ये ९८ भाई और उनका नेता युवराज सुमन अशोक को राज्य हड़पने वाला समझते थे। इसलिए उन्होंने उसके विरुद्ध युद्ध छेड़ा था। इस प्रकार इन परिस्थितियों में उनकी हत्या के लिए अशोक को उत्तरदायी नहीं माना जा सकता।

२. वस्तुतः इस जगह 'उसके भाइयों और बहनों के अंतःपुरों' का अस्तित्व मात्र वर्णित है। इससे हम निश्चयपूर्वक यह नहीं कह सकते कि वे उस समय जीवित ही थे। किंतु हम यहाँ सिर्फ इस बात का विचार कर रहे हैं कि अशोक को अपने भाइयों और बहनों और उनके परिवारों से कितना प्यार था। इस वृत्तांत से ऐसा निष्कर्ष तो निश्चय ही निकाला जा सकता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चट्टान लेख १, ब्रह्मगिरि) में वाइसराय भी थे। जैसा नीचे दिखाया गया है ये वाइसराय उसके बेटे नहीं हो सकते। अंतिम बात यह कि अपने बेटे-बेटियों के लिए भी उसने कलिंग लेख १ में प्यार प्रदर्शित किया है वह कहता है "मेरी इच्छा है कि मेरे पुत्र सभी प्रकार के हित और सुख इस लोक में और परलोक में प्राप्त करें।" जिस मनुष्य का हृदय अपने सभी संबंधियों के लिए इतना कोमल है, वह क्रूरता की मूर्ति नहीं हो सकता जैसा कि अनुश्रुतियां उसे चित्रित करना चाहती हैं।

जनश्रुतियों के अनुसार अशोक और उसके अनुज के मध्य बड़ा मैत्रीपूर्ण और नैसर्गिक संबंध था। पर इन संबंधों के बारे में विभिन्न कहानियाँ हैं। युवाङ् च्वाङ् उसका नाम महेंद्र बतलाते हुए कहता है कि राज-वंश में जन्म लेने का लाभ उठाकर वह कानूनों की परवाह नहीं करता था। उसका व्यक्तिगत जीवन बड़ा उच्छृंखल था। वह प्रजा पर तरह-तरह के अत्याचार करता था। अंत में बूढ़े मन्त्रियों ने उसके कुकृत्यों की खबर राजा को दी। आँखों में आँसू भरकर अशोक ने भाई को फटकारा। महेंद्र ने अपना अपराध स्वीकार किया। उसने सात दिन की मोहलत मांगी। इस बीच अंधेरे कमरे में उसने गंभीर चिंतन किया और वह अर्हत् बन गया। उसे रहने के लिए पाटलिपुत्र के पास ही एक गुफा दे दी गई। फाहियान उसके भाई का नाम तो नहीं बतलाता पर कहता है कि वह एक पहाड़ी पर एकांतवास करता था जिसे छोड़ने को वह तैयार न होता था। "राजा सचमुच उसका सम्मान करता था, वह चाहता था और उसने इसकी प्रार्थना भी की कि वह उसके साथ रहे जहाँ वह उसकी सभी आवश्यकताएं पूरी करेगा।" अंत में राजा ने उसे पास रखने के लिए पाटलिपुत्र में ही एक पहाड़ी का निर्माण करा दिया। अन्य ग्रंथों में एक दूसरी ही कहानी मिलती है। पालि पुस्तकों में उसका नाम तिष्य है और दिव्यावदान में वीताशोक। कुछ चीनी ग्रंथों में उसका नाम सुदत्त और सुगात्र है। इन ग्रंथों में उसका अपराध भी बतलाया गया है। एक तीर्थिक के रूप में उसने बौद्धों की यह कहकर निंदा की थी कि वे ऐयाशी का जीवन बिताते हैं और वासनाओं के दास हैं। उसे उसकी भूल बतलाने के लिए अशोक ने अपने अग्र अमात्य से मिलकर जाल बिछाया और उसे सिंहासन पर बिठा दिया। फिर अशोक प्रकट हो गया और उसने उस पर आरोप लगाया कि उसने सिंहासन हड़प लिया है। इस अपराध में उसे मौत की सजा दी गयी और इसके लिए उसे सात दिन की मोहलत दी गई। इस अवधि में सुख के सभी साधन उसे सुलभ थे। पर मौत की छाया में उसने इनकी ओर ताका भी नहीं। इस मिसाल से अशोक ने उसे यह बतलाने की कोशिश की थी कि मृत्यु और जन्म के महापाश में फंसा कोई बौद्ध सुख में कैसे लिप्त हो सकता है। उसने अंत में उसे बंधन से मुक्त कर दिया। किंतु वीताशोक एक सीमांत प्रदेश में चला गया और वहाँ वह अर्हत् हो गया। बाद में एक बार वह पाटलिपुत्र भी आया था और अशोक से मिला भी था। पर शीघ्र ही वह एक दूसरे जिले में चला गया। वहाँ के राजा ने निर्ग्रंथों के सिर के लिए इनाम घोषित किए थे। उसे भी वहाँ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निर्ग्रंथ समझकर उसका शिरोच्छेद कर दिया गया। महावंश (३३) में अशोक ने अपने भाई तिष्य को अपना उपराज (Vice-regent) नियुक्त किया था। पर योनक आचार्य महाधर्मरक्षित के उपदेश से वह भिक्षु बन गया। फिर उसका नाम एकविहारिक हुआ। उसके लिए अशोक ने प्रचुर धन व्यय कर भोजकगिरि में एक विहार बनवाया था। यह कथा थेर-गाथा टीका[1] में एकविहारिक की गाथाओं की टीका करते हुए धम्मपाल ने लिखी है। इसी ग्रंथ में अशोक के सबसे छोटे भाई का नाम वीताशोक बतलाया गया है। इस वीताशोक को तिस्स एकविहारिक से भिन्न कहा है। इसमें यह बतलाया गया है कि कैसे उसका लालन-पालन हुआ और कैसे सभी विद्याओं और शिल्पों में वह पारंगत हुआ।[2] फिर उसने गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया। अपने आचार्य गिरिदत्त से उसने सुत्त पिटक और अभिधम्म पिटक पढ़े। एक दिन बाल बनाते (मस्सु-कम्म) समय उसने दर्पण में अपने पके बाल देखे। फिर वह जीवन के क्षय के बारे में सोचने लगा। गिरिदत्त से तुरंत उसने प्रव्रज्या ले ली और शीघ्र ही वह अर्हत् हो गया। इस प्रकार इस ग्रंथ में अशोक के दो भाई बतलाए गए हैं, जिनके पृथक्-पृथक् दो आचार्य थे। इन दोनों की पृथक्-पृथक् गाथाएं बतलाई गई हैं।

कतिपय लेखों में उसके नजदीकी रिश्तेदारों के नाम भी दिए गए हैं। इस प्रकार दूसरी रानी कारुवाकी और उसके पुत्र राजकुमार तीवर के उल्लेख हैं। एक बाद के लेख में अशोक के पोते दशरथ का नाम आया है। अशोक के लेखों में और जनश्रुतियों में भी अशोक की कई पत्नियां होने के उल्लेख हैं। सिंहली अनुश्रुतियों के अनुसार उसकी पहली पत्नी का नाम देवी था जो वेदिसगिरि के एक धनी श्रेष्ठी की पुत्री थी। अशोक ने उसके साथ तब विवाह किया था जब वह उज्जैन में वाइसराय था। महाबोधिवंश (पृ० ११६) में उसे वेदिस-महादेवी और शाक्यानी (वही) या शाक्यकुमारी (पृ० ९८) कहा गया है। प्रसेनजित के पुत्र विड्डभ ने जब अपनी ननिहाल वालों को तंग करना शुरू किया तो ये शाक्य उसके भय से अपना वतन छोड़कर वेदिसा-(वेदिसं नगरं) चले गए थे [विडूडभभयगतानं साकियानं आवासं वेदिसं]। इस प्रकार अशोक की पहली पत्नी बुद्ध के कुल से संबद्ध थी। इसके बारे में यह भी कहा गया है कि उसने वेदिसगिरि के महाविहार का निर्माण कराया था (ताय कारापितं वेदिसगिरिमहाविहारं) सांची और भिलसा का सम्भवतः यह पहला निर्माण था। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि अपने निर्माणों के लिए अशोक ने सांची और उसके उपांत के मनोहर वातावरण को ही क्यों चुना। इससे भी प्राचीन साहित्य में विदिशा का उल्लेख एक प्रसिद्ध बौद्ध स्थान के रूप में आया है (दे० सुत्त

---

१. थेर-गाथा टीका, सिंहली संस्क., कोलंबो १९१८, पृ० ६०३। इस उद्धरण के लिए मैं श्री चरण दास चटर्जी के प्रति ऋणी हूं।

२. वही, पृ० २९५।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निपात)। देवी से अशोक को एक पुत्र—महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा हुई। इसका विवाह अशोक के भागिनेय अग्निब्रह्मा से हुआ था। इसके एक बेटा भी हुआ था जिसका नाम सुमन था। महावंश के अनुसार देवी अशोक के साथ पाटलिपुत्र नहीं गई क्योंकि वहाँ अशोक की अग्रमहिषी असंधिमित्रा रहती थी (८५ और xx)। दिव्यावदान[1] में एक तीसरी पत्नी पद्मावती का भी नाम आया है। यह धर्मविवर्धन की माता थी। यही धर्मविवर्धन आगे कुणाल नाम से विख्यात हुआ। महावंश और दिव्यावदान दोनों ग्रंथों में अशोक की अंतिम अग्रमहिषी का नाम तिस्सरक्खा या तिष्यरक्षिता कहा गया है। दिव्यावदान में संप्रति को कुणाल का पुत्र बतलाया गया है। कश्मीरी इतिवृत्त में अशोक के एक अन्य पुत्र जलौक का भी उल्लेख है। फाहियान (लेग्गे का अनुवाद, पृ० ३१) ने धर्मविवर्धन नाम के अशोक के एक पुत्र का भी उल्लेख किया है जो गंधार का वाइसराय था।

इस प्रकार जनश्रुतियों और लेखों के आधार पर हम अशोक के निम्नलिखित रिश्तेदारों का अस्तित्व पाते हैं :

पिता	बिंदुसार—जिसके कई रानियां थीं।
माता	उत्तरी परम्परा में सुभद्रांगी और दक्षिणी परम्परा में धर्मा।
भाई	(१) सुमन या सुसीम—सबसे बड़ा परन्तु सौतेला भाई;
	(२) तिष्य—सहोदर और सबसे छोटा भाई, उत्तरी परम्परा में इसका नाम वीताशोक या विगताशोक भी मिलता है। युवाङ् च्वाङ् इसका नाम महेंद्र बतलाता है और अन्य चीनी ग्रंथों में सुदत्त और सुगात्र नाम भी आए हैं।
	(३) उपरि उल्लिखित थेर-गाथा टीका के अनुसार वीताशोक।
पत्नियां	(१) देवी—पूरा नाम 'वेदिस-महादेवी शाक्यकुमारी';
	(२) कारुवाकी—लेखों में द्वितीय देवी तीवलमाता;
	(३) असंधिमित्रा—अग्रमहिषी;
	(४) पद्मावती;
	(५) तिष्यरक्षिता।
पुत्र	(१) देवी का पुत्र महेंद्र; (२) कारुवाकी का पुत्र तीवर;

१. अध्याय २७, दिव्यावदान के अनुसार अशोक ने अपनी रानी पद्मावती में उत्पन्न अपने नवजात पुत्र को धर्मविवर्धन नाम दिया था। पर जैसा उसके साथ गए मंत्रियों ने कहा था शिशु की आँखें हिमालय के कुणाल पक्षी की तरह थीं। इसलिए अशोक ने उसे कुणाल कहना शुरू कर दिया था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

	(३) पद्मावती का पुत्र कुणाल—दिव्यावदान व फाहियान के अनुसार अपर नाम धर्मविवर्धन; (४) जलौक—राजतरंगिणी में उल्लिखित। लेखों में दूर के चार प्रान्तों के वाइसराय के रूप में चार पुत्रों के उल्लेख हैं, इन्हें कुमार या आर्यपुत्र कहा गया है। ये दालकों से भिन्न थे। दालक माताओं की निम्न स्थिति के अनुरूप पुत्रों की संज्ञा थी (दे० स्तम्भ लेख ७)।
पुत्रियाँ	(१) देवी की पुत्री संघमित्रा, और (२) चारुमती
जामाता	(१) संघमित्रा का पति अग्निब्रह्मा, (२) चारुमती का पति देवपाल क्षत्रिय।
पोते व नाती	(१) दशरथ, जो राजा बना, (२) कुणाल का पुत्र संप्रति, (३) संघमित्रा का बेटा सुमन।

इनमें से अधिकांश नामों के लिए हम जिन ग्रंथों के प्रति ऋणी हैं उन्हीं की सहायता से अशोक के प्रारम्भिक जीवन की कतिपय तिथियां मालूम करना भी सम्भव है। उदाहरण के लिए महावंश से पता चलता है कि अशोक के सबसे बड़े पुत्र महेंद्र और उसकी पुत्री संघमित्रा ने उसके अभिषेक के छठे वर्ष में प्रव्रज्या ली थी। उस समय उनकी उम्र क्रमश: २० और १८ वर्ष की थी। अब यदि अशोक के अभिषेक की तिथि ई० पू० २७० हो (इसका खुलासा बाद में करेंगे) तो महेंद्र का जन्म ई० पू० २८४ में और संघमित्रा का जन्म ई० पू० २८२ में हुआ होगा। यदि पहली संतान के जन्म के समय पिता की उम्र २० वर्ष मानें तो अशोक ई० पू० ३०४ में पैदा हुआ होगा। इस प्रकार चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपने इस पोते का मुंह अवश्य देखा होगा। चन्द्रगुप्त मौर्य की मृत्यु ई० पू० २९९ में हुई थी। यह भी उल्लेखनीय है कि अशोक के दामाद अग्निब्रह्मा ने उसके अभिषेक के चौथे वर्ष अर्थात् ई० पू० २६६ में प्रव्रज्या ली थी। उस समय वह एक बेटे का बाप बन चुका था। इस प्रकार संघमित्रा से उसका विवाह ई० पू० २६८ में अवश्य हो गया होगा जब संघमित्रा की उम्र चौदह वर्ष रही होगी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अध्याय २

इतिहास

अशोक के प्रारंभिक जीवन के वर्णन के बाद अब हम राजा के रूप में उसके इतिहास पर विचार करेंगे।

यदि लंका के इतिवृत्तों पर विश्वास करें तो मानना होगा कि उसके सिंहासन पाने और अभिषेक के बीच चार वर्षों का अन्तर रहा। एक तर्क यह दिया गया है कि उसे उत्तराधिकार के लिये युद्ध करना पड़ा था। अतः इस प्रकार इस विलंब का खुलासा हो जाता है। एक दूसरा तर्क भी दिया गया है जो सम्भवतः इससे अधिक समीचीन है। कहा गया है कि २५ वर्ष की उम्र से पूर्व किसी राजा का अभिषेक नहीं हो सकता था। यह बात कलिंग के राजा खारवेल के लेख में आई है (ज० बि० उ० रि० सो०, iii, पृ० ४६१)। अतः सिंहासन पाने के समय अशोक की उम्र २१ वर्ष ही रही होगी। किन्तु जैसा हम पहले बतला चुके हैं कि इस तर्क का खंडन जनश्रुतियों से ही हो जाता है, जिनकी साक्षी पर विश्वास करें तो सिंहासन पाने के समय अशोक की उम्र तीस वर्ष रही होगी। इस प्रकार अभिषेक के समय उसकी उम्र चौंतीस रही होगी। अशोक के लेखों से भी यही इंगित होता है कि सिंहासन की प्राप्ति और उसके अभिषेक के बीच काल का एक अन्तराल अवश्य रहा होगा क्योंकि अपने लेखों में समय का उल्लेख उसने सदा अपने अभिषेक के वर्ष में किया है मानो वह पक्की तौर पर बतलाना चाहता था कि उसके अभिषेक और सिंहासन पाने की तिथियों को एक समझने की भ्रांति न हो।

उसके दो विरुद थे, देवानंपिय अर्थात् देवताओं का प्यारा[1] और पियदसि अर्थात् देखने में प्रिय अर्थात् सुंदर। पियदसि का एक दूसरा अर्थ, जो अधिक समीचीन प्रतीत होता है—है, जो सभी वस्तुओं में अच्छाई ही देखता हो। देवानंपिय का विरुद उसके पहले के राजा भी धारण कर चुके थे, यह बात कालसी, शाहबाजगढ़ी और मानसेहरा के चट्टान लेख ८ के पाठों से स्पष्ट है। दीपवंश में तिस्स का यही विरुद[2] है। तिस्स लंका का राजा और अशोक का तुल्यकालीन था। नागार्जुनी

---

१. शाब्दिक अर्थ है 'देवताओं का प्यारा' अपने सत्कर्मों के कारण। यही भाव बाद में कतिपय गुप्त राजाओं के सिक्कों पर के लेखों में अभिव्यक्त है "पृथ्वीपति अपने सुचरित से (सुचरितैः) से स्वर्ग को जीतता है (दिवं जयति)।"

२. लंका के अन्य राजाओं ने, जैसे वंकनासिक तिस्स, गजबाहुकगामिनी, और महल्लक नाग ने भी कुछ लेखों में यह उपाधि ली है (*Ep. Zeylanica* i, ६०)।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गुफा लेख से प्रकट है कि अशोक के पोते दशरथ का भी यही विरुद था। अशोक के दादा चन्द्रगुप्त मौर्य ने प्रियदर्शी का विरुद—मुद्राराक्षस (अंक ६) में पियदंसन नाम से लिया था। दीपवंश में अशोक के लिए इस विरुद का भी प्रयोग हुआ है। सभी लेखों में अशोक का उल्लेख उसके नाम से नहीं बल्कि उसके विरुद से ही हुआ है।[1] पहले विद्वान यह सिद्ध करने के लिये चिंतित थे कि इन विरुदों वाले लेख अशोक के ही हैं। पर मास्की के लेख की प्राप्ति से यह द्विविधा समाप्त हो गई। चट्टान लेखों की माला में यह पहला लेख था। इसमें देवानंपियस अशोकस शब्दों का प्रयोग मिल गया।[2]

अशोक इस अर्थ में सौभाग्यशाली था कि उसे एक नए साम्राज्य की नींव रखने का कष्ट नहीं उठाना पड़ा। उसका दादा चन्द्रगुप्त मौर्य यह कार्य पहले ही कर गया था। चन्द्रगुप्त ने जो साम्राज्य अपने बेटे के लिये छोड़ा था उसका विस्तार अफ़गानिस्तान से प्रायः मैसूर तक था। वे अनेक प्रदेश जो इस समय भारत के बाहर और पाकिस्तान के अंग हैं वे भी उसके साम्राज्य में शामिल थे। सेल्यूकस ने जब ई० पू० ३०४ में भारत पर आक्रमण करने की भूल की तो चंद्रगुप्त ने उसके साम्राज्य के एरिया, अरोकोशिया, गेड्रोशिया और परोपनिसदै के क्षत्रप-प्रदेश छीन-कर अपने साम्राज्य में मिला लिया था। इसका ठीक-ठीक पता नहीं कि दक्षिण की विजय चंद्रगुप्त ने की थी या उसके बेटे बिंदुसार ने। शायद चंद्रगुप्त ने ही इन्हें जीता था—यद्यपि नंदों का उत्तर में उच्छेद करने में उसे उत्तर के युद्धों में भी काफी व्यस्त रहना पड़ा होगा—क्योंकि एक निश्चित जनश्रुति के अनुसार चंद्रगुप्त ने मृत्यु से पूर्व सिंहासन का त्याग कर दिया था और वह जैन मुनि के रूप में दक्षिण मैसूर में श्रवण बेलगोला में रहने लगा था। अतः दक्षिण मैसूर तक उसकी सीमाओं का विस्तार अवश्य रहा होगा।[3]

---

१. संस्कृत में पूरी उपाधि थी—देवानांप्रियः प्रियदर्शी राजा। लेखों में सर्वदा पूरी उपाधि का प्रयोग नहीं हुआ है। कुछ लेखों में सिर्फ देवानांप्रियः मात्र (उदा० चट्टान लेख १२ और १३) का प्रयोग है। कुछ लेखों में, जैसे बैराट के लघु चट्टान लेख में प्रियदर्शी राजा और तीन गुफा लेखों में राजा प्रियदर्शी का इस्तेमाल हुआ है, जबकि मास्की में देवानांप्रिय अशोक का इस्तेमाल है। पूरी उपाधि रुम्मिनदेई और निग्लीव के स्तंभ लेखों और गिरनार (चट्टान लेख ८) में मिलती हैं।

२. लेखों में इस पहचान के समर्थक दूसरे तथ्य ये हैं : (१) भाब्रू लेख में प्रियदर्शी को मागध राजा कहा है, (२) गिरनार के चट्टान लेख ५ में पाटलिपुत्र को राजधानी कहा है, (३) चट्टान लेख २ और १३ में उसके समकालीन योन या यूनानी राजाओं का उल्लेख है। ध्यान देने की बात यह है कि एक प्रसंग में दिव्यावदान (अध्याय २६) अशोक को मौर्य कहता है। इस प्रकार इस पहचान की और पुष्टि होती है।

३. प्लूटार्क (लाइफ ऑफ अलेक्जांडर, अध्याय ६२) के इस कथन से भी चंद्रगुप्त की दक्षिण की विजय का अनुमान होता है, "इसके अधिक समय बाद नहीं अंद्रोकोट्टोस ने, जो इस समय तक सिंहासन पर आ चुका था, सेल्यूकस को ५०० हाथी भेंट किये थे,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उसके साम्राज्य की सीमाओं का अनुमान उसके चट्टान और स्तम्भ लेखों के प्राप्ति-स्थानों से कर सकते हैं। चट्टान लेख नीचे लिखे स्थानों में मिले हैं :

(१) पेशवर के पास शाहबाजगढ़ी में।
(२) उसी इलाके में हज़ारा जिले में मानसेहरा में।
(३) कालसी में—यह स्थान टोंस और यमुना के संगम पर है और उस समय यहाँ काफी आबादी रही होगी।
(४) महाराष्ट्र के ठाणा जिले में सोपारा में।
(५) जूनागढ़ के पास गिरनार में—यहाँ मौर्यकालीन झील के किनारे एक चट्टान पर ये लेख खुदे हैं।
(६) भुवनेश्वर के पास पुरी जिले में धौली में।
(७) गंजाम जिले में ऋषिकुल्या नदी के किनारे।
धौली और जौगड़ में चट्टान लेख ११, १२ और १३ के बदले दो कलिंग लेख मिलते हैं जिनका स्थानीय महत्त्व है। यह बात स्पष्ट नहीं हो पाती है कि चट्टान लेख १३ जिसका सम्बन्ध कलिंग की ही विजय से है उसका स्वयं कलिंग में प्रकाशन क्यों नहीं किया गया।
(८) येरंगुडि—आंध्र प्रदेश के कुर्नूल जिले में।
(९) चितलद्रुग—मैसूर में। यहाँ हगारि नदी के किनारे चट्टानों पर तीन विभिन्न स्थानों में—सिद्दपुर (जिसे लघु चट्टान लेख १ में उल्लिखित इसिल मानते हैं), जटिंग-रामेश्वर और ब्रह्मगिरि में—ये लेख मिले हैं।
(१०) रूपनाथ में जो जबलपुर के पास एक तीर्थ स्थान है। यहाँ सिर्फ लघु चट्टान लेख १ मिला है।
(११) सहसराम—बिहार में। यहाँ भी लघु चट्टान लेख १ ही मिला है।
(१२) बैराट—जयपुर, राजस्थान में। यहाँ लघु चट्टान लेख १ ही मिला है।
(१३) भाब्रू में विशेष लेख है जो बैराट में ही एक दूसरी पहाड़ी पर था।[1]
(१४) मास्की—मैसूर राज्य में। लघु चट्टान लेख १ ही मिलता है।[2]

(जारी)

६००,००० सेना लेकर सारे भारत को रौंद डाला। यहाँ "सिंहासन" से मगध के सिंहासन का तात्पर्य है। इस प्रकार चंद्रगुप्त के सिंहासन पर कब्जा करने के बाद दो घटनाएं हुईं, एक सेल्यूकस की पराजय और भारत के उन भागों की विजय जो नंदों के साम्राज्य के अंग न थे।

१. इसी कारण हुल्ट्स इसे 'कलकत्ता-बैराट चट्टान लेख' कहता है। जिस चट्टान पर लेख खुदा है इस समय वह कलकत्ते की एशियाटिक सोसायटी में रखी है।

२. डा० भंडारकर (अशोक, पृ० ३६, ३७) कहते हैं कि चौदह चट्टान लेख उसके राज्य के दूरवर्ती प्रांतों की राजधानियों में खुदाये गए थे, जबकि लघु चट्टान लेख उन स्थानों की सूचना देते हैं जो उसके राज्य के किसी पड़ोसी स्वतंत्र या अर्ध-स्वतंत्र राज्य रहे होंगे। धौली और जौगड़ कलिंग प्रांत में नगर थे। गिरनार सुराष्ट्र की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(१५) गवीमठ और
(१६) पालकिगुंडु में। ये दोनों स्थान मैसूर राज्य के कोपबल तालुक में हैं।
(१७) अफगानिस्तान के जलालाबाद जिले में लाबमान में—यहाँ अरमैक लिपि में लेख मिला है।
(१८) तक्षशिला में—यहाँ भी एक लेख अरमैक लिपि में है।

स्तंभ लेख नीचे लिखी जगहों में मिले हैं:

(१) अंबाला के पास टोपरा में।
(२) मेरठ में—ये दोनों स्तंभ फ़िरोजशाह तुगलक दिल्ली ले आया था।
(३) कौशांबी में (इसे शायद अकबर इलाहाबाद ले आया) इस स्तंभ पर लेख सं० १ से ६, रानी का लेख और कौशांबी का पृथक् लेख खुदे हैं।
(४) लौड़िया अरराज (राधिया, जिला चंपारन में)।
(५) लौड़िया नंदनगढ़ (मठिया, जिला चंपारन)।
(६) रामपुरवा, जिला चंपारन।
(७) भोपाल के पास सांची में। इस पर लघु स्तंभ लेख भी है।
(८) सारनाथ—इस पर लघु स्तंभ लेख है।
(९) नेपाल में रुम्मिनदेइ में।
(१०) नेपाल की तराई में निग्लीव में।

इस प्रकार यदि अशोक अपने लेखों में कहता है कि "मेरा राज्य बड़ा है" (चट्टान लेख १४) और वह सारी पृथ्वी को अपना राज्य कहता है (चट्टान लेख ५, धौली) तो वह ठीक ही कहता है।

उसके उपर्युक्त लेखों से[1] उसके साम्राज्य के विस्तार का पता चलता ही है;

(जारी)

राजधानी था। सोपारा अपरांत का नगर था। शाहबाजगढ़ी को यवन राज्य की राजधानी मान सकते हैं और मानसेहरा को कंबोज की। लघु चट्टान लेख प्रायः साम्राज्य की सीमा पर मिलते हैं। ये अंतों अर्थात् स्वतंत्र पड़ोसी राज्यों के लिए लिखाए गए थे।

१. चट्टानों या स्तम्भों पर खुदे अशोक के जितने लेख अब तक मिल चुके हैं और उनके पाठ अब तक तैयार कर लिए गए हैं, उनके अतिरिक्त भी कुछ लेखों का जिक्र चीनी यात्री युवाङ् च्वाङ् करता है। पर ये अभी तक खोजे नहीं जा सके हैं। उसने एक लेख रामग्राम-स्तूप पर (वैटर्स, ii, २०), कुशीनगर में दो स्तम्भों पर दो लेख, चौथा लेख पाटलिपुत्र में एक स्तम्भ पर और पांचवां राजगृह में एक स्तम्भ पर खुदा देखा था। ये स्तम्भ और उन पर खुदे लेख अभी तक नहीं मिल सके हैं। ध्यान देने की बात यह है कि न तो फाहियान, न युवाङ् च्वाङ् ही यह कहते हैं कि ये लेख अशोक के थे। वे सिर्फ यही कहते हैं कि ये स्तम्भ और उन पर खुदे लेख पुराने जमाने के हैं और इन पर उसी जमाने की बातें लिखी हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

साथ ही जैसा कि हम आगे वतलाएंगे उसकी वनवाई इमारतों से भी उसके साम्राज्य के विस्तार का ज्ञान होता है। कश्मीर और नेपाल में उसके निर्माणों से विदित होता है कि ये उसके साम्राज्य के अंग थे। युवाङ् च्वाङ् ने उत्तर-पश्चिम में कपिस (काफिरिस्तान), और नगर (जलालावाद) में उसके वनवाए स्तूप देखे थे। ताम्र-लिप्ति में, जो सुह्य-राज्य की राजधानी थी उसने एक स्तूप बनवाया था जिससे बंगाल पर उसका अधिकार सिद्ध होता है। ताम्रलिप्ति उस समय दक्षिण जाने के लिए प्रसिद्ध वंदरगाह था। युवाङ् च्वाङ् के कथन के अनुसार समतट या ब्रह्मपुत्र के डेल्टा में भी उसका एक स्तूप था। इसके अतिरिक्त बंगाल और विहार के अन्य नगरों में, जैसे पुण्ड्रवर्धन (उत्तर बंगाल) और कर्णसुवर्ण (आधुनिक वर्दवान, बीरभूम और मुर्शिदावाद के जिले) में भी उसके स्तूप थे. (वैटर्स ii, १८४) युवाङ् च्वाङ् ने दक्षिण में भी—चोल और द्रविड़ में जिसकी राजधानी कांची की पहचान अशोक के लेखों के सतियपुत्र से की गई है—उसके स्तूप देखे थे। वास्तव में युवाङ् च्वाङ् ने जिन जगहों में अशोक के स्तूपों की बात लिखी है वहाँ उसके लेख भी मिलते हैं और इनसे भी उसके साम्राज्य की विशालता का पता चलता है।

अंतिम वात यह कि स्वयं अशोक के लेखों से भी उसके साम्राज्य की सीमाओं का पता चलता है (चट्टान लेख २, ५ और १३)। इनमें उसकी सीमांत जातियों के नाम आए हैं। दक्षिण में चोलों, पांड्यों, सतियपुत्रों और केरलपुत्रों का पता चलता है जो उसकी प्रभाव सीमा में थे। उत्तर-पश्चिम में उसके साम्राज्य की सीमा सीरिया के राजा अंतियोकस की सीमाओं को छूती थी (चट्टान लेख २)। इस प्रकार उसका राज्य-विस्तार ईरान और सीरिया तक था जो अंतियोकस के राज्य में थे। हम यह भी जानते हैं कि अशोक के दादा चंद्रगुप्त मौर्य ने सेल्यूकस से एरिया, अराकोशिया, परोपनिसदै और गेड्रोसिया के प्रदेश छीन लिए थे जो अशोक को उत्तराधिकार में मिले थे। उत्तर-पश्चिम में जो जातियां उसके प्रभाव-क्षेत्र में थीं उनके नाम हैं गंधार, कांवोज और यवन (या योन)। ये जातियां आज के भूगोल में उत्तर-पश्चिमी सीमांत प्रदेश और कावुल की घाटी में थीं। लेखों में अनेक भौगोलिक नाम भी आए हैं जिनसे साम्राज्य की सीमाओं का अंदाज होता है। उनमें साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र (चट्टान लेख ५, गिरनार), और दूर के नगरों (वही) जैसे वोध-गया (चट्टान लेख ८), कौशाम्वी (प्रयाग स्तंभ लेख), उज्जैनी, तक्षसिला (कलिंग चट्टान लेख), सुवर्णगिरि, इसिल (लघु चट्टान लेख) और कलिंग प्रांत में तोसली और समापा (कलिंग चट्टान लेख) के उल्लेख आए थे। इस प्रकार विभिन्न दिशाओं में अशोक की सीमाओं का अंदाज हमें हो जाता है। हम यहाँ तक कह सकते हैं कि उसका साम्राज्य इतना वड़ा था कि वह अपने जीवन काल में साम्राज्य के सभी भागों में न पहुंच सका होगा। अपने लेखों की त्रुटियों के वारे में वह जिस तरह क्षमा-याचना सा करता प्रतीत होता है उससे यही आभास होता है कि उसने सभी लेख स्वयं नहीं देखे थे। सच तो यह है कि उसके लेखों में खामियां इतनी क्षुद्र

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और नगण्य हैं कि इसके लिए एक विशेष लेख में (चट्टान लेख १४) इस बात के उल्लेख की आवश्यकता ही न थी। अशोक अपने पूरें साम्राज्य में नहीं घूम सका था, यह बात आश्चर्यजनक ही है क्योंकि जैसा वह अपने बारे में स्वयं कहता है (चट्टान लेख ६) कि शासन-संबंधी कर्त्तव्य पूरा करने में वह कभी थकता न था। और इन कर्त्तव्यों में उसने जनता का हाल जानने के लिए निरंतर दौरों का उल्लेख स्वयं किया है (चट्टान लेख ८)।

जैसा कि अशोक अपने चट्टान लेख १३ में कहता है उसने केवल एक ही विजय की थी और वह थी कलिंग की विजय। "अभिषेक के आठ वर्ष बाद" अर्थात् ई० पू० २६२ के आस-पास उसने कलिंग को जीता था। कलिंग के इस युद्ध में "डेढ़ लाख मनुष्यों का देश-निकाला हुआ, एक लाख मनुष्य मारे गए और इससे कई गुना आदमी मरे"। पराजित कलिंग की हानियों से पता चलता है कि वे कितने बलवान थे। हम मेगस्थनीज के एक उल्लेख से जानते हैं कि कलिंग के राजा की रक्षा के लिए उसकी सेना में ६०,००० पैदल, १,००० घुड़सवार, ७०० लड़ाकू हाथी थे। अशोक के समय तक सेना का पर्याप्त विस्तार अवश्य हुआ होगा क्योंकि उस युद्ध में हताहतों की सही संख्या ४ लाख (बाद में घावों से मरने वालों की संख्या ३ लाख रखते हुए) थी। पर विजित राजा की जन हानि ही नहीं हुई। अशोक ने उसकी हानि का और वास्तविक आकलन किया। उसने बड़े मार्मिक शब्दों में नागरिकों के 'विनाश, वध या प्रिय जनों से विछोह' (उपघातो वा वधो वा अभिरतानां विनिष्क्रमणम्) का उल्लेख किया है। इस अति प्राचीन दस्तावेज में अति आधुनिक ढंग से युद्ध की हानियों की तीन शीर्षों में गणना की गई है (१) युद्ध में लड़ने वालों के वध, घायल या कैद होने से हानि, (२) इन लड़ने वालों के परिवारों की हानियां, और (३) संतप्त व्यक्ति और उसके परिवार के मित्रों को कष्ट (लेख की ३ से ५ तक पंक्तियां)। अंत में, सम्राट की मानसिक पीड़ा का वर्णन है जिसे अकेले ही समस्त प्रजा के कष्टों का भार ढोना पड़ा। शेक्सपीयर ने लिखा है "Never did the king sigh but with a general groan!" इस प्रकार अशोक युद्ध की हानियों की गिनती करने में अति आधुनिक था। एक ऐसे समाज में जिसका आधार संयुक्त परिवार हो युद्ध से योद्धाओं को ही नहीं बल्कि गैर-योद्धाओं को, पूरे नागरिक समाज को क्षति होती है। ऐसे समाज का एक सच्चा चित्र अशोक के लेखों में है। इसमें धार्मिक और लौकिक वर्ग—ब्राह्मण, श्रमण और अन्य मतावलंबी, गृहस्थ—अपने परिवारों में कृषि आदि से जीविकोपार्जन करतें, अपने गुरुजनों—माता, पिता और आचार्य और मित्रों, साथियों, संबंधियों, नौकरों और अन्य आश्रितों के साथ सुखी जीवन-यापन करते थे। आज तक हिंदू समाज का वही ढांचा चला आ रहा है। एक ऐसे समाज में जो इतनी बारीकी से परस्पर गुथा हो, जिसमें असंख्य संबंध (relations) निभाए जाते हों, इस बात से आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि किसी युद्ध का असर सिर्फ योद्धाओं पर ही नहीं, जो मोर्चों पर लड़ते हैं, बल्कि पूरे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नागरिक वर्ग पर पड़ता है जिनमें मरने वालों के रिश्तेदार और बच रहने वालों के मित्र शामिल हैं।

युद्ध के क्रूर परिणामों का अशोक के भावुक हृदय पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा[1] और उसका चरित्र ही बदल गया। उसका व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन बदल गया। लेखों में कहा है : "कलिंग विजय के बाद देवताओं के प्रिय द्वारा धर्म का अध्ययन, धर्म का प्रेम और धर्म का अनुशासन अच्छी तरह हुआ है—शस्त्रों की विजय सबसे बड़ी विजय नहीं है, बल्कि धर्म की विजय सबसे बड़ी विजय है।" जब अशोक ने युद्ध की हिंसा को उसकी सारी नग्नता में देखा तो उसने अहिंसा को अपने जीवन का मूल-मंत्र बना लिया। उसने अपना व्यक्तिगत धर्म भी बदल दिया और वह बौद्ध हो गया। उस काल में बौद्ध धर्म अहिंसा का सबसे प्रबल समर्थक था। उसके धार्मिक इतिहास के बारे में इस तथ्य के साथ ही साथ लघु चट्टान लेख १ में आये उसके स्वयं के कथन को देखना चाहिए—"मैं उपासक था तब मैंने अधिक पराक्रम नहीं किए। किंतु एक वर्ष नहीं इससे कुछ अधिक ही हुए जब मैं संघ में गया। तब से मैंने खूब पराक्रम किए हैं।" चट्टान लेख १३ के उल्लेख के साथ इसको रखते हुए हम निम्नलिखित निष्कर्षों पर पहुँचते हैं : (क) कलिंग विजय में जो कष्ट हुए उससे अशोक की बुद्ध धर्म के प्रति कामना (धर्म-कामना) बड़ी तीव्र हो गई, (ख) कलिंग विजय के पूर्व भी वह बौद्ध धर्म का अनुयायी था, पर तब उसने धर्म के प्रति अधिक पराक्रम नहीं किए थे, (ग) उस समय वह अढ़ाई वर्षों तक अर्थात् ई० पू० २६५-२६२ में बौद्ध संघ में उपासक मात्र था। ई० पू० २६५ में उसका धर्म-परिवर्तन हो चुका था[2] और (घ) कलिंग विजय (ई० पू० २६२) के तुरंत बाद संघ से उसके संबंध गाढ़े हो गए थे और उसने धर्म में पराक्रम बढ़ा दिए थे। उसने एक वर्ष से कुछ अधिक ही अर्थात् ई० पू० २६२-२६० में घोर पराक्रम किया जब उसने लघु चट्टान लेख १ जारी किया। उसी साल अर्थात् ई० पू० २६० में उसने अपनी पहली 'धर्म-यात्रा' की। शायद वह बोधगया गया था। चट्टान लेख ८ के अनुसार यह यात्रा उसने "अभिषेक के दस साल बाद" की थी।

फिर उसके बाद उसने १४ चट्टान लेखों की मुख्य माला का प्रकाशन किया जिसमें उसकी धार्मिक घोषणाएं या जनता के नाम उसके संदेश हैं। चट्टान लेख

१. सेनार्ट (इस्क्रिप्शंस एट्से, पृ १०१) ने एक मनोरंजक सुझाव दिया है कि इस युद्ध में जितनी क्रूरता हुई थी उसी के कारण अशोक ने बौद्ध धर्म स्वीकार किया। शायद इसी के आधार पर 'चंडाशोक' के अत्याचार की कहानियाँ चल निकलीं।

२. आश्चर्य की बात यह है कि इस तिथि की पुष्टि महावंश (v, ३७-४८) के प्रसंग से होती है। महावंश के अनुसार निग्रोध ने अशोक को बौद्ध बनाया था। निग्रोध अशोक के बड़े भाई सुसीम का पुत्र था। उसका जन्म उसी साल हुआ था जिसमें सुसीम की मृत्यु हुई थी और अशोक ने राज्य पाया था। निग्रोध ने जब अशोक को बौद्ध बनाया तो उस समय उसकी उम्र ७ वर्ष से अधिक थी। यह घटना अशोक के सातवें राज्य-वर्ष अर्थात् ई० पू० २६६ की है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

३, ४ और ५ और स्तंभ लेख ६ के अनुसार यह माला उसके अभिषेक के बारह या तेरह वर्ष बाद अर्थात् ई० पू० २५८-२५७ में जारी की गई।

स्तंभ लेख ६ में धर्मलेख जारी करने के विचार का उल्लेख दिया है :

"अभिषेक के बारह वर्ष बाद मैंने एक धर्मलेख लोगों के हित और सुख के लिए लिखवाया, जिससे कि वे प्राचीन मार्ग का त्याग कर भिन्न-भिन्न प्रकार से धर्म की वृद्धि करें।"

इसके बाद उसके मन में विचार आया कि वह अपने लेख इस प्रकार लिखवाए ताकि वे चिरस्थायी हों। लघु चट्टान लेख १ में जो उसका अपना पहला लेख है उसने अपने इस निश्चय की घोषणा इन शब्दों में की है :

"यह अनुशासन पर्वतों की शिलाओं पर लिखा जाए। यहाँ राज्य में जहाँ-जहाँ शिला स्तंभ हों वहाँ शिला स्तंभ पर भी लिखा जाना चाहिए।"

इस प्रकार उसके लेख चट्टानों और स्तंभों पर खोदे गए। पत्थरों पर खोदे जाकर ये संदेश आज तक वर्तमान हैं ताकि शताब्दियों के पार हम आज भी अशोक की करुणा से सिक्त वाणी सुन सकते हैं। अशोक अपने पाँचवें और छठे चट्टान लेख में कहता है "यह धर्मलेख मैंने इस उद्देश्य से लिखवाया है ताकि यह चिर-स्थायी हो।"

चट्टान लेख स्तंभ लेखों के बाद के हैं। चट्टान लेखों में चौदहवां और आखिरी एक प्रकार से 'उपसंहार' सा है। इनमें लेखों की भाषा आदि के बारे में बतलाया गया है कि "कहीं संक्षेप में, कहीं मध्यम रूप में और कहीं विस्तृत रूप में.... कहीं-कहीं विषय की रोचकता के कारण एक ही बात बार-बार कही गई है जिससे लोग उसके अनुसार आचरण करें। लेखों में कुछ अपूर्ण रह गया होगा, इसका कारण देश का विचार या पूरी तरह से कारणों का विचार या लिखने वाले का अपराध समझना चाहिए।" राजा और भी कहता है कि "मेरा राज्य बहुत विस्तृत है, और बहुत से (लेख) लिखवाए गए हैं और लिखवाए जायेंगे।" इसमें अंतिम बात स्तंभ लेखों के बारे में है जो तब तक नहीं लिखवाए गए थे। ध्यान देने की बात यह है कि यद्यपि लेखों की खामियों के बारे में राजा ने क्षमा-याचना की है, तथापि उनमें खामियां बहुत ही कम हैं।

तीसरी बात यह कि उसके धर्म-परिवर्तन का असर उसके व्यक्तिगत जीवन और आचार-विचारों पर सबसे अधिक हुआ। उसने राजघराने में प्राचीन काल से चली आ रही ऐसी अनेक परिपाटियों और संस्थाओं को जो उसके नए धर्म की भावनाओं के विपरीत पड़ती थीं, समाप्त करा दिया। उनके स्थान पर उसने नई परिपाटियां और संस्थाएं चलाईं। वास्तव में उसके एक लेख में (स्तंभ लेख ६) यह कामना की गई है कि "लोग पुराने मार्ग का परित्याग करें।" उसने विहार-यात्राएं समाप्त कर दीं, जिनमें मृगया और इसी प्रकार के दूसरे आमोद-प्रमोद होते थे। अशोक ने भी अपने राज्य-काल में नौ साल तक ऐसी विहार-यात्राएं की थीं,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अब उसने उनके स्थान पर 'धर्म-यात्राएं' प्रारंभ कीं, जिसमें "ब्राह्मणों और श्रमणों का दर्शन करना और उन्हें दान देना, वृद्धों का दर्शन करना और उन्हें सोने का दान करना, ग्रामवासियों (जनपदस्य) के पास जाकर उन्हें धर्म का उपदेश करना और उनसे धर्म की चर्चा करना" होता था (चट्टान लेख ८)। फिर उसने आदेश दिया कि उसकी राजधानी में "बलि के लिए किसी पशु का वध न किया जाए। न कोई समाज किया जाए क्योंकि समाज में देवताओं के प्रिय बहुत से दोष देखते हैं" (चट्टान लेख १)। राजा के महानस (रसोईघर) में "रोज शोरबा बनाने के लिए लाखों प्राणियों का वध होता था।"[१] उसने आदेश दिया है कि इस काम के लिए केवल तीन प्राणियों का वध किया जाय, दो मोर और एक हिरन। बाद में इन प्राणियों का वध भी बंद करा दिया, ताकि राजवंश में सभी शाकाहारी हो जायें। इस संबंध में ध्यान देने की बात यह है कि सिंहली अनुश्रुतियों में (महावंश, v. ३४ में) कहा है कि अशोक तीन वर्ष तक प्रतिदिन साठ हजार ब्राह्मणों को भोजन कराता था। इस प्रकार लेखों (चट्टान लेख १) में जो यह कहा है कि उसकी रसोई में शोरबे के लिए रोज लाखों प्राणियों का वध होता था वह ठीक ही है।

चौथी बात यह है कि राजा के धर्म-परिवर्तन का असर उसकी सार्वजनिक नीतियों और प्रशासन पर भी पड़ा। कलिंग का युद्ध एक प्रकार से उसके शासन की अंतिम राजनैतिक घटना थी। इस युद्ध में जितनी हिंसा हुई उससे वह अहिंसक बन गया। उसने अब मनुष्यों के ही बीच शांति की नीति नहीं अपनाई अपितु मनुष्यों और सर्व प्राणि-मात्र के बीच शांति का सिद्धांत अपना लिया। इस प्रकार जहां विगत महायुद्ध जो इतिहास का सबसे रक्तरंजित युद्ध था, शांति की बात मात्र में समाप्त हुआ है, कलिंग का युद्ध अशोक के लिए सचमुच ही अंतिम युद्ध था। यद्यपि उस समय तक अनेक जातियां अविजित रही थीं और उनकी ओर से युद्ध के लिए उत्तेजनाएं अवश्य पैदा की गई होंगी तथापि अशोक ने युद्ध के रास्ते पर फिर पैर नहीं रखे। उसकी नीति अब यह हो गई "कोई देवताओं के प्रिय का अपकार भी करे तो वे यदि वह क्षमा के योग्य है तो क्षमा कर देंगे" (चट्टान लेख १३)। जो सीमांत जातियां अविजित रह गई थीं उनको राजा ने कहा "उनके प्रति मैं चाहता हूं कि वे मुझसे न डरें, मुझ पर विश्वास करें, मुझसे सुख ही प्राप्त करें, कभी दुःख न पावें" (कलिंग लेख २)। यह सभी राज्यों की समता का सिद्धान्त है। वे चाहे बड़े हों या छोटे, प्रभुसत्ता और स्वतंत्रता की दृष्टि से सभी समान हैं। संसार में आज भी इस सिद्धांत को कार्यान्वित करने की कोशिश की जा रही है। अशोक ने इसकी कल्पना की और इसे कार्यान्वित भी कर दिखाया। बड़े आत्म-संतोष से अन्यत्र वह कहता है "अब भेरीघोष (युद्ध के नगाड़े का स्वर) धर्मघोष में बदल गया है" (चट्टान लेख ४)। इस प्रकार भारत के अनेक प्रांत और जातियां अविजित हैं

१. यह भी संभवतः एक अत्युक्ति ही है जिसका दोष जनश्रुतियों में ही नहीं लेखों में भी है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

छोड़ दी गईं। अशोक यदि चाहता तो बड़ी आसानी से उन्हें जीत सकता था। ये जातियां थीं, चोल, पांड्य, सतियपुत्र और केरलपुत्र (चट्टान लेख २), यवन (यूनानी), कंबोज, नाभक के नाभपंति, भोज और पितनिक, आंध्र और पुलिंद। ये सभी जातियां उसके विजित प्रदेश की सीमाओं पर स्थित बतलायी गयी हैं (चट्टान लेख १३)। अब वह इस बात के लिए उत्सुक था कि वह कैसे यह सुनिश्चित करे कि "मेरे बेटे और पोते नई विजयें न करें"। अब वह इस सिद्धान्त का प्रबल समर्थक था कि "धर्म-विजय ही सबसे बड़ी विजय है न कि शस्त्र-विजय" (वही)। अब वह स्वतंत्र जातियों के भ्रातृत्व का विश्वासी हो गया था किन्तु "अब उन्हें बुरे मार्ग का परित्याग कर देना चाहिए ताकि वे मृत्यु-दण्ड से बची रहें" (चट्टान लेख १३)। वह धर्म के भाईचारे में विश्वास करता था।

एक सर्वाधिकार संपन्न राजा के रूप में उसने युद्ध का परित्याग करने का आदेश किया और वह 'अहिंसा' के सिद्धांत का अनुगामी बन गया। यह अहिंसा मनुष्यों तक ही सीमित न थी बल्कि इसकी परिधि में क्षुद्र मूक पशु और पक्षी भी आ गये। इस सिद्धान्त का पूर्ण विस्तार बाद में ई० पू० २४२ में हुआ जब उसने आदेश निकालकर अनेक जीवों के वध पर प्रतिबंध लगा दिया। इनमें उन "सभी चौपाये जिनका सवारी या भोजन में इस्तेमाल नहीं होता", जैसे गाय जो भारत में बोझ ढोने या मारकर खाने के काम नहीं आती, तो शामिल थे ही—इनके अतिरिक्त अनेक पक्षी और दूसरे पशु भी अवध्य घोषित किए गए। कुछ पर्वों पर, बौद्ध उपोसथो (उपवासों) के दिन मछलियों का वध, घोड़ों और बैलों का दागना और "बैलों, बकरों, मेढ़ों, सुअरों या दूसरे जानवरों को बधिया करने" की भी मनाही कर दी गई थी (स्तंभ लेख ५)।

इन उपायों के साथ ही साथ उसने मनुष्यों और पशुओं के कष्टों के निवारणार्थ राज्य की ओर से अस्पताल खुलवाए और डाक्टरों का प्रबंध किया और औषधि-उद्यानों का भी प्रबन्ध कराया जिसमें चिकित्सा के लिए औषधियां, जड़ी-बूटियां, फल आदि लगाये गये थे। जहाँ ये उपलब्ध न थे वहाँ बाहर से मंगाकर लगाये गये थे (चट्टान लेख २)। पशुओं की चिकित्सा पर जितना जोर दिया गया है उससे यही जाहिर होता है कि अशोक के समय में पशु-चिकित्सक और अस्पताल काफी संख्या में मौजूद रहे होंगे।

सेवा की यही भावना इससे बड़े पैमाने और विस्तृत क्षेत्र में सक्रिय थी। स्तंभ लेख ७ में राजा कहता है :

"सड़कों पर भी मैंने मनुष्यों और पशुओं को छाया देने के लिए बरगद के पेड़ लगवाए। आम्रवाटिकाएं लगवाईं। हर आधे कोस पर कुएं खुदवाए, सरायें भी बनवाईं, अनेक पौसले (आपान) मनुष्यों और पशुओं के लिए बिठाए।"

घर से बाहर इन सुविधाओं की आवश्यकता इसलिए ही नहीं होती कि भारत एक गर्म देश है, अपितु इसलिए भी होती है क्योंकि सभी भारतीय चाहे वे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किसी वर्ग के हों, बूढ़े हों या जवान, यात्रा-प्रेमी होते हैं। ये यात्राएं चाहे रोजगार के सिलसिले में हों या धर्म के सिलसिले में। हर धर्म में अपने प्रसिद्ध तीर्थों की यात्रा का विधान है और ये तीर्थ सारे देश में फैले हुए हैं।

हमने देखा कि कलिंग की विजय से अशोक जैसे राजा के हृदय पर कैसा अश्रुतपूर्व और अप्रत्याशित प्रभाव पड़ा। इस एक ही विजय से उसके भीतर का विजिगीषु मर गया और उसने आगे से विजयों का परित्याग ही कर दिया। विजयें ही आज तक साम्राज्य-निर्माण करती हैं। इस घटना ने मानो उसके हाथ पकड़कर कहा "बस! अब आगे नहीं।" अब उसके सम्मुख राजा का एक दूसरा ही लक्ष्य उभरा, वह था एक ऐसे साम्राज्य की स्थापना जिसका आधार विश्व शांति हो, धर्म हो न कि शस्त्र। इस युद्ध ने जैसे उसके राजनैतिक जीवन की समाप्ति ही कर दी। अब वह धर्म-प्रचार के लिए ही जीवित था। इससे उसके जीवन की अगली घटनाओं का खुलासा हो जाता है।

कलिंग का युद्ध ई० पू० २६५ में हुआ था। इसके पूर्व वह बौद्ध हो चुका था जैसा हम पहले ही देख चुके हैं। सबसे पहले वह उपासक बना। ई० पू० २६५-२६२ में वह उपासक रहा। इस अवधि में पश्चात्ताप के कारण नए धर्म में उसका विश्वास दृढ़तर हुआ। एक बौद्ध के रूप में युद्ध के कारण उसके हृदय में पश्चात्ताप होना स्वाभाविक था। अब संघ से उसके संबंध और घनिष्ठ हुए। किंतु इसका यह अर्थ नहीं कि वह भिक्खु हो गया जैसा कुछ इतिहासकारों ने उसे सिद्ध करने की कोशिश की है। यदि वह भिक्खु हो गया होता तो निश्चय ही इसका स्पष्ट उल्लेख लेखों में होता। पर वहाँ तो सिर्फ 'संघं उपगते' ही कहा है। यह स्थिति उपासक और पूरी तरह से भिक्खु हो जाने के बीच की स्थिति रही होगी। उपासक को भिक्खु बनने से पहले पबज्जा और उपसंपदा की दो स्थितियां पार करनी पड़ती हैं। प्रव्रज्या में गृह का परित्याग करना पड़ता है। अशोक ने तो यह स्थिति भी पार न की थी। उसने संसार और सिंहासन का परित्याग नहीं किया था। वह शासक बना रहा। वह इस संसार में रहते हुए भी वीतराग रहा। पर इससे कानूनी शर्तें तो पूरी नहीं होतीं। फिर 'संघ में गया' शब्दों का क्या तात्पर्य है? इस स्थिति का खुलासा संभवतः विनय पिटक (iii. ७, ८ से० बु० ई०) से हो जाता है जहाँ उपासक और भिक्खु के बीच एक स्थिति भिक्खुगतिक की बतलाई गई है जिसका अर्थ है जो भिक्षु तो नहीं है पर भिक्खु के मार्ग पर है।[1] इस विषय पर जनश्रुतियों की सावधानी

---

१. इस सुझाव के लिए मैं श्री चरण दास चटर्जी का ऋणी हूँ। इ-त्सिग (तककुसु, अनु० पृ० १०५ और १५५ टि०) ने लिखा है कि ऐसे लोग भी विहारों में रहने लगे थे जो भिक्षु न थे: "वे उपासक मुख्य रूप में पवित्र ग्रंथों का अध्ययन करने और केश मुड़ाने की इच्छा से भिक्षुओं के निवास में आते हैं और काला वस्त्र पहनते हैं (वही पृ० १५५ टि०)। इ-त्सिग (वही, पृ० ७३) अशोक की एक मूर्ति का भी उल्लेख करता है जिसमें उसने भिक्षु का वेश धारण कर रखा है। उसके विचार में अशोक ने उस समय भिक्षु-वस्त्र धारण किया होगा जब वह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

से परीक्षा करने से जाहिर होगा कि 'संघं उपगते' वह स्थिति है जब अपने राज्य के चौथे वर्ष में अशोक ने खुलेआम घोषणा की कि वह बौद्ध मत का अनुयायी हो गया है और तब से वह संघ की प्रत्यक्ष सेवा करने लगा। इससे पूर्व वह अकेले में बौद्धों और बौद्ध आचार्यों से धर्मलाभ प्राप्त करता था।[1]

संघ के पास जाने पर अशोक ने अपने नए धर्म के लिए पराक्रम करना प्रारंभ किया। उसने उसके लिए बहुविध कार्यों का श्रीगणेश किया। अब उसका मुख्य उद्देश्य प्रजा की आध्यात्मिक उन्नति था। एक साल के परिश्रम का फल अच्छा ही रहा जैसा उसने लघु चट्टान लेख १ में कहा है :

"देवता अब लोकप्रिय हो गए हैं (popularised) ताकि अब जंबुद्वीप के लोग देवताओं से घुलमिल गए हैं (मिसा[2] का अर्थ संस्कृत मिश्र अर्थात् घुलमिल जाता मानकर) और उनकी पूजा अर्चना करते हैं।"[3] जनता की धार्मिक भावनाओं को प्रदीप्त करने के लिए अब उसने तरह-तरह के दिव्य दृश्यों के प्रदर्शन के आयोजन किए जैसे हाथी, अग्नि-ज्वाला और दीपमालिका आदि के जुलूस निकलते थे (च० ले० ४)। इसके पूर्व सैनिक प्रदर्शन और खेल तमाशे हुआ करते थे। अब उसने इनके स्थान पर और उन्नत प्रदर्शनों का प्रबंध कराया जिसमें दिव्य दृश्य दिखलाए जाते थे। इन जुलूसों में देव-प्रतिमाओं का प्रदर्शन होता था। कोई जरूरी नहीं कि ये हिंदू देवताओं की ही मूर्तियां रही हों। ये बौद्ध देवताओं की भी मूर्तियां हो सकती हैं।

(जारी)

अस्थायी तौर पर संघ में आता था। पर सांची की मूर्तियों में जिस अशोक के अंकन का अनुमान है उसमें वह राजा के वस्त्र पहने है और राजा अपने पूरे परिवार से आवृत है (देखि० आगे)।

१. लेखों की टिप्पणियों में इसका खुलासा विस्तार से दिया गया है।

२. संस्कृत मृषा—झूठ के लिए भी यही शब्द है। वैसी स्थिति में यहां लेख का तात्पर्य होगा अशोक ने अपने प्रचार-कार्य से लोक के विश्वास को बदल दिया। उसने झूठे (ब्राह्मण धर्म के) देवताओं के स्थान पर सच्चे (बौद्ध) देवताओं को प्रतिष्ठित किया। अथवा अशोक के बारे में यह कहे बिना कि उसने ब्राह्मण देवताओं की निंदा की—और जिस रूप में वह अपने लेखों में बड़े आदर से ब्राह्मणों का उल्लेख करता है उससे उसके बारे में ऐसा कहना उचित भी नहीं है—हम झूठे देवताओं का तात्पर्य बेकन के *idolas* से कर सकते हैं। इस प्रकार अशोक के सुधारों का तात्पर्य जनता के आदर्शों में सुधार था जैसा उसने धर्म-विजय, धर्म-दान, धर्म-मंगल, या ऐसी ही कल्पनाओं के जरिए किया था जिनका लेखों में बारम्बार उल्लेख है। मास्की के लेख में मिसिभूता शब्द आया है जिससे मिस का अर्थ मिश्र करने में सहायता मिलती है यद्यपि मिश्र का शुद्ध प्राकृत रूप मिस्सो होगा। इस संबंध में देखिए चाइल्डर्स। सामान्यतया हमें ऐसे निर्वचन अस्वीकार कर देने चाहिएं जिसमें अशोक को एक मूर्ति-भंजक बौद्ध के रूप में दिखाया जाए। लेखों में जितने संयम का परिचय उसने दिया है उससे उसके इस रूप का कतई मेल नहीं है।

३. टामस ने कैंब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया में यही अर्थ लिया है। पर इस विषय पर लेखों की टिप्पणी देखिए।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बौद्ध-जुलूस तो फा-हियान के समय तक (चौथी सदी में) पाटलिपुत्र में निकलते रहे। फा-हियान के इनका निम्नलिखित वर्णन दिया है :

"प्रतिवर्ष दूसरे महीने की अष्टमी को वे देव-मूर्तियों का एक जुलूस निकालते हैं। वे चार पहियों का एक रथ बनाते हैं। इस पर बांसों को जोड़कर एक पांच-मंजिला ढांचा खड़ा करते हैं। इसमें सोने, चांदी और वैदूर्य को मिलाकर देवों की आकृतियां बनाते हैं। चारों दिशाओं में ताखें होते हैं जिनमें बैठे हुए बुद्ध की मूर्तियां होती हैं और प्रति मूर्ति की परिचर्या में एक बोधिसत्व होता है। बीस रथ होते हैं पर सभी विशाल और भव्य होते हैं और हर एक दूसरे से अलग होता है" (लेग्गे अनु०, पृ० ७६)।

इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि यह प्रथा अशोक ने ही चलाई थी। पर उसने बुद्ध और बोधिसत्व की मूर्तियां प्रदर्शन में शामिल की थीं, इसमें संदेह ही है क्योंकि उसके समय तक बौद्ध धर्म में मूर्ति-पूजा का प्रचलन नहीं हुआ था। मूर्ति-पूजा तो महायान की देन है जो बाद में अस्तित्व में आया। पतंजलि के महाभाष्य के प्रसिद्ध मौर्य-अंश (पाणिनि के सूत्र v, iii, ९९ की टीका) से हमें मालूम होता है कि मौर्य राजा जनता के अंध-विश्वास का लाभ उठाकर मूर्तियों की बिक्री करते थे (अर्चाः प्रकल्पिताः मौर्यैः हिरण्यार्थिभिः) और उनसे लाभ कमाते थे। पर शायद अशोक मे सोने का यह लोभ नहीं रहा होगा। उसने मूर्तियां अपने किसी लाभ के भाव से नहीं बल्कि जनता को उसके प्रिय देवताओं का दर्शन कराने के लिए ये मूर्तियां बनवाई होंगी।

जनता के आध्यात्मिक लाभ के लिए एक दूसरा कार्य भी उसने किया था जिसका जिक्र हम ऊपर कर चुके हैं। वह कार्य है स्थायी उपादानों पर लेख खुदवाकर जनता के लाभार्थ जारी करना। इन लेखों से उसका तात्पर्य था कि आचार और विचार के क्षेत्रों में उसके आदर्श सर्वदा जनता की आँखों के सामने बने रहें ताकि वे राष्ट्रीय संपत्ति बन जाएं। इस दिशा में अपने प्रयत्नों की समीक्षा करते हुए (स्तंभ लेख ७ में) वह स्वयं कहता है : "यह विचार मेरे मन में हुआ कि पूर्व काल में राजा लोग यह चाहते थे कि किस प्रकार लोग धर्म की समुचित वृद्धि के साथ बढ़ें। पर लोगों की इस तरह बढ़ती नहीं हुई। फिर कैसे लोगों की धर्म में वृद्धि की जाय ? धर्म की वृद्धि के साथ मैं किसी एक को उन्नत कर सकता हूं।......" यह विचार मेरे मन में आया। "मैं लोगों को धर्म-श्रावण कराऊं, धर्म का उपदेश दूं, इन्हें सुनकर लोग उसी के अनुसार आचरण करेंगे, उन्नति करेंगे, धर्म की वृद्धि के साथ उनकी भी वृद्धि होगी।" "इसी उद्देश्य से धर्म का श्रावण कराया गया, धर्म के बहुविध उपदेश दिए गए...।".

पर जनता को ये संदेश देकर ही वह संतुष्ट नहीं हुआ। उसने स्वयं जनता में घूमकर उपदेश देने का निश्चय किया, उसने धार्मिक शास्त्रार्थों और सम्मेलनों के आयोजन का निश्चय किया। देश में इस प्रकार घूमने को उसने 'धर्म-यात्रा' की संज्ञा दी। यह स्वयं अशोक की सूझ थी, उसके पहले के राजा 'विहार-यात्राओं' से या शिकार जैसे त्याज्य मनोरंजनों से ही परिचित थे (चट्टान लेख ८)। अशोक की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पहली धर्मयात्रा जिससे यह प्रथा चली (तेनात्र धर्मयात्रा) उसके लेखों से पहले ई० पू० २६० में उसके अभिषेक के दसवें वर्ष में हो चुकी थी जब वह संबोधि गया था (अयाय संबोधिं)। इसका मतलब बोधगया[1] से है जहाँ बुद्ध को संबोधि प्राप्त हुई थी। हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि ई० पू० २६२ में अशोक ने यह तीर्थयात्रा कलिंग युद्ध के बाद बौद्ध धर्म में श्रद्धा बढ़ जाने के कारण शुरू की थी। ई० पू० २६२ में वह उपासक मात्र नहीं रह गया था बल्कि अब वह भिक्खुगतिक बन चुका था जैसा हम पहले बतला चुके हैं। बोधगया की उसकी तीर्थयात्रा और वहाँ बोधि-वृक्ष की पूजा की घटनाओं की पुष्टि सांची के पूर्वी तोरण पर उकेरी एक मूर्ति से हो जाती है, जिसके बारे में फूशर की मान्यता है कि उसमें अशोक के बोधिवृक्ष के पूजन का दृश्य है।

इस प्रकार ई० पू० २६० में जब उसकी बौद्ध धर्म में श्रद्धा बढ़ चुकी थी वह पहली बार धर्मयात्रा पर निकला। इसके बाद उसने अनेक धर्मयात्राएं कीं जिनके उल्लेख जनश्रुतियों और लेखों में हैं। उत्तरी परंपराओं के अनुसार जिसकी पुष्टि युवाङ्‌ च्वाङ्‌ भी करता है मथुरा का उपगुप्त अशोक का आचार्य था। वह वाराणसी के गंधी गुप्त का पुत्र था। उपगुप्त के नेतृत्व में एक विशाल सेना के साथ सम्राट अशोक ने बौद्ध तीर्थों की यात्रा की थी। मुख्य तीर्थ थे लुंबिनी वन जहाँ भगवान का जन्म हुआ था, कपिलवस्तु जहाँ उन्होंने महाभिनिष्क्रमण अर्थात् संसार का त्याग किया था, बोधगया जहाँ बोधिवृक्ष के नीचे उन्हें संबोधि हुई थी, इसिपतन (सारनाथ) जहाँ उन्होंने धर्मचक्र का प्रवंतन किया था, कुशीनगर जहाँ उन्होंने महापरिनिर्वाण प्राप्त किया था, श्रावस्ती जहाँ उन्होंने अनेक चौमासे बिताये थे और उपदेश किए थे और जहाँ उनके अग्रशिष्य सारिपुत्त, मोग्गलायन और आनंद के स्तूप थे। इनमें प्रत्येक स्थान पर जैसा चट्टान लेख ८ में कहा है, उसने प्रभूत स्वर्ण का दान दिया और चैत्य बनवाए। रुम्मिनदेई में तथागत के जन्मस्थान की पहचान हो चुकी है। यह स्थान नेपाल में चार मील पर है और यहाँ अशोक का एक स्तंभ भी है जिस पर यह लिखा है कि यहाँ भगवान का जन्म हुआ था। लेख से पता चलता है कि उसकी इमारत सम्राट की इस जगह की यात्रा की स्मृति सुरक्षित रखने के लिए स्थानीय अधिकारियों ने बनाई होगी। इसकी इबारत स्वयं सम्राट की लिखाई नहीं है।

इस प्रकार परंपरा और लेखों दोनों प्रमाणों से सिद्ध हो जाता है कि उसने लुंबिनी और बोधगया की यात्राएं की थीं।

परंपराओं में उसकी जिन तीर्थयात्राओं के उल्लेख हैं उनके अतिरिक्त उसने एक और अन्य स्थान की यात्रा की थी जिसका प्रमाण एक लेख में सुरक्षित है। नेपाल में ही निग्लीव नामक स्थान पर एक स्तंभ पर एक लेख निम्नलिखित आशय का प्राप्त हुआ है :

१. यह सुझाव डा० डी० आर० भंडारकर का है (इं० ए० १९१३, पृ० १५९)।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

"देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने अभिषेक के चौदह वर्ष बाद कोणाकमन बुद्ध के स्तूप का आकार दुगुना कराया और अभिषेक के (बीस साल बाद) स्वयं आकर पूजा की और (शिला स्तंभ) लगवाया।"

इस प्रकार इन प्रस्तर स्तंभों से विदित होता है कि ई० पू० २५० में अशोक लंबी तीर्थयात्राओं पर निकला था। उसके स्तंभ लौड़िया-अरराज, लौड़िया-नंदनगढ़, रामपुरवा, रुम्मिनदेई और निग्लीव में मिले हैं। इनसे उसकी राजधानी पाटलिपुत्र से नेपाल को जाने वाले राजपथ पर उसकी यात्रा की प्रगति की सूचना मिलती है।

इन धर्मयात्राओं का श्रीगणेश उसने किया था। पर उसने इन्हें अपने तक ही सीमित नहीं रखा। उसने अपने उच्च पदाधिकारियों, जैसे धर्म-महामात्रों और नगरव्यावहारिकों (नगर-मजिस्ट्रेटों) के लिए भी ड्यूटी के तौर पर इनका विधान कर दिया था। यह घटना तीसरे चट्टान लेख की तिथि ई० पू० २५८ के आसपास की होगी। कलिंग के दोनों पृथक् लेखों में, जौगड़ और धौली दोनों जगहों में इसका विस्तृत वर्णन है जिनमें उसकी इच्छा पहली बार प्रकट हुई। चट्टान लेख ३ का कथन है:

"अभिषेक के बारह वर्ष बाद मैंने यह आज्ञा दी, मेरे राज्य में सर्वत्र मेरे युक्त (अफसर), राजूक (प्रांतीय गवर्नर जो स्तंभ लेख ४ के अनुसार 'कई लाख लोगों पर तैनात थे'), और प्रादेशिक (जिला अधिकारी) हर पाँच साल पर इसी काम के लिए अर्थात् धर्म का उपदेश देने के लिए दौरों (अनुसंयान) पर जाया करें।"

अधिकारियों के लिए इस विशेष आदेश का पूर्वाभास कलिंग के लेख में है जो चट्टान लेख ३ से किंचित पहले का होना चाहिए जिसमें राजा की निश्चित आज्ञा है। इस प्रकार वह चट्टान लेखों की पूरी माला से भी पूर्व का होगा। दौरों के बारे में राजा की आज्ञा का पूर्वाभास यहाँ है:

"और इसलिए धर्मानुसार मैं हर पाँचवें साल बारी-बारी से ऐसे कर्मचारियों को जो नरम स्वभाव वाले, कटुता से रहित और मृदु (श्लक्ष्णारंभ इसका अर्थ पशुओं के प्रति दयालु भी हो सकता है) होंगे, दौरों पर भेजा करूंगा।

कुछ दूर के प्रांतों में जैसे उज्जैन और तक्षशिला के चुने हुए अधिकारियों को जो कुमारों के अधीन थे राजा ने और जल्दी-जल्दी हर तीसरे साल दौरों पर भेजने की इच्छा प्रकट की थी। यहाँ अधिक बार दौरों पर भेजने का कारण संभवतः यह रहा होगा कि कलिंग की अपेक्षा इन प्रांतों की आबादी अधिक थी। कलिंग में वन-जातियां अधिक थीं अतः कलिंग कम सभ्य रहा होगा और उसकी आबादी कम ही रही होगी (चट्टान लेख १३)।

अगले वर्ष अर्थात् 'अभिषेक के तेरह साल बाद' अर्थात् ई० पू० २५७ में अफसरों के दौरों की यह योजना और विस्तृत और सुव्यवस्थित हुई। अब उसने अपनी प्रजा के जिसमें राजकर्मचारी व अन्य नागरिक व बौद्ध व बौद्धेतर सभी संप्रदायों के लोग थे, धार्मिक और आध्यात्मिक उत्थान के लिए अधिकारियों के ही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एक विशेष वर्ग की सृष्टि की। यहाँ तक कि राजपरिवार के व्यक्तियों को भी चाहे वे पाटलिपुत्र में हों या बाहर (बाह्येषु च नगरेषु) उनके कार्यक्षेत्र में रखा गया। इन अफसरों की एक नई, पर अति उपयुक्त संज्ञा—धर्ममहामात्र थी। यह विभाग पहले कभी नहीं था (न भूतपूर्वः)। यह पूर्णतया अशोक के मस्तिष्क की सूझ थी। इस विभाग का कार्यक्षेत्र काफी विस्तृत था—यहाँ तक कि वह उसके साम्राज्य या शासन से भी परे[1] "यवनों, कंबोजों, गंधारों और पश्चिम सीमा की अन्य जातियों और 'राष्ट्रिकों, पितनिकों' (चट्टान लेख ५), नाभपंतियों, भोजों, आंध्रों और पुलिंदों" तक था (चट्टान लेख १३)। इस तरह यह विभाग काफी बड़ा रहा होगा और इसमें भारी संख्या में अधिकारी रहे होंगे। यह विभाग अशोक के धार्मिक संदेशों के साथ विदेशों में दूत भी भेजता था। ऐसे दूत उत्तर और दक्षिण—पड़ोसी राज्यों और दूर के देशों जैसे सीरिया के अंटियोकस थिओस और अन्य चार राजाओं, मिस्र के टालेमी फ़िलाडेल्फास, मैसिडोनिया के अंटिगोनस गोनोटास, सीरीन के मैगास और एपिरस के अलेक्जांडर व नीचे (नीच) दक्षिण चोलों, पांड्यों व ताम्रपर्णी या लंका तक भेजे गए थे। सारांश यह कि ये अधिकारी जैसा चट्टान लेख २ में बड़ी स्वच्छता और संक्षेप में कहा है "राजा के राज्य में और उसके सीमांत प्रदेशों (प्रत्यंतेषु) में" भी काम करते थे।

जहाँ तक उनके कार्यों का संबंध है वे चट्टान लेख २, ५ और १३ में वर्णित हैं। मनुष्यों, पशुओं के दुःख दर्द दूर करने के उपाय करना (चट्टान लेख २) अवश्य ही इस विभाग का काम रहा होगा। संभवतः सार्वजनिक हित के कार्यों, जैसे अस्पतालों, चिकित्सकों, दवाओं, कुओं, धर्मशालाओं आदि के प्रबंध करना इस विभाग का ही काम था। चट्टान लेख २ में इनका उल्लेख है और स्तंभ लेख ७ में इनके ब्योरे दिए हैं। उनके कार्यों के प्रति अनुमान का आधार यह है कि चट्टान लेख १३ में कहा गया है कि उसने अपने दूतों के कार्यों से विदेशों में भी धर्म-विजयें प्राप्त की हैं। इस विजय के स्वरूप व ब्योरों का उल्लेख चट्टान लेख २ में है। चट्टान लेख ५ में उनके अन्य कार्यों के ब्योरे दिए हैं। उनकी नियुक्ति (क) सभी संप्रदायों के बीच उन्हें धर्म में रत करने, (ख) जो धर्म से युक्त हैं (धर्म-युक्तस्य) उनके धर्म की वृद्धि (धर्म-वृद्धि), हित व सुख का प्रबंध करने, (ग) स्वामी और सेवकों के बीच, ब्राह्मणों, धनिकों और निर्धनों, बूढ़ों और अपंगों के हित और सुख का प्रबंध करने, सीमांत जातियों जैसे यवनों, कंबोजों, गंधारों और उत्तर-पश्चिम की अन्य जातियों व राष्ट्रिकों व पितनिकों के हित व सुख का प्रबंध करने, (घ) जो लोग धर्म में रत हैं (धर्म-युक्तस्य) उन्हें चिंताओं से मुक्त करने, (च) अन्यायपूर्ण बंधन व वध

१. जैसा सर आर० जी० भंडारकर ने अपनी अर्ली हिस्ट्री आफ डेक्कन में कहा है अशोक के लेखों में जिन जातियों के उल्लेख नामतः हुए हैं उन्हें स्वतंत्र या अर्ध-स्वतंत्र मानना चाहिए। यदि वे अशोक की प्रजा होतीं तो उनके नामों का उल्लेख नहीं होता।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रोकने और वाजिब मामलों में कारामुक्ति व राहत देने,[1] (छ) पाटलिपुत्र में और बाहर के नगरों में राजा के भाइयों, बहनों और अन्य रिश्तेदारों के रनिवासों में की गई थी। इस प्रकार "ये धर्ममहामात्र उसके राज्य में सर्वत्र धर्म में रत व्यक्तियों—चाहे वे धर्म-निभृत हों या धर्माधिष्ठित या दानसंयुक्त, के बीच नियुक्त थे।

राजधानी और अन्य नगरों में राज्य परिवारों के रनिवासों की निगरानी के जिस कार्य का जिक्र ऊपर (छ) के अंतर्गत आया है उसके लिए बाद में जैसा चट्टान लेख १२ में कहा है एक पृथक् अधिकारी-वर्ग की सृष्टि की गई जिसकी संज्ञा स्त्री-अध्यक्षमहामात्र थी।

स्तंभ लेख ७ में धर्ममहामात्रों के बारे में और भी सूचनाएं मिलती हैं :

"मेरे धर्ममहामात्र सन्यासी, गृहस्थ दोनों के लिए तरह-तरह के उपकार के कार्यों में (अनुग्रहिकेषु) नियुक्त हैं। वे सभी संप्रदायों के बीच नियुक्त हैं—संघ में, ब्राह्मणों में, आजीविकों और निग्रंथों के बीच।

"वे तथा अन्य प्रधान कर्मचारी मेरे तथा मेरी रानियों के दानोत्सर्ग (दान-विसर्ग) के कार्यों के संबंध में नियुक्त हैं। यहाँ (राजधानी में) तथा सर्वत्र मेरे समूचे रनिवासों में वे बतलाएंगे कि अमुक-अमुक कार्य किए जाएं। वे मेरे पुत्रों और दूसरे राजकुमारों (देवियों या रानियों के पुत्रों)" के दानोत्सर्ग के कार्यों की भी देखभाल के लिए नियुक्त हैं। (एफ० डब्ल्यू० टामस—कैंब्रिज हिस्ट्री)।

सारनाथ के लेख की तरह ही एक दूसरा छोटा-सा लेख भी है जिससे पता चलता है कि राजपरिवार किस किस्म के दान देता था। जैसे 'एक आम्रवाटिका, या आराम या दान गृह'।

सारांश यह कि धर्ममहामात्रों की नियुक्ति धर्म का प्रचार करने, न्याय व्यवस्था के अपकारों और कठोरताओं का मार्जन करने, राजा और राजपरिवार वालों के दानों का प्रबंध करने, उनके रनिवासों में सदाचार की निगरानी करने और

---

१. जैसाकि हम आगे बतलाएंगे कलिंग लेख १ इस लेख से पहले का है। उस लेख में न्याय-प्रशासन के उन मामलों की ओर इशारा है जिनमें हस्तक्षेप संभव है। 'पुनः, न्याय करने में कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि कोई व्यक्ति बंदीगृह में डाल दिया जाए या उसके साथ कठोर व्यवहार हो और यदि बिना उपयुक्त कारण के उसे बंदीगृह में डाल दिया जाए तो दूसरे बहुत से लोगों को बेहद कष्ट होता है। ऐसी दशा में आप लोगों को (नगर-व्यवहारिकों को) न्याय करने की चेष्टा करनी चाहिए। यह लेख इसलिए लिखवाया गया कि नगर-व्यवहारिक सदा इस बात का प्रयत्न करें कि नगरवासियों को अकारण बंधन या अकारण दंड न हो।" उसी लेख में यह भी लिखा है कि अशोक ने अन्याय न हो इसका परिहार करने के लिए क्या उपाय सोचे थे। "और इसीलिए मैं धर्मानुसार पांच-पांच वर्ष पर ऐसे कर्मचारियों को भेजूंगा जो कठोर न हों, जिनमें हिंसा-भाव न हो और जो मृदु-स्वभाव के हों।" इन उपायों का सबसे पहले यहाँ आख्यान हुआ है। चट्टान लेख ५ में इनको कार्यान्वित किया गया है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विभिन्न संप्रदायों जैसे बौद्ध, जैन, आजीविकों आदि की परिषदों के कार्यों की देखरेख के लिए की गई थी।

इस प्रकार अशोक ने प्रजा के नैतिक उत्थान को राज्य के प्रमुख कर्त्तव्यों में स्थान दिया और इस कार्य के लिए उसने एक विशेष विभाग ही बना दिया। इतिहास में कम राजा ऐसे हुए हैं जिन्होंने विदेशों में भी नैतिक उत्थान का बीड़ा उठाया हो। अशोक उन विरले राजाओं में था। चट्टान लेख १३ में ऐसे अनेक स्वतंत्र और अर्ध-स्वतंत्र राज्यों का, जो सीमा पर या उससे परे भी स्थित थे, उल्लेख है जहाँ उसने अपने मिशनरियों को भेजा था और उन्हें उन राज्यों में सफलता भी मिली थी। इस लेख की तिथि ई० पू० २५८ होगी। इस प्रकार इसमें वर्णित मिशनरी कार्यों का श्रीगणेश इससे पहले ही हो गया होगा। स्वयं लेख में भी कहा है कि ऐसे कार्य उसने काफी पहले शुरू किए थे और अब तो उनके फल भी प्रकट हो गए हैं। इनमें एक कार्य था, विदेशों में भी वहाँ के मनुष्यों और पशुओं के लिए चिकित्सा का प्रबंध करना। चट्टान लेख २ में इसका उल्लेख है। इस प्रकार ई० पू० २५८ में इन जैसे कार्यों के शुरू हुए कई वर्ष बीत चुके होंगे। इसका सबूत भी है कि ऐसे मिशन इससे पहले गए होंगे क्योंकि चट्टान लेख १३ में जिन पाँच यूनानी राजाओं को अशोक का समकालीन बतलाया गया है वे ई० पू० २५८ के बाद उनके समकालीन नहीं हो सकते। इस वर्ष तक ही वे सभी साथ-साथ जीवित रहे। इस प्रकार इस वर्ष तक सभी देशों में अशोक के दूत जा चुके थे। महावंश से पता चलता है कि ई० पू० २५३ में यह कार्य पूरे वेग से हो रहा था। उक्त ग्रंथ में इसके बारे में कुछ अतिरिक्त सूचनाएं भी मिलती हैं।

महावंश (v. २८०) से विदित होता है कि अशोक के अभिषेक के सत्रहवें वर्ष में पाटलिपुत्त में मोग्गलिपुत्र तिस्स (उत्तरी परंपरा में उपगुप्त) की अध्यक्षता में तृतीय बौद्ध संगीति हुई थी। संगीति की समाप्ति पर "उसने थेरों को यत्र तत्र भेजा" जिनके नाम और उन देशों के नाम भी दिए गए हैं जहाँ ये भेजे गए थे (वही xii, १-८)।

मिशनरी	देश
१. मज्झंतिक	कश्मीर और गंधार[1]
२. महारक्षित	यवन (यूनानी) देश[2]
३. मज्झिम	हिमालय देश[3]

१. चट्टान लेख ५ में उल्लेख है।

२. चट्टान लेख ५ और १३ में कंबोजों के साथ उल्लेख है। मनोरंजक बात यह है कि इसी समय के आसपास ई० पू० २४६ में डायोडोटस ने यवन-बाख्त्री राज्य की नींव डाली थी।

३. चट्टान लेख १३ में योनों के साथ उल्लिखित नाभक के नाभपंति संभवतः किसी हिमालय-वासी जाति के रहे होंगे। चट्टान लेख के नीचे की टिप्पणी देखिए।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मिशनरी	देश
४. धर्मरक्षित (यह यवन था)	अपरांतक[1]
५. महाधर्मरक्षित	महाराष्ट्र[2]
६. महादेव	महिषमंडल (मैसूर या मांधाता)[3]
७. रक्षित	वनवासी[4] (उत्तर कन्नड़)
८. सोण व उत्तर	सुवर्णभूमि[5] (पेगू और मौलमीन)
९. महेंद्र, इसके साथ ऋष्ट्रिय, उत्रिय, संबल और भद्रसार भी थे।	लंका (सिंहल)

समंतपासादिक में यही सूची पुनः दी गई है। इसमें अन्य कुछ मनोरंजक व्योरे भी हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मज्झिम हिमवंतप्रदेश में गया था। उस समय वह पाँच राष्ट्रों (अथवा जिलों) में विभाजित था। मज्झिम के साथ उस समय चार अन्य थेर भी थे जिनके नाम हैं: कस्सपगोत्त, अलकदेव, दुंदुभिस्सार और महादेव (दीपवंश में कसपगोत कोतिपुत की अध्यक्षता में मंडल गया था, उसके साथ थे मज्झिम, दुदुभिसार, सहदेव और मूलकदेव)। वहां इन भिक्षुओं ने धम्मचक्कप्पवत्तन सुत्तांत का व्याख्यान किया और ८० लाख मनुष्यों को बौद्ध बनाया। इसी प्रकार योनक धम्मरक्खित ने कश्मीर व गंधार में अग्गिक्खंदोपमा सुत्त[6] का व्याख्यान किया और ३७ हजार मनुष्यों को बौद्ध बनाया। मज्झंतिक ने आसीविसूपमासुत्त[7] के व्याख्यान से कश्मीर व गंधार में ८०,०००, महादेव ने महिषमंडल में देवदूतसुत्तांत[8] का व्याख्यान किया और ४०,००० बौद्ध बनाए। रक्खित ने वनवासी में महानारदकस्सपजातक[9] का व्याख्यान किया और ८४ हजार बौद्ध

१. चट्टान लेख ५ में पितिनिकों को अपरांत की जाति कहा है। 'अपरांत' का शाब्दिक अर्थ "दूसरे सिरे या पश्चिमी सिरे" हुआ।
२. आंध्र और पुलिंद (ऐतरेय ब्राह्मण में विंध्य के आसपास के) और राष्ट्रिकों को भी महाराष्ट्र का निवासी मान सकते हैं (चट्टान लेख ५ और १३)।
३. सतियपुत्र (चट्टान लेख २) इसी हिस्से के निवासी रहे होंगे। राइज के मतानुसार (ज० रा० ए० सो०, १९१६, पृ० ८३९) महिषमंडल दक्षिण मैसूर का नाम था।
४. लेखों में दक्षिण भारतीय जातियों के नाम जिनके बीच अशोक के दूत काम करते थे अधिक निश्चय के साथ आए हैं, जैसे चोल, पांड्य, केरलपुत्र आदि।
५. फ्लीट के मतानुसार (ज० रा० ए० सो०, १९१०, पृ० ४२८) यह प्रदेश बंगाल में होना चाहिए जिसको युवाङ् च्वाङ् कर्णसुवर्ण कहता है या फिर इसे सोन नदी के किनारे होना चाहिए जिसे हिरण्यवाह (सोना वहन करने वाला) कहते थे।
६. अंगुत्तर निकाय (४, पृ० १२८-१३५)।
७. अंगुत्तर० २, पृ० ११०-१११।
८. मज्झिम निकाय ३, पृ० १७८-१८७ और अंगुत्तर १, पृ० १३८-१४२। इसमें बुढ़ापा, रोग और मृत्यु को यम का दूत कहा है।
९. फॉसबोल, जातक ६, पृ० २१९-२५५।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बनाए। महारक्खित ने योनरट्ठम् में कालकारामसुत्तांत[1] का व्याख्यान किया और सोण और उत्तर ने सुवण्णभूमि में ब्रह्मजालसुत्तांत[2] का व्याख्यान किया और ६०,००० बौद्ध बनाए।

इस सूची से लेखों में उल्लिखित अनेक देशों में अशोक के दूत-मंडल भेजने की बात की पुष्टि हो जाती है।[3] साथ ही इससे अन्य देशों में भी इस योजना के विस्तार का पता चलता है जिनके उल्लेख लेखों में नहीं आए हैं। यह योजना नौ महीने की तृतीय बौद्ध संगीति का फल थी। जहाँ तक मिशनरियों के नामों का उल्लेख है अनेक नामों की पुष्टि सांची के ई० पू० पहली या दूसरी शती के स्तूपों से मिले लेखों से हो जाती है। सांची के स्तूप सं० २ से सफेद बलुआ पत्थर की एक धातु-मंजूषा पर एक ओर ई० पू० दूसरी शती के ब्राह्मी अक्षरों में लेख है: "अर्हत (?) कासपगोत से प्रारंभ कर सभी आचार्यों और अर्हत (?) वाछी सुविजय की धातुएं।" मंजूषा में भीतर सेलखड़ी के ४ छोटे-छोटे डिब्बे थे जिनमें आदमी की हड्डियों के टुकड़े थे। उन डिब्बों के ढक्कनों पर नीचे लिखे आचार्यों के नाम खुदे हैं:

१. कासपगोत, सकल हिमवंत के आचार्य
२. मज्झिम
३. हारितीपुत
४. वछि सुविजय (वात्सी-सुविजयत् ?)
५. महावनाय
६. आपगीव
७. कोडिणिपुत (कौंडिनीपुत्र)
८. कोसिकीपुत
९. गोतिपुत (गौतीपुत्र)
१०. मोगलिपुत (मौद्गलीपुत्र)

इनमें सं० १ और २ वाले भिक्षु हिमालय प्रदेश में दूत बनाकर भेजे गए थे और शेष तृतीय बौद्ध संगीति में भाग लेने वाले आचार्य थे, जिसके अध्यक्ष सं० १० के आचार्य मोगलिपुत (मोग्गलीपुत्त तिस्स) थे। संख्या २ के आचार्य मज्झिम का

---

1. गीगर (महावंश, अनु० पृ० ८५) इसे अंगुत्तर ७, पृ० २४-२६ का सुत्तांत २४ मानते हैं। उनके मत से कालकाराम में बुद्ध भगवान ने इस सुत्तांत का उपदेश किया था।
2. दीघनिकाय १, पृ० १ तथा आगे।
3. ध्यान देने की बात यह है कि लेखों के अनुसार विदेशों में दूत भेजने का श्रेय स्वयं अशोक को है (चट्टान लेख १३ में अशोक स्वयं विदेशों में दूत भेजने की बात कहता है। चट्टान लेख २ में इन दूतों के कार्यों, जैसे चिकित्सादि का प्रबंध करने का उल्लेख है) पर महावंश में इसका श्रेय भिक्षु लूटते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उल्लेख सोनारी में स्तूप सं० २ से मिली एक धातु-मंजूषा पर के एक लेख में और सं० १ के आचार्य का उल्लेख उसी स्तूप की एक दूसरी मंजूषा के लेख में 'कोतिपुत्त' के नाम से और सं० ९ के आचार्य गोतिपुत्त का उल्लेख ददभिसार के साथ हुआ है। इस प्रकार लेखों से जनश्रुतियों के नीचे लिखे धर्म-दूतों की पुष्टि हो जाती है : कासपगोत, मज्झिम और दुंदुभिसार।[1]

लेखों में लंका में महेंद्र के दूत-मंडल का कहीं उल्लेख नहीं है, पर जनश्रुतियों में इसके बहुविध ब्योरे मिलते हैं। लंका से अशोक के साम्राज्य का प्रथम संबंध वहां के राजा देवानंपिय तिस्स के चलते हुआ था। उसने एक दूत-मंडल पाटलिपुत्र के लिए भेजा था। वह मंडल समुद्री मार्ग से एक हफ्ते में ताम्रलिप्ति पहुँचा और दूसरे हफ्ते में पाटलिपुत्र। फिर अशोक ने अपने पुत्र महेंद्र और नाती सुमन (संघमित्रा के पुत्र) के नेतृत्व में लंका में दूत-मंडल भेजा। लंका से एक दूसरा दूत-मंडल भी आया था जिसने सम्राट की पुत्री संघमित्रा को पवित्र बोधिवृक्ष की एक शाखा के साथ लंका भेजने की प्रार्थना की थी। सम्राट स्वयं एक बड़ी सेना के साथ बोधिवृक्ष की शाखा को लंका पहुँचाने के लिए ताम्रलिप्ति तक गया था। वहाँ उसे एक जहाज में चढ़ाया गया और फिर वह लंका पहुँची। जनश्रुतियों के अनुसार यह घटना अशोक के राज्य के अठारहवें वर्ष अर्थात् ई० पू० २५२ की है। अशोक के नाती सुमन के नेतृत्व में एक तीसरा दूत-मंडल लंका से भारत आया जिसने अनेक आचार्यों आदि की धातुओं की प्रार्थना की। ये धातुएँ भी भेजी गई जो लंका द्वीप के एक स्तूप में सुरक्षित हैं।

अशोक के लंका में दूत-मंडल भेजने की जनश्रुतियों की पुष्टि पुरातात्विक प्रमाणों से भी होती है। अजंता के एक भित्ति चित्र में इस घटना का चित्रण माना जाता है। जहाँ तक लेखों का संबंध है दूसरे और तेरहवें चट्टान लेख में लंका का उल्लेख 'ताम्रपर्णी' नाम से हुआ है। उसमें धर्म-विजय की अशोक की योजना के अंतर्गत वहाँ भी दूत भेजने की बात कही गई है। अतः इन लेखों के समय तक (ई० पू० २५८-२५७) लंका को अशोक अपने धर्म-प्रचार के क्षेत्रों की सूची में शामिल कर चुका था। चट्टान लेख २ के अनुसार उसने मनुष्यों और पशुओं की चिकित्सा का प्रबंध करने और ऐसे ही अनेक लोक-हित के सामाजिक कार्यों के लिए जिन देशों को चुना था उनमें लंका भी था। महेंद्र लंका में काफी बाद में, ई० पू० २५२ में, पहुँचा था। अतः इस घटना का उल्लेख अशोक के लेखों में संभव न था। लेखों में लंका से मधुर संबंधों का उल्लेख है। इनकी वजह से ही महेंद्र वहाँ गया होगा।

लंका और मगध के बीच बार-बार दूत-मंडलों के आने-जाने के उल्लेख ऊपर आए हैं। इनसे यही सिद्ध होता है कि उस काल में भारतीय जहाजरानी का काफी विकास हो गया था। विंसेंट स्मिथ के भी यही विचार हैं : "जब हम लंका और उससे

1. दे० सर जान मार्शल: गाइड टू सांची, अध्या० १०। समंतपासादिका के हवाले के लिए मैं श्री चरण दास चटर्जी का ऋणी हूँ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भी दूर के देशों से अशोक के संबंधों का स्मरण करते हैं तो हमें यही मानना होगा कि अशोक के पास समुद्री जहाजों का एक बेड़ा जरूर रहा होगा।" (एडिक्ट्स आफ अशोक, पृ० viii)

अशोक के शासन की अंतिम घटना, जिसकी तिथि बतलायी जा सकती है, थी सात स्तंभ लेखों का उसके अभिषेक के सत्ताईसवें (स्तंभ लेख १, ४, ५ और ६) और अठाईसवें वर्ष (स्तंभ लेख ७) अर्थात् ई० पू० २४३-२४२ में प्रकाशन। उसने छत्तीस या सैंतीस वर्ष तक राज्य किया। ब्राह्मण और बौद्ध इतिहासकारों की समान साक्षी के अनुसार उसके शासन का अंत ई० पू० २३२ में हो गया होगा।[1] इस प्रकार उसके शासन का तिथिक्रम निम्नलिखित रूप में स्थिर होता है :

ई० पू० २७४ सिंहासन-प्राप्ति।

ई० पू० २७० अभिषेक।

ई० पू० २६५ 'उपासक' के रूप में बौद्ध बना।

ई० पू० २६५-२६२ बौद्ध धर्म का अनुयायी होते हुए भी अढ़ाई साल तक विशेष उद्योग नहीं।

ई० पू० २६२ कलिंग विजय। इसके बाद बौद्ध संघ से और घनिष्ठ संबंधों का प्रारंभ और धर्म के प्रति अथक परिश्रम।

ई० पू० २६० लघु चट्टान लेख १ जारी किया। धर्मयात्राओं का श्रीगणेश। पहली यात्रा संभवतः बोधगया की (चट्टान लेख ७) अपने 'संघ' को भाब्रू वाले लेख में उल्लिखित शासन भेजना। देवताओं को लोकप्रिय बनाना (लघु चट्टान लेख १ का कुछ विद्वानों ने यही अर्थ किया है)।

ई० पू० २५९ कलिंग के दो (पृथक्) लेख जारी करना।

ई० पू० २५८-२५७ चौदहों चट्टान लेखों की माला जारी करना। आजीविकों को बरबर पहाड़ी में गुफा-दान।

ई० पू० २५७ धर्ममहामात्रों की नियुक्ति (चट्टान लेख ५)।

---

१. दिव्यावदान (पृ० ४३०) में अशोक के अंतिम दिनों का वर्णन है। बुढ़ापे में अशोक ने कुणाल के पुत्र अपने पोते संप्रति को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया पर मंत्रियों के प्रभाव में आकर इस राजकुमार ने संघ को दिए जाने वाले सभी दान बंद करा दिए। उस समय मंत्रियों ने सारे अधिकार हड़प लिए थे और अशोक नाममात्र को राजा रह गया था। उसके सभी वजीफे और भत्ते कम कर दिए गए थे। अंत में उसके पास मिट्टी की एक तश्तरी में रखकर आधा 'आमलक' (आंवला) भेजा गया। आंवला लेते हुए अशोक ने बड़े शोक से अपने सभासदों से कहा था 'सकल जंबुद्वीप के आधिपत्य का उपभोग करने वाला इस समय आधे आमलक का स्वामी है'। इस जनश्रुति की ओर युवाङ् च्वाङ् (वैटर्स, ii, ९९) ने भी इशारा किया है। इससे यही अनुमान होता है कि उसके विश्वासघाती अधिकारियों और पोते के षड्यंत्र के कारण अशोक के अंतिम दिन बड़े कष्ट से बीते होंगे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ई० पू० २५६ बुद्ध कोणाकमन के स्तूप को दुगुना कराया

ई० पू० २५० बुद्ध की जन्मभूमि लुंबिनी वन की यात्रा। बुद्ध कोणाकुमन के स्तूप का दर्शन। दोनों स्थानों पर पत्थर के खंभे लगवाए।

ई० पू० २४३-२४२ स्तंभ लेख जारी करना।

ई० पू० २३२ अशोक का स्वर्गवास।

चौदह चट्टान लेखों से विदित होता है "कि लेखों के जारी होने से पहले उसने नीचे लिखे कार्य कर डाले थे, अतः ये कार्य ई० पू० २६०-२५८ में हुए होंगे।

(१) नीचे लिखे कार्यों की समाप्ति :

(क) राजधानी में बलि के लिए प्राणि-हिंसा।

(ख) समाजों की (ये मनोरंजन के एक प्रकार के साधन थे जिनमें जानवरों की लड़ाई और मांस भोजन आदि होते थे)।

(ग) राजघराने की रसोई में पकाने के लिए पशु-पक्षियों का वध। अब सिर्फ दो मोर, एक हिरण (इसका मांस अपेक्षतया कम खाते थे) (चट्टान लेख १)।

(घ) 'विहार-यात्राओं' का जिनमें 'शिकार और ऐसे ही अन्य मनोरंजन' होते थे।

(च) युद्ध (चट्टान लेख ४)[1] और विजय (चट्टान लेख १३)।

(२) सार्वजनिक हित के नीचे लिखे कार्यों का प्रबंध करना :

(क) मनुष्यों और पशुओं के लिए अस्पताल।

(ख) औषधियों (देशी-विदेशी) के बगीचे लगवाना। इसमें जड़ी-बूटियों, मूलों और फलों के पौधे लगाए जाते थे।

(ग) यात्रियों और पशुओं के लाभार्थ सड़कों के किनारे कुएं खुदवाना और पेड़ लगवाना।

(३) विदेशों में (अंतियोकस के राज्य में और उसके पड़ोसियों के राज्यों में भी) और सीमांत राज्यों में मनुष्यों और पशुओं की चिकित्सा के लिए अस्पताल व चिकित्सकों का भेजना। इसके लिए

(४) विदेशों में सेवा-कार्यों के आयोजन किए गए। इनका उद्देश्य राजनैतिक और सैनिक विजय नहीं, अपितु धर्म-विजय था। ये कार्य उसके दूतों (मिशनरियों) ने किए (चट्टान लेख १३)।

(५) सेवाकार्य और प्रशासन के हित में अधिकारियों के पंचवर्षीय दौरों का आदेश (चट्टान लेख ३)। जिससे बाद में

(६) धर्ममहामात्रों के अधीन एक नया पृथक् विभाग ही बनाया गया इसका कार्य प्रजा (इनमें राजपरिवार के स्त्री-पुरुष सभी सदस्य भी शामिल थे) और विदेशों में धर्म-प्रचार करना था (चट्टान लेख ५)।

---

१. अशोक ने घोषणा कर दी थी कि अब भेरीघोष धर्मघोष में बदल गया है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(७) स्त्रियों में धर्म-प्रचार के लिए स्त्री-अध्यक्ष-महामात्रों के एक नये वर्ग की सृष्टि (चट्टान लेख १२)। यह लेख शाहबाजगढ़ी में एक पृथक् चट्टान पर खुदा है। इस प्रकार वहां अलग से लेख खुदवाने का उद्देश्य वहां की जनता का ध्यान विशेष रूप में इसकी ओर आकर्षित करना रहा होगा।

(८) प्रजा से मिलने के लिए राजा की धर्म-यात्राएं। इनमें संन्यासियों, ब्राह्मणों, अशक्त वृद्धों, आदि को दान दिए जाते थे और धर्म का प्रचार व शास्त्रार्थ होते थे (चट्टान लेख ८)।

(९) लौकिक प्रदर्शनों के स्थान पर धार्मिक प्रदर्शनों का आयोजन (चट्टान लेख ४)।

स्तंभ लेखों से (ई० पू० २४३-४२) पता चलता है कि इनके जारी होने से पूर्व नीचे लिखे उपाय और किए जा चुके थे:

(१) कतिपय जानवरों और पक्षियों के वध और अंगच्छेद पर प्रतिबंध (स्तंभ लेख ५)—मिला० "द्विपद और चतुष्पद प्राणियों पर, पक्षियों और जलचरों पर मैंने अनेक अनुग्रह किए हैं—उन्हें जीवन दान तक दिया है" (स्तंभ लेख २)।

(२) राजूकों (गवर्नरों) को कानून व न्याय के बारे में भी स्वतंत्र अधिकार देना (स्तंभ लेख ४)।

(३) फांसी की सजा पाए कैदियों को तीन दिन की मोहलत देना (स्तंभ लेख ४)।

(४) राजा के अभिषेक के दिन प्रति वर्ष कैदियों की रिहाई (स्तंभ लेख ५)।

(५) सार्वजनिक निर्माण के कार्यों की पूर्ति जिनमें :

(क) सड़कों के किनारे बरगद और आम के वृक्ष लगवाना,

(ख) सड़कों पर प्रति आध कोस पर कुएं खुदवाना,

(ग) धर्मशालाएं बनवाना, और

(घ) मनुष्यों और पशुओं के लिए प्याऊ का प्रबंध करना (स्तंभ लेख ७) शामिल था।

जहां तक अशोक के सिंहासन पाने या अभिषेक की तिथि का संबंध है, हम विभिन्न आधारों पर एक ही निर्णय पर पहुंचते हैं। पहली बात यह कि उसने स्वयं एक ऐसे समय का उल्लेख किया है जब पश्चिम के कम से कम पांच राजा उसके समकालीन थे (चट्टान लेख १३)। इन राजाओं की तिथियों के बारे में कोई संदेह नहीं है। जैसा हम जानते हैं कि ये सभी राजा ई० पू० २५८ तक अशोक के साथ ही जीवित थे जब चाहे एपिरस का अलेक्जेंडर मरा हो या नहीं पर उसमें से एक अर्थात् सीरीन का मगास अवश्य मर चुका था (कैंब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, खंड १, पृ० ५०२)। यह मानकर भी कि उतनी दूर से पाटलिपुत्र में ऐसे समाचार पहुंचने में कम से कम एक साल अवश्य लगा होगा तो भी इन सब राजाओं के साथ-साथ जीवित रहते का उल्लेख ई० पू० २५७ से बाद का नहीं हो सकता क्योंकि ई० पू० २५० में बैक्ट्रिया में डायोडोटस ने एक स्वतंत्र यूनानी राज्य की स्थापना कर ली थी (वही)। अतः यदि २५० ई० पू० के आसपास का यह लेख होता तो इसमें डायो-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

डोटस का भी उल्लेख अवश्य होता। अतः चट्टान लेख १३ में उल्लिखित पश्चि राजाओं का उल्लेख हम अवश्य ही ई० पू० २५७ का मान सकते हैं। इसलिए इ लेख की तिथि यही रही होगी। चट्टान लेख ३ में राजा की एक आज्ञा (आज्ञापितं) उल्लेख है जो उसके अभिषेक के बारहवें वर्ष की है। चट्टान लेख ४ में लिखा है कि वह भी अभिषेक के बारहवें वर्ष में लिखाया गया (लेखापितं)। चट्टान लेख ५ में अभि षेक के तेरह साल बाद धर्ममहामात्रों की नियुक्ति का उल्लेख हुआ है। अंतिम बा यह कि स्तंभ लेख ६ में अशोक निश्चय से कहता है कि उसने अपनी धर्मलिपि अभिषेक के बारहवें साल में खुदवायीं (धर्मलिपि लेखापिता)। इन सभी प्रमाणों आधार पर यही निष्कर्ष युक्तिसंगत होगा कि उसके सभी चट्टान लेख (उन उल्लिखित उपायों के साथ) उसके अभिषेक के बारहवें और तेरहवें वर्ष में जारी किए गए। जिन तिथियों का उल्लेख उनमें है उनसे पूर्व वे जारी नहीं हो सकते इस प्रकार यदि चट्टान लेख १३ की तिथि ई० पू० २५७ है तो वह अधिक से अधि उसके अभिषेक के तेरहवें वर्ष में जारी हुआ था। अतः उसका अभिषेक ई० पू० २७ में हुआ होगा। महावंश, v २२ में उल्लिखित एक जनश्रुति का विश्वास करें उसके सिंहासन पाने और अभिषेक के बीच चार वर्षों का अंतर था। इस प्रकार ई पू० २७४ में उसने सिंहासन पाया था। ध्यान देने की बात यह है कि एक अन्य प्रमाण के अनुसार भी उसकी यही तिथि निकलती है। पुराणों के अनुसार उसके दादा चंद्रगुप्त मौर्य ने चौवीस वर्ष अर्थात् ई० पू० ३२३ से ई० पू० २९९ तक राज्य किया था और उसके पिता बिंदुसार का राज्य पच्चीस वर्ष का था अर्थात् उसने ई० पू० २७४ तक राज्य किया था। दूसरे प्रमाण से अशोक के राज्यारोहण की यही तिथि प्राप्त होती है। महावंश (v ४५) से भी बड़े आश्चर्यजनक ढंग से इसी तिथि की पुष्टि होती है। महावंश के अनुसार निग्रोध उस समय सात वर्ष का था जब उसने अशोक को बौद्ध बनाया था। उसका जन्म उसी वर्ष हुआ था जिस साल उसका पिता सुमन मारा गया था और अशोक को सिंहासन मिला था। जब विभिन्न प्रमाणों से एक ही निष्कर्ष निकलता हो तो उसे पुष्ट ही मानना चाहिए।

अभी हाल ही में अशोक की तिथियों और उसके लेखों के आंतरिक तिथिक्रम के बारे में एक नितांत भिन्न मत प्रतिपादित किया गया है।[1] यह तर्क दिया गया है कि स्तंभ लेख चट्टान लेखों से पहले के हैं क्योंकि स्तंभ लेख ७ में जो उसके राज्य के सत्ताईसवें वर्ष में जारी हुआ था, उन सभी उपायों का सारांश है जो उसने धर्म-प्रचार के लिए किए थे, किंतु इस लेख में उसके सबसे महत्त्वपूर्ण उपाय अर्थात् विदेशों में खासकर यूनानी राजाओं के राज्य में धर्म-प्रचार और कल्याण कार्यों का उल्लेख नहीं है जिनका जिक्र चट्टान लेख २, ५ और १३ में है। मौनता का तर्क सदा अविश्वसनीय होता है। स्तंभ लेख ७ में उद्देश्य या उसकी व्याप्ति के बारे में जो कुछ प्रति

१. हरित कृष्ण देव, एम० ए० के अपने निबंध अशोकाज धर्मलिपिज में और डा० देवदत्त राम कृष्ण भंडारकर के निबंध अशोक में ये विचार हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पादित किया गया है, वह स्वयं उस लेख में लिपि-बद्ध नहीं है अपितु एक अनुमान मात्र है जो लेख की विषय-वस्तु को लेकर किया गया है। पर इस लेख के विषय से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इसमें उन सभी उपायों का सारांश है जो अशोक ने अपनी प्रजा के नैतिक उत्थान के लिए किए थे, न कि विदेशों में उसके प्रचार कार्यों का। अन्य सभी बातें जो चट्टान लेखों में कही गई हैं इसमें भी वर्तमान हैं। इसमें वे बातें किंचित् विस्तार से और सामान्य ढंग से कही गई हैं जो चट्टान लेखों में खुदी हैं। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि यह प्रस्तर लेख चट्टान लेखों से काफी बाद का है। चट्टान लेखों में जिन उच्चाधिकारियों का, जैसे राजूकों और धर्ममहामात्रों का, उल्लेख है, स्तंभ लेख ७ में भी उनका उल्लेख है। नव-नियुक्त धर्ममहामात्रों के कार्यों का चट्टान लेख ५ में विशद वर्णन है, वही स्तंभ लेख ७ में अति संक्षेप में कथित है। चट्टान लेख २ में, "सड़कों पर मनुष्यों और पशुओं के हित और सुख के लिए कुएं खुदवाने व पेड़ लगवाने जैसे कार्यों का उल्लेख है। स्तंभ लेख ७ में इसका विस्तार से वर्णन है। इससे यही लगता है कि यह लेख बाद का है। अंतिम बात यह है कि चट्टान लेखों की बातों का सामान्य रूप से और हवाले के तौर पर इस लेख में जिस तरह के वर्णन हैं उनके कुछ उदाहरण ये हैं : धर्म-प्रचार के बारे में अशोक का कथन, अशोक ने अपने धार्मिक-संदेश (धर्मसावनानि) प्रज्ञापित (सावापितानि) और धार्मिक उपदेश (धर्मानुसथिनि विविधानि) आज्ञापित (आनापितानि) कराए थे। इनके साथ ही उसने धर्म-स्तंभों (धर्मथंभानि) के जरिये भी इनके प्रचार का प्रबंध किया था। (पलियोवदिसंति पविथलिसंति)। इस लेख में एक अन्य बात भी साधारण रूप में कही गई है, जनता में धर्म की वृद्धि दो प्रकार से हो सकती है : (१) धर्म-नियम और (२) निध्कृति (चिंतन)। इस प्रकार स्तंभ लेख ७ की विषयवस्तु पर समग्र रूप में विचार करने पर इस बात में संदेह की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती है कि इसमें अशोक के धर्म-प्रचार के सभी उपायों का सार है। इस प्रकार यह उसके सभी लेखों में अंतिम है। सर्वोपरि बात यह है कि दोनों वर्गों के लेखों में किसी बात के शामिल करने न करने का तर्क निर्णायक नहीं हो सकता। क्या स्वयं अशोक ने ही यह चेतावनी नहीं दी है 'नच सर्वं सर्वत्र घटितं," ? सभी बातें सर्वत्र उचित भी नहीं होतीं।

अन्य स्तंभ लेखों में भी ऐसी अनेक बातें हैं जो यही बतलाती हैं कि चट्टान लेख इनसे पहले के हैं। स्तंभ लेखों में सभी सरकारी कर्मचारियों, बड़े, छोटे या मध्यम की सामान्य संज्ञा पुरुष का उल्लेख है जो चट्टान लेखों में नहीं है (स्तंभ लेख १, ४ और ७)। यद्यपि लघु चट्टान लेख १, च० ले० २ और १३ में अंतों का उल्लेख है तथापि इनके बीच काम करने के लिए जिस अधिकारी-वर्ग अर्थात् अंत-महामात्रों की सृष्टि की गई थी उसका उल्लेख पहली बार स्तंभ लेख १ में ही आया है। पुनः, च० ले० ३ में राजूकों को जितने अधिकार मिले हैं, उन्हें उससे अधिक अधिकार स्तंभ लेख ४ में दिए गए हैं। इस लेख में उन्हें कानून और न्याय के भी कतिपय अधिकार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दे दिए गए हैं, अपि च चट्टान लेखों (च० ले० १, ३, ४, ६ और ११) में अहि पर सामान्य रूप में ही जोर दिया गया है जबकि स्तंभ लेख ५ में उन प्राणियों नाम भी दिए गए हैं जिन्हें अवध्य करार दिया गया था।

चट्टान लेखों में उनका कालक्रम भी दिया है। लघु चट्टान लेख चट्टान लेखों से पहले के हैं। रूपनाथ और सहसराम में राजा का आदेश खुदा है कि लेख चट्टान और स्तंभों पर खुदवाए जाएं। यह चट्टान लेखों और स्तंभ लेखों की प्रस्तावना है भाब्रू का लेख सीधे संघ को संबोधित है न कि धर्ममहामात्रों को जबकि च० ले० ५ संघ को उनके अधीन बतलाया गया है। यह बात सांची और सारनाथ लघु स्तंभ ले में भी आयी है। इसके बाद कलिंग के दो विशेष पृथक् लेख आते हैं। जिनमें न्याय दुरुपयोग को रोकने के लिए विशेष अधिकारी नियुक्त करने का आभास दिया है च० ले० ५ में इनकी संज्ञा धर्ममहामात्र कही गई है। इसका इशारा च० ले० ३ भी है। इस प्रकार चट्टान लेखों में तीसरा पांचवें से पहले का है, अतः चट्टान ले ई० पू० २५८ और २५७ में दो बार में जारी हुए थे। पुनः, च० ले० १२, च० ले ५ से बाद का प्रतीत होता है। च० ले० ५ में स्त्रियों के लिए धर्ममहामात्र ही उत्तर दायी हैं जबकि च० ले० १२ में इसके लिए एक विशेष अधिकारी का उल्लेख जिनकी संज्ञा स्त्री-अध्यक्ष-महामात्र बतलाई गई है।[1]

1. अभी हाल ही में डा० बेणीमाधव बरुआ ने अपनी पुस्तक अशोकन एडिक्टस इन न्यू लाइट मे अशोक के लेखों का एक नितांत नया कालक्रम प्रतिपादित किया है। उनकी मान्यता है कि (१) चट्टान लेख स्तंभ लेखों से पहले के हैं, (२) कलिंग चट्टान लेख स्तंभ लेखों से बाद के हैं, और (३) लघु चट्टान लेख सबसे बाद के हैं। इस मत की समीक्षा लेखों की पाद टिप्पणियों में की गई है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परिशिष्ट क

जनश्रुतियों के आधार पर अशोक का कालक्रम

अशोक के जीवन और शासन का जो कालक्रम उसके लेखों से विदित होता है उसकी तुलना जनश्रुतियों से करना लाभदायक होगा। ये जनश्रुतियां उत्तरी और दक्षिणी दोनों हैं। उत्तरी जनश्रुति दिव्यावदान में और दक्षिणी महावंश में सुरक्षित है। कालक्रम के ये दोनों आधार यद्यपि अलग-अलग हैं तथापि अनेक मामलों में ये एक दूसरे का समर्थन करते प्रतीत होते हैं। अशोक के अभिषेक की तिथि ई० पू० २७० में निश्चित हो चुकी है। अब इसी स्थान से शुरू करके हम अशोक के जीवन व शासन की नीचे लिखी घटनाओं की तिथियां निकाल सकते हैं और उन्हें कालक्रम से सुव्यवस्थित भी कर सकते हैं :

ई० पू० ३०४—अशोक का जन्म (अशोक के सबसे बड़े पुत्र की जन्मतिथि के आधार पर अनुमान कर। पुत्र की जन्मतिथि आगे दी है)।

ई० पू० २८६—अशोक के पिता बिंदुसार ने (१८ वर्ष की उम्र में) उसे उज्जैन का वाइसराय बनाकर भेजा (महावंश, १३, ८-११)।

ई० पू० २८६—वेदिसा (वेसनगर, भिलसा) की देवी से अशोक का विवाह (वही)।

ई० पू० २८४—अशोक के ज्येष्ठ पुत्र महेंद्र का जन्म (वही v २०४)।

ई० पू० २८२—अशोक की सबसे बड़ी पुत्री संघमित्रा का जन्म (वही)।

ई० पू० २७४—

(१) उत्तराधिकार के लिए युद्ध।
(२) युवराज सुमन की मृत्यु।
(३) अशोक का सिंहासन पर अधिकार।
(४) सुमन की मृत्यु के बाद उसके बेटे निग्रोध का जन्म (वही ४०-५०)।

ई० पू० २७०—अशोक का राज्याभिषेक (वही २२)।

ई० पू० २७०-२६६—अशोक का छोटा भाई तिस्स उपराज बना (वही ३३)।

ई० पू० २७०-२४०—असंधिमित्रा अशोक की अग्रमहिषी (पटरानी) (वही ८५; २०, २)।

ई० पू० २६८—संघमित्रा का अग्निब्रह्मा से विवाह।

ई० पू० २६७—संघमित्रा के पुत्र सुमन का जन्म (वही v १७०)।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ई० पू० २६६—निग्रोध द्वारा अशोक का बौद्ध धर्म में परिवर्तन। उस समय
(१) निग्रोध केवल सात वर्ष का था (वही v ४५)। यह तिथि बड़े महत्त्व की है क्योंकि (क) इससे पता चलता है कि महावंश में उल्लिखित तिथियां उसके अभिषेक से गिनी गई हैं (जैसाकि विंसेंट स्मिथ ने किया है) न कि उसके राज्य पाने की तिथि से [जैसाकि कैंब्रिज हिस्ट्री (खंड १, पृ० ५०३) में किया है], (ख) इससे एक अतिरिक्त प्रमाण इस बात का मिलता है कि अशोक के राज्य पाने की तिथि सही है, और (ग) इससे लघु चट्टान लेख-१ में अशोक के बौद्ध उपासक बनने की जो तिथि दी है उसकी पुष्टि होती है।
(२) अशोक ने अपने छोटे भाई और युवराज तिस्स को बौद्ध बनाया (वही १६०)।
(३) तिस्स को आचार्य महाधर्मरक्षित ने दीक्षा दी (वही १६८)।
(४) अशोक के भागिनेय व जामाता अग्निब्रह्मा को बौद्ध धर्म की दीक्षा (वही १७०)।
(५) महेंद्र की तिस्स के स्थान पर उपराज पद पर (उसकी १८ वर्ष की उम्र में) नियुक्ति (वही २०२)।

ई० पू० २६६-२६३—अशोक ने विहार व चैत्य बनवाये (वही १७३, दिव्या० २७)।

ई० पू० २६४—
(१) थेर महादेव ने महेंद्र को भिक्षु बनाया। मज्झंतिक ने कंमवाचं पूरा किया। मोग्गलिपुत्त तिस्स ने महेंद्र को पुनः दीक्षा दी और वह उसका उपाध्याय बना।
(२) आचार्या आयुपाला और उपाध्याया धर्मपाला ने संघमित्रा को भिक्षुणी बनाया (महावंश v २०४-२०९)।
(३) अशोक पच्चयदायक से उन्नति कर सासनदायक बना (वही १९७)।

ई० पू० २६३—कुणाल का अशोक की पत्नी पद्मावती के गर्भ से जन्म (दिव्या० २७)।

ई० पू० २६२—थेर तिस्स व सुमित्त की मृत्यु। संघ में अवांछित भिक्षु-भिक्षुणियों की वृद्धि जिससे उदासीन होकर मोग्गलिपुत्त तिस्स संघ से विरक्त रहने लगा (महा० v २२७-३०)।

ई० पू० २६२-२५४—महेंद्र संघ का अध्यक्ष रहा। अशोक ने मोग्गलिपुत्त तिस्स को बुला भेजा। तिस्स ने उसे संबुद्ध के सिद्धांत का अध्यापन किया। तिस्स की अध्यक्षता में संघ की बैठक।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अशोक ने अपधर्मी भिक्षुओं को संघ से निकाल बाहर किया (वही २३१-२७४), मिला० सांची व सारनाथ के स्तंभ लेख)।

ई० पू० २६०-२५०—अशोक द्वारा बौद्ध तीर्थों की यात्रा का संभावित काल जिसके अंत में उसने (दिव्या० २७ के अनुसार) धर्मराजिक को पूरा कराया। दिव्यावदान के अनुसार उपगुप्त अशोक को सबसे पहले लुंबिनी वन ले गया फिर उसने उसे बोधि-मूल की यात्रा करायी। चट्टान लेख ८ में ई० पू० २६० में अशोक के संबोधि के दर्शन का उल्लेख है। रुम्मिनदेई स्तंभ लेख ई० पू० २५० में उसकी लुंबिनी यात्रा का उल्लेख करता है।

ई० पू० २५३—तृतीय बौद्ध संगीति जिसके अध्यक्ष मोग्गलिपुत्त तिस्स थे। विभिन्न देशों में दूतों का भेजना (महा० १२, १-८)।

ई० पू० २५२—लंका जाते हुए महेंद्र ने विदिशा में अपनी माता देवी के दर्शन किये (वही १३, १, ८-११)। उसे भिक्षु बने १२ वर्ष बीत चुके थे।

ई० पू० २४०—अशोक की प्रियपत्नी और संबुद्ध की दृढ़ विश्वासिनी असंधिमित्रा की मृत्यु (वही २०, २)।

ई० पू० २३६—तिष्यरक्षिता अग्रमहिषी बनी (वही ३ व दिव्या० २७ में उसे अशोक की अग्रमहिषी कहा है)।

ई० पू० २३५—तक्षशिला में विद्रोह। कुणाल वहां वाइसराय बनाकर भेजा गया (दिव्या०, पृ० ४०७)।

ई० पू० २३३—तिष्यरक्षिता का बोधि-वृक्ष से द्वेष, जिसे उसने नष्ट करने की चेष्टा की [महा० २०, ४-६, दिव्या० में विना तिथि के उल्लिखित (पृ० ३९७ कावेल का संस्करण)]।

ई० पू० २३२—शासन के अड़तीसवें वर्ष में अशोक की मृत्यु (महा० २०, १-६)।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अध्याय ३

प्रशासन

अशोक के प्रारम्भिक जीवन और उसके शासनकाल की मुख्य घटनाओं का वर्णन हम कर चुके हैं। अब हम प्रशासन, धर्म-सुधार व निर्माण के क्षेत्रों में उसके कृतित्व का विचार करेंगे।

अशोक का शासन कानूनी और राजनैतिक दृष्टियों से एक निरंकुश एकतंत्र था, तथापि भारतीय एकतंत्र पश्चिमी एकतंत्र की अपेक्षा अनेक दृष्टियों से अधिक मर्यादित था। "भारतीय राजा सुल्तान न था जिसका एकमात्र उत्तरदायित्व अपने मनोलौल्य की तुष्टि रहा है। यहां दुष्टता की वृद्धि में राजत्व की उत्पत्ति मानी गई है। अतः दंड की अनिवार्यता का भारतीय लेखक बड़े उत्साह से आख्यान करते हैं। राजा को कर का अधिकार इसलिए है क्योंकि वह समाज-व्यवस्था (गृह और धार्मिक भी) का अभिभावक है, वह मत्स्य न्याय से समाज की रक्षा करता है। यदि वह राजधर्म का पालन न करे तो वह उसी मात्रा में पाप का भागी होता है। इन्हीं उपदेशों के बीच शिक्षित वह राजधर्म की इन कल्पनाओं के अतिरिक्त दूसरा आचरण कर ही नहीं सकता था। इसीलिये बारंबार हम राजा और पुरोहित दोनों के मुख से सुनते हैं कि राजा को प्रजा का पुत्रवत् पालन करना चाहिए" (कैंब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, खंड १, पृ० ४९१)। प्रजा के प्रति उसका उत्तरदायित्व वास्तविक था। यही नहीं उसकी निरंकुशता पर एक और अंकुश था। वह विधि (कानून) का निर्माता नहीं बल्कि उसका रक्षक था। मनु और अन्य धर्मशास्त्रकारों ने धर्म के चार स्रोत माने हैं: (१) वेद, (२) स्मृति, (३) शिष्टाचार, और (४) संदेह की स्थिति में शिष्टों का मत। इसी तरह लौकिक विधि के स्रोत जातियों और श्रेणियों के अपने-अपने नियम होते थे। "सदाचारी और धर्मात्मा द्विजातियों ने जो आचरण किये हैं और जो देश (जानपद), कुल तथा जातिधर्म के विरुद्ध न हो राजा, कानून के रूप में उसे ही स्थिर करेगा" (मनु ८; ४१, ४६)। मैंने अन्यत्र (नेशनलिज्म इन हिन्दू कल्चर, लंदन, १९२० पृ० ९९) बतलाया है कि "राज्य में किसी केंद्रीय अधिकरण का आदेश, कानून का रूप नहीं ले सकता था अपितु सामूहिक जीवन के अर्ध-सहजवृत्तिक आधारतत्त्व और प्रथाएं ही 'कानून' बन सकती थीं। इन परिस्थितियों में 'कानून' कोई कृत्रिम निर्माण न था अपितु वह मतैक्य और जातीय जीवन का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्वाभाविक विकास था" । तथ्य यह है कि व्यक्तिक शासन के अधिकांश दोषों का मार्जन स्वयं राजा द्वारा 'कानून' के प्रति अर्पण था और 'कानून' के बनाने या मिटाने में उसका कोई हाथ न था। इस प्रकार भारत में शासन निर्वैयक्तिक रहा। जहाँ तक अशोक का सम्बन्ध है, राजा के रूप में सिद्धान्त-रूप में तो 'निरंकुश' अवश्य था किन्तु उसने स्वयं अपने पर वहाँ तक मर्यादाएं लगाईं जहाँ तक धर्मशास्त्र भी नहीं जाते। उसने अपने कर्त्तव्यों और उत्तरदायित्व में वृद्धि की और लौकिक जीवन में धर्म की श्रेष्ठता पर जोर दिया। उसके लेखों में पिता के रूप में शासन करने की भावना पर बड़ा जोर दिया गया है। "सभी मनुष्य मेरी प्रजा (संतति) हैं। जिस तरह मैं चाहता हूँ कि मेरे पुत्रों को इस लोक में और परलोक में सभी प्रकार के हित और सुख मिलें वैसे ही मैं चाहता हूँ कि सभी मनुष्यों को वैसे ही (हित और सुख) मिलें" (कलिंग लेख २)। नव विजित कलिंगवासियों को "यह भरोसा पैदा करना चाहिए कि 'देवताओं' के प्रिय राजा हमारे लिए वैसे ही हैं जैसे कि पिता, वे हम पर वैसा ही प्रेम रखते हैं जैसाकि अपने ऊपर और हम लोग राजा के वैसे ही हैं जैसे उनके लड़के" (वही)। प्रजा को पुत्रवत् समझने का भाव राजा तक ही सीमित न था। उसने अपने कर्मचारियों को भी जिन्हें प्रजा के हित-चिंतन के लिए उसने नियुक्त किया था ऐसा ही समझने की आज्ञा दी थी। "जैसे कोई मनुष्य अपने बच्चे को किसी निपुण धाय के हाथ में सौंपकर निश्चिंत हो जाता है और सोचता है कि यह धाय मेरे बच्चे को सुख पहुँचाने की पूरी चेष्टा करेगी, उसी प्रकार लोगों को हित और सुख पहुँचाने के लिये मैंने रज्जुक नामक कर्मचारियों की नियुक्ति की है" (स्तंभ लेख ४)। जिस राजा के ये भाव हों वह जनता का कहीं अधिक सच्चा प्रतिनिधि है, बनिस्वत उन लोगों के जो किसी लोकतन्त्र के अन्तर्गत किसी प्रतिनिधि सभा या विधान मंडल के सदस्य होते हैं। यहाँ "राज्य का प्रधान स्वयं जनता का प्रत्यक्ष या प्राथमिक प्रतिनिधित्व करता है, चाहे वह आनुवंशिक उत्तराधिकार पाने वाला मिकाडो हो या कोई हिन्दू राजा जो शितो या धर्म (कानून) का प्रतीक होता है, या जैसाकि अमेरिका का राष्ट्रपति होता है वह जनता के द्वारा चुना हुआ उसकी प्रभुसत्ता का प्रतिनिधि हो, किसी प्रतिनिधि सभा या विधान मंडल के सदस्य की अपेक्षा जनता से उसका सम्बन्ध अधिक प्रत्यक्ष और प्राणवान् होता है।"[1] आधुनिक लोकतन्त्रों में निर्वाचक और निर्वाचित के बीच जैसा कानूनी कलह और अनिच्छापूर्ण सम्बन्ध होता है उसकी अपेक्षा जनता से उसका सम्बन्ध अधिक नैसर्गिक और घनिष्ठ है। वस्तुतः, राज्य का प्रधान और उसकी जनता एक सम्मिलित और संवैधानिक इकाई के अभिन्न अंग हैं। लोकतन्त्र एकात्मक, अविभाजित प्रभुसत्ता को एक राजनैतिक शरीर और उसके विभिन्न अंगों—विभिन्न राजनैतिक सभाओं और संगठनों—में बांधने मात्र की कोशिश करता है, किंतु व्यवहार में इसने लोकतन्त्र की

१. रिपोर्ट आन मैसूर कंस्टिट्यूशनल रिफार्म : ब्रजेंद्र नाथ सील, उप-कुलपति, मैसूर विश्वविद्यालय।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दृष्टि से पश्चिम के अपेक्षाकृत विकसित देशों में भी अपने उद्देश्य की सिद्धि में आंशिक सफलता ही पायी है। लोकतन्त्र के जो दोष हैं उनसे यही सिद्ध होता है कि शासन की समस्या प्रतिनिधित्व या चुनाव के जरिये ही नहीं सुलझाई जा सकती, अपितु इसके लिए जरूरी है कि उस देश विशेष की जनता में प्रचलित संगठन (association) की जितनी भी प्राणवान् रीतियां हैं उन सबको प्रोत्साहित कर उसके सर्वांग विकास को उद्दीप्त किया जाय। "आधुनिक राजनैतिक सिद्धान्त (theory) की एक विशेषता राज्य के विरुद्ध उसकी प्रतिक्रिया है और आज का एक प्रमुख राजनैतिक तथ्य है सामूहिक जीवन—मजदूर संघों, व्यावसायिक संघों, नागरिक समितियों, पड़ोस संगठनों आदि आदि की निरंतर बढ़ती शक्ति"। प्राचीन भारतीय एकतंत्र का उद्देश्य केन्द्रीकरण या अतिशासन न था अपितु वह सामूहिक जीवन के विभिन्न अंगों को विकास का पूर्ण अवसर देता था। समाज अनन्त काल से इसका अभ्यस्त था। ये संस्थाएं संभवतः किसी केंद्रीय शासन के जन्म से भी पहले से चली आ रही थीं। इस प्रकार यह एकतंत्र नीचे से एक विशाल भूमिगत लोकतन्त्र के द्वारा मर्यादित था। स्थानीय शासन की एक पूरी व्यवस्था थी जिसमें अनेक तरह की संस्थायें थीं जो राजा के अधिकारों को मर्यादित करती थीं।

अशोक ने सम्राट के कर्त्तव्यों और उत्तरदायित्व की बड़ी ऊँची कल्पना की थी। उसे साकार करने में उसने अपने लिए भी कोई छूट नहीं ली। वह आदर्श लोक-सेवक था—अपने कर्मचारियों की अपेक्षा भी वह अधिक परिश्रम से काम करता था। वह सर्वत्र और सर्व समय प्रजा के कार्य करता था। चट्टान लेख ६ में वह कहता है, "अतीत काल में वरावर हर समय राज्य का काम नहीं होता था और न हर समय प्रतिवेदकों (रिपोर्टरों) से समाचार ही सुने जाते थे। इसीलिए मैंने यह प्रबंध किया है कि हर समय चाहे मैं खाता होऊं या अंतःपुर में होऊं या शयनगृह में या पशुशाला में होऊं, सभी जगह प्रतिवेदक मुझे प्रजा का हाल सुनावें"। वह और भी (वही) कहता है "मैं कितना ही पराक्रम करूं और कितना ही राजकार्य करूं मुझे संतोष नहीं होता क्योंकि सभी लोगों का हित करना मैं अपना प्रधान कर्त्तव्य समझता हूं। पर सभी लोगों का हित पराक्रम और राजकार्य किये विना नहीं हो सकता। सब लोगों का हित करने से बढ़कर कोई बड़ा कार्य नहीं है"। अपनी प्रजा के प्रति अपने कर्त्तव्यों को किसी राजा ने इससे अधिक क्या महत्त्व दिया होगा। ब्राह्मण धर्म के अनुसार प्रत्येक मनुष्य तीन ऋण लेकर जन्मता है। (१) देव ऋण, (२) ऋषि ऋण, और (३) पितृ ऋण। पर अशोक के अनुसार राजा को एक चौथा ऋण भी चुकाना पड़ता है। वह कहता है "जो कुछ पराक्रम मैं करता हूँ सो इसलिये कि प्राणियों का मुझ पर जो ऋण है उससे उऋण हो जाऊं" (वही)। अशोक एक विशाल साम्राज्य का स्वामी था इसलिए उसके लिए यात्राओं पर जाना जरूरी था। वह आखेट और आनन्द के लिए यात्राओं पर नहीं जाता था जैसाकि उसके पूर्ववर्ती राजा करते थे। यात्राओं पर वह "जानपदस्य जनस्य दर्शनं" अर्थात् जनपद

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और लोगों के दर्शन के लिए जाता था (चट्टान लेख ८)। पर उसका साम्राज्य इतना विस्तृत था कि वह सभी स्थानों पर नहीं जा सकता था जैसाकि चट्टान लेख १४ से स्पष्ट है जहाँ वह मानता है कि उसके लेखों में "लिपिकारों की गलती से कुछ बातें अपूर्ण रह गई होंगी।" ये गलतियां उसने देखी न थीं। उनकी कल्पना भर की थी। यदि वह सभी स्थानों पर स्वयं गया होता और उसने सभी लेख पढ़े होते तो वह ऐसी बात न कहता क्योंकि उसके लेखों में ऐसी कोई बड़ी भूल देखने में नहीं आई है।

प्रशासन की दृष्टि से अशोक का साम्राज्य कई प्रांतों में विभाजित था। दूर के प्रांतों के शासक वाइसराय होते थे। यह पद राजवंश के लोगों के लिए सुरक्षित था, लेखों में जिनकी संज्ञा कुमार या आर्यपुत्र आई है। लेखों में चार कुमारों या वाइसरायों के उल्लेख हैं। इनकी राजधानियां तक्षशिला, उज्जैन, तोसली और सुवर्णगिरि में थीं (कलिंग का लेख १, २, धौली वाला; लघु चट्टान लेख १, ब्रह्मगिरि वाला)। फा-हियान ने एक अन्य वाइसराय वाले प्रान्त का भी उल्लेख किया जो गंधार में था। यहाँ के वाइसराय का नाम कुमार धर्मविवर्धन था। दिव्यावदान के अनुसार धर्मविवर्धन कुणाल का ही अपर नाम था जिसे अशोक ने अपने राज्यकाल के अन्तिम चरण में तक्षशिला के उपद्रवों को शांत करने के लिए भेजा था। इससे हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि तक्षशिला गंधार प्रांत की राजधानी रही होगी। कभी-कभी कुमारों के स्थान पर अन्य स्थानीय लोग भी वाइसराय नियुक्त होते थे। पुष्यगुप्त वैश्य चन्द्रगुप्त के पश्चिम सूबे का राष्ट्रीय या वाइसराय था। उसकी राजधानी गिरनार में थी। अशोक के समय राजा तुसास्फ जो ईरानी था यहाँ का वाइसराय था (रुद्रदामन का गिरनार का लेख एपि० इंडिका, ८, पृ० ४६-४७)। जो प्रांत केन्द्रीय स्थानों के समीप पड़ते थे वहाँ राज्यपालों की नियुक्ति राजधानी से राजा स्वयं करता था। इनकी राजधानियां उन स्थानों में थीं जहां स्तंभ लेख हैं। चट्टान लेख साम्राज्य के दूरस्थ प्रदेशों में लिखाये गए थे।

यद्यपि लेखों में किसी वाइसराय का नाम नहीं आया है तथापि किंवदंतियों में कतिपय वाइसरायों के नाम मिलते हैं। जब बिंदुसार राजा था तो उसने अपने दो बेटों—सुसीम (वा सुमन) और अशोक को क्रमशः तक्षशिला और उज्जैनी का वाइसराय नियुक्त किया था। बाद में जब तक्षशिला में विद्रोह हुआ और सुसीम उसका दमन न कर सका तो अशोक को अधिक योग्य समझकर वहाँ भेजा गया था। हमने पहले ही देखा है कि कुमार कुणाल तक्षशिला में अशोक का वाइसराय था। राज्याभिषेक के अनन्तर अशोक ने अपने छोटे भाई तिष्य को अपना उपराज (Vice-regent) बनाया था। जब तिष्य भिक्षु बन गया तो उसके स्थान पर कुमार महेंद्र की नियुक्ति की गई थी। इस पद पर वह थोड़े ही समय रहा होगा जब उसने भी प्रव्रज्या ले ली (महावंश v ३३)। संभवतः उपराज का पद प्रधान मन्त्री के समकक्ष था और युवराज से भिन्न था। अशोक के पिता बिंदुसार ने खल्लाटक को अपना अग्रामात्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वा प्रधान मन्त्री बनाया था। कहते हैं उसने उत्तराधिकार के युद्ध में अशोक का साथ दिया था। परंपरा है कि अशोक के मंत्री का नाम राधगुप्त था जिसका वह बड़ा विश्वास करता था। उसने भी सिंहासन पाने में और शासन में अशोक की बड़ी सहायता की थी। वह उसका अग्रामात्य भी बना था।

वाइसरायों के भी मन्त्री हुआ करते थे। उत्तर के ग्रंथों से पता चलता है कि तक्षशिला की जनता ने मन्त्रियों के अत्याचार से पीड़ित होकर विद्रोह किया था न कि कुमार के विरुद्ध। तक्षशिला के कुमार कुणाल की कथा में राजधानी से उसे अन्धा करने के झूठे आदेश मन्त्री ने ही प्राप्त किए थे। कलिंग लेख २ से पता चलता है कि वाइसरायों को भी राजा की भाँति अपने महामात्र नियुक्त करने का अधिकार था जो समय-समय पर दौरों पर जाते थे और न्याय-व्यवस्था का निरीक्षण करते थे।

वाइसरायों के साथ महामात्र भी होते थे इस बात की पुष्टि ब्रह्मगिरि के लघु चट्टान लेख १, और धौली के कलिंग लेख १ से भी होती है। ब्रह्मगिरि के लेख में अशोक अपने महामात्रों के साथ आर्यपुत्र (कुमार इसिल के महामात्रों को भी संदेश देता है। धौली के लेख में राजा कुमार और महामात्रों को साथ ही संदेश देता है। जौगड़ वाले कलिंग के चट्टान लेख २ में महामात्रों के एक वर्ग को 'लाजवचनिक' कहा गया है जिसका अर्थ है कि वे सीधे राजा से संदेश प्राप्त कर सकते थे। अन्यथा महामात्र वाइसराय के जरिए ही संदेश पाने के अधिकारी थे। इस प्रकार इन महामात्रों को हम प्रांतीय गवर्नर मान सकते हैं क्योंकि इन्हें प्रांत का स्वतंत्र चार्ज मिला हुआ था। समापा (जौगड़) या इसिल (लघु चट्टान लेख १, ब्रह्मगिरि) ऐसे ही एक गवर्नर की राजधानी थी। तोसली एक वाइसराय की राजधानी थी। इसी प्रकार कौशांबी का आदेश राजा की ओर से सीधे कौशांबी के महामात्रों को संबोधित है। इसलिए कौशांबी भी एक प्रांत की राजधानी रही होगी। संभवतः इन महामात्रों को प्रादेशिक महामात्र कहा जाता था और इस प्रकार ये अन्य महामात्रों से अलग थे। प्रादेशिक (प्रांतीय गवर्नर) शब्द का प्रयोग चट्टान लेख ३ में कर्मचारियों के एक ऐसे वर्ग के लिए आया है जिन्हें हर पांचवें साल अपने समूचे प्रांत के दौरे की आज्ञा दी गई थी जैसे कलिंग चट्टान लेख १ में महामात्रों को आदेश थे। इस प्रकार इन प्रादेशिकों का दर्जा महामात्रों का था। दरअसल प्रादेशिक-महामात्र किसी डिवीजन के कमिश्नर की तरह था जैसे स्तंभ लेख ४ राजूक को प्रांतीय गवर्नर सिद्ध करता है।

सामान्य प्रांतीय गवर्नरों की संज्ञा 'राजूक' थी। इनकी नियुक्ति शत सहस्र लोगों के ऊपर की गई थी (स्तंभ लेख ४, चट्टान लेख ३)। राजूक का पद अशोक से पहले भी था पर अशोक ने इनके अधिकारों में वृद्धि की थी। उसने इन्हें व्यवहार (कानून और न्याय) के मामलों में स्वतंत्रता दी थी ताकि ये निर्भय होकर और पूर्ण विश्वास से अपना काम कर सकें और लोगों के हित और सुख का ध्यान रखें और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लोगों पर अनुग्रह करें वे लोगों के सुख-दुःख का कारण जानने का प्रयत्न करेंगे। "जैसे कोई अपने बच्चे के लिए कुशल धाय नियुक्त करता है वैसे ही प्रजा के हित और सुख के लिए रज्जुक नियुक्त किए गए। वे निर्भय होकर निःस्वार्थ भाव से और प्रसन्नचित्त अपने कर्त्तव्यों का पालन करें" (स्तंभ लेख ४)।

गवर्नर कभी-कभी इन उच्च आदेशों का पालन नहीं करते थे। जब वे अपने कर्त्तव्यों के प्रति गफलत करते थे या राजा के उपदेशों को अनसुनी कर देते थे तो राजा बड़ी शालीनता से विरोध प्रकट करता था : "बहुत सी ऐसी प्राकृतिक प्रवृत्तियां हैं जैसे ईर्ष्या, क्रोध, निष्ठुरता, जल्दबाजी, अभ्यास का अभाव, आलस्य और तंद्रा जिनके कारण मनुष्य कार्य में सफल नहीं हो पाता। आप लोगों को चेष्टा करनी चाहिए कि ऐसी प्रवृत्तियां आप लोगों में न आने पावें। इन सबका मूल है क्रोध का त्याग और जल्दबाजी न करना। जो प्रशासन के काम में आलस्य करेगा उसका उत्थान नहीं होगा। इस तरह चलना चाहिए और आगे बढ़कर प्रयत्न करना चाहिए। राजा के प्रति आपके कर्त्तव्यों और उसकी आज्ञाएं बताने के लिए विशेष अधिकारी होंगे। जो इसका पालन करेगा उसको बड़ा फल मिलेगा। पालन न करने से बड़ी विपत्ति होगी। जो इसमें चूकते हैं वे न तो स्वर्ग प्राप्त कर सकते हैं और न राजा को ही प्रसन्न कर सकते हैं। यदि आप इसका पूरी तरह से पालन करेंगे तो आपको स्वर्ग मिलेगा और मेरा आप पर जो ऋण है आप उससे भी उऋण हो जाएंगे" (कलिंग लेख १)। संभवतः ये स्वयं अशोक के शब्द हैं। सदियों पूर्व उसके भावावेग से पूर्ण उपदेशों की गूंज इसमें है। लोग उसके उपदेश भूल न जाएं इसलिए उसने उन्हें पत्थर में खुदवाकर चिरस्थायी बनवा दिया और यह भी आज्ञा दी कि इन्हें "हर चौमासे के प्रारंभ में (अर्थात् साल में तीन बार) पुष्य नक्षत्र के दिन" ही नहीं हर महीने तिष्य के दिन, और बीच-बीच में भी सुनना चाहिए। जब अवसर हो तब हर एक को अकेले कभी सुनना चाहिए (कलिंग लेख २)।

अशोक का शासन आंशिक रूप में शाही अर्थात् सीधे सम्राट के अधीन और आंशिक रूप में स्थानीय था अर्थात् वाइसरायों और गवर्नरों के अधीन था। वाइसराय का चार्ज गवर्नरों से विस्तृत था। सम्राट का प्रशासन में कितना हिस्सा था उसके पूरे ब्योरे नहीं प्राप्त हुए हैं। लेखों से विदित होता है कि सम्राट का प्रथम कर्त्तव्य वे मूल सिद्धांत बतलाना था जिनके आधार पर शासन चलाया जाएगा अर्थात् वह अपने प्रशासकों को नीति निर्देश देता था और समय-समय पर उनके लिए अपने आदेश जारी करता था। जहां तक अशोक का संबंध है उसकी नीतियां, सिद्धांत और उनकी पूर्ति के लिए किए जाने वाले उपायों का उल्लेख प्रस्तर स्तंभों और शिलाओं पर खुदकर चिरकाल के लिए गजटित हो चुके हैं। इस प्रकार विधान-निर्माण का भी कार्य कुछ हद तक सम्राट ने ले लिया था। अशोक ने साम्राज्य के लिए जो कानून स्वयं बनाए थे उनका पता उसके लेखों से चल चुका है। तीसरी बात यह है कि सार्वजनिक निर्माण भी सम्राट ने अपने अधीन कर लिया था, इसका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विवरण भी हम ऊपर दे आये है। चौथी बात यह कि धर्ममहामात्र प्रांतीय अधिकारी नहीं प्रतीत होते क्योंकि उनको जो काम दिया गया था उसकी व्याप्ति सारे साम्राज्य में ही नहीं वल्कि उसके वाहर भी थी। पांचवीं बात यह कि बौद्ध संघ का भी हित-चिंतन अशोक ने अपने ऊपर ले लिया था। जिससे पता चलता है कि उसने धार्मिक नेतृत्व भी ग्रहण कर लिया था। भाब्रू का लेख व सारनाथ, कौशांबी और सांची के चट्टान लेख इसके प्रमाण हैं। इन लेखों में उन लोगों के लिए दंड का विधान है जो संघ में भेद डालते हैं। इस आदेश की घोषणा और उसके पालन के उपाय भी इनमें दिए गए हैं। अंतिम वात यह है कि अशोक ने समय-समय पर साम्राज्य की यात्रा करना अपना कर्त्तव्य वना लिया और ऐसी ही आज्ञा उसने अपने सभी स्थानीय अधिकारियों को भी दी।

स्पष्ट है कि अशोक ने अपने ऊपर बड़े भारी कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व ले लिए थे, जिन्हें वह अकेले अच्छी तरह से संपादित नहीं कर सकता था। साम्राज्य के सामान्य पर्यवेक्षण में उसे अपने निजी सचिवों के एक विशेष वर्ग के अधिकारियों से सहायता मिलती थी। इनका काम हर समय और हर स्थान पर प्रजा के समाचार प्रतिवेदित करना था। इसीलिए इनकी संज्ञा पटिवेदक थी (चट्टान लेख ६)। प्रशासन में उसकी सहायता के लिए एक परिषद् (प्रिवी कौंसिल) भी थी जिसका जिक्र चट्टान लेख ३ और ६ में आया है। मंत्रिमंडल में कुल कितने मंत्री थे इसका पता नहीं। कौटिल्य ने कहा है कि मंत्रियों की संख्या शासन की आवश्यकताओं को दृष्टि में रखकर निश्चित करनी चाहिए। परंपरा है कि विंदुसार की परिषद् में ५०० सदस्य थे।

लेखों से पता चलता है कि किस प्रकार प्रशासनिक आदेश जारी किए जाते थे। इन्हें शासनम् (हेवंइयं शासने, सारनाथ स्तंभ लेख) और अनुशासनम् या अनुशिष्टम् (हेवंच देवानंपियस अनुसाथी, कलिंग चट्टान लेख १) कहते थे। लिपिकर इन्हें लिखता (लिखित) था (मिला० लिपिकरापराधेनं, चट्टान लेख १४; और चपडेन लिखितं लिपिकरेण, लघु चट्टान लेख २)। लिपिकर राजा के शब्दों को ही लिपिवद्ध करता था [देवानंपियस वचनेन, कलिंग चट्टान लेख २ (धौली)]। दस्तावेज को लिपि कहते थे [मिला० इकंच लिपिं (सारनाथ लघु स्तंभ लेख) और अयं धर्मलिपि लेखापित, चट्टान लेख व स्तंभ लेखों में]। घोषित हो जाने पर राजा के आदेश को श्रावणम् कहते थे (मिला० इयं च सावणे सावापिते, लघु चट्टान लेख १, ब्रह्मगिरि)। राजा के आदेश का आमुख यों होता था : "राजा ने यों कहा" (एवमाह, अनेक चट्टान और स्तंभ लेखों में) या "राजा ने यों आज्ञा दी" (मया इदं आज्ञापितं चट्टान लेख ३, या देवानं पिये अणपयति, लघु चट्टान लेख १)। इसमें कौटिल्य (II, १०) के अनुसार पहला रूप प्रज्ञापन-लेख में होता है और दूसरा आज्ञा-लेख में अर्थात् ये रूप क्रमशः सूचनार्थ और आदेश के लेखों में आते थे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जहाँ तक प्रांतीय सरकारों का ताल्लुक है, लेखों में एक प्रकार की सामान्य योजना मिल जाती है। इनमें सबसे बड़ा स्थानीय अधिकारी जो शासन का अध्यक्ष होता था राजूक कहा जाता था। प्रादेशिक[1] का अधिकार-क्षेत्र उससे किंचित् छोटा होता था। वह कमिश्नरी के बराबर था। विभागाध्यक्ष भी होते थे (स्तंभ लेख ७ में) जिनकी संज्ञा मुख दी गई है। इनका सामान्य पदनाम महामात्र[2] भी था। इस पदनाम के पूर्व उस विभाग का नाम जोड़ देते थे जिसके वे अध्यक्ष होते थे। लेखों में हमें धर्म विभाग के इंचार्ज धर्ममहामात्रों, स्त्रियों के कार्यों के इंचार्ज स्त्री-अध्यक्ष-महामात्रों, सीमांतों के इंचार्ज अंत-महामात्रों (स्तंभ लेख १) का उल्लेख मिलता है। नगरों के इंचार्ज महामात्रों को महामात्र-नागरक या महामात्र-नगरव्यवहारक कहते थे (कलिंग के लेख)। जहाँ सिर्फ महामात्र शब्द का बिना किसी पूर्व पद के इस्तेमाल हुआ है तो उसका तात्पर्य मंत्री से होता है [जैसे कलिंग लेख २ (धौली) व लघु चट्टान लेख१]। चट्टान लेख ६ में आए एक उल्लेख से भी यही अर्थ ध्वनित होता है। इसमें राजा कहता है कि जब कोई जरूरी बात हो तो महामात्र उसे परिषद् के सामने रखें जिसके वे भी सदस्य होते थे। अंतिम बात यह कि जैसा चट्टान लेख ५ और १३ में लिखा है, महामात्र राजा के दूत के रूप में अंत-प्रदेशों में ही नही विदेशों में भी भेजे जा सकते थे, जैसे पाँच यूनानी राजाओं के यहां, चोड़ों, पांड्यों और सिंहल द्वीप में।

इस प्रकार वाइसराय और प्रांतीय शासन के अध्यक्षों की सहायता के लिए सिविल अधिकारियों का एक पूरा तंत्र ही बना हुआ था। सिविल सेवकों की सामान्य संज्ञा पुरुष थी (स्तंभ लेख १, ४ और ७) और ये बड़े, छोटे और मध्यम श्रेणियों के होते थे (स्तंभ लेख १)। स्तंभ लेख ४ में पुरुषों और राजूकों में भेद किया गया है। इसमें पुरुषों को राजा की मंशा से परिचित बतलाया गया है और कहा गया है कि ये राजूकों को भक्तिपूर्वक सेवा करने के लिए उत्साहित करेंगे। लेख ७ में पुरुषों को "बहुत से लोगों के ऊपर" (बहुने जनसि आयता) कहा गया है जबकि राजूकों के

---

१. चट्टान लेख ३ में 'युक्तों, राजूकों और प्रादेशिकों' का उल्लेख है। इस उल्लेख में छोटे से बड़े अफसर का क्रम है। स्तंभ लेख ७ में राजूकों का उल्लेख पुरुषों के ठीक बाद आने से यही जाहिर होता है। ऐसी अवस्था में प्रादेशिक पूरे प्रदेश के अफसर रहे होंगे जो किसी खास काम के लिए नियुक्त किए गए होंगे। एफ० डब्ल्यू० थामस प्रादेशिक को प्रदेष्टृ के ही तुल्य मानते हैं जो 'राजस्व और न्याय सेवा के प्रधान थे' (ज० रा० ए० सो०, १९१४, पृ० ३८३-८६)। वे राजूकों को सर्वे, भूमिबंदोबस्त और सिंचाई जैसे विभागों का प्रधान अधिकारी मानते हैं जो इस पद के नाम से ही स्पष्ट है. (राजूक=रज्जुग्राहक, जमीन नापने वाले; पालि ग्रंथों में ऐसा प्रयोग आया भी है, कैंब्रिज हिस्ट्री, पृ० ४८७, ५०८)। आगे इन शब्दों पर टिप्पणियाँ भी देखिए।

२. महामात्रों के कार्यालय या सचिवालय जिन भवनों में होते थे उन्हें कौटिल्य (II, ५) महामात्रिय कहता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चार्ज में सैकड़ों सहस्र व्यक्ति" बतलाए गए हैं। इस प्रकार पुरुष कौटिल्य के गूढ़-(गुप्त) पुरुष वा शासन के निरीक्षक रहे होंगे। अधीन दर्जे के सिविल सेवकों को युक्त कहते थे (चट्टान लेख ३)। युक्त सचिवों की भाँति थे। चट्टान लेख ३ के अनुसार जिनके काम राजा के आदेशों की संहिता बनाना था वे महामात्रों (मंत्रियों) के कार्यालय में रहते थे और परिषद् के अनुदेश से काम करते थे जिसके साथ वे संबद्ध होते थे। जब उनके ऊपर के अधिकारी दौरों पर जाते थे तो वे भी उनके साथ रहते थे। लिपिकर का भी उल्लेख आया है (लघु चट्टान लेख २, ब्रह्म-गिरि वाला)।

लगता है कि सरकारी अफसरों के दौरों की प्रथा थी वे चाहे बड़े हों या छोटे, सभी दौरों पर जाते थे। उज्जैन और तक्षशिला के वाइसराय-क्षेत्रों में महा-मात्रों के लिए हर तीसरे वर्ष दौरों पर जाने का नियम था (कलिंग चट्टान लेख १), जबकि अन्य प्रांतों में पाँच साल में एक बार दौरों पर जाने का नियम था (वही और चट्टान लेख ३)। जो अफसर दौरों पर भेजे जाते थे उनमें युक्त, राजूक और प्रादेशिक शामिल थे (चट्टान लेख ३)।

सीमांतों के प्रशासन की समस्याओं का भी समाधान पा लिया गया था। वहाँ की विशेष समस्याओं और परिस्थितियों के अनुकूल इंतजाम कर दिए गए थे। सामान्य तौर पर विजित और 'अविजित' सीमांत जातियों और पिछड़ी जातियों, जंगली जातियों के साथ व्यवहार में शासन और उनके बीच पिता-पुत्र के संबंधों का सिद्धांत अपनाया गया था (कलिंग लेख)। हम पहले ही बतला चुके हैं कि सीमांत प्रदेशों के इंचार्ज को अंत-महामात्र कहते थे। इनके ठीक-ठीक कर्त्तव्यों का उल्लेख लेखों में नहीं है। पर कौटिल्य ने अंतपालों के रूप में इनका उल्लेख किया है। इनका काम आयातित माल पर वर्तनी (पारगमन शुल्क) वसूल करना, उनके गुणों की परीक्षा कर उन पर अपनी मुहर लगाना (II, २१) और उन्हें शुल्का-ध्यक्ष (Superintendent of Tolls) के पास भेज देना था। यदि उनके अधि-कार-क्षेत्र के भीतर किसी व्यापारी का माल चोरी चला जाता तो अंतपालों को नुकसान पूरा करना पड़ता था।

अन्तिम बात यह कि सार्वजनिक निर्माण के कार्यों में अशोक की बड़ी रुचि थी। इन कामों की निगरानी के लिए भी उसने अधिकारी अवश्य नियुक्त किये होंगे। सार्वजनिक निर्माण के कुछ कामों का उल्लेख उसके लेखों में भी है। व्रज (चट्टान लेख ६) निश्चय ही व्रजभूमिक (चट्टान लेख १२) के अधीन रहे होंगे। सार्वजनिक उद्यान (चट्टान लेख ६), आम्रवाटिकाएं (स्तंभ लेख ७), कुएं (कूप, चट्टान लेख २) या उद्यान (स्तंभ लेख ७) और धर्मशालाएं (निषदया, स्तंभ लेख ७ और गुफा लेख ३) आदि काम भी व्रजभूमिक के ही अधीन रहे होंगे। चिकित्सा के काम आने वाली जड़ी-बूटियां उगाने के लिए वनस्पति-उद्यान लगाए गए थे, इनकी निगरानी के लिए उद्यान-शास्त्री और मनुष्यों और पशुओं की चिकित्सा (मनुष्य-चिकित्सा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

व पशु-चिकित्सा चट्टान लेख २) के प्रवन्ध के लिये चिकित्सा अधिकारी भी अवश्य ही रहे होंगे। फिर राजा का अपना नाग-वन (हाथियों का वन) भी था (स्तंभ लेख ५)। कौटिल्य (II ३१) के हस्त्यध्यक्ष की भाँति इन वन का भी कोई अधिकारी अवश्य रहा होगा। हाथी राजा की विशेष संपत्ति थे। मेगस्थनीज ने भी इसे लक्षित किया था।

जहाँ तक साम्राज्य की नीति का प्रश्न है वह अशोक के ही शब्दों में अत्यन्त संक्षेप में कही गई है "धर्मविजय सबसे मुख्य विजय है, न कि ताकत की विजय" (चट्टान लेख १३)। सर्वप्रथम उसने एक धड़ाके से युद्ध बंद कर दिए। सिद्धांत-तया छोटे और कमजोर राष्ट्रों की प्रभुसत्ता का आदर किया गया। अनेक 'अविजित' सीमांत राज्यों को उसका संदेश था "राजा सीमांत जातियों के प्रति चाहता है कि वे उससे न डरें, उस पर विश्वास करें और उन्हें उससे सुख ही मिलेगा, दुःख नहीं" (कलिंग लेख २)। जो जातियां अशिक्षित थीं उन्हें सभ्य बनाने के नाम पर उनकी स्वतन्त्रता का हरण नहीं किया गया। उसके "राज्य में जो वनवासी जातियाँ हैं उन्हें भी देवताओं के प्रिय राजा संतुष्ट रखते हैं" (चट्टान लेख १३)। इस तरह राजा का संदेश उच्च स्वर में और स्पष्ट शब्दों में चट्टानों और स्तंभों पर दुहराया गया, स्वतंत्रता, धरती पर सर्वत्र शांति और सभी मनुष्यों में सद्भावना का यह संदेश पूरे देश में गूंजता रहा। धर्म-घोष में भेरीघोष विलीन हो गया (चट्टान लेख ४)। पर हमें ध्यान में रखना चाहिए कि अशोक के स्वतंत्रता के दान की एक शर्त थी। स्व-तंत्रता धर्म के साथ रहे। सम्राट यद्यपि "सीमान्तवासियों का विश्वास पाने को उत्सुक था", पर साथ ही वह इस बात के लिए भी उत्सुक था कि "वे धर्म के मार्ग पर चलें" (कलिंग लेख २)। वनवासियों को साफ-साफ कहा गया है कि वे "बुरे मार्ग पर चलने से लज्जित हों ताकि मृत्युदण्ड से बचे रहें" (चट्टान लेख १३)। दूसरी बात यह कि यद्यपि सैनिक विजय का त्याग कर दिया गया था, पर राजा के धर्मविजय की गति तेज हो गई थी। धर्मविजय दैनिक प्रशासन का अंग बन गई थी। इसका विस्तार उसकी प्रजा में ही नहीं बल्कि सीमान्त जातियों और विदेशों में भी हो रहा था। इस प्रकार उसके अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्ध जिन सिद्धांतों के आधार पर प्रतिष्ठित हुए थे, उनकी पूर्ण स्वीकृति अभी तक नहीं हुई है। 'वसुधैव कुटुंबकम्' के जिस सिद्धांत से वह अनुप्राणित था उसमें उसके सामने एक राष्ट्र को दूसरे राष्ट्र से विभाजित करने वाली सीमाओं का अस्तित्व नहीं रह गया था। इस प्रकार अशोक एक ऐसा राजा था जो अपने समय से सदियों आगे था। वह अपने राजकोष से दूसरे राष्ट्रों के कल्याण के कार्य सम्पन्न करता था (चट्टान लेख २)।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अध्याय ४

धर्म

अब हम अशोक के धर्म पर विचार करेंगे। प्रारम्भ में ही हमें अशोक के निजी धर्म और उस धर्म में फर्क करना होगा जिसका उसने उपदेश किया है और अपनी प्रजा में जिसके प्रचार की उसने कोशिश की थी।

हम यह मान सकते हैं कि वह स्वयं बौद्ध था, यद्यपि एक मत यह भी है कि वह जैन था। वह बौद्ध ही था यह बात उसके अनेक लेखों और अन्य प्रमाणों से स्पष्ट हो जाती है। लघु चट्टान लेख १ में उसने बौद्ध धर्म के प्रति अपनी प्रगति के अनेक चरण बताए हैं। हुल्ट्ज्श ने लघु चट्टान लेख १, मास्की और रूपनाथ का जो पाठ किया है उसमें तो अशोक ने स्वयं खुलेआम एलान किया है कि वह "शाक्य" और "बुद्ध-शाक्य" अर्थात् बौद्ध है। भाब्रू के लेख में तो वह "संघ" के बारे में भी बड़े अधिकार से बोलता दीखता है। उसने बौद्ध-ग्रंथों से अनेक उद्धरणों के पाठ और मनन का विधान किया है, बौद्ध त्रिरत्न—बुद्ध, धर्म और संघ—के प्रति अपनी आस्था प्रकट की है, सारनाथ, कोशांबी और सांची के लघु स्तंभ लेखों में वह बौद्ध धर्म के रक्षक के रूप में प्रकट होता है और संघ में भेद डालने वालों के लिए दंड का विधान करता है। एक परम्परा[1] के अनुसार उसने मोग्गलिपुत्त तिस्स की अध्यक्षता

---

१. जनश्रुतियों से भी अशोक की बुद्ध-भक्ति की पुष्टि होती है। कथा है कि उसने उन स्तूपों को खुदवा डाला था जिनमें बुद्ध भगवान की धातुएं रखी हुई थीं। पुनः उन धातुओं को ८४००० भागों में विभक्त कर उसने ८४००० स्तूप बनवाए थे। ये धातुएं कुशीनारा के मल्लों के अधिकार में थीं क्योंकि भगवान का परिनिर्वाण वहीं हुआ था। पर बाद में सात अन्य जातियों ने भी मिलकर धातुएं मांगी और मल्लों को उनका बराबर भाग करने को बाध्य किया। भगवान की धातुओं के सात दावेदार थे—मगध का अजातशत्रु, वैशाली के लिच्छवि, कपिलवस्तु के शाक्य, अल्लकप्प के बुली, रामग्राम के कोलिय, वेठदीप का एक ब्राह्मण और पावा के मल्ल। सांची की एक मूर्ति में इस युद्ध के दृश्य अंकित हैं। इस संघर्ष का शमन द्रोण नामक एक ब्राह्मण ने कराया था। शताब्दियों बाद अशोक ने इस युद्ध को एक दूसरे ही रूप में पुनर्जीवित किया। उसने उन स्तूपों को खुलवा दिया जहाँ ये धातुएं सुरक्षित थीं, पर रामग्राम में उसे सफलता नहीं मिली, क्योंकि वहाँ इनकी रक्षा नाग कर रहे थे। यही दृश्य सांची के महास्तूप के एक तोरण पर उकेरा गया है। इसमें सम्राट् अपने रथ पर आ रहा है। उसके साथ घोड़े, पैदल और हाथियों की सेना है। अशोक के बौद्ध होने के दूसरे प्रमाण वे स्तूप हैं जो अशोक ने कपिशा से लेकर उड़ीसा तक सारे देश में बनवाए थे जिनमें बुद्ध की धातुएं रखी गईं या वे उन स्थानों पर निर्मित हुए जहाँ कभी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में बौद्ध संगीति का भी आयोजन किया था। इसी संगीति में मोग्गलिपुत्त तिस्स ने बौद्ध ग्रंथों के स्पष्टीकरण के लिए "कथावत्थु" की रचना की थी। इसके अलावा अन्य दूसरे तथ्य भी हैं जिनसे यही निष्कर्ष निकलता है कि वह बौद्ध था, जैसे उसने बौद्ध तीर्थों की यात्रा की थी, प्राणि-हिंसा के विरुद्ध उसके अनेक उपाय, राजमहल की रसोई में मांस पकाने की मनाही, ऐसे समाजों का त्याग जिनमें जानवरों को कष्ट दिये जायं या उनका वध होता हो, प्राणियों की बलि समाप्त करना (चट्टान लेख १), उपोसथ बौद्ध-अवकाशों का पालन (स्तंभ लेख ५)। उसने धर्ममहामात्रों की नियुक्ति की थी। इनको संघ का हित (संघठसि) करने की हिदायत थी जबकि अन्य सम्प्रदायों के सम्बन्ध में इनको निगरानी का काम दिया गया था (स्तंभ लेख ७)। अन्त में हम यह भी देखते हैं कि अशोक की आसक्ति बौद्ध प्रतीक—श्वेतगज[1]—में थी। गिरनार में चट्टान लेख १३ के अन्त में एक लेख में इसका उल्लेख है। धौली में उसने एक चट्टान काटकर हाथी की मूर्ति उकेरवाई है और कलसी की चट्टान पर हाथी की आकृति खुदवाई है जिसके नीचे गजतमे लेख खुदा है जिसका अर्थ है गजोत्तम। यह हाथी आकाश से उतरता दिखाया गया है जिसे इस रूप में माता के गर्भ में भगवान बुद्ध के आने का आभास होता है।[1] इससे अनुमान है कि यहाँ अशोक ने अपने धर्मलेख भगवान बुद्ध को समर्पित किये हैं। इस प्रकार अशोक के कई लेखों के साथ हाथी का सम्बन्ध जुड़ा है। इसके अलावा भी हम देखते हैं कि अशोक के स्तंभों के शीर्षों पर चार पशुओं, हाथी, वृषभ, अश्व और सिंह की आकृतियां हैं जो बुद्ध भगवान के जीवन के चार आयामों के प्रतीक हैं। इनमें हाथी तथागत के गर्भ में आने का, वृषभ उनके शाक्य वंश का, अश्व उनके महाभिनिष्क्रमण का और सिंह उनके शाक्यसिंह होने का प्रतीक है। बुद्ध का एक नाम शाक्यसिंह भी था।

अशोक ने स्वयं बौद्ध धर्म ग्रहण किया था। यह उसके बाप-दादों का धर्म नहीं था। बौद्ध धर्म की शरण में आने से पूर्व पिता-पितामह की भाँति उसकी रसोई में भी रोज मांस पकाया जाता था। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि मत-परिवर्तन

(जारी)
भगवान ने चारिका की थी या उनके साथ उनका किसी न किसी रूप में संबंध था। युवाङ् च्वाङ् ने इसका वर्णन किया है। सम्राट पाटलिपुत्र में उस पत्थर पर नित्य पूजा के लिए जाता था जहाँ भगवान के चरण चिह्न अंकित थे। इस घटना का वर्णन भी युवाङ् च्वाङ् ने किया है (दे० वैटर्स, ii, ९२)।

१. माता के गर्भ में बोधिसत्त्व के अवतार की कथा दीघ निकाय, २ (पृ० १२-१३, ५५) और जातकों में [बोधिसत्तों सेतवरवारणो हुत्वा...फॉसबोल, i ५०)] और भरहुत के एक लेख में (भगवतो ऊक्रंति) आई है। भरहुत की मूर्ति में (दे० कनिंघम कृत स्तूप आफ भरहुत फलक २८) और सांची में भी (पूर्वी तोरण के दाएं पाखे के भीतरी मुंह में सबसे ऊपर) इसका अंकन हुआ है। बाद में अमरावती में और सबसे शुद्ध रूप में गंधार में (दे० फूशर कृत बिगिनिंग्स आफ बुद्धिस्ट आर्ट फलक ३ में) भी उसका अंकन मिलता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के वाद भी वह पूरी तरह से निरामिष भोजी नहीं हो गया था। ई० पू० २५८ में जब उसे बौद्ध धर्म में आये छह वर्ष बीत चुके थे वह हिरन और मोर का मांस खाता था। यद्यपि हिरन का वध तो बाद में वन्द कर दिया था, तथापि यह पता नहीं कि क्या उसने मोर के मांस का भी पकाना एकदम बंद करा दिया था। मजेदार वात यह है कि बुद्धघोष (संयुत्त निकाय की सारत्थप्पकासिनी टीका) के अनुसार मध्य देश में जंगली मोर का मांस वड़ा स्वादिष्ट और रईसत की निशानी माना जाता था।[१] स्तम्भ लेख ५ में ऐसे प्राणियों की एक वड़ी लंवी सूची दी गई है जिनकी रक्षा का विधान है। यह सूची ई० पू० २४३ में अर्थात् काफी वाद में जारी की गई थी। इस सूची में मोर का नाम नहीं है। इसी प्रकार अशोक मत-परिवर्तन से पूर्व अन्य राजा-महाराजाओं की भाँति ही आमोद-प्रमोद करता था। सभी परम्पराओं में उसे एक वलात् राज्य छीनने वाला वतलाया गया है जिसका वह वैध अधिकारी न था। अन्तिम वात यह कि बौद्ध उपासक होने पर भी उसने घमासान युद्ध किया था (चट्टान लेख १३)। इसलिये ऐसी कहानियों के गढ़ने की कोई आवश्यकता न थी जैसी परवर्ती बौद्ध धर्माचार्यों ने गढ़ी हैं जिनमें यह सिद्ध करने की कोशिश की गई है कि बौद्ध धर्म में एक खोटी धातु को भी खरा कंचन वना देने की क्षमता है। जो वात सच है वह तो अपना इजहार खुद करती है।

अशोक के मत-परिवर्तन के वारे में कई कहानियाँ हैं। सिंहली किंवदंतियों में इसका श्रेय अशोक के सबसे वड़े भाई सुमन के वेटे निग्रोध को दिया गया है। फिर, मोग्गलिपुत्त तिस्स को अशोक का आचार्य वतलाया गया है। बुद्ध के वाद विनय के पञ्चम उपदेष्टा के रूप में इनकी गिनती होती है। इनके पूर्व उपाली, दासक, सोनक, सिग्गव और चंडवज्जि विनय के उपदेशक हो चुके थे (गीगर कृत महावंश, पृ xlvii)। अशोक के अभिषेक के समय तिस्स साठ वर्ष के थे। वे अस्सी वर्ष की उम्र में मरे थे। उनके वाद महेंद्र आचार्य हुआ था। युवाङ् च्वाङ् ने बुद्ध धर्म में अशोक को दीक्षित करने वाले आचार्य का नाम उपगुप्त वतलाया है किन्तु उपगुप्त की मोग्गलिपुत्त तिस्स से पहचान की गई है (वैडल, ज० ए० सो० वं० १८९७, पृ० ७६-८४)। इस आचार्य ने सवसे पहले बौद्ध तीर्थों की यात्रा से अशोक की शिक्षा का प्रारम्भ किया था, इस वात का उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। अशोक पर उस समय के अन्य बौद्ध आचार्यों का भी प्रभाव पड़ा था। इसमें सुमित्र और तिस्स के नाम लिये जाते हैं। तिस्स की मृत्यु से संघ में वड़ी गड़वड़ी फैली थी। उस समय संघ में अपधर्मियों की संख्या सद्धर्मियों से काफी वढ़ गई थी। इसी अराजकता के अन्त के लिए तीसरी बौद्ध संगीति बुलायी गयी। इसके अध्यक्ष स्वयं अशोक के आचार्य तिस्स थे, इस वात का भी उल्लेख ऊपर आया है। यह संगीति नौ महीने चली थी।

१. इस उद्धरण के लिए मैं श्री चरण दास चटर्जी का कृतज्ञ हूं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यह कहना कठिन है कि अपने नए धर्म के प्रति अशोक का प्रेम कितना गाढ़ा था। इसका आंशिक प्रमाण लघु चट्टान लेख १ में उसके इस कथन से मिल जाता है कि वह स्वयं संघ में आ गया है और उसके बेटे-बेटी भी संघ की प्रत्यक्ष सेवा में आ चुके हैं।[1] किंवदंतियों में संघ से उसके लगाव की कहानी और आगे बढ़कर यह भी कहती है कि एक धार्मिक अनुष्ठान के बाद अशोक ने भिक्षुओं को अपना राजपाट ही दान दे दिया था जिसे उसने उनसे तीन-तीन बार खरीदा था। फा-हियान ने भी इस कथा को दुहराया है। उसने लिखा है कि अशोक ने पाटलिपुत्र में एक महास्तूप बनवाया था जिसके चारों ओर पत्थर का जंगला लगा हुआ था। उसके पास ही पत्थर का एक बहुत बड़ा स्तम्भ भी था जिसका घेरा पन्द्रह हाथ था। जिस पर एक लेख खुदा हुआ है जिसमें कहा है "अशोक ने भिक्षुओं के संघ को जंबूद्वीप का दान कर दिया। फिर उसे प्रचुर धन देकर वापस लिया। उसने तीन-तीन बार ऐसा किया" (लेग्गे का अनुवाद, पृ० ८०)। किंतु अशोक के लेखों में संघ के जो किंचित् उल्लेख हैं उनसे तो यही प्रकट होता है कि अशोक संघ से अधिकार के भाव से वर्ताव करता था न कि समर्पण के भाव से जबकि उसने धर्ममहामात्रों को अन्य धर्मों की परिषदों की ही भाँति 'संघ' पर भी नियंत्रण रखने को कह रखा था। बुद्धघोष ने एक किंवदंती लिपि-बद्ध की है जिससे यही लक्षित होता है कि स्वयं अशोक संघ पर इतना नियंत्रण रखता था कि वह संघ में फूट डालने वाले भिक्षुओं और भिक्षुणियों को "सफेद कपड़े पहनाकर" संघ से निकाल देता था। सारनाथ,

१. महावंश (गीगर का अनुवाद, पृ० ४२-४३) में अशोक के लिए (उस समय वह धर्माशोक हो चुका था) कहा है कि उसने स्वयं प्रव्रज्या न लेकर अपने पुत्र और पुत्री को प्रव्रज्या लेने की अनुमति दे दी। पर इससे भी संघ में उसकी हैसियत बढ़ी ही। इसके पहले वह पच्च-दायक अर्थात् उपासक मात्र था जो भिक्षुओं को उनकी चार आवश्यकताएं—चीवर, भोजन, आवास और औषधि देता था। अब वह शासनदायाद अर्थात् 'संघ का बांधव' बन गया। यही हैसियत वह चाहता भी था। इस संबंध में जनश्रुति में किसी प्रकार की अस्पष्टता नहीं है कि अशोक ने स्वयं ही भिक्षु बनना स्वीकार नहीं किया था। अतः लघु चट्टान लेख १ में 'संघं उपगते' का तात्पर्य यह मानना उचित न होगा कि वह भिक्षु बन गया था। इस संबंध में ध्यान देने की बात यह है कि सांची की एक मूर्ति में रामग्राम में अशोक के स्तूप-दर्शन का जो चित्रण है उसमें भी अशोक भिक्षु के वेश में नहीं बल्कि रथ पर चढ़े हाथियों, घुड़सवारों और परिचरों से घिरे सम्राट के राजसी रूप में है। दो अन्य मूर्तियों में भी इसी वेश में वह अपनी दो रानियों के साथ मगदाव और बोधगया में दर्शन के लिए आते हुए अंकित है (मार्शल, गाइड टु सांची, पृ० ४७, ५०, ५१, ६१)। इ-त्सिंग के इस कथन से उसके भिक्षु बनने का अवश्य ज्ञान होता है (दे० ज० रा० ए० सो०, १९०८, पृ० ४९६) कि उसने अशोक की एक ऐसी मूर्ति देखी थी जिसमें वह भिक्षु वेश में था। दिव्यावदान की एक कथा के अनुसार भी जीवन के अंतिम दिनों में अशोक ने संसार का त्याग कर भिक्षुत्व ग्रहण कर लिया था और उसके सारे अधिकार छिन चुके थे। इसी रूप में उसकी मृत्यु हुई (ज० रा० ए० सो०, १९१३, पृ० ६५७)।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सांची और कौशांबी के लेखों से पता चलता है कि संघ-भेद के लिए अशोक का रुख काफी कठोर था। इससे संघ के हित के प्रति उसका अदम्य उत्साह ही लक्षित होता है।

इससे हम इस प्रश्न पर आ जाते हैं कि बौद्ध धर्म के प्रति इतना उत्साह रखने पर भी अन्य धर्मों के प्रति अशोक कितनी मात्रा में सहिष्णु रहा था। पहली बात यह है कि अशोक ने अपनी प्रजा पर अपना निजी धर्म थोपने की कोशिश नहीं की, यद्यपि उसके प्रति उसका प्रबल उत्साह था। दूसरी बात यह कि जहाँ तक विभिन्न धर्मों को राजकीय आश्रय प्रदान करने का प्रश्न था उसने किसी धर्म के प्रति किंचित भेदभाव नहीं किया। यह बात उसके द्वारा आजीविकों को गुफाएं दान देने से प्रकट है।[1] बौद्धों के साथ-साथ ही उसके धर्ममहामात्र राज्य के धन से ब्राह्मणों, आजीविकों और निर्ग्रंथों के हित का भी चिंतन करते थे। उसने बोधिसत्त्व के अनुयायियों के लिए बुद्ध कोनाक मुनि के स्तूप को दुगुना कराया था और वहाँ तीर्थ-यात्रा पर भी गया था। तीसरी बात यह है कि उसके समस्त लेखों में सभी धर्मों के प्रति उसकी समदृष्टि का ही भाव टपकता है। उसने सदा ब्राह्मणों, श्रमणों के दान देने की प्रशंसा की है (चट्टान लेख ३, ९) और इनके प्रति अनादर की निंदा की है (चट्टान लेख ४, स्तंभ लेख ७)। अपनी 'धर्म-यात्राओं में वह ब्राह्मणों और श्रमणों के दर्शन और उन्हें दान देने' से कभी नहीं चूकता था (चट्टान लेख ८)। उसके एक विशिष्ट आदेश से निवास के अधिकार के सम्बन्ध में विभिन्न संप्रदायों में जो भेदभाव होता था वह समाप्त कर दिया गया था (चट्टान लेख ७)। एक दूसरे लेख में यह कहा गया है : "राजा विविध दान और पूजा से सभी सम्प्रदायों के प्रव्रजितों और गृहस्थों का सत्कार करता है।" विभिन्न सम्प्रदायों में शास्त्रार्थ को प्रोत्साहित करते हुए भी—भारतीय चिंतन की यही पुरानी परम्परा रही है—उसने बिना प्रकरण दूसरे के सम्प्रदाय की निन्दा करने की प्रवृत्ति को निरुत्साहित किया है "क्योंकि हर दशा में दूसरे सम्प्रदायों का आदर करना ही चाहिये और जो अपने सम्प्रदाय की भक्ति में आकर इस विचार से कि मेरे सम्प्रदाय का गौरव बढ़े अपने सम्प्रदाय की पूजा और दूसरे सम्प्रदाय की निंदा करता है वह वास्तव में अपने आचरण से

---

१. इसका अर्थ यह किया गया है कि अशोक अन्य संप्रदायों के मुकाबले आजीविकों के प्रति अधिक अनुराग रखता था। यदि हम जनश्रुतियों का विश्वास करें तो उसका यह पक्षपात उसे अपने माता-पिता से मिला था। महावंशटीका में (पृ० १२६), जैसा हम पहले बतला आए हैं, एक आजीविक को उसकी माता धर्मा का कुलगुरु कहा है जिसका नाम जनसान या (देविया कुलूपगो जनसानो नाम एको आजीवको) जिसे बिंदुसार ने अपनी रानी के स्वप्न के फल-कथन के लिए बुलाया था। दिव्यावदान (अध्याय २६) में बिंदुसार आजीविक साधु पिंगलवत्स को स्वयं बुलाकर उससे अपने पुत्रों की परीक्षा लेकर यह बतलाने को कहता है कि उसके पुत्रों में कौन सबसे योग्य है ताकि उसे वह अपना उत्तराधिकारी बना सके।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अपने सम्प्रदाय को ही गहरी क्षति पहुँचाता है।" इसलिए राजा इसी बात की चिंता करता था कि "सभी सम्प्रदायों के सार की वृद्धि हो" (चट्टान लेख १२)। बाद के एक अन्य लेख में (स्तंभ लेख ६) वह कहता है कि "मैं सभी समाजों को ध्यान में रखता हूँ क्योंकि मैंने सभी सम्प्रदायों के अनुयायियों की विविध प्रकार से पूजा की किंतु अपने आप स्वयं इन सबके पास जाना मैं अपना मुख्य कर्त्तव्य समझता हूँ।"

यहाँ यह न भूलना होगा कि अशोक के समय में उसके लिये विभिन्न सम्प्रदायों के प्रति सहिष्णुता का भाव रखना कठिन न था क्योंकि वे सभी एक ही सम्प्रदाय की शाखाएं थीं। ईसा, जरथुस्त्र या मुहम्मद के धर्म जो बाद में भारत में आए उनका इस मूल धर्म से बड़ा अन्तर था। अतः सम्राट की उदारता का महत्त्व कम न करते हुए भी यही मानना उचित होगा कि अशोक के लिए "सभी सम्प्रदायों में सार" की खोज कोई दुष्कर कार्य न था। कुछ ऐसी बातें भी हैं जो इस उदारता के विपरीत भी पड़ती हैं। ब्राह्मण धर्म में यज्ञों में पशुवलि का विधान है। इस पशुवलि पर प्रतिबन्ध लगाकर अशोक ने उस धर्म में हस्तक्षेप ही किया।[1] उसने कई धार्मिक क्रियाओं और संस्कारों की खुलेआम निन्दा की है जो ब्राह्मण धर्म के अंग थे (चट्टान लेख ९)। क्षुद्र जीवों की पवित्रता पर उसने कुछ अधिक ही जोर दिया था इसके विपरीत मनुष्य-जीव की पवित्रता उसने पूरी तरह से नहीं पहचानी थी, अन्यथा वह उन्हें मृत्यु-दण्ड देने पर रोक लगा सकता था। इस संबंध में वह मात्र इतनी ही छूट देकर संतोष कर लेता है कि जिन लोगों को मृत्यु-दण्ड की सजा सुनाई जा चुकी है उन्हें तीन दिनों की मोहलत इस बात के लिए दी जाय ताकि उनके रिश्तेदार यदि चाहें तो उनके जीवन-दान के लिए पुनर्विचार की प्रार्थना कर सकते हैं (स्तंभ लेख ४) और कि वह अपने अभिषेक के दिन हर साल कैदियों को जेल से मुक्त कराता था (स्तम्भ लेख ४ और ५)।

जहाँ तक उसके व्यक्तिगत धर्म का सम्बन्ध है, अशोक बौद्ध धर्म का एक उत्साही अनुयायी अवश्य था, पर उसके धार्मिक मन को इस धर्म की बाहरी बातें— संस्कार, पूजा-विधान आदि उतनी अपील नहीं करती थीं जितनी वह उसके आंत-

---

१. किंतु ध्यान देने की बात यह है कि जब अशोक प्राणि-वध या धार्मिक रीति-रिवाजों और ढकोसलों की निंदा करता है तो वह ब्राह्मण धर्म वाले उपनिषदों के उच्च आदर्शों के अनुरूप ही कहता है। लेखों में उसके अनेक उपदेशों में उपनिषदों के अनेक उपदेशों की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है (दे० लघु चट्टान लेख २ पादटिप्पणियाँ)। कतिपय उपनिषद् परा विद्या अर्थात् आत्म-ज्ञान ही परम सत्य है का उपदेश करते हैं और वे अन्य सभी ज्ञानों को अपरा-विद्या कहकर त्याज्य घोषित करते हैं। अपरा-विद्या में वे चारों वेदों और छहों वेदांगों की भी गणना करते हैं (मिला० मुंडक i, १, ४-५, छांदोग्य vii, १, बृहदारण्यक iii,५,१; आदि)। मुंडकोपनिषद् (i,२,७) उन लोगों को जो मात्र संस्कारों का पालन करते हैं मूर्ख कहता है। बृहदारण्यक (i,४,१०) उन लोगों को जो आत्मन् का ज्ञान प्राप्त किए बिना यज्ञ करते हैं ऐसे पालतू जानवर कहता है जो अपने मालिक के सुख के लिए होते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Fouhdation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रिक तत्त्वों—आंतरिक विकास और आत्म उन्नयन के मार्गों से प्रभावित था। एक बौद्ध के रूप में उसने 'संघ' के सामूहिक जीवन की अपेक्षा आध्यात्मिक जीवन के नियमन में अधिक रुचि ली। यह बात दूसरी है कि सम्राट के रूप में संघ की समृद्धि की उत्कट कामना उसके मन में थी और संघ में फूट को बचाने और फूट डालने वालों को दण्ड देने की उसने व्यवस्था की थी।

भाब्रू के लेख में उसने अपने सहधर्मियों के सभी वर्गों के धार्मिक अनुष्ठान के लिए बौद्ध आगमों से कई अंश चुने हैं। इनसे भी उसके इसी मानसिक ढांचे का पता चलता है। उसने जिन वचनों का चयन किया है उनमें दो के नाम हैं मुनि-गाथा और मोनेय-सुते। इससे मुनियों के आदर्श के प्रति उसके अधिकानुराग का पता चलता है। मुनि सभी कामनाओं से मुक्त हो संसार छोड़कर वनों में निर्वाण की कामना से तप करते थे। अलिय-वसानि में भोजन, वस्त्र और निवास की सादगी और तपस्या और समाधि की आवश्यकता पर बल दिया गया है। अनागत-भयानि में रोग, क्षय, दुर्भिक्ष, युद्ध या भेद के विरुद्ध आध्यात्मिक जीवन में उत्कट पराक्रम की आवश्यकता बतलाई गई है। लाघुलोवाद में आंतरिक विघ्न बाधाओं से सतर्क किया गया है जिनसे सतत आत्म-परीक्षण और शरीर, मन और वाणी के सभी कर्मों के आलोचन के जरिये बचाव किया जा सकता है। इन सूत्रों और वचनों के उद्धरणों से स्पष्ट है कि बौद्ध धर्म में अशोक को जो बातें सबसे अधिक प्रभावित करती थीं वे थीं उसका शौच और तप का आदर्श और आध्यात्मिक जीवन के लिए विहित उपकर्म। वह इस धर्म के उन बाह्य विधि-निषेधों या उसके विशिष्ट और सांप्रदायिक तत्त्वों से प्रभावित न था जो उसे अन्य धर्मों से पृथक् करते थे।

इससे भी हम यही अनुमान करते हैं कि अशोक ने अपने लेखों में 'संघ' शब्द का प्रयोग समूचे बौद्ध संघ के अर्थ में किया है जो संभवतः उसके समय तक अविभक्त था। इस प्रकार अशोक के बौद्ध धर्म को उसके किसी संप्रदाय विशेष के साथ नहीं बांधा जा सकता। इस मत की पुष्टि उसके लेखों से (उदाहरणार्थ स्तंभ लेख ७ और भाब्रू का लेख जहां 'संघ' से तात्पर्य समूचे बौद्ध संघ से है न कि उसके किसी संप्रदाय से) तो हो जाती है पर किंवदंतियों से इसका मेल नहीं खाता। किंवदंतियों के अनुसार तृतीय बौद्ध संगीति के पूर्व ही संघ दो संप्रदायों—थेरवादी और महासांघिक में बंट ही नहीं चुका था बल्कि उस समय तक स्वयं थेरवादियों की दो और महासांघिकों की भी चार शाखाएं हो चुकी थीं (देखिए कर्न का मैनुअल आफ इंडियन बुद्धिज्म)। इस संगीति का आयोजन पाटलिपुत्र में अशोक के दसवें अभिषेक वर्ष में हुआ था। किन्तु इस किंवदंती की संगति अशोक के लेखों से बिठाई जा सकती है। फिर हमें कुछ विद्वानों की भांति यह मानना होगा[1] कि वैशाली की दूसरी

---

१. जैसे, डा० देवदत्त रा० भंडारकर अपने अशोक (पृ० ९३-९६) में बड़े जोर से इस मत का प्रतिपादन करते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संगीति अशोक (किवदंतियों का उस समय का कालाशोक) के समय में हुई थी। इसमें वृज्जि के भिक्षुओं द्वारा विनय के दस नियमों को लेकर उठाए विवाद के कारण पहली बार संघ में फूट प्रकट हुई थी। इस संगीति में वृज्जि के भिक्षुओं की पराजय हुई थी और फूट से संघ बच गया था। इससे संघ में फूट के बारे में अशोक की चिंता और उससे बचाव की अभिलाषा का खुलासा हो जाता है। साथ ही इस बात का भी खुलासा हो जाता है कि अशोक के लेखों में अविभाजित 'संघ' का उल्लेख क्यों है और वह संघ की अखंडता हर हालत में सुरक्षित रखने के लिए क्यों चिंतित रहता था। संघ में फूट के प्रति उसकी असहिष्णुता की वजह यह थी कि वह ऐसी किसी फूट को जन्मते ही कुचल देना चाहता था। फूट का पूर्वानुमान कर उसके प्रति असहिष्णुता दिखाना कहीं श्रेयस्कर था बनिस्बत इसके कि उसके बाद कड़ाई दिखाई जाती।[1]

अब हम उस धर्म पर विचार करेंगे जिसका प्रचार वह अपनी प्रजा में करना चाहता था। निषेधात्मक रूप में कहें तो मानना होगा कि उसके इस धर्म का तदात्म्य उस समय के प्रचलित किसी धर्म से नहीं कर सकते। यह बौद्ध धर्म तो नहीं था जो स्वयं उसका निजी धर्म था। उस धर्म के मूलभूत सिद्धांतों या गहन विचारों के बारे में उसने कुछ नहीं कहा है, चार आर्य सत्यों, आर्य अष्टांगिक मार्ग, प्रतीत्य-समुत्पाद, द्वादश निदान, बुद्ध की अलौकिकता, आदि का उल्लेख उसके लेखों में नहीं है। वह निर्वाण के बारे में भी कुछ नहीं कहता। इसी तरह बौद्ध धर्म की वे बातें भी कहीं नहीं मिलतीं जहां अन्य धर्मों से वह पृथक् होता है" (कैंब्रिज हिस्ट्री खंड १, पृ० ५०५)। विंसेंट स्मिथ ने बतलाया है कि "बौद्ध धर्म के बारे में अशोक के उत्साह का पता धर्म की उसकी व्याख्या से नहीं बल्कि बौद्ध आगमों के उसके उल्लेख, उसकी भाषा के ढांचे, बौद्ध तीर्थों की उसकी यात्रा, और संघ पर उसके सक्रिय नियंत्रण से चलता है (अशोक, तृतीय संस्करण पृ० ६०)। मतलब यह कि उसके बौद्ध होने का प्रमाण उसके मुख्य लेखों में नहीं है।

अशोक के लेखों में जिस धर्म के तत्त्व हैं वह कोई धर्म विशेष नहीं है। वह एक आचरण-संहिता मात्र है जिसमें सभी धर्मों का सार है (चट्टान लेख १२)। उसके दो रूप हैं (१) व्यावहारिक और (२) शास्त्रीय। व्यावहारिक रूप में यह जीवन के विभिन्न संबंधों के प्रति सदाचार के विस्तृत नियमों का विधान करता है। वे हैं:

(१) शुश्रूषा—

(क) माता-पिता के प्रति (चट्टान लेख ३, ४, ११, १३ और स्तंभ लेख ७)।

---

१. संघ में भेद के प्रति अशोक का दृष्टिकोण बौद्ध आगमों के उपदेशों पर आधृत है जिनका वर्णन सारनाथ लेख की व्याख्या में दिया गया है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(ख) गुरुजनों के प्रति [चट्टान लेख ४; (अनुपटीपति) स्तंभ लेख ७]।

(ग) आचार्य (गुरु) के प्रति (चट्टान लेख १३, स्तंभ लेख ७)।

(घ) ऊंची जातियों के लोगों के प्रति [अग्रभूति (या भूत)=शुश्रूषा, चट्टान लेख १३]।

(२) अपचिति अर्थात् आदर

(क) अंतेवासी गुरु का आदर करे (लघु चट्टान लेख २)।

(ख) गुरुजनों के प्रति आदर (चट्टान लेख ६)।

(३) संप्रतिपत्ति अर्थात् सम्यक् व्यवहार

(क) संन्यासियों—ब्राह्मणों और श्रमणों दोनों के प्रति (चट्टान लेख ४, स्तंभ लेख ७)।

(ख) संबंधियों के प्रति (लघु चट्टान लेख २, चट्टान लेख ४ और १३)।

(ग) दास-भटकों अर्थात् नौकर-चाकरों के प्रति (चट्टान लेख ६, ११, १३, स्तंभ लेख ७)।

(घ) कपन-वलाक अर्थात् निर्धन और दुखियों के प्रति (स्तंभ लेख ७)।

(ङ) मित्रों, परिचितों और साथियों के प्रति (चट्टान लेख १३)।

(४) दानं—

(क) संन्यासियों, ब्राह्मणों और श्रमणों को (चट्टान लेख ३, ८, ६ और ११)।

(ख) मित्रों, साथियों और संबंधियों को (मित-संस्तुत-जातिक I) (चट्टान लेख ३ और ११)।

(ग) बड़े-बूढ़ों को (थैरानां हिरंणपटिविधानो) बड़े-बूढ़ों को सोने का दान (चट्टान लेख ८)।

(५) प्राणानां अनारंभ अर्थात् प्राणियों की हिंसा न करना (चट्टान लेख ३, ४, ६ और स्तंभ लेख ७); प्राणानां संयमो प्राणियों की हिंसा में संयम (चट्टान लेख ६); अविहीसा भूतानं प्राणियों के प्रति अहिंसा (चट्टान लेख ४, स्तंभ लेख ७); सर्वा भूतानं अक्षतिसंयमं (चट्टान लेख १३), प्राणेसु द्रह्यितव्यं (लघु चट्टान लेख २)।

इन कर्त्तव्यों को शामिल करने में सम्राट का लक्ष्य गृहस्थ जीवन की पवित्रता था, समाज के लिए जिसकी आवश्यकता निर्विवाद है। परिवार जिसका आधार और इकाई है। गृहस्थ जीवन के संबंधों में ब्राह्मणों और श्रमणों को भी समेट लिया गया है। इस प्रकार उन संन्यासियों के पालन-पोषण का भार भी गृहस्थों पर डाला गया है जो परम तत्त्व की खोज में संसार से विरक्त हो उसका त्याग कर देते हैं। इसकी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परिधि में क्षुद्र जीव भी आ जाते हैं। अपने स्वामियों से पालन-पोषण और रक्षण पाने का इनका अधिकार है और उनके इस अधिकार को मान्यता अशोक ने दी है (चट्टान लेख ३, ४, ९, ११, १३ और स्तंभ लेख ७)।

इस आचार संहिता अथवा व्यावहारिक धर्म को कभी-कभी और सामान्य रूप में परिभाषित किया गया हैं। इनमें ये गुण शामिल हैं :

(१) दया (स्तंभ लेख २ और ७)।
(२) दानं (वही और चट्टान लेख ७)।
(३) सत्यं (लघु चट्टान लेख २, स्तंभ लेख २ और ७)।
(४) शौचं—आंतरिक और बाहरी शुद्धता (स्तंभ लेख २ और ७)।
(५) मार्दवं=मृदुता (चट्टान लेख १३, गिरनार और कालसी और स्तंभ लेख ७)।
(६) साधुता (स्तंभ लेख ७)।
(७) अपव्ययता और अपभांडता—अल्पव्यय और बचत (चट्टान लेख ३)।
(८) संयम (चट्टान लेख ७)।
(९) भाव-शुद्धि (वही)।
(१०) कृतज्ञता (वही)।
(११) दृढ़भक्तिता (वही व चट्टान लेख १३, पंक्ति ५)।
(१२) धर्मरति (चट्टान लेख १३)।

चट्टान लेख १३ में उस धर्म का सार दिया है जिसमें सभी के प्रति सम्यक् आचरण का विधान है। इसमें ये बातें शामिल हैं (१) अक्षति—किसी को चोट न पहुँचाना (२) संयम (३) समाचरण—सबसे बराबरी का व्यवहार (४) मार्दवं—सभी के प्रति मृदुता का व्यवहार—चाहे वह मनुष्य हो या पशु या पक्षी (सर्व-भूतानां)। स्तम्भ लेख १ में पुनः इहलोक और परलोक में सुख की प्राप्ति के लिए नीचे लिखी आवश्यकताएं बतलाई गई हैं (१) धर्मा-कामता अर्थात् धर्म से प्रेम, (२) परीक्षा (पटिपेखा)—अर्थात् आत्म-परीक्षण, (३) शुश्रूषा—अर्थात् आज्ञा-कारिता, (४) भय अर्थात् पाप का भय, (५) उत्साह—धर्म के प्रति उत्साह। धर्म के व्यावहारिक पक्ष पर जोर देने के लिए विध्यात्मक रूप में इसमें बहु कयाने अर्थात् अच्छे काम खूब करना (स्तम्भ लेख २) और निषेधात्मक रूप में अपासिनवं (वही) अर्थात् आसिनव, पाप से मुक्ति (स्तंभ लेख ३) शामिल हैं। पाप को बढ़ावा देने वाले हैं चांड्यं, रोषं, निष्ठूर्यस्=निष्ठुरता, क्रोध, मान, घमंड और ईर्ष्या। दसवें चट्टान लेख में निषेधात्मक रूप में अपरिश्रवम् अर्थात् परिश्रव से मुक्ति और अपुण्य अर्थात् बुराई धर्म की परिभाषा है।[1]

---

१. ध्यान देने की बात यह है कि जैन धर्म में १८ प्रकार के पापों और ४२ प्रकार के आश्रवों का विधान है (दे० श्रीमती स्टीवेंसन : हार्ट आफ जैनिज्म, पृ० ३०२-३०५) इनमें से तीन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अशोक ने अपने आचरण से भी दिखा दिया था कि वह अपने उपदेशों को कितना महत्त्व देता है। हम देख चुके हैं कि अपने सगे-सम्बन्धियों का, भाइयों का, बहनों का, पुत्रों-पौत्रों, पत्नियों और अन्य स्त्री संबंधियों का कितना ख्याल वह रखता था। इनके मामलों में—धार्मिक उत्थान और उनकी प्रसन्नता में उसकी हार्दिक रुचि थी। अपने परिवार से बाहर—आम जनता को वह अपनी संतति मानता था और उनका हित-चिंतन करता था। स्तंभ लेख ६ में वह कहता है : "मैं अपने जाति कुटुम्ब के लोगों का ही ख्याल नहीं करता, बल्कि दूर के और पास के लोग किस प्रकार सुखी रह सकते हैं, इसी उद्देश्य के लिए मैं कार्य भी करता हूँ।" इस प्रकार लोक-हित के उसके कार्यों का जन्म हुआ जिनका जिक्र ऊपर किया जा चुका है। इसीलिए ब्राह्मणों और श्रमणों को वह दान भी देता था। स्तंभ लेख २ में उसने मनुष्यों, पशुओं, पक्षियों और जलचरों के अनुग्रह और "कल्याण" (विविध अनुगहे और बहूनि कयानानि) के बहुत से उपायों का जिक्र किया है। मनुष्यों के लिए उसका सबसे बड़ा दान था धर्मदानं (चट्टान लेख ११), चक्षुदानं (स्तंभ लेख २)—आध्यात्मिक दृष्टि का दान,

---

(जारी)

क्रोध, मान, और ईर्ष्या वा द्वेष का वर्णन अशोक ने भी आसिनवगामीनि के रूप में किया है (स्तं० ले० ३)। जैन-ग्रंथ प्रश्नव्याकरण सूत्र १, ७, पांच प्रकार के आश्रवों का वर्णन करता है। वे हैं—हिंसा, मृषावाद (झूठ), अदत्तद्रव्यग्रहणम् (चोरी), अब्रह्मचर्य और परिग्रह (लालच)। आश्रय को भावहेतु कहा है जबकि संवर अर्थात् संयम को मोक्ष का हेतु माना है।

बौद्धों की आसवों की अपनी सूची है। जैसाकि चाइल्डर्स ने दिखलाया है इनमें (१) कामासव अर्थात् काम की लालसा, (२) भवासव, (३) अविज्जासव अर्थात् अज्ञान का पाप, अज्ञान से तात्पर्य चार आर्य सत्यों के अज्ञान से है, और (४) दिट्ठासव अर्थात् मिथ्या-दृष्टि का पाप शामिल है।

इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अशोक ने आसवों के संबंध में बौद्धों के स्थान पर जैनों का मत माना है। डा० भंडारकर (अशोक, पृ० १२६-३०) के मतानुसार अशोक ने अन्यत्र भी जैन कल्पना ग्रहण की है। उसके लेखों में जीव, प्राण, भूत और जात शब्द आचारांग सूत्र के पाणा-भूया-जीवा-सत्ता के ही पर्याय हैं। इस प्रकार अशोक ने अपने उस वचन का पालन ही किया है जिसमें उसने यह कहा है कि उसने अपने धर्म में ब्राह्मण, बौद्ध और जैन—सभी धर्मों का सार ग्रहण किया है। इस प्रकार अशोक के लेखों में वर्णित उसके धर्म की कल्पना का जो आख्यान हमने ऊपर किया है उसकी तुलना बौद्ध आगम ग्रंथ सिगालोवाद सुत्तांत (दीघ० नि० iii, ३१) के उस कथन से करना मनोरंजक होगा जहाँ निम्नलिखित से बचने का उपदेश है, (क) चार कम्म-किलेसा (दुर्गुण) अर्थात् (१) पाणातिपातो (जीवनाश), (२) चोरी, (३) मुसावादो (झूठ) और (४) पर-स्त्रीगमन; (ख) दुष्कर्मों के चार हेतुक—(१) पक्षपात (छंदा), (२) दोसा (द्वेष), (३) भय और (४) अज्ञान; (ग) छह भोगानां अपायमुखानि (भोग के छह उपाय) अर्थात् (१) मद्य, (२) असमय में सड़कों पर घूमना, (३) समज्जाचिहरणं मेले तमाशों में घूमना, (४) जुआ, (५) बुरी संगत, और (६) आलस्य। इनमें से हरएक से छह आदीनव (मिला० अशोक का आसीनव) या खतरे निकलते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

छोटे जीवों के लिए उसने प्राण-दक्षिणा (वही) दी थी। अशोक धर्मानुशासनम् और धर्मानुशास्ति (चट्टान लेख ४, १३ और स्तभ लेख ७) को राजा का सबसे बड़ा कर्त्तव्य (सेस्ते कम्मे) मानता था (चट्टान लेख ४)। इसलिए वह स्वयं भी अपने विभिन्न प्रांतों में जनता को धार्मिक उपदेश देने के लिए जाता था (जानपदस्य जनस्य दर्शनम्) और वह धर्म के बारे में जनता को आदेश देता था और पूछता था (धर्मानुशस्ति और धर्मपरिपृच्छनं) जैसाकि चट्टान लेख ८ में उसने कहा है। चट्टान लेख ६ में वह सबका हित (सर्वलोक-हित)—राजा का प्रधान कर्त्तव्य मानता है। इसकी पूर्ति 'पराक्रम और कार्य साधन' से ही हो सकता है (उत्थानं और अर्थसंतीरणनं)। इन गुणों का वह स्वयं आचरण करता था जैसाकि उसी लेख में हम देखते हैं।

पर लेखों का धर्म मात्र व्यावहारिक ही न था। इसके कई विशिष्ट सिद्धान्त और दार्शनिक पक्ष भी थे, जिनमें अशोक के धर्म-सुधार के अनेक विचार मूर्त हुए थे। इसमें पशु-जीव की पवित्रता को सिद्धान्त माना गया था। एक ऐसे देश में जहाँ अनेक धर्म प्रचलित हों सहिष्णुता को परम कर्त्तव्य माना गया था। उसका मूल है (तस्य तु इदं मूलं वचोगुप्ति)—अपने ही धर्म की प्रशंसा और दूसरे धर्मों की निंदा करने से बचना। इस आधार पर सभी धर्मों के प्रति सहिष्णुता के भाव की वृद्धि होगी। इस सहिष्णुता में सभी धर्मों के बारे में जानकारी से और भी वृद्धि की जा सकती है ताकि एक धर्म वाले दूसरे धर्म की बातें समझ सकें। इसे बहुश्रुतता कहा गया है। जितना ही विस्तृत यह ज्ञान होगा उतनी ही दृष्टि व्यापक होगी (बहुका), दान, सहिष्णुता, कल्याण-आगम और धर्म का सार बढ़ेगा (चट्टान लेख १२)। सभी धर्मों की मौलिक बातें एक ही हैं, किन्तु लोग इसे जानते नहीं। उनका उद्धार करना होता है। फिर ऊपर कहे गुणों का ज्ञान होता है। जहाँ के लोगों का धर्म अनेक संस्कार-क्रियाओं से भरा हो और जहाँ बीमारी, विवाह, जन्म या यात्रा के अवसर पर भी किये जाने वाले तरह-तरह के क्षुद्र और निरर्थक मंगलाचारों को ही धर्म माना जाता हो वहां सभी संबंधियों के प्रति सदाचार का व्यवहार उचित ही था (चट्टान लेख ९)। इसी प्रकार इस बात पर भी जोर देना उचित था कि धर्म दान ही सबसे सच्चा दान है! क्रामवेल के इस कथन से अशोक की तुलना की जा सकती है "मनुष्य की शारीरिक बीमारियों के लिए अस्पतालों की इमारतें बनवाई जाती हैं; धार्मिक कार्य का फैसला मंदिरों के ईंट पत्थर के भवनों के निर्माण के आधार पर किया जाता है किन्तु जो लोग आध्यात्मिक भोजन जुटाते हैं, आध्यात्मिक मंदिरों का निर्माण करते हैं वे सच्चे दानी और धार्मिक हैं" (चट्टान लेख ११ और ५, विंसेंट स्मिथ कृत अशोक, पृ० १८२)। चट्टान लेख ४ में भी कहा गया है कि "यह सबसे अच्छा काम है—धार्मिक शासन है।" इसके अनंतर धार्मिक उन्नति के लिए आत्म-पराक्रम पर जोर दिया गया है। उसने बेलाग स्वीकार किया है कि 'बड़े आदमी' के लिए तो इसकी जरूरत और भी अधिक है (चट्टान लेख १०)। वह आगे और भी कहता है "कोई भी मनुष्य चाहे वह छोटा हो या बड़ा बिना पराक्रम के उसके लिए

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यह कार्य दुष्कर है"। लघु चट्टान लेख १ में वह एलान करता है कि "छोटे और बड़े सभी पराक्रम करें।" पराक्रम का एक तरीका "आत्म-परीक्षण" है। इसका अर्थ है अपने बुरे और अच्छे कामों का परीक्षण (स्तम्भ लेख ३)। स्तम्भ लेख १ में वह धार्मिक जीवन के लिए गहन आत्म-परीक्षा और उत्साह पर जोर देता है। एक अन्य लेख में (स्तंभ लेख ७) पराक्रम का एक अन्य उपाय निझति (चिंतन) वतलाता है। कर्त्तव्य के चिंतन को उसके नियमन से अधिक शक्तिशाली नैतिक-बल माना गया है। अन्तिम बात यह कि राजाओं और प्रशासकों के लिए दो उचित सिद्धान्तों का प्रतिपादन उसने किया है। इसमें एक है सच्ची विजय का सिद्धान्त जिसमें सुख होता है दुःख नहीं। यह विजय मनुष्यों के शरीर की नहीं होती जो उनकी इच्छा के विरुद्ध पशुवल से प्राप्त की जाती है। सच्ची विजय वह है जिसमें हृदय जीता जाता है। यह धार्मिक वल से और विजित की इच्छानुसार प्राप्त की जाती है। अन्य सिद्धान्त, राजा के सच्चे यश का सिद्धान्त है। यह उसके राज्य की सीमाओं पर निर्भर नहीं होता वल्कि इस वात पर निर्भर करता है कि वह राजा अपनी प्रजा का कितना धार्मिक उत्थान कर सका है (चट्टान लेख १०)। स्पष्ट है कि ऐसे सिद्धान्तों के जरिए अशोक ने धर्म को नियामक सिद्धान्त और शक्ति माना था। उसने अपने नए आदर्शों और सिद्धान्तों के लिए नई भाषा का प्रयोग किया। अनेक पारिभाषिक शब्दों का आविष्कार किया। ये शब्द उसके नए उपायों के लिए थे और उसकी चलाई संस्थाओं के लिए। इनमें से वहुत से शब्दों के वारे में हम पहले भी विचार कर चुके हैं। कुछ का यहाँ उल्लेख किया जा सकता है। (१) धर्ममहामात्र (२) धर्मयात्रा (चट्टान लेख ८) (३) लौकिक राजकीय संदेशों से परे धर्मलिपि (४) धर्म-नियम (स्तंभ लेख ७) धर्म की आवश्यकताओं के अनुरूप प्रतिवंध (५) धर्म-श्रवण (वही) (६) धर्मघोष (चट्टान लेख ४) भेरीघोष से विपरीत (७) धर्म-स्तंभ (स्तंभ लेख ७) ये स्तंभ युद्ध में विजय आदि के स्मृति में स्थापित विजय-स्तंभों या कीर्ति-स्तम्भों से भिन्न थे। (८) धर्म-संवंध (९) धर्म-संस्तव (१०) धर्म-संविभाग (चट्टान लेख ११) (११) धर्मानुग्रह (चट्टान लेख ९) और (१२) धर्मदान (१३) धर्म-मंगल और (१४) धर्म-विजय जिसका जिक्र ऊपर आ चुका है। स्तंभ लेख १ में अपनी इच्छाओं को संक्षेप में प्रकट करते हुए उसने कहा है कि धर्म के अनुसार पालन करना, धर्म के अनुसार शासन करना, धर्म के अनुसार सुख देना, धर्म के अनुसार रक्षा करना, उसका उद्देश्य है। वह चाहता है कि धर्म के प्रति लोगों की अपेक्षा और अनुराग दिन प्रतिदिन वढ़े (धंमेन पालना धंमेन विधाने धंमेन सुखीयना धंमेन गोतीति; धंमापेखा धंम-कामता।)

अन्त में, हम यह भी देखते कि परलोक में अशोक का अखण्ड विश्वास था। उसके अनेक लेखों में उसका यह विश्वास दुहराया गया है। उसका यह भी विश्वास था कि इहलोक में धर्म के आचरण से परलोक में स्वर्ग की प्राप्ति होती है [कलिंग लेख १, स्तंभ लेख १, ४, ७ और चट्टान लेख ६, ९, १०, १३)। वह स्वर्ग को

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अनन्त और आत्मा को अमर मानता था (मिला० अनंतं पुणं प्रसवति, चट्टान लेख ११]। जहाँ तक जीवन के मूल्यों का प्रश्न है वह परलोक को सबसे अधिक महत्त्व देता था और उसे ही जीवन का चरम लक्ष्य मानता था (परत्रिकमेव महफल मेअति देवानंप्रियो—चट्टान लेख १३)। चट्टान लेख १० में वह स्पष्ट रूप से कहता है कि वह जो भी पराक्रम करता है उसका उद्देश्य परलोक (सवं पारत्रिकाय) है। स्वर्ग में ब्राह्मण और बौद्ध दोनों विश्वास करते हैं। बुद्ध स्वयं कहते हैं कि धार्मिक गृहस्थ अगले जन्म में देवता होकर जन्म लेता है (मज्झिम निकाय I, २८९, ३८८) विमानवत्थु में स्वर्ग के सुखों में अर्थात् ऐसा महल जो चलता-फिरता रहता है और जिसमें स्वर्ग के निवासी रहते हैं, ऐरावत हाथी और नित्य कांतिमान शरीर की प्राप्ति सम्मिलित है। चट्टान लेख ४ में वह बतलाता है कि किस प्रकार स्वर्ग के सुख के दृश्यों के प्रदर्शन से वह जनता को धार्मिक आचरण के लिए प्रोत्साहित करता रहता था। स्तंभ लेख ४ से पता चलता है कि वह कैदियों को जिन्हें मृत्यु का दंड दिया गया था उपवास का अवसर देता था ताकि उनका परलोक बने। इससे पता चलता है कि अशोक प्रायश्चित से पापों के मोचन में भी विश्वास करता था।

इस प्रकार उसके लेखों से जिस धर्म का ज्ञान होता है वह नैतिक और साधु जीवन का ही अपर नाम था। यह सभी धर्मों में समान रूप से मिलता है[1]।

---

1. इस अर्थ में अशोक का धर्म उसकी अपनी कल्पना न थी। वह पहले से चली आ रही थी। इस बात की ओर अशोक ने स्वयं अपने लेखों में दो बार इशारा किया है। चट्टान लेख १३ में उसने कहा है कि कलिंग विजय और इस धर्म के उपदेश से पूर्व कलिंग में ऐसे लोग थे जो इस धर्म के अनुरूप आचरण करते थे। कलिंग का समाज जिस धर्म का पालन कर रहा था वह ब्राह्मण धर्म की व्यवस्था ही थी। स्तंभ लेख ७ में भी इस बात का इशारा है कि अशोक के बाप-दादों की भी ऐसी चेष्टा रही थी कि लोग धर्म की वृद्धि करें। इसी लेख में यह भी कहा है कि उसने सिर्फ इस धर्म की परिभाषा, व्याख्या और उपदेश किया। उसकी मौलिकता इस धर्म की कल्पना में न थी बल्कि उन उपायों में थी जिससे उसने जनता में इसका प्रचार किया। इन उपायों में (१) धर्मश्रावणानि (धार्मिक संदेश), (२) धर्मानुशासनानि (धार्मिक उपदेश), और (३) इन संदेशों और उपदेशों को चरितार्थ और जनता के उनके धार्मिक सदाचार (दान) में सहायता करने के लिए कर्मचारियों (पुरुषों, राजूकों और धर्ममहामात्रों) की नियुक्ति करना शामिल था।

कलिंग विजय के बाद ही उसने धर्म-प्रचार के लिए पराक्रम शुरू किये। इस युद्ध में जो कुछ हुआ उससे उसका हृदय-परिवर्तन हो गया और फिर उसका धर्म के आचरण, धर्म के प्रति भक्ति और धार्मिक उपदेश के लिए उत्साह बढ़ गया (चट्टान लेख १३)। उसकी धर्म विजय की भावना का कारण यह था कि जैसे कोई पिता अपनी संतति के हित व सुख का प्रयत्न करता है वैसे ही वह अपनी प्रजा के हित और सुख के लिए यत्न करना चाहता था (कलिंग चट्टान लेख)। उसके इस कथन में भी यही कारण बतलाया गया है "जो कुछ पराक्रम मैं करता हूँ वह इसीलिए कि प्राणियों का मुझ पर जो ऋण है उससे मैं उऋण हो जाऊं और इस लोक में लोगों को मैं सुखी कर सकूं और परलोक में उन्हें स्वर्ग का लाभ कराऊं" (चट्टान लेख ६)। इस प्रकार धर्मविजय को वह राजा का प्रजा के प्रति परम कर्त्तव्य मानता है। वह इसे प्रजा का अपने ऊपर ऋण मानता है। यह कर्त्तव्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इसे किसी भी तरह किसी संप्रदाय से नहीं बांधा जा सकता। इसका रूप सार्वभौम है। यह सभी धर्मों का सार है (चट्टान लेख १२)। एक विशाल साम्राज्य के अधिपति के लिए जिसके राज्य में नाना धर्मों का पालन करने वाली जातियां रहती हों और वे विकास की विभिन्न अवस्थाओं में हों, ऐसा ही धर्म योग्य भी है। अशोक को अपनी समस्त प्रजा के धर्म-लाभ की चिन्ता थी। इसलिए उसने बहुत सोच विचार कर इस व्यवस्था का चयन किया होगा जिसे वह अपनी प्रजा के किसी भी वर्ग को आघात पहुँचाए बिना सब पर समान रूप में लागू कर सके। इस प्रकार उसने एक विश्व धर्म की नींव रख दी है। इतिहास में संभवत: वह पहला ऐसा व्यक्ति था। हम भली-भाँति समझ सकते हैं कैसे इस धर्म का जंगली जातियों, अविजित सीमा राज्यों, साम्राज्य के सभी वर्गों, सभी धर्मों के अनुयायियों—पुरुषों, स्त्रियों, गृहस्थों, संन्यासियों, भारतीयों और विदेशियों—यही नहीं पश्चिम के सभ्य यूनानी पड़ोसियों में भी—सबमें समान रूप से उपदेश किया जा सकता था। इस प्रकार जब कुछ विद्वान पश्चिम के देशों में अशोक द्वारा धर्म-प्रचार के लिए मिशनरियों के भेजने की बात को एक "राजा की गर्वोक्ति"[१] मात्र मानते हैं तो यही कहना उचित होगा कि यह उनका दुराग्रह है और उन्होंने विषय की गहराई में जाने की कोशिश नहीं की है। विदेशों में धन व्यय कर ऐसे मिशन भेजने से अशोक यह भी मानता रहा होगा कि अंततोगत्वा इससे उसकी प्रजा को भी लाभ होगा। इन देशों के साथ उस समय भारत का घनिष्ठ संबंध था इसलिए यह जरूरी था कि इनके आचरण और विचारों के आदर्श समान हों। उस समय भारत में बहुत बड़ी संख्या में विदेशी रहते थे इस बात की पुष्टि मेगस्थनीज के इस कथन से भी हो जाती है कि विदेशियों की देखरेख के लिए एक अलग विभाग—एक तरह का विदेश विभाग ही—था। पश्चिमी यूनानी देशों के इतिहास में ऐसा कोई प्रमाण सुरक्षित नहीं जिससे यह पता चल सके कि उक्त मिशनरियों ने वहाँ क्या-क्या काम किये किन्तु इससे हमें यह नहीं मान लेना चाहिए कि उन देशों में उन भारतीयों का स्वागत नहीं हुआ होगा जो अपने साथ शान्ति और सद्भावना के संदेश के अलावा मनुष्यों और पशुओं की चिकित्सा के लिए कुछ दवाइयां भी लाए थे। भारतीय मिशनरी वहाँ उनकी सेवा को गए थे, उन्हें किसी नए धर्म का उपदेश देने नहीं। उन्होंने यूनानियों से यह नहीं कहा था कि

(जारी)

विशाल और उदार होना ही चाहिए। इसीलिए वह प्रजा के इहलोक और परलोक दोनों बनाने का बीड़ा उठाता है।

लेखों में धर्म शब्द का प्रयोग दो अर्थों में हुआ है—(१) सामान्यतया उस विशाल अर्थ में जो सभी धर्मों को चाहे वे ब्राह्मण हों या बौद्ध स्वीकार्य हो। (२) कभी-कभी इसका प्रयोग बौद्ध धर्म के अर्थ में भी हुआ है जो भाब्रू लेख के प्रमाण से उसका निजी धर्म था।

१. जैसा स्वर्गीय डा० राइज डेविड्स ने अपनी पुस्तक बुद्धिस्ट इंडिया में किया है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

"हिन्दुओं के कहने से आप अपने देवताओं का परित्याग कर दें।" ये मिशनरी वहाँ सामाजिक सेवा के लिए गये थे न कि किसी तरह का धार्मिक प्रचार करने। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि पश्चिम की विचारधारा के कुछ अंगों[1] पर बौद्ध प्रभाव है जिनमें प्रमुख हैं 'विधर्मी ग्नोस्टिक संप्रदाय और ईसाई उपदेश के कतिपय अपेक्षाकृत अधिक परंपरानिष्ठ (Orthodox) अंश' (स्मिथ, अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया, तृतीय संस्करण, पृ० १८८)। यह ऐसे भारतीय मिशनरियों के ही कार्यों का परिणाम रहा है।[2]

---

१. उदाहरणार्थ : 'इसेंनेज' के संप्रदाय। एक समाज ईसाई धर्म से पहले यहूदियों में मृत सागर के तट पर वर्तमान था। दूसरा थेरापेंते। यह भी इसी से मिलता-जुलता संप्रदाय था जो सिकंदरिया के आसपास था। (दे० इन्साइक्लोपीडिया आफ रेलिजन एण्ड एथिक्स V, ४०१ और १२, ३१८-१९, भंडारकर कृत अशोक में पृ० १६५ पर उद्धृत)।

२. यहाँ न भूलने की बात यह है कि जहाँ अशोक पश्चिम के इन यूनानी राज्यों में शांति और सद्भावना के लिए दूत भेजता था, वहाँ उनके भी राजदूत मौर्य दरबार में रहते थे। ई० पू० ३०२ में सेल्यूकस से जो संधि हुई थी उसके अधीन अशोक के दादा चंद्रगुप्त के दरबार में प्रसिद्ध राजदूत मेगस्थनीज रहता था। इसके पूर्व मेगस्थनीज अराकोशिया में एक अधिकारी था। अशोक के पिता बिंदुसार के दरबार में एंटियोकस सोतर का दूसरा यूनानी दूत आया था जिसका नाम डेईमीकस था। अशोक के समकालीन मिस्र के राजा टालेमी फिलाडेल्फस (ई० पू० २८५-२४७)—चट्टान लेख १३ में इसका नाम तुरमायो दिया है—का दूत डायोनीसियस पाटलिपुत्र में रहता था। यह तीसरा यूनानी दूत था जो या तो स्वयं अशोक के दरबार में रहता था या उसके पिता बिंदुसार के।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अध्याय ५

अशोक के निर्माण कार्य

अब हम इस बात का विचार करेंगे कि निर्माता के रूप में अशोक कि महान् था। यदि उसके वास्तविक निर्माणों को देखें तो उसकी इस महत्ता किंचित अतिरंजना अवश्य हुई है। परंपराओं में वह एक महान् निर्माता के रूप चित्रित है जिसने अनेक नगर वसाये, स्तूपों, विहारों, प्रस्तर-स्तम्भों और उसके च ओर जंगलों का निर्माण कराया और उन स्तम्भों पर लेख खुदवाये और कलात मूर्तियाँ बनवायीं। दिव्यावदान (अध्याय २७) में इस बात का जिक्र है कि अशोक निर्माण की इच्छा क्यों जगी। अपने आचार्य उपगुप्त से वह कहता है कि "ि स्थानों पर भगवान बुद्ध ने निवास किया था, मैं उनके दर्शन को जाऊंगा, वहां प करूंगा और ऐसे निर्माण कराऊंगा जिनसे भावी संततियां भी लाभान्वित हों।" परंपरा की आंशिक पुष्टि अशोक के लेखों में उसकी कतिपय उक्तियों से हो जाती

परंपरा अशोक को दो नगरों का निर्माता बतलाती है। पहला नगर है नगर जो कश्मीर की राजधानी है। यहां उसने ५०० विहारों का निर्माण कराय और दूसरी इमारतें भी बनवाई थीं। जिनमें से कुछ का संबंध ब्राह्मण धर्म से कल्हण ने अपनी राजतरंगिणी (तरंग १, vv. १०१-७) में इस परंपरा को लि किया है। इसके पूर्व युवाङ् च्वाङ् ने इसके साथ ही एक बात और कही है "अशोक ने बौद्ध संघ के लाभार्थ समूचे कश्मीर का दान कर दिया था (वैटर्स अनुवाद, पृ० २६७)। युवाङ् च्वाङ् ने कश्मीर में अशोक के बनवाये १०० वि देखे थे। उसने 'अशोक के ४ स्तूप' भी देखे थे। अशोक ने दूसरा नगर नेपाल बनाया था। अशोक अपनी पुत्री चारुमती और उसके क्षत्रिय पति देवपाल के नेपाल गया था। वहां इस दम्पती ने बस जाने की इच्छा की। चारुमती ने वहां भिक्षुणी विहार और देवपाल ने एक भिक्षु विहार बनवाया था। राजकीय य के स्मरण में देव-पातन (देव-पत्तन) नाम का एक नगर बसाया गया था। अ द्वारा निर्मित चारों स्तूप अभी अपनी पुरानी शैली में वर्तमान हैं (सिलवां लेवी, नेपाल, कैंब्रिज हिस्ट्री, पृ० ५०१ पर उद्धृत)।

अशोक ने नगरों से अधिक स्तूप और विहार बनवाये थे। किंवदंतियों ये विहार पहाड़ों की चोटियों की तरह ऊंचे बने थे (स्तूपैर्विचित्रैर्गिरिशृङ्गकल्पैः दिव्या०)। महावंश में कथा आई है कि सम्राट ने एक बार अपने गुरु मोग्गलि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तिस्स से पूछा "भंते ! भगवान (बुद्ध) ने जिस धर्म का उपदेश किया है उसका विस्तार कितना है?" उत्तर में गुरु ने कहा था "धर्म में कुल ८४००० खंड हैं"। तब अशोक ने कहा था "तो हर खंड के लिए विहार बनवाकर मैं उनकी पूजा करूंगा"। इस प्रकार उसने ८४००० विहारों का निर्माण शुरू किया। उसके अधीन राजाओं ने समूचे देश में ८४००० नगरों का चयन किया (वही, v. ७८-८०) इनमें पाटलिपुत्र में अशोक-विहार का निर्माण तो स्वयं सम्राट ने कराया था। फाहियान ने यही कथा किंचित दूसरे ढंग से कही है। फाहियान के मत से अशोक ने ८ महास्तूपों को नष्ट करना चाहा था।[1] (बुद्ध की मृत्यु के वाद उसकी धातु के आठ भाग करके

---

१. अशोक ने भगवान बुद्ध की धातुओं का उपचार कैसे किया इसके बारे में अनेक कहानियां प्रचलित हैं। जैसा हम दिखला चुके हैं महापरिनिब्बान सुत्त के अनुसार मूल रूप में ये धातुएं आठ दावेदारों में विभाजित कर दी गई थीं। इन दावेदारों के बीच पंचायत करने वाले द्रोण ब्राह्मण को भगवान का धातु-पात्र मिला था जिसमें उनको दफनाया गया था। पिप्पलिवन के मोरिय विभाजन के वाद पहुंचे थे। इसलिए उन्हें चिता की भस्म से ही संतोष करना पड़ा था। सभी दस पक्षों ने अपने-अपने हिस्से पर स्तूप बनवाने का भी फैसला किया था। इनमें से एक स्तूप फाहियान ने देखा था जिसे वह 'कोयला-स्तूप' कहता है। युवाङ् च्वाङ् की भांति वह इस स्तूप की स्थिति पिप्पलिवन में नहीं अपितु कुशीनगर में बतलाता है। इसमें कोई शक नहीं कि बुद्ध-चरित इस भस्म-स्तूप की स्थिति मोरियों के पिप्पलिवन में नहीं अपितु मल्लों के कुशीनगर में ही बतलाता है। फाहियान ने अजातशत्रु के मूल स्तूप को भी राजगृह में देखा था। युवाङ् च्वाङ् ने द्रोण का स्तूप आरा के पास महाशाल में देखा था। इन सभी स्तूपों में अब तक मात्र एक स्तूप ही मिला है वह है शाक्यों का पिपरहवा का स्तूप जिसमें धातु-मंजूषा पर निम्नलिखित आशय का लेख अंकित हैं: "यह स्तूप तथागत बुद्ध की धातुओं का है जो उनके बांधव शाक्यों की अपनी बहनों, बच्चों और पत्नियों के सहयोग से बनाई सुकीर्ति (सुकिति) है।" पिपरहवा के स्तूप की सही पहचान और पुराने दसों स्तूपों के न मिलने का एक कारण यह बतलाया जाता है कि अशोक ने सात स्तूपों को खुलवाकर उनकी धातुएं निकलवा ली थीं और फिर उन्हें अपने स्तूपों में रखवा दिया था। यह कहानी काफी बाद की है और सबसे पहले दिव्यावदान में मिलती है। यह ग्रंथ अशोक के बहुत बाद रचित हुआ था। इसलिए इसकी कथा का ऐतिहासिक मूल्य कम है। इसके अलावा भी यह प्रकरण काफी संक्षिप्त और गूढ़ है। इनमें वदतोव्याघात भी है। फाहियान और बाद में बुद्धघोष की सुमंगल-विलासिनी में भी यही कथा दुहराई गई है पर इनमें विभाजन अशोक नहीं बल्कि अजातशत्रु द्वारा बतलाया गया है जो सबसे पहले अजातशत्रु आठ स्तूपों की धातुएं (रामग्राम की धातुओं को छोड़कर जिसकी रक्षा नाग करते थे) ग्रहण करता है। अजातशत्रु ने यह कदम महाकस्सप के कहने से उठाया था जिसे भगवान की धातुओं की सुरक्षा की चिन्ता थी। अजातशत्रु ने सभी धातुओं को फिर से गड्ड-मड्ड कर (बुद्ध की मृत्यु के बीस साल बाद, विगांडेट २,९७) जमीन के भीतर एक कक्ष बनवाकर उसमें रखवा दिया था। अशोक ने सात स्तूपों को खुलवाकर देखा। पर उसे कहीं पवित्र धातुएं नहीं मिलीं। फिर उसे यह सम्मिलित धातुएं मिलीं, उसने इन्हें ८४००० विहारों में—स्तूपों में नहीं—निक्षिप्त करा दिया। राइज डेविड्स (ज० रा० ए० सो० १९०१, पृ० ३९७) ने इस विषय का विमर्श करते हुए कहा है कि बुद्ध के समय से अशोक के समय तक कुल २९ आगमों की रचना हुई थी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आठ जातियों ने आपस में बांट लिए थे और उन पर स्तूप बनवाए थे। ये स्तूप वहीं थे)। इनके स्थान पर उसने ८४००० स्तूप बनवाने का निश्चय किया था। इसके पीछे यह सिद्धान्त था कि मनुष्य का शरीर ८४००० अणुओं से बना है (लेग्गे का अनुवाद, पृ० ६६)। पर पुरातत्त्व के प्रमाणों से हम कुछ ही स्तूपों और विहारों को अशोक द्वारा निर्मित कह सकते हैं। अशोक के लेखों में आये स्वयं उसके वचन से हमें ज्ञात होता है कि निग्लीव में उसने पूर्व बुद्ध कोणागमन के स्तूप का आकार दुगुना कराया था और बिहार में बरबर की पहाड़ियों में आजीविकों के लिए तीन गुफा निवास बनवाये थे। पुरातात्त्विक अनुमान है कि सांची के महास्तूप का निर्माण अशोक ने कराया होगा (इसी स्तूप के ऊपर उसके सौ वर्ष बाद दूसरा स्तूप बना होगा जो इस समय बाहर से दीखता है) और उसने ही भरहुत का स्तूप भी बनवाया होगा जिसमें पत्थर का खूब नक्काशीदार जंगला था जिस पर अशोककालीन लिपि में लेख खुदा है। भरहुत का स्तूप तो अब नहीं रहा पर उसका खूब नक्काशीदार जंगला बच रहा है जो इस समय भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता में सुरक्षित है। यहां ध्यान देने की बात यह है कि सातवीं सदी में भारत आने वाले यात्री युवाङ् च्वाङ् ने ८० से अधिक स्तूपों[1]

(जारी)

पर किसी भी आगम में अशोक के धातुओं के विभाजन के लिए स्तूपों के खुलवाने की इस कथा का वर्णन नहीं मिलता। महावस्तु के एक गतसंग छंद में स्तूपभेदको शब्द जरूर आया है जो उस व्यक्ति के लिए है जो स्तूपों का भेदन करता है। अशोक के लिए इस शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है (जनश्रुतियों के विस्तृत विवरण के लिए दे० ज० रा० ए० सो०, १९०६ में फ्लीट का लेख "दि कार्पोरियल रेलिक्स आफ बुद्ध")।

१. युवाङ् च्वाङ् ने अशोक के नीचे लिखे स्तूप देखे थे :

कपिस (काफिरिस्तान)—१ (जिसमें बुद्ध की धातुएं थीं); नगर (जलालाबाद)—२; उद्यान—१ (जहां शिवि राजा के रूप में उन्होंने बाज से कबूतर की रक्षा के लिए अपने शरीर के टुकड़े कर दिये थे); तक्षशिला—२ (एक उस जगह जहां बुद्ध ने अपने सिर का दान कर दिया था और दूसरा वहां जहां विमाता के षड्यंत्र से कुणाल की आंखें निकलवा ली गई थीं); सिंहपुर—३ (इनमें एक उस स्थान पर था जहां बुद्ध ने भूखी बाघिन को अपना शरीर भोजन के लिए दे दिया था); उरस—१; कश्मीर—४ (इनमें बुद्ध की धातुएं थीं); स्थाणीश्वर—१; श्रुघ्न—१; गोविसन—१ (जहां बुद्ध ने उपदेश किया था); अहिच्छत्र—१; पिलोसन्न—१; कन्नौज—२ (जहां भगवान ने उपदेश दिए थे); हयमुख—१ (जहां बुद्ध ने उपदेश किया था); प्रयाग—१ (जहां बुद्ध ने अपने प्रतिद्वन्द्वियों को शास्त्रार्थ में पराजित किया था); कोसांबी—३ (जहां बुद्ध ने उपदेश किए थे); श्रावस्ती—१ (जहां धातुएं रखी थीं); कपिलवस्तु—३ (एक जहां भगवान का जन्म हुआ था, दूसरा वहां जहां उनका जातकर्म हुआ था और तीसरा वहां जहां संबोधि प्राप्त करने के बाद उन्होंने अपने पिता को उपदेश दिया था); रामग्राम—३ (उन स्थानों पर जहां महाभिनिष्क्रमण के समय भगवान ने अपने केश काटे और जहां से उन्होंने अपने सारथि छंदक को वापस भेजा था); कुशीनगर—२ (दूसरा वहां था जहां बुद्ध की धातुओं का आठ राजाओं में विभाजन हुआ था); सारनाथ—२; गाजीपुर—१ (जहां भगवान ने उपदेश

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और विहारों[1] का उल्लेख किया है जिनके बारे में प्रसिद्धि थी कि उनका निर्माण अशोक ने कराया था। इनके अतिरिक्त कश्मीर में ५०० और इसी तरह अन्य स्थानों में भी बड़ी संख्या में ऐसे विहार वर्तमान थे जिनके बारे में धुंधली किंवदंतियां थीं कि उनका निर्माण भी उसी ने कराया था। युवाङ् च्वाङ् ने वैशाली के उत्तर-पश्चिम में एक स्तूप देखा था। यह उस स्थान पर बना था जहां भगवान बुद्ध अपने पूर्व जन्म में चक्रवर्ती राजा के रूप में राज करते थे। केसरिया में यह स्तूप आज भी वर्तमान है। इसे हम "राज-केसरी" का स्तूप कह सकते हैं।

अशोक ने अनेक स्तंभ भी बनवाए थे। ये स्तंभ एक ही पत्थर के बने हैं। इनमें से कुछ स्तंभ अभी बच रहे हैं जिनके बारे में हम निश्चय से कह सकते हैं कि वे अशोक ने ही बनवाए थे। फाह्यान ने केवल छह स्तंभ देखे थे जिनमें से दो श्रावस्ती स्थित जैतवन विहार के द्वार के दोनों ओर खड़े थे। इनमें से एक के सिर पर 'धर्मचक्र' था और दूसरे के सिर पर वृषभ। एक स्तम्भ संकास्य में था "जो ५० हाथ ऊंचा था और उसके सिर पर सिंह की आकृति थी।" इसमें चारों ओर चार ताखे बने थे जिनमें बुद्ध की चार चमकती हुई मूर्तियां थीं। चौथा स्तम्भ कुशीनगर से वैशाली के रास्ते पर था। इस पर लेख भी खुदा था।[2] पांचवां स्तंभ पाटलिपुत्र में था जिसका वर्णन

(जारी)

किया था और उसमें उनकी धातुएं भी रखी थीं); महाशाल (आरा के पास)—२ (दूसरा उस स्थान पर था जहां ब्राह्मण द्रोण ने अपने हिस्से की धातुएं और धातु-पात्र पर स्तूप बनवाया था, इसे कुंभ स्तूप भी कहते थे); वैशाली—२; वज्जि—१ (जहां बुद्ध ने उपदेश किया था); गया—१ (जहां बुद्ध ने रत्नमेघ सूत्र का उपदेश किया था); बोधगया—१ (उस स्थान पर जहां बुद्ध भगवान को घसियारे ने घास का आसन बनाया था); पाटलिपुत्र—१ (धातुओं के लिए); राजगृह—२; नालंदा के पास—३ (इनमें से एक उस स्थान पर था जहां मोग्गलिपुत्त का जन्म और निर्वाण हुआ था और दूसरा वहां था जहां भगवान ने उपदेश किए थे); ताम्रलिप्ति—१; कर्णसुवर्ण—अनेक (जहां भगवान ने उपदेश किए थे); उड़ीसा—दस से अधिक स्थानों पर जहां भगवान ने उपदेश किए थे; दक्षिण कोसल —१ (जहां बुद्ध ने तीर्थिकों को शास्त्रार्थ में पराजित किया था); चोल देश—१; द्रविड़ और कांची—अनेक; महाराष्ट्र—५; वलभी—अनेक; पोफातो (मुलतान के पास)—४; अफंत (सिंध में)—१; सिंध में दसों स्तूप उन स्थानों पर थे जहां भगवान ने विहार किए थे।"

१. युवाङ् च्वाङ् लिखित जनश्रुतियों के अनुसार पाटलिपुत्र का अशोकाराम या कुक्कुटाराम इतना विशाल था कि उसमें १००० भिक्षु बैठ सकते थे। अन्य प्रमाणों (वॅटर्स २, ९८) के अनुसार वहां अशोक के पहले 'पंचवार्षिक भिक्षु-सम्मेलन' में ३,००,००० भिक्षु एकत्र हुए थे।

२. कुशीनगर से १२ योजन दूर दक्षिण-पूर्व में और वैशाली से १० योजन दूर (लेग्गे, पृ० ७१, ७२)। फाह्यान के योजन का विस्तार साढ़े चार या ५ से ७ या इससे भी अधिक मील माना गया है। पाटलिपुत्र से वैशाली होते हुए जो राजपथ कपिलवस्तु और कुशीनारा जाता है उस पर अशोक के कम से कम पांच स्तंभ पड़ते हैं, अतः इस स्तंभ के बारे में मैं तो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ऊपर आ गया है। इस पर भी लेख खुदा था। छठा स्तम्भ भी उसी इलाके में था। यह "३० फुट से अधिक ऊंचा था और इसके सिर पर सिंह की आकृति थी" (वही पृ० ८०)।

युवाङ् च्वाङ् ने पन्द्रह स्तम्भ देखे थे जिनमें से चार या पांच की पहचान वर्तमान स्तम्भों से की जा सकती है। इनके अलावा भी कुछ स्तम्भ थे जिनका ज्ञान इन दोनों चीनी यात्रियों को नहीं हो पाया था। युवाङ् च्वाङ् ने नीचे लिखी जगहों में ये स्तम्भ देखे थे।

(१) संकिसा का स्तंभ—"चमकीले बैंगनी रंग का था जिसके सिर पर सिंह की आकृति बनी थी। यह स्तम्भ फाहियान ने भी देखा था। इसके पार्श्व में विलक्षण आकृतियां उकेरी गई थीं"[१] (वैटर्स i, ३३४)।

(२) और (३)—श्रावस्ती में जैतवन विहार के दरवाजे के दोनों ओर दो स्तम्भ थे इनमें एक के सिर पर धर्मचक्र था और दूसरे के सिर पर वृषभ (जैसी

(जारी)

यह भी कहना चाहता हूँ कि यह भी अशोक का ही स्तंभ रहा होगा यद्यपि फाहियान ने इसे कहीं अशोक का नहीं बतलाया है। यह वही स्तंभ रहा होगा जिसे हम लौरिया-अरराज स्तंभ कहते हैं जिस पर अशोक के प्रथम छह स्तंभ लेख खुदे हैं। फाहियान ने भी कहा है कि इस पर लेख खुदे थे जिन्हें वह पढ़ न सका न उनके अर्थ ही समझ सका। उसने इनके बारे में स्थानीय लोगों के कथन पर विश्वास कर लिया था। इन लोगों ने उसे बतलाया था कि परिनिर्वाण के समय लिच्छवि भगवान का साथ छोड़ने को तैयार न थे, तो भगवान ने उन्हें समझा-बुझाकर वापस भेजा था। यह लेख उसी घटना का वर्णन करता है। जैसा कि हम आगे दिखाएंगे युवाङ् च्वाङ् ने भी अशोक के स्तंभ लेखों के विषय के बारे में गलत अनुमान लिपिबद्ध किए हैं।

१. कनिंघम ने फर्रुखाबाद जिले में संकिसा में एक स्तंभ खोजा था जो बड़ा सुघड़ था। इसके सिर पर एक हाथी है जिसकी सूंड और पूंछ गायब है (दे० फलक ६)। कनिंघम का अनुमान था कि यह वही स्तंभ है जिसे फाहियान ने यहां देखा था। उसने भूल से हाथी के स्थान पर सिंह समझ लिया। किन्तु आश्चर्य है कि युवाङ् च्वाङ् जैसे तीक्ष्ण पारखी से भी यही भूल कैसे हुई होगी। युवाङ् च्वाङ् ने भी वहां एक बैठे सिंह की मूर्ति देखने की बात लिपिबद्ध की है। कनिंघम के मत से आज के संकिसा गांव की पहचान प्राचीन संकाश्य से करनी चाहिए (दे० आ० स० रि० १, २७४)। कनिंघम के इन दोनों ही अनुमानों का स्मिथ ने कड़ा विरोध किया है (वैटर्स २, ३३८)। स्मिथ की राय है कि "संकिसा का 'हाथी-शीर्ष' वाला स्तंभ वह स्तंभ नहीं है जिसे युवाङ् च्वाङ् ने कपिथा (यानी संकाश्य) में देखा था जिसके सिर पर शेर था। मैं नहीं समझता कि कनिंघम की यह पहचान सही है कि फर्रुखाबाद जिले का संकिसा गांव कपिथा या संकाश्य है"। स्मिथ की राय में संकाश्य को एटा जिले के उत्तर-पूरब में कहीं होना चाहिए।

यहां बतलाने की बात यह भी है कि युवाङ् च्वाङ् को हाथी और शेर की पहचान थी। उसने ऐसे वर्णन भी किए हैं कि किस स्तंभ पर हाथी है और किस पर शेर है जैसे उसने राजगृह के स्तंभ के सिर पर हाथी की मूर्ति होने की बात लिखी है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सूचना फाहियान भी देता है) और दोनों ७० फुट ऊंचे थे (वही i ३८३)।

(४) कपिलवस्तु के पास पूर्व बुद्ध क्रकुछंद की स्मृति में एक स्तम्भ स्थापित किया गया था जिसके "सिर पर सिंह की मूर्ति थी और पार्श्वों में उनके महापरिनिर्वाण की कथा है"। यह ३० फुट से ऊंचा था (वही ii ५)।

(५) कपिलवस्तु के पास पूर्व बुद्ध कनकमुनि की स्मृति में एक स्तंभ था जिसके "सिर पर सिंह की आकृति बनी थी और पार्श्वों में इस बुद्ध के महा परिनिर्वाण के विषय में कथा लिखी है"। बीस फुट से ऊंचा था (वही ii ६)।

यह संभवतः वही स्तम्भ है जो निग्लीव में मिला है। इस पर बुद्ध के महा परिनिर्वाण के दृश्य तो नहीं हैं पर अशोक का एक लेख अवश्य है जिसमें कहा गया है कि उसने कनकमुनि के स्तूप का आकार दुगुना कराया था और उनकी पूजा की थी। इसमें कनकमुनि की धातुएं रखी हुई थीं यह बात युवाङ् च्वाङ् के ध्यान में भी आई थी। संभावना यही है कि उक्त लेख युवाङ् च्वाङ् पढ़ नहीं सका था और न वहाँ के लोग ही इसका अर्थ बतला सके थे जिनका यात्री ने भरोसा किया था।

(६) लुंबिनी का स्तम्भ (लुंबिनी का आधुनिक नाम रुम्मिनदेई है। यह नेपाल में है और बस्ती जिले के दुल्हा नामक स्थान से ६ मील पर है)। "इसके सिर पर घोड़े की आकृति थी"। युवाङ् च्वाङ् ने जब यह स्तम्भ देखा था तो उस समय वह बिजली गिरने से बीच से टूटकर जमीन पर गिर चुका था (वही ii १४)। पी० सी० मुखर्जी ने सबसे पहले इसकी खोज की थी। वे लिखते हैं "इसका ऊपरी हिस्सा नहीं है। जितना हिस्सा बच रहा है उसका सिरा बीच से चटक गया है। दरार की रेखा बीच तक चली आई है इसका शीर्ष अन्यत्र की ही भांति घंटे की आकृति का था जिसका आधार दो हिस्सों में टूटा है और सुरक्षित है"। पर अश्व-शीर्ष का अभी तक पता नहीं चल पाया है। युवाङ् च्वाङ् स्तम्भ का लेख नहीं पढ़ सका था। फाहियान ने कहा है कि इस स्तम्भ पर बुद्ध के जन्म की कथा लिखी है, पर यह बात भी सही नहीं है।

(७) कुशीनारा का स्तम्भ "जिस पर बुद्ध के परिनिर्वाण की कथा अंकित थी (वही ii २८)। इसका पता अभी तक नहीं चला है।

(८) कुशीनारा में ही एक दूसरा स्तम्भ जिस पर बुद्ध की धातुओं के ८ क्षत्रिय गणों में विभाजन की कथा लिखी थी (वही ii ४२)। यह स्तम्भ भी अभी तक नहीं मिला है।

(९) सारनाथ के रास्ते पर का स्तम्भ "यह आपदार हरे रंग का, साफ-सुथरा और शीशे की तरह चमकता था। इस पर बुद्ध की परछाई हमेशा दीखती थी" (वही ii ४८)। विंसेंट स्मिथ ने इस स्तम्भ की पहचान बनारस के लाट भैरो से की है। १९०८ के एक दंगे में इसे नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(१०) सारनाथ का स्तम्भ "करीब ७० फुट ऊंचा"[1] है जिसमें जेड की मुलायमियत है और जिसकी चमक से आँख चौंधिया जाती हैं। वह उस स्थान पर खड़ा है जहाँ संबोधि के बाद तथागत ने धर्म-चक्र-प्रवर्तन किया था अर्थात् अपना पहला उपदेश दिया था (वही ii ५०)। इस स्तम्भ की खोज की जा चुकी है और उस पर का लेख भी पढ़ा जा चुका है। इसके सिर पर चार सिंहों की मूर्तियां हैं जिनके लिए यह उचित ही विख्यात है।

(११) एक स्तम्भ जिसके "सिर पर सिंह था"। यह महाशल के अशोक के स्तूप के सामने खड़ा था। इस पर एक लेख था जिसमें यह लिखा था कि "कि यहां भगवान बुद्ध ने कई नरभक्षी राक्षसों को पराजित किया और उन्हें सद्धर्म में दीक्षित किया" (वही ii ६०)।

(१२) वैशाली का स्तम्भ "करीब ५० फुट ऊंचा, जिसके सिर पर एक सिंह है" (वही ii ६५)। कनिंघम ने (आ० स० रि० i ६०) बखरा गांव के पास मिले बिना लेख वाले स्तम्भ से इसकी पहचान की है। ध्यान देने की बात है कि यह स्तम्भ वस्तुतः कोलुहा (प्राचीन नाम कोल्लाग) गाँव में मिला था जो कि वैशाली (आधुनिक बसाढ़) के पुराने खंडहरों के पास है। ज्ञातव्य है कि उस समय यह स्थान जैन धर्म के प्रवर्तक वर्धमान महावीर के जन्म-स्थान के रूप में प्रसिद्ध था (आ० स० रि० १९०३-४, पृ० ८८)। इससे इस बात का खुलासा हो जाता है कि यह स्तम्भ यहाँ क्यों लगाया गया होगा। इसलिए हम बखरा स्तम्भ को कोलुहा स्तम्भ कह सकते हैं।

(१३) पाटलिपुत्र का स्तम्भ "३० फुट ऊंचा था और इस पर लेख था जो काफी क्षत-विक्षत था"। इस लेख का जो आशय युवाङ् च्वाङ् ने दिया है वही फाहियान ने दिया था (वही ii ९३)। इस स्तम्भ के टुकड़े मिले हैं।

(१४) पाटलिपुत्र का दूसरा स्तम्भ "कई दहाई फुट ऊंचा" है। यह उस जगह है जहाँ अशोक ने नरक या जेल बनवाया था (वही ii ८८)।

(१५) राजगृह का स्तम्भ[2] "५० फुट ऊंचा है और इसके सिर पर हाथी की मूर्ति है और एक लेख है" (वही ii १६२)।

अभी तक तथाकथित अशोक के स्तम्भ टोपरा, मेरठ (इन दोनों स्तम्भों

---

१. इसकी ऊंचाई के बारे में युवाङ् च्वाङ् ने अतिरंजना की है। हां, यदि उसने किसी दूसरे स्तंभ का वर्णन किया हो तो बात दूसरी है। सारनाथ के स्तंभ की ऊँचाई जमीन से ३७ फुट है।

२. राजगृह आने से पहले निरंजन नदी के पार बोधि-वृक्ष के पूर्व में युवाङ् च्वाङ् ने दो स्तंभ देखे थे, एक वहाँ था "जहाँ बुद्ध काश्यप समाधि में बैठे थे" और दूसरे का संबंध तीर्थिकों से था (वैटर्स, २, १४१)। युवाङ् च्वाङ् इन स्तंभों का संबंध अशोक से नहीं जोड़ता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

को सुल्तान फिरोज तुगलक सन् १३५६ ई० में दिल्ली ले गया), प्रयाग (संभवतः कौशांबी से सम्राट अकबर इसे प्रयाग लाया),[1] लौरिया-अरराज, लौरिया-नंदनगढ़ (जिसके सिर पर सिंह है), रामपुरवा (घन्टे के ऊपर सिंह), सांची (चार सिंह शीर्ष पर हैं), सारनाथ (चार सिंह शीर्ष पर हैं), रुम्मिनदेई (घंटे का सिर) और निग्लीव में मिल चुके हैं। ये दसों स्तम्भ अशोक के कहे जाते हैं क्योंकि उन पर उसके लेख हैं। पर यह जरूरी नहीं कि ये सभी अशोक के ही हों। उसके ही शब्द ऐसे निष्कर्ष के विरुद्ध हैं। लघु चट्टान लेख १ (रूपनाथ) में कहा गया है कि "जहाँ-जहाँ मेरे राज्य में पत्थर के स्तम्भ हैं, ऊपर लेख लिखे जाने चाहियें" उसके अन्तिम लेख (स्तम्भ लेख ७) के अन्तिम शब्द यों हैं "जहाँ-जहाँ पत्थर के स्तम्भ या पत्थर की शिलाएं हों ये धर्मलेख खुदवाए जाएं ताकि वे चिरस्थायी हों"। अशोक की एक बहुत बड़ी विशेषता यह रही है कि उसने अपने पूर्ववर्तियों के कार्यों से अपने कार्यों को पृथक् करने में बड़ी ईमानदारी दिखलाई है। इस प्रकार वह यह नहीं कहता कि जिन स्तम्भों पर उसके लेख खुदे हैं उन सबको उसने बनवाया था। इनमें से कुछ तो उसके राज्य में पहले से वर्तमान थे। शायद उसके पूर्ववर्ती राजाओं ने बनवाये थे।[2] अशोक ने ऐसे सभी स्तम्भों का इस्तेमाल नहीं किया।

---

१. अभी हाल ही में कोसम (कौशांबी) में एक अशोक-स्तंभ मिला है जिस पर कोई लेख नहीं है और सिरे पर कोई मूर्ति भी नहीं है किन्तु इस पर खास मौर्यकालीन पालिश है (आ० स० रि० १९२२-२३, पृ० १३)। इससे पहले भी तीन ऐसे स्तंभ मिल चुके हैं जिन पर कोई लेख नहीं है पर उन्हें अशोक का मानते हैं। वे हैं, बखरा (वैशाली), रामपुरवा (सांड शीर्ष वाला) और संकिसा का (हाथी शीर्ष वाला) स्तंभ।

२. अशोक से पहले भी स्तंभ वर्तमान थे, इस तथ्य की ओर विद्वानों का ध्यान नहीं गया है। युवाङ् च्वाङ् ने इस विषय पर कुछ प्रकाश अवश्य डाला था। उसने कुछ स्तंभों के बारे में स्पष्ट कहा है कि वे अशोक के बनवाए हुए थे पर शेष के बारे में वह मौन है। जैसे ऊपर स्तंभों की जो सूची दी है उसमें से १ से ६ और १३ के बारे में वह साफ-साफ कहता है कि ये अशोक ने बनवाए थे पर ७ से १२ और १५ के बारे में वह सिर्फ इतना ही कहता है कि वे स्तूपों के सामने खड़े थे और सं० १४ का स्तंभ वहाँ है जहाँ कभी अशोक का नरक था। जैसा हमने ऊपर बतलाया है युवाङ् च्वाङ् जब बोधगया से राजगृह जा रहा था तो उसने दो स्तंभ रास्ते में देखे थे। ये स्तंभ अशोक से पहले के हो सकते हैं। कनिंघम ने बोधगया के पास बकरोर में एक स्तंभ खोजा था। इसके दो ठूंठ खड़े थे और मुख्य दंड का हिस्सा जमीन से १६ फुट ऊंचा था। यह स्तंभ बलुए पत्थर की ईंटों से बना था जिनका आकार १५$\frac{1}{2}$ × १०$\frac{1}{4}$ × ३$\frac{1}{2}$ इंच था। अशोककालीन ईंटों का मानक आकार १६" × १०" × ३" है। मुख्य दंड गया भेज दिया गया था (आ० स० रि० i, १२)। यह स्तंभ अशोक से पूर्व का रहा होगा। कनिंघम ने ऐसे ही दो बिना लेखों वाले स्तंभ भी देखे थे एक तक्षशिला में और दूसरा मन्तीपुर के पास लठिया में जिसके सिरे पर आठ सिंह थे। उसने छह अन्य स्तंभों के शीर्ष संकिसा, भिलसा, सांची और उदयगिरि (भुवनेश्वर के पस) में पड़े हुए देखे थे (कार्पस, पृ० ३)। इस सिलसिले में एक अनुमान यह भी है कि भितरी का वह प्रसिद्ध स्तंभ भी जिस पर स्कंदगुप्त का लेख है, शायद मूलतः मौर्यकालीन ही है क्योंकि इसके कुछ निशान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जैसे रामपुरवा में दो में से एक स्तम्भ पर उसने कोई लेख नहीं खुदवाया। क्योंकि एक स्तम्भ ही उसके लेख के लिए काफी था। पर इस बात का कोई प्रमाण अभी नहीं मिला है कि अशोक से पहले क्यों और किसने इन स्तम्भों का निर्माण कराया था।

जहाँ तक स्तूपों का प्रश्न है इनका भी श्रीगणेश अशोक के हाथों नहीं हुआ था। उदाहरण के लिए जैसा निग्लीव के स्तम्भ लेख में कहा गया है "उसने बुद्ध कोणकमन के स्तूप का आकार दुगुना कराया था।" इससे यही सिद्ध होता है कि मूल स्तूप अशोक ने नहीं बनवाया था।

इस स्मारकों का स्थान बतलाने के बाद अब इनके ढांचे और इनकी मुख्य विशेषताओं का वर्णन दिया जा सकता है।

स्तूपों में सांची का स्तूप जिस रूप में आज वर्तमान है वह पूरे गोले का एक खंड मात्र है। इसकी असली ऊँचाई ७७½ फुट रही होगी। आधार का व्यास ११० फुट है। इसका मूल अशोक ने बनवाया था। अशोक के स्तूप का आकार कुछ छोटा ही था। वह ईंटों से बना था। अशोक ने भरहुत में भी ईंटों का एक स्तूप बनवाया था जिसका वृत्त करीब ६८ फुट था।

ईंटों के मौर्यकालीन निर्माणों की पहचान उन ईंटों के आकार से की जाती है, पर पुरातत्त्व की दृष्टि से कालक्रम का यह निष्कर्ष कतई विश्वसनीय नहीं है। प्राचीन स्तर में कई आकार की ईंटें मिलती हैं। इसी प्रकार जिन निर्माणों के बारे में यह निश्चित है कि ये पहले के स्तर की हैं और ये बाद के उनमें भी कई आकार की ईंटें मिलती हैं। भिटा में मौर्यकाल की सतहों से १६½ × १२¼ × २½ इं० और १७½ × ११¾ × २¾ इं० की ईंटें मिली हैं। मथुरा में गणेश टीला की ईंटें १३½ × १०¼ × ३ इं० की और कटरा में ११ × ८½ × २⅓ इं० की हैं। सारनाथ में अशोक-स्तम्भ के चबूतरे में लगी ईंटों का आकार १६¾ × ११ × २¾ इं० पर अन्य स्थानों में ये १५½ × ६½ × २½ से ८ × ६½ × २½ इं० के बीच हैं। आधार में लगी ईंटें सबसे बड़ी होती हैं। भितरगांव के मंदिर का निर्माण काफी बाद में हुआ था। पर इसमें लगी ईंटें मौर्यकालीन ईंटों की तरह बड़ी हैं। इसमें १८ × ९ × ३ इं० की ईंटें मिली हैं। इसलिए किसी इमारत की ईंटों के आकार से उसके काल का निश्चित निर्धारण नहीं हो सकता।

(जारी)
मौर्य युग के हैं, जैसे, इसका लम्बाई लिए बलुआ पत्थर, इसका शीर्ष जो ३ फुट २ इंच ऊंचा है, अशोक के स्तंभों की ही भांति घंटानुमा है और बैंत की तरह मुड़ा है। उसका नीचे का चौकोर पीढ़ा जिस पर दंड खड़ा है उसी समय का लगता है। जहाँ यह स्तंभ है उससे भी संदेह होता है। यह जगह बनारस और गाजीपुर के राजमार्ग पर है जिस रास्ते से युवाङ् च्वाङ् गया था। इस बात की भी नजीर है कि गुप्त राजाओं ने अशोक के स्तंभों का उपयोग अपने लेख खुदाने के लिए किया था। प्रयाग में समुद्रगुप्त की प्रशस्ति अशोक के स्तंभ पर खुदी है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जहां तक गुफावासों का प्रश्न है इनकी संख्या ७ है। ये गया के पास बरबर और नागार्जुनी पहाड़ियों में कड़े ऊष्म-सह साइनाइट ग्रेनाइट पत्थरों को काटकर बनाई गई हैं। इनमें से तीन में अशोक के पोते दशरथ के लेख खुदे हैं। नागार्जुनी पहाड़ी में हैं। इनमें जो सबसे बड़ी गुफ़ा है उसका नाम गोपिका गुफा है। इसके दोनों किनारे अर्ध-वृत्ताकार हैं। इसकी लम्बाई ४० फुट ५ इंच है और चौड़ाई है १७ फुट २ इंच और ऊंचाई ६ फुट ६ इंच है। इसके ऊपर ४ फुट की पीपानुमा छत है। अशोक के नाम से जुड़ी गुफाओं की संख्या भी तीन है और ये बरबर की पहाड़ी में हैं। इनमें अशोक के लेख भी हैं। इनमें पहली गुफा का नाम कर्ण चौपड़ गुफा है। इसका एक सीधा-सादा आयताकार हाल है। इसकी लम्बाई ३३ फुट ६ इंच और चौड़ाई १४ फुट और ऊंचाई ६ फुट १ इंच है जिसके ऊपर ४ फुट ८ इंच की पीपानुमा छत है। दूसरी गुफा का नाम सुदामा गुफा है जिसमें एक बाहरी और एक भीतरी कक्ष है। भीतरी कक्ष वृत्ताकार है, छत में गोलार्ध गुंबद। बाहरी कक्ष आयतरूप है जिसकी लम्बाई ३२ फुट ६ इं०, चौड़ाई १९ फुट ६ इं० और दीवारें ६ फुट ९ इं० ऊँची हैं जिस पर ५ फुट ६ इं० की एक पीपानुमा छत है। तीसरी गुफा को लोमश ऋषि गुफा कहते हैं। इसमें अशोक का कोई लेख नहीं है। एक लेख मौखरी राजा अनन्तवर्मन का अवश्य है जो काफी बाद में हुआ था। चौथी गुफा का नाम विश्वझोंपड़ी (विश्वामित्र) गुफा है इसमें भी दो कक्ष हैं। पर इसका काम पूरा नहीं हो पाया है। बाहरी कक्ष बरामदा अधिक लगता है न कि कक्ष।

इन सभी गुफाओं को मौर्यकालीन कहा जाता है क्योंकि इनकी दीवारों और छतों में खूब चमकती पालिश है जो मौर्यकाल की विशेषता है। लेखों वाली सभी गुफाएं आजीविकों को दान में दी गई हैं। ध्यान देने की बात है कि युवाङ् च्वाङ् ने लिखा है कि "अशोक ने अपने गुरु उपगुप्त और अन्य अर्हतों को दसों गुफाएं पाटलिपुत्र में दान में दी थीं।" (वैटर्स ii ९५), पर इनका पता अभी तक नहीं लग पाया है।

स्तम्भ—ललितकला के क्षेत्र में ये स्तम्भ मौर्यकाल के कीर्तिमान माने जाते हैं। ये स्तम्भ गोल हैं और एक ही पत्थर के बने हैं। इनकी गोलाई नीचे से ऊपर को बराबर कम होती गई है। इनके आधार का वृत्त ३५½ इं० से ४९½ इं० है। ऊंचाई ४० फुट से ५० फुट है। ऊपर का वृत्त २२ इं० से ३५ इं० तक है।[1] स्तम्भों का शीर्ष प्रायः घंटानुमा है। हेवेल इसे कमल की आकृति मानता है, "आकाश का नीलकमल, विष्णु का पुष्प" (आर्यन रूल, पृ० १०६)। इसके ऊपर एक फलक (एबकस) है और सबसे ऊपर कोई पूर्ण आकृति की मूर्ति। सबसे अच्छी दशा में मिले स्तम्भों में

१. दिल्ली-टोपरा स्तंभ ४२ फुट ७ इंच ऊंचा, लौरिया-अरराज स्तम्भ जमीन से ३६½ फुट ऊँचा, लौरिया-नंदनगढ़ ३२ फुट ९½ इंच व इसका शीर्ष ६ फुट १० इंच ऊंचा, रामपुरवा स्तम्भ ४४ फुट ९½ इंच, इलाहाबाद कोसम स्तम्भ ४२ फुट ७ इंच ऊंचा, सारनाथ स्तम्भ जमीन से ३७ फुट और रुम्मिनदेई का स्तम्भ २१ फुट ऊंचा है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एक लौरिया-नन्दनगढ़ का स्तम्भ है जिसके ऊपर सिंह की मूर्ति है। फलक में दाना चुगते हंसों की पंक्ति है। बुद्ध को 'हंसपाल' भी कहते थे। कोलुहा (वखरा) और रामपुरवा के स्तम्भों के शीर्षों पर भी अकेले सिंह की मूर्ति है। सांची और सारनाथ के स्तम्भों के शीर्षों पर चार सिंह पीठ से पीठ सटाए दिखाई पड़ते हैं। संकिसा के स्तम्भ शीर्ष पर हाथी की और रामपुरवा के स्तम्भ शीर्ष पर वैल की मूर्ति थी। विसेंट स्मिथ के मत से लौरिया-अरराज के स्तम्भ शीर्ष पर गरुड़ की मूर्ति थी। पर मैंने वहां जो पूछताछ की उससे मेरा यह दृढ मत बना है कि यह मूर्ति अकेले सिंह की थी। यहां ध्यान देने की बात यह है कि फाहियान और युवाङ् च्वाङ् ने संकिसा, कपिलवस्तु के दोनों स्तम्भों, महाशाल, वैशाली (वखरा ?) और पाटलिपुत्र के स्तंभों पर सिंह, श्रावस्ती में धर्मचक्र और वृषभ, लुंबिनी में अश्व और राजगृह में गज की मूर्तियां देखी थीं।[1] इस स्तम्भों के वारे में अगली ध्यान देने की बात उनके फलकों का अलंकरण है। इनमें कभी कमल और मधुमक्खी का छत्ता, या कभी धर्मचक्र और पशुओं की आकृतियां एक दूसरे के वाद उकेरी गई हैं। सारनाथ के स्तम्भ का अलंकरण निराला है। इसके शीर्ष पर चार सिंह पीठ से पीठ सटाए खड़े हैं। इनके ऊपर वीच में एक वहुत वड़ा धर्मचक्र रहा होगा जिसके टुकड़े ही मिले हैं। ये सिंह भी एक ढोल पर खड़े हैं[2] जिन पर चार जानवरों की मूर्तियां खोदी गई हैं वे हैं, सिंह,

---

१. मनोरंजक वात यह है कि अशोक के स्तम्भों की नकलें वाद में हुई थीं। उदाहरण के लिए ये नकलें सांची और भरहुत की उभरी मूर्तियों और मूर्तियों में मिलती हैं। ये नकलें स्तम्भ शीर्षों की हैं जैसे चार सिंह पीठ से पीठ सटाए, चार हाथी पीठ से पीठ सटाए जिन पर सवार भी हैं, चार वौने, तीन हाथी, १६ अरों का चक्का, दो सिंहों के वीच एक हाथी या दो घोड़ों के रथ में दो व्यक्ति आदि में मिलती हैं। कनिंघम ने सांची में ऐसे चालीस स्तम्भ देखे थे। सबसे अच्छा और सुन्दर स्तम्भ वह है जिसके सिर पर एक मनुष्य की आकृति है। कनिंघम इस आकृति की पहचान स्वयं अशोक से करता है। यह स्तम्भ ४१ फुट ऊंचा और इस पर खूब चिकनी पालिश भी है। कुछ स्तम्भ और भी हैं जिन पर 'झूठे शीर्ष' हैं जिन पर वकरों, घोड़ों, सांडों, ऊंटों, हाथियों और सिंहों की मूर्तियां हैं। भरहुत की उभरी मूर्तियों में तीन स्तम्भ मिलते हैं जिन पर पर्सीपोलिस का घंटा शीर्ष है और ऊपर (१) हाथी (ब्लाख इसे टिपिकल अशोक-स्तम्भ मानता है) (आ० स० रि० १९०८-९, पृ० १४४), (२) तीन सिंह और (३) गरुड़ हैं—दे० फलक १०।

२. ध्यान देने की वात यह है कि अव तक जितने अशोक-स्तम्भ मिले हैं या युवाङ् च्वाङ् ने देखे थे उन सबके सिरों पर पशुओं की आकृतियां हैं। अशोक ने इन पशुओं को क्यों चुना इसका कारण शायद यह है कि ये परंपरा में चारों दिशाओं के रक्षक माने जाते हैं, हाथी पूरव दिशा का, अश्व दक्षिण का, सांड पश्चिम का और सिंह उत्तर का। इस प्रकार सारनाथ स्तम्भ में चारों पशुओं का अंकन यह दिखलाता है कि धर्म की घोषणा चारों दिशाओं में की गई है। जहां तक सिंह का प्रश्न है अशोक ने इसका अंकन वुद्ध के लिए भी कराया होगा (दे० विसेंट स्मिथ—हिस्ट्री आफ फाइन आर्ट इन इंडिया एंड सीलोन, पृ० ६०)। फुशर के मतानुसार (विगिनिंग्स आफ वुद्धिस्ट आर्ट) सांड (वृषभ) भी वुद्ध का ही प्रतीक है, यह वैशाख पूर्णिमा का जिस दिन वुद्ध का जन्म माना जाता है अवतार है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गज, वृषभ और अश्व। इन जानवरों के बीच में चार धर्मचक्र बने हैं। जान मार्शल का इनके बारे में विचार है कि "शैली और शिल्प दोनों दृष्टियों से नायाब सर्वोत्तम नक्काशी है जो भारत में कभी बनी—मेरा तो यह भी विचार है कि प्राचीन भारत में इनके टक्कर की दूसरी चीज ही नहीं (आ० स० रि० १९०४-५, पृ० ३६) इन स्तम्भों की तेजस्वी ऊँची मम्वतकारी और मानव और पशुओं की सजीव आकृतियों के अतिरिक्त इनकी पालिश इतनी चमकदार है जो उन कारीगरों के लिए बड़े गर्व की वस्तु है। विंसेंट स्मिथ (अशोक, पृ० १३६) का कथन है "संगतराशी की कला चरम सीमा पर है। उसने वह काम कर दिखलाया है जो शायद बीसवीं सदी की शक्ति के भी परे है"। ३० या ४० फुट ऊँचे विशाल पत्थर के झोटों को इतनी सावधानी से तराशा गया है कि कहीं भी एक छेनी ज्यादा या कम नहीं लगी है। फिर उस पर ऐसी पालिश की गई है जिसके बारे में आधुनिक कारीगरों को कोई ज्ञान ही नहीं है।" इनकी पालिश[1] से कुछ दर्शकों को इस बात का धोखा हुआ है कि ये खंभे किसी धातु के बने हैं। टाम कोर्याट ने सत्रहवीं सदी में दिल्ली के खंभों को देखकर कहा था कि वह "पीतल मंडित (brazen) स्तम्भ" हैं। बिशप हेबर ने उन्नीसवीं सदी के शुरू में अपनी राय लिखी थी कि "यह धातु में ढला ऊंचा काला स्तम्भ है" (स्मिथ की आक्सफोर्ड हिस्ट्री में उद्धृत, पृ० ११३)।

ध्यान देने की बात यह है कि खंभों का जमीन की सतह से नीचे जो हिस्सा है उसमें यह पालिश नहीं लगी है जैसे, दिल्ली-टोपरा स्तम्भ की कुल लम्बाई ४२ फुट ७ इं० है। उसमें पालिश ऊपर से सिर्फ ३५ फुट तक दीखती है। उससे नीचे के हिस्से खुरदरे हैं। इसी प्रकार, रामपुरवा का सिंह स्तंभ ४४ फुट ९½ इंच ऊँचा है। इसका ८ फुट ९ इंच भाग खुरदरा है। इन पर कोई पालिश नहीं है। लौरिया-नन्दनगढ़ स्तम्भ जमीन से ३९ फुट ७½ इं० ऊँचा है। इसका १० फुट हिस्सा जमीन में गड़ा है। जब इसकी नींव की खुदाई हुई थी तो जमीन से २ फुट नीचे २ इं० मोटा छल्ले जैसा उभरा हिस्सा स्तम्भ के चारों ओर मिला। पालिश इस उभरे हिस्से तक ही है। इसके नीचे खुरदरा है जिस पर छेनी के निशान हैं। इससे कुछ ही नीचे मोर की एक आकृति मिली जो चार इंच लम्बी थी। यह मोरियों या मौर्यों का राजकीय चिन्ह था। जमीन से दस फुट नीचे पत्थर की यष्टि एक पत्थर के चौकोर आधार में जड़ी हुई थी। यह चारों ओर २ फुट निकली हुई है (कनिंघम, आ० स० रि० २२, ४६, ४७)। कोलुहा-स्तम्भ के साथ भी एक चौकोर आधारशिला मिली थी (वही i ६०)।

इन स्तम्भों के बारे में विंसेंट स्मिथ ने इंजीनियरिंग की एक पहेली सामने रखी थी। यदि हम यह मान लें कि प्राचीन भारतीय लोगों को जितना हम मानते हैं उसके कहीं अधिक इंजीनियरी आती थी तब तो बात दूसरी है, अन्यथा यह पहेली

---

१. लौरिया-अरराज का जो फोटोग्राफ मैंने लिया है उसमें दंड के एक हिस्से में सफेद रेखाओं के रूप में पालिश है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नहीं सुलझाई जा सकती। कनिंघम का अनुमान है कि ५० फुट तक ऊँचे और ५ इंच तक मोटे इन स्तम्भों का औसत वजन करीब ५० टन है। इन विशाल खंभों उनके अपेक्षित स्थान तक ले जाने की भी समस्या रही होगी। जिन जगहों में ये मि हैं उनसे यही अनुमान होता है कि इन्हें लगाने के स्थानों के चुनाव की एक ख योजना थी। इनमें से चार उस मार्ग पर लगे हैं जो पाटलिपुत्र से हिमालय के प प्रदेश में नेपाल की तराई में बौद्ध तीर्थों को जाता है। अन्य स्तम्भ बड़े-बड़े नग में लगाये गये थे ताकि अधिक से अधिक लोग उस पर लिखे लेख पढ़ सकें। ये शह चाहे मामूली बड़े नगर थे या फिर तीर्थ जैसे सांची, सारनाथ, कौशांबी। इनके बा में एक बात और विचार की है। वह यह कि वह केन्द्रीय कारखाना कहाँ रहा होग जहाँ एक ही आकार, प्रकार, पालिश और परिष्कार के ये स्तम्भ बनाए गए होंगे इन स्तम्भों का पत्थर चुनार की पहाड़ियों का है। "ये पत्थर ऐसे स्थानों पर खड़े जिसके आसपास सैंकड़ों मील के घेरे में कोई ऐसी पहाड़ी नहीं है जहाँ इतने ब खंभों के लिये जरूरी भोट मिल सकें। इनका निर्माण करना, फिर उन्हें उन अभीष्ट स्थानों में पहुँचाना और वहाँ खड़ा करना मौर्यकालीन संगतराशों और इंजी नियरों के कौशल और साधन-संपन्नता के मुखर साक्षी हैं"; (विंसेंट स्मिथ, अशोक, पृ० १२१)। सौभाग्य की बात है कि अशोक के इंजीनियरों को इन खंभों के ले जाने में कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा होगा इसका अनुमान करने के लिये एक वर्णन उपलब्ध है। सोलहवीं सदी में एक भारतीय राजा सुल्तान फिरोजशाह तुगलक ने इनको दिल्ली लाने का आदेश दिया था। सबसे पास का अशोक-स्तम्भ टोपरा में था। सुल्तान इसे 'जय स्तम्भ' की भाँति दिल्ली लाना चाहता था। इसे वहाँ से लाने के लिए एक खास गाड़ी बनाई गई जिसमें बयालीस पहिये थे। हर पहिये में एक बड़ा रस्सा लगा था। हर रस्से को २०० आदमी खींच रहे थे। इस तरह खंभे का पूरा बोझ उठाने के लिये ८४०० आदमी लगे थे। "जब एक स्तम्भ को सिर्फ १२० मील की दूरी के लिए ढोने में इतने मजदूरों की जरूरत पड़ी थी तो हम परिकल्पना कर सकते हैं कि इन स्तम्भों को जिनमें कुछ उस खंभे से भारी थे जिसे फिरोजशाह लाया था और उससे भी अधिक दूर भेजने में कितनी ताकत की जरूरत पड़ी होगी" (स्मिथ, अशोक, पृ० १२३)।

मौर्यों की इंजीनियरी की सफलता सिंचाई के क्षेत्र में भी स्पष्ट है। रुद्रदामन (१५० ई० पू०) का लेख बतलाता है कि सुन्दर सुदर्शन झील[1] का निर्माण रैवतक और ऊर्जयत पहाड़ों पर (जुनागढ़ या गिरनार के पास) पलासिनी और अन्य नदियों

१. सन् ४५८ ई० पू० का एक लेख यहाँ पर मिलता है जिसमें इस झील का इतिहास स्कंदगुप्त के काल तक चला जाता है (दे० फ्लीट का गुप्त इंस्क्रिप्शंस, सं० १४)। यह झील साम्राज्य के पश्चिमी हिस्से में थी जिसे सुराष्ट्र कहते थे। स्कंदगुप्त के समय में पर्णदत्त इसका गवर्नर था जिसने अपने पुत्र चक्रपालित को उस नगर का शासक बनाया था जिसे रुद्रदामन के लेख में गिरिनगर (गिरनार) कहा गया है। 'सुदीर्घ अतिवृष्टि के कारण' नदियां जो झील की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का पानी बाँधने से सम्भव हुआ था। उसी लेख से पता चलता है कि इस जलाशय का "निर्माण मौर्य राजा चन्द्रगुप्त के राज्यपाल (राष्ट्रिय) पुष्यगुप्त की आज्ञा से हुआ था और उसमें पनालियां (प्रणाली) यवनराज तुषास्प ने बनवाई थीं।" इस झील में "नालियों, पनालों, और गंदी चीजों को जाने से रोकने का बड़ा अच्छा इंतजाम था"। इस सम्बन्ध में हमें मेगस्थनीज के इस कथन पर ध्यान देना चाहिये कि मौर्य शासन में ऐसे अधिकारी थे जिनका काम "जमीन की नापजोख करना और उन मोरियों का निरीक्षण करना था जिनसे पानी शाखा-नहरों में जाता है ताकि सभी लोगों को समुचित लाभ मिलता रहे।"

अन्तिम बात यह है कि मौर्य इंजीनियर नगर-निवेश के कार्य में भी दक्ष थे। पाटलिपुत्र नगर की नींव वायु पुराण के अनुसार अजातशत्रु के पोते उदय ने रखी थी। तब से यह नगर बराबर मगध की राजधानी रहा। इसके जन्म के समय ही भगवान बुद्ध ने इसकी भावी महत्ता की भविष्यवाणी की थी। चन्द्रगुप्त मौर्य के समय तक यह नगर काफी बड़ा हो चुका था। और भगवान बुद्ध की वाणी को चरितार्थ कर रहा था। मेगस्थनीज के अनुसार "इसका आबादी वाला हिस्सा लम्बाई केवल ८० स्टेडिया (करीब ९ मील) और चौड़ाई केवल १५ स्टेडिया (करीब डेढ़ मील) था। इसकी आकृति समानान्तर चतुर्भुज की थी। इसके चारों ओर नगर की रक्षा और नगर के मल-निकास के लिए एक खाई बनी हुई थी जिसकी चौड़ाई ६०० फुट और गहराई ३० हाथ थी।"[1] इसकी आन्तरिक प्रतिरक्षा पंक्ति विशाल-काष्ठ स्तम्भ वलय की थी। "इसमें वाण चलाने के लिये मुक्के बने हुए थे। इसमें ५७० मीनारें और ६४ दरवाजे थे"। मेगस्थनीज ने आगे लिखा है कि भारत के नगर "इनकी संख्या इतनी अधिक है कि ठीक-ठीक बतलाना असम्भव है" जो नदियों या समुद्र तट पर बसे हैं, ईंटों के स्थान पर लकड़ी के बनाए जाते हैं ताकि बाढ़ से बचाव हो, जो नगर के अन्य "अधिष्ठानों या उन्नत भूमि पर हैं वे ईंट और मिट्टी के गारे से बनाए जाते हैं। काठ के इस नगर का मुख्य आकर्षण राजमहल था जो सुसा और एकबतना के महलों से भी बढ़-चढ़ कर था। इसके खंभों पर सोना चढ़ा

(जारी)
सीमाओं में "इतने समय तक बंदिनी थीं अब अपने पति सागर से मिलने" दौड़ गईं। जिससे झील सहसा फट गई। इन नदियों में सिर्फ पलासिनी का नाम दिया गया है। किन्तु चक्रपालित ने तटाकं की चुनाई पर 'अगणित द्रव्य खर्च कर' तुरन्त उसको पुनः स्थापित कर दिया।

१. मनोरंजक बात यह है कि उन दिनों समुद्र से पाटलिपुत्र तक गंगा में जहाज चलते थे। स्ट्राबो (१५, १, ११) "समुद्र से पालिबोथ्रा तक गंगा में जहाज की चढ़ान" का उल्लेख करता है"। इससे भी पुरानी एक अन्य जनश्रुति (विनय ३, ३३८—समंतपासादिका) के अनुसार अशोक का छोटा भाई महेंद्र पाटलिपुत्र से ताम्रलिप्ति गया, फिर वहाँ से वह लंका गया था। एक जातक कथा (जात० ४, १५९) के अनुसार बनारस से बढ़इयों की एक कंपनी संगम के रास्ते समुद्र में एक द्वीप तक गई थी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हुआ था और उन पर सोने की अंगूर की बेलें और चांदी के पक्षी बने हुए थे। खाली जगहों में बावलियां भरी-हुई थीं जिनमें मछलियाँ तैरती रहती थीं। नगर में तरह-तरह के सुन्दर वृक्ष और लताएं और झाड़ियां थीं। इस प्रकार अशोक को उत्तराधिकार में जो साम्राज्य मिला था वह सचमुच महान् था—उसकी सेना विशाल थी, प्रशासन कुशल था और अन्तिम बात यह कि कला और वास्तु की दृष्टि से भी वह अति समृद्ध था। इस प्रकार कुछ स्तम्भों को अशोक ठीक ही अपने पूर्वजों का बतलाता है। इन पूर्वजों ने इतना महान् नगर बसाया था और पूरब का इतनी तड़क-भड़क का राजमहल बनवाया था।

अशोक ने भी नगर और महल का विस्तार कराया था। महल की कांति से प्रभावित हो फाहियान उन्हें अपौरुषेय कहता हैं। बड़ी ईमानदारी से उसने कहा था "नगर के मध्य में राजमहल और विशाल कक्ष जो आज (लगभग ६५० साल बाद) भी वर्तमान है उसने जिन्नातों से बनवाया था। वे ही पत्थर लाए थे, उन्होंने दीवारें और दरवाजे बनाए थे, सुन्दर नक्काशी और मूर्तियां इस प्रकार गढ़ी जैसी रचना इस संसार का कोई व्यक्ति नहीं कर सकता है" (लेग्गे का अनुवाद, पृ० ७७)। इससे स्पष्ट होता है कि अशोक ने महल के काष्ठ-निर्माणों का अधिकांश हटाकर उनके स्थान पर पत्थर के निर्माण कराए। पत्थर के निर्माण उसने साम्राज्य के विभिन्न भागों में भी कराए थे।

पुरातत्त्व की खोजों से मौर्य-प्रासाद के कुछ अंश प्राप्त हुए हैं। यह काम पी० सी० मुखर्जी ने शुरू कराया था। उन्होंने पालिशदार पत्थर के बहुत से टुकड़े जो निस्सन्देह अशोक के स्तम्भ के अंश हैं खोद निकाले थे।[1] उनके कई साल बाद डा० डी० बी० स्पूनर ने काम फिर से शुरू कराया। स्पूनर की खुदाई में चुनार के बलुआ पत्थर के खंभे (सभी २० फुट लम्बे हैं और इनके आधार का व्यास साढ़े तीन इंच है) १५ फुट समानान्तर पर खोद निकाले। यह मौर्य महल के हाल के शत स्तम्भ रहे होंगे। जिसकी डिजाइन ईरान के अखमनी महल से मिलती-जुलती है।[2] जमीन से

१. भूलना न चाहिए कि फाहियान और युवाङ् च्वाङ् दोनों ने पाटलिपुत्र में अशोक का एक स्तम्भ देखा था।

२. इस विषय को लेकर विद्वानों में बड़ा मतभेद रहा है। भारतीय कला और कलात्मक इतिहास के माने हुए पंडित हैवेल का मत देखिए (आर्यन रूल, पृ० ७५): "पाटलिपुत्र में हाल की खुदाई से वह हिस्सा बाहर निकला है जिसे हम राजमहल की नींव मान सकते हैं। स्तम्भों का विन्यास पर्सीपोलिस के अपदन की तरह है। इससे लोगों ने जल्दबाजी में कह दिया है कि चंद्रगुप्त ने ईरानी नमूने पर अपना महल बनवाने के लिए विदेशी कारीगर बुलवाए थे, जैसे आज ऐंग्लो-इंडियन निर्माता यूरोपीय भवनों के नक्शे मंगाते हैं। इसमें कोई शक नहीं कि चंद्रगुप्त की उस समय इतनी प्रसिद्धि रही होगी कि विदेशों से भी कारीगर अवश्य आए होंगे। खासकर उस्ताद कारीगर जो सदा इस बात की खोज में रहते थे कि किस राजा की कहां राजधानी बन रही है। पर भारतीय इतिहास का प्रारंभ चंद्रगुप्त से नहीं होता है और जब पाटलिपुत्र की नींव पड़ी थी उस समय भी भारत में निर्माण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

१७ फुट नीचे काठ का एक फर्श मिला जिस पर आठ-दस फुट मिट्टी पड़ी है, जिस पर राख की एक सतह थी जिसमें खम्भे टूटी-फूटी हालत में थे। हर खम्भे की साइट में राख की एक नलिकाकार यष्टि है जो मिट्टी से होती हुई काठ के फर्श तक चली गई है। डा० स्पूनर का अनुमान है कि मिट्टी किसी बाढ़ का अवशेष है और राख आग का। बाढ़ और आग के बीच महल का ध्वंस पूर्ण हो चुका था।[1] जिसे स्तम्भ महल कहा जाता है उसके दक्षिण में साखू की लकड़ी के ७ चबूतरे मिले हैं जो एक दूसरे के समानान्तर हैं, जिनमें हर चबूतरे की लम्बाई ३० फुट, चौड़ाई ६ फुट और ऊंचाई साढ़े चार फुट है। डा० स्पूनर ने इनकी बढ़ईगिरी की "पूर्ण दक्षता" की प्रशंसा की है।

वास्तुगत पूर्णता के बाद हमें उस काल की कतिपय गौण कलाओं पर भी विचार करना चाहिए। मथुरा के पास परखम में एक विशाल मानव मूर्ति मिली है जो ७ फुट ऊंची है। यह भूरे रंग के बलुआ पत्थर की बनी है और इस पर खूब चमकती पालिश है। अशोककालीन लिपि में इस पर एक लेख भी खुदा है। एक नारी मूर्ति, जो इसकी पूरक प्रतीत होती है, बेसनगर में मिली है। अभी हाल में पटना और दीदारगंज में दो मूर्तियाँ मिली हैं। इन इकमुही मूर्तियों के देखने से कला की आदिम अवस्था का बोध होता है। डा० आनन्द के० कुमारस्वामी (हिस्ट्री आफ इंडियन एण्ड इन्डोनेसियन आर्ट, पृ० १६) इन्हें उस काल की "लोक कला" का नमूना मानते हैं जो दरबारी कला से भिन्न थी। इसी प्रकार इस काल की आहत मुद्राओं को देखते हुए लगता है कि सिक्कों के निर्माण की कला भी काफी उन्नत न थी। इन सिक्कों की आकृति में सममिति नहीं हैं। इन पर चिह्न भी अंधाधुंध मार दिए गए हैं। इसी प्रकार उस काल की मिट्टी की कला के जो कुछ नमूने मिले हैं उनसे इस कला में भी "अगगढ़ आदिम उच्चित्रण" का पता चलता है। "वस्तुतः जहाँ तक हमारा ज्ञान है उससे यही पता चलता है कि मौर्य कारीगरों ने जौहरी और मणि-कारी के काम में ही वास्तविक दक्षता हासिल की थी और इस क्षेत्र में भी उनकी दक्षता रूप-विधान में न थी अपितु उनकी रुचि रत्नों के काटने और ऊष्म सह पत्थरों के पालिश करने की दक्षता में या महीन अलंकरण और धातुओं की वस्तुओं

(जारी)
कला काफी पुरानी थी। अतः यदि किसी भारतीय महल और ईरानी महल के नक्शों में कुछ समानताएं दीखती हैं तो इसका कारण यही है कि भारतीय और ईरानी सभ्यता दोनों को एक समान परंपरा का उत्तराधिकार मिला था। इसका कारण यह नहीं हो सकता कि चंद्रगुप्त ने दारा के राजमहल का अनुकरण किया। भारतीय आर्य परंपरा के इतने बड़े पोषक और सबसे बड़े भारतीय साम्राज्य के संस्थापक ने मकदूनी साम्राज्य से आर्यावर्त की स्वतन्त्रता जीतने का उत्सव मनाकर आर्यावर्त पर ईरानी मस्तिष्क की श्रेष्ठता थोपने का कार्य शायद ही किया हो। कौटिल्य के अर्थशास्त्र से जाहिर है कि चंद्रगुप्त के राज-कौशल की प्रेरणा भारतीय परंपराओं में सन्निहित थी।

१. मनोरंजक बात यह है कि महापरिनिब्बान सुत्तंत (१, २८) में भगवान बुद्ध इन्हीं आपदाओं से पाटलिपुत्र के नाश की भविष्यवाणी करते हुए कहते हैं कि "पाटलिपुत्र को सदा तीन बातों का भय रहेगा, आग का, पानी का और मित्र-भेद का"।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में दानेदार डिज़ाइने बनाने में थी। मौर्यकाल के कारीगरों ने सोने-चाँदी के कामों में कितनी दक्षता हासिल की थी इसका पता तक्षशिला में डायोडोटस के सोने के सिक्के, प्रचुर स्थानीय आहत मुद्राओं, दूसरे गहनों और रत्नों के साथ मिले दो गहनों से होता है। जहाँ तक पत्थरों की कटाई का सम्बन्ध है भट्टिप्रोलु और पिपरहवा के स्तूपों से मिली वैदूर्य और स्फटिक की धातु मंजूषाएँ इसका सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। पिपरहवा की मंजूषा सम्भवतः इसी काल की है" (कैंब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, पृ० ६२३)। इन उदाहरणों में हम अशोक के लेखों को भी रख सकते हैं जिनके अक्षर नपे-तुले और बहुत सुंदर खोदे गए हैं।

पुरातत्त्व के महत्त्व के अनन्तर हम अशोक के स्मारकों के कलात्मक महत्त्व पर विचार करेंगे। इनमें जो सबसे अच्छे हैं उनके बारे में सभी एकमत हैं कि कला और शिल्प दोनों दृष्टियों से ये काफी उन्नत किस्म के हैं। उद्भव और प्रकृति की दृष्टि से यह कला कितनी भारतीय है इसके बारे में संदेह है। यह संदेह खासकर उन कृतियों के बारे में है जो नितान्त परिष्कृत हैं। यह कला पशुओं, उनकी माँसपेशियों, नसों, पंजों के चित्रण, और पेड़-पौधों और पक्षियों के चित्रण में अपनी पूर्णता पर है इसलिये इसे प्रकृतिवादी कहा गया है और उस सीमा तक यह भारतीय कला और भारतीय आदर्शों के लिए विदेशी मानी गई है। इसे यूनानी कला से प्रेरित बतलाया गया है क्योंकि उस युग में जीव-जन्तुओं का चित्रण उनकी ही विशेषता थी। अशोककालीन कला को विदेशी सिद्ध करने के लिये एक अभावात्मक प्रमाण भी दिया जाता है। कहा गया है कि इस कला में उत्तम उदाहरण उसी काल के हैं जिसमें कला की दृष्टि से असंस्कृत और आदिम कृतियाँ भी मिलती हैं जिनका जिक्र ऊपर किया गया है, जैसे मथुरा, बेसनगर और पटना की सर्वांग मूर्तियाँ जिनकी देशी उत्पत्ति के बारे में दो रायें नहीं हैं। इस प्रकार हमें इस बात का खुलासा करना होगा कि कला के क्षेत्र में ये दो अत्यंतिक अवस्थाएं एक साथ कैसे मिलती हैं। इस प्रकार अशोक के स्तम्भ जो इस काल की श्रेष्ठ कलाकृति माने जाते हैं उन पर विदेशी प्रभाव बतलाया जाता है। इसके कुछ तत्त्व यूनानी और कुछ दूसरे ईरानी कहे जाते हैं। इनके सुगढ़ घंटाकार शीर्ष, बिना पनालियों के चिकनी यष्टि, इनकी पालिश और यहाँ तक कि उनके लेख भी ईरानी माने जाते हैं।

किन्तु गहराई से जाँच करने पर यह मत पूर्णतया सही नहीं माना जा सकता। विंसेंट स्मिथ भी अशोककालीन कला की विदेशी उत्पत्ति बतलाने में इतनी दूर जाने को तैयार न थे। उदाहरण के तौर पर उनकी राय थी कि सारनाथ के स्तम्भ के फलक में वृषभ और हाथी का अंकन विषय और प्रेरणा दोनों दृष्टियों से पूर्ण भारतीय है। यह किसी आधी देशी और आधी विदेशी कला की कृति नहीं हो सकती। हैवेल के मत से पर्सिपोलिटन घंटानुमा शीर्ष वास्तव में भारतीय कमल है। अपि च, कॉडिंग्टन ने कहा है कि ईरानी स्तम्भ शीर्ष का इन प्राचीन भारतीय घंटा-शीर्षों से कोई सम्बन्ध नहीं है। वस्तुतः घंटा-शीर्ष अशोक के स्तम्भों के आवश्यक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अंग नहीं हैं। "ईरानी घंटे की कल्पना एक संयुक्त शीर्ष के अंग के रूप में की गई है। इसके ऊपर सदा कोई दूसरा अंग रहता है जिसकी रेखाएँ ऊपर की ओर और बाहर की ओर मुड़ती हैं। पूरी रचना किसी खजूर के हरे-भरे वृक्ष का सिर प्रतीत होती है जिसकी आधी मरी मुरझाई पत्तियाँ तने के नीचे मुड़ी रहती हैं। इसके ऊपर एक चौमुही घुड़िया जैसी आकृति रहती है जिसके ऊपर और नीचे मुड़े शंखावर्त्त होते हैं। इसके और फिर शीर्ष के आखिरी अंग के बीच सिर्फ गुरिया और चर्खी की पट्टी होती है। इसके ऊपर बिना किसी फलक या बीच के मंच के पशु का सिर व पीछे मुड़े अगले पैर होते हैं। टिपिकल अखमनी स्तम्भ यष्टि चिकनी नहीं बल्कि गरारीदार होती थी इसका आद्य रूप चाहे जैसा भी रहा हो" (एंशियन्ट इंडिया, पृ० १८, १९)। जहाँ तक स्तम्भों का सम्बन्ध है, ध्यान देने की बात यह है कि पर्सीपोलिस या दूसरी जगहों में स्तम्भ वास्तु के अभिन्न अंग रहे हैं किन्तु अशोक के स्तम्भ शुद्ध स्मारक हैं। न ही स्तम्भ खड़े करने की परम्परा इस देश में विदेश से आई है। धार्मिक प्रतीक खड़े करने की परम्परा भारत में अत्यन्त प्राचीन काल से रही है। हिन्दू मन्दिरों के सामने ध्वज-स्तम्भ या दीप-स्तम्भ खड़े होते थे। इन स्तम्भों को उस देवता के प्रतीक—चक्र या त्रिशूल—से अलंकृत भी करते थे। वैदिक साहित्य में इंद्र के ध्वज और यज्ञ के यूपों के वर्णन हैं। इनसे इन स्तम्भों का मूल काफी प्राचीन काल तक चला जाता है। अशोक के स्तम्भ उन स्तम्भों के उत्तराधिकारी हैं जो यज्ञस्थल पर यूपों के रूप में स्थापित किये जाते थे। भारत में इन स्तम्भों का क्या उद्देश्य था यह उनके स्थान के चुनाव में ही बतलाया गया है। रुम्मिनदेई में भगवान का जन्म हुआ था और सारनाथ में उन्होंने धर्म-चक्र का प्रवर्तन किया था। अतः इन दोनों स्थानों पर अशोक ने स्तम्भ स्थापित कराये थे। निग्लीव का स्तम्भ पांचवें पूर्वबुद्ध की स्मृति में था। इन स्तम्भों से बौद्ध-तीर्थों की यात्रा की प्रगति का बोध होता है।

यह भी नहीं कहा जा सकता कि अशोककालीन कला पर कोई विदेशी प्रभाव ही नहीं है। इस युग में भारत और विदेशों के बीच यात्राएं खूब और फलवती होती थीं। वैसी परिस्थिति में यह बतलाना कठिन है कि प्रभाव कहाँ से आया। मेगस्थनीज के वर्णन से पता चलता है कि अशोक के दादा चंद्रगुप्त मौर्य के समय में भारत में इतने विदेशी व्यापारादि के सिलसिले में आते थे कि भारत के बड़े-बड़े नगरों में उनकी देखरेख के लिए एक विदेश कार्यालय ही बनाना पड़ा था। अशोक के ही वर्णनों में हम देख चुके हैं कि उस काल के पश्चिम के देशों से विशेषकर यूनानियों से वह कितने घनिष्ठ और धार्मिक सम्बन्ध बनाए हुए था। सच तो यह है कि उस समय जब आवागमन और विचारों का आदान-प्रदान इतने बड़े पैमाने पर हो रहा था तो कला के क्षेत्र में कतिपय समानताएँ होना कोई आश्चर्य नहीं। भारत और ईरान की इन समानताओं का मूल किसी ऐसी जगह में होगा जिससे वं या एशिया की सभी संस्कृतियाँ निकली हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अध्याय ६

सामाजिक अवस्था

अब हम उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर उस काल की सामाजिक अवस्था का विवरण उपस्थित करेंगे।

समाज धार्मिक और लौकिक वर्गों से बना बताया जाता है। धार्मिक वर्ग में "ब्राह्मण, श्रमण और अन्य पाषंड" अर्थात् विभिन्न विसंवादी संप्रदायों के अनुयायी शामिल थे। अशोक के समय में इन विसंवादियों में प्रमुख थे निर्ग्रंथ (जैन) और आजीविक। आजीविकों को तो उसने गुहावास भी दान दिये थे।

समाज में अनेक धार्मिक सम्प्रदाय वर्तमान थे। अशोक के लेखों में इनमें सिर्फ चार के नाम आए हैं। निश्चय ही ये चार—अर्थात्, ब्राह्मण, बौद्ध, आजीविक और निर्ग्रंथ—प्रमुख सम्प्रदाय थे। अशोक इन सभी सम्प्रदायों का समान रूप से हितसाधन करता था। इस कार्य के लिए उसने एक विशेष विभाग ही बना दिया था। सम्राट की धार्मिक नीति काफी उदार थी। उसकी नीति धार्मिक तटस्थता की न थी क्योंकि तटस्थता का अर्थ उदासीनता और निष्क्रियता होता है। उसकी नीति इन सभी धर्मों के 'सार' की वृद्धि थी। सभी धर्मों में जो अच्छा है सम्राट उसको सक्रिय समर्थन देता था।

समाज का बौद्धिक जीवन विहारों और अन्य धार्मिक सम्प्रदायों की ऐसी ही संस्थाओं में केंद्रित था। उस समय के धार्मिक शास्त्रार्थों से बौद्धिक उत्कर्ष को बल प्राप्त होता था। वस्तुतः ये सम्प्रदाय विभिन्न दार्शनिक सम्प्रदाय मात्र थे। समाज के उच्च वर्गों में ज्ञान और संस्कृति तो थी ही, साथ ही नीचे के तबकों में भी इसका प्रसार था क्योंकि उस काल में साक्षरता का प्रतिशत काफी ऊँचा था। जैसा डा० विंसेंट स्मिथ (अशोक, पृ० १३९) ने सबसे पहले बताया था, हम इस साक्षरता का अनुमान इस बात से कर सकते हैं कि ये लेख उस काल की लोकभाषा में[1] और उस समय

१. विंसेंट स्मिथ और अन्य लेखकों के इस तर्क-संगत अनुमान पर विचार करते हुए ध्यान देने की बात यह है कि अशोककालीन भारत में एक प्रकार की राष्ट्रभाषा का विकास हुआ था, क्योंकि अशोक के लेखों में एक समान भाषा का प्रयोग हुआ है जिसकी कुछ स्थानीय विशेषताएँ थीं। शब्द-रूपों, व्याकरण और शब्द-भंडार की दृष्टि से इस समान भाषा के प्रांतीय भेद अवश्य थे। अनुमान यह है कि ईसा पूर्व तीसरी शती में उत्तर और दक्षिण सर्वत्र लोग इस भाषा को समझ लेते थे। पर कुछ विद्वानों की यह भी धारणा है कि दक्षिण भारत में उस समय भी कई भाषाएँ थीं जो एक दूसरे से पृथक् थीं और उत्तर की भाषाओं से तो ये नितांत भिन्न भी थीं! इस सारे प्रश्न पर भारतीय भाषाओं और साहित्य के इतिहास की दृष्टि से ही विचार करना चाहिए।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की दोनों लिपियों में पत्थर पर लिखाए गये थे और ऐसे स्थानों पर लगे थे जहाँ सभी लोग उसे आसानी से पढ़ सकें और उसके अनुसार आचरण कर सकें जो उनका प्यारा राजा उन्हें उपदेश करता है। अशोक ने ये लेख इतने रुपये खर्च कर और इतने परिश्रम से लगवाये थे। इनके पीछे उसका उद्देश्य अपने मन की तरंग या अहं की तुष्टि मात्र नहीं रहा होगा। विहारों और ऐसी अन्य धार्मिक संस्थाओं के कारण उस समय साक्षरता का काफी प्रसार हुआ था। शिक्षा के क्षेत्र में इन विहारों का उस समय कितना महत्त्व रहा होगा इसका अनुमान, हम इस बात से कर सकते हैं कि वर्मा में आधुनिक युग में साक्षरता का प्रतिशत उत्तर प्रदेश से अधिक रहा है। १६०१ की जनगणना के अनुसार वर्मा में प्रति सहस्र साक्षर पुरुषों की संख्या ३७८ और स्त्रियों की ४५ थी जबकि संयुक्त प्रान्त आगरा व अवध (अब उत्तर प्रदेश) में अनेक बड़े-बड़े नगरों के बावजूद यह संख्या क्रमशः ३७ और २ थी। इस प्रकार विंसेंट स्मिथ इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे : "मेरा ख्याल है कि अशोक के समय में बौद्धों (?) में साक्षरता का प्रतिशत ब्रिटिश भारत के अनेक सूबों से अधिक था" (वही)।

अशोक के लेखों में धार्मिक वर्गों से गृहस्थों को अलग करके देखा गया है। उस समय की विभिन्न जातियों या वर्णों में ब्राह्मणों और इभ्यों (वैश्यों) का जिक्र आया है (चट्टान लेख ५)। इनके अलावा सैनिकों और उनके नायकों का—भटमय (वही) जो क्षत्रिय रहे होंगे, दासों और भृत्यों (दास-भटक, चट्टान लेख ६, ११, १३ और स्तम्भ लेख ७) का भी, जो शूद्र रहे होंगे, जिक्र आया है। योन (यवन) जनपद को छोड़कर शेष भारत में ये जातियां या वर्ग थे। यवन इन निकायों और पाषंडों यहाँ तक कि ब्राह्मणों और श्रमणों से परिचित न थे (चट्टान लेख १३)। इस प्रकार धर्म या आचार की दृष्टि से यवन-जनपद अभी हिन्दू नहीं हुआ था।

घर या पारिवारिक जीवन की लेखों में काफी ऊंची और विस्तृत कल्पना है। नैतिक जीवन का आधार पारिवारिक सम्बन्धों की एक समुचित व्यवस्था में था। इन संबंधों का परिसर काफी विस्तृत था। इसमें रक्त सम्बन्ध के अलावा सतीर्थ संबंध और यहाँ तक कि स्वामी और दास ही नहीं बल्कि सेवा करने वाले घरेलू जानवरों के साथ संबंध भी शामिल थे।

लोक का धार्मिक जीवन अनेक क्षुद्र आचारों (ceremonies) से भरा था जैसा चट्टान लेख ६ में आया है। फिर पाप (चट्टान लेख ५ और स्तम्भ लेख ३) और पुण्य (चट्टान लेख ६ और १०), परलोक और स्वर्ग में अथवा जिसे कर्म का सिद्धान्त कहते हैं—विश्वास सार्वदेशिक था। उस समय के लोकप्रिय बौद्ध धर्म में पूर्व-बुद्धों की पूजा का भी विधान था। स्वयं अशोक ने कोणाकमन के स्तूप की पूजा की थी और उसकी मरम्मत करायी थी।

जो लोग अपना घर-बार छोड़कर परम तत्त्व की खोज में प्रव्रजित हो जाते उनके पालन-पोषण का दायित्व गृहस्थों पर था। अशोक बारंबार संन्यासियों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के आदर करने पर जोर देता है। इससे यही विदित होता है कि उस ... इन लोगों की संख्या काफी रही होगी। संन्यास के प्रचार से यही सिद्ध हो... कि उस समय समाज का काफी नैतिक उत्थान हो चुका था, अन्यथा आध्या... जीवन के लिये सांसारिक सुखों का त्याग करने वाले इतने लोग कहाँ मिलते।

कुछ संन्यासी सामाजिक सेवा का भी व्रत लेते थे। इन्हीं में से चु... अशोक ने दूरस्थ और विदेशों में सेवा के लिये मिशनरी बनाकर भेजा था।

उच्च वर्गों और राजघराने के लोगों के बारे में बहुत सी बातों का ... किंवदंतियों से चलता है। बहुपत्नी और बाल-विवाह की प्रथाएं प्रचलित ... अशोक की कई पत्नियां थीं। उसका पहला विवाह १८ वर्ष की उम्र में हुआ ... उसने अपनी सबसे बड़ी बेटी का जब ब्याह किया था तो वह १४ वर्ष की थी। ... की बात यह है कि बौद्ध संघ में उस समय राजघरानों के युवक और युवतियां शा... हो रही थीं। कुमार महेन्द्र और कुमारी संघमित्रा दोनों ने संसार का परित्याग ... संघ में भिक्षु और भिक्षुणी बनना स्वीकार किया। यही कारण है कि अ... संन्यासियों और भिक्षुओं के लिये विशेष आदर प्रदर्शित करता है।

...शोक की धार्मिक दृष्टि विस्तृत और उदार थी। हिन्दू मिशनरी योन जन... (महावंश १२, ६)—सीरिया, मिस्र, साईरीन, मैसिडोनिया और एपिरस के ... यूनानी देशों में सेवा के लिये गए थे। इससे समुद्र यात्रा और विदेश गमन की सम... हल हो गई थी। जाति धर्म के मार्ग में रुकावट नहीं थी। इस विस्तृत धार्मिक ... की पुष्टि इस बात से भी होती है कि एक यूनानी ने अपना धर्म छोड़कर हिन्दू ... ग्रहण कर लिया था और उसका नया नाम धर्मरक्षित था। उसे अपरान्तक में ... प्रचार के लिये चुना गया था। इसके बाद ई० पू० १४० में जब हेलियोडोरस ... का हिंदू यूनानी अपने को भागवत कहकर भगवान वासुदेव को पत्थर का गरुड़... समर्पित करता है तो हमें उसमें कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए। इसी आ... त्मिकता के बूते पर भारत का संदेश उत्तर के पहाड़ों और दक्षिण के समुद्र... भौगोलिक सीमाओं को पार कर दूर-दूर तक गया था और इस प्रकार बृहत्तर भा... की नींव पड़ी थी।

यद्यपि अशोक इतिहास के बड़े से बड़े राजाओं में रहा है तथापि भार... संततियों ने उसकी स्मृति का सम्यक् समादर नहीं किया। सिर्फ बौद्ध साहित्य में ... भारतीय और सिंहली दोनों में—उसके नाम के साथ कुछ दन्तकथाओं की ... कर बौद्धों ने भी जिनको उसकी देन इतनी अधिक रही है—अपने कर्त्तव्य की इति... समझ ली। अशोक के विरुद को लेकर तो बाद के कुछ ब्राह्मण वैयाकरणों ... असम्मान भी प्रकट किये। उन्होंने उसके प्रिय विरुद 'देवानांप्रिय' का अर्थ 'मू... कर डाला। पर बौद्ध उल्लेखों में उसके प्रति समुचित समादर अवश्य है। मिलि... पन्ह (४, १, ४७) ने बड़े आदर से उसे 'धर्मराज' कहा है। उसका उल्लेख है ... धर्मराज अशोक पाटलिपुत्र में दरबार करता था। अपने पौर जानपदों (नंद...

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जानपद), अमात्यों (अमच्च), सैनिकों (भट-बल) के साथ वह गंगा की यात्रा को जाता था जिसके तट पर उसकी राजधानी बसी हुई थी। पत्थरों में भी उसके प्रति सम्मान प्रकट किया गया है। रुद्रदामन के जूनागढ़ लेख में (लगभग १५० ई०) अशोकस्य मौर्यस्य (ए० इं० ८, ४३) उक्ति आयी है। सारनाथ में कुमारदेवी [कन्नौज के राजा गोविन्दचन्द्र (१११४-५४ ई०) की पत्नी] के लेख में "धर्माशोक-नराधिपस्य" का उल्लेख है (ए० इं० ६, ३२१)। एक इससे भी बाद के धर्मचेति के लेख में धर्माशोक का उल्लेख है (इ० ए० २२)। अन्त में बोधगया में सन् १२९५-९८ ई० का एक बर्मी लेख है जिसमें अशोक को "श्री धर्माशोक, जम्बुद्वीप का राजा और ८४,००० चैत्यों का निर्माता" कहा गया है (ए० इं० ११, ११९)। इस प्रकार अशोक को धर्माशोक कहकर इतिहास ने उसका सही मूल्यांकन ही किया है।

पर अशोक की स्मृति सबसे अच्छी तरह मूर्तियों में आदर पा सकी है। फुशर के मत से अशोक की कथा ने प्रारम्भिक बौद्धकला को भी प्रेरणा दी थी। वे दिव्यावदान में आई अशोक की कतिपय कथाएँ सांची में पत्थरों पर उकेरी बतलाते हैं। सांची स्तूप के पूर्वी तोरण के निचले सिरदल के सामने मुंह पर अशोक के बोधिवृक्ष के दर्शन का अंकन माना जा सकता है। इस दृश्य के ब्योरे दिव्यावदान (पृ० ३९७-३९८) से लिये गये हैं। इसमें बतलाया गया है कि अशोक अपनी पत्नी तिष्यरक्षिता के साथ बड़े बाजे-गाजे से बोधिवृक्ष के दर्शन को गया था। द्वेषिणी तिष्यरक्षिता के अभिचार से वृक्ष सूखने लगा था। उसे 'सुगंधित' जल के घड़ों से सींचकर हरा-भरा करने के लिए अशोक गया था। मूर्ति में बाईं ओर बाजे वाले हैं और घड़ों में जल लिये भक्तजन हैं। मध्य में मन्दिर और 'संबोधि' का अंकन है। दाईं ओर राजा अपनी रानी और अनुचरों के साथ आया है। वह हाथी से उतर रहा है। बाद में पूरी मंडली बोधिवृक्ष की पूजा करती है। इस मूर्ति का अशोक से सम्बन्ध है इसकी पुष्टि इस बात से भी होती है कि मूर्ति के पादांग के अन्तिम छोर पर मोरों के जोड़े बने हैं। मयूर (पालि का मोर) मौर्यों का राजचिह्न था। यही दृश्य दक्षिणी तोरण के पिछले मुंह दूसरी ओर ऊपर और दूसरे दिल्हे में फिर से उकेरा गया है। रामग्राम की अशोक की यात्रा के दृश्य भी पूरे ब्योरों के साथ दक्षिणी और पूर्वी तोरणों पर अंकित हैं। दक्षिण तोरण के मध्य पादांग में सामने मुंह इनका अंकन है। दाईं ओर अशोक हाथी, घोड़े और पैदलों के साथ अपने रथ में आ रहा है। बाईं ओर नाग और नागियाँ जो स्तूप की रक्षिकाएँ थीं (दिव्या० पृ० ३८०) पूजा कर रही हैं। ध्यान देने की बात है कि करीब सौ साल पहले इस मूर्ति से कुछ ही डग दूर अशोक ने अपना स्तम्भ लगवाया था जिस पर उसके लेख खुदे हैं। पूर्वी तोरण के पिछले सिरदल में नागों का अंकन हाथियों के रूप में हुआ है जो पूजा के लिए पुष्प और फल ला रहे हैं। अन्तिम बात यह है कि दिव्यावदान में मृगदाव में धर्मचक्र प्रवर्तन के स्थान की अशोक की यात्रा का जो वर्णन है उसका भी अंकन सांची में हुआ है। सर जान मार्शल ने बताया

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है कि दक्षिणी तोरण में बाईं ओर के खम्भे के सामने मुंह सबसे ऊपर के दिल्हे में अशोक का अपनी दो रानियों के साथ 'मृगदाव' के दर्शन को जाने का दृश्य अंकित है। इसमें मृगदाव का अंकन मृग और धर्मचक्र के द्वारा हुआ है। दूसरे दिल्हे में अशोक अपने रथ में बैठा है और उसके अनुचर साथ हैं (गाइड टु सांची, पृ० ५०)। इस प्रकार ये मूर्तियाँ अशोक की पावन स्मृति में कृतज्ञ संततियों द्वारा लगाया गया श्रेष्ठ सम्मान है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अध्याय ७

धर्म लेखों का अनुवाद और उनकी व्याख्या

क. लघु चट्टान लेख

१

(ब्रह्मगिरि)

सुवर्णगिरि[2] से आर्यपुत्र (कुमार) और महामात्रों[3] (मंत्रियों) की ओर से इसिला[4] के महामात्रों को आरोग्य की कामना कहना और फिर यह कहना :[5]

---

१. जहां तक लेखों से पता चला है या अनुमान संभव है यहां ये लेख कालक्रम के अनुसार दिए गए हैं।

२. नाम का अर्थ है 'सोने का पहाड़'। अतः इसे कहीं उस स्थान पर होना चाहिए जहां प्राचीन काल में सोना निकलता रहा हो। यह लेख रायचुर के पास मास्की में मिला है। यहां इस बात के अनेक चिह्न हैं कि यहां प्राचीन काल में सोने की खुदाई होती थी। एक गड्ढ़ा तो इतना गहरा है जितना दुनिया में कोई नहीं (हैदराबाद आर्क० सीरीज, नं० १)। हुल्ट्श इसकी कनकगिरि से पहचान करते हैं जो मास्की के दक्षिण में पड़ता है।

३. शब्दार्थ 'बड़ी मात्रा वाला'। अतः उच्च श्रेणी का ऊँचा अधिकारी, प्रधान मंत्री। लेखों में महामात्रों पर नगरों का स्वतन्त्र कार्यभार था, जैसे इसिला, समापा (कलि० च० ले० २) या कोशाम्बी (ल० स्त० ले०) या वे उपराजकुमारों से सम्बद्ध थे जैसे तोसली (कलि० च० ले० २) या सुवर्णगिरि जैसा इस लेख में है, वे हजारों मनुष्यों के ऊपर शासक होते थे (कलि० च० ले० २)। अन्य कामों के अलावा उन्हें न्याय-प्रशासन के निरीक्षण के लिए हर पांच साल पर दौरों पर भेजा जाता था (वही)। वे विभागाध्यक्ष होते थे जैसे धर्म-महामात्र, स्त्री-अध्यक्ष-महामात्र या विभिन्न धार्मिक संप्रदायों के निदेशक होते थे (च० ले० ५, स्तं० ले० ७, ल० स्तं० ले०)। वे मंत्रिपरिषद् के सदस्य या पार्षद भी होते थे जिनके साथ राजा महत्त्व के विषयों पर मंत्रणा करता था (च० ले० ६)। कौटिल्य में महामात्र मंत्री (१, १०, १२, १३) और नगरों के मुख्य कार्यकारी अधिकारी (नागरिक-महामात्र, ४,५,) के रूप में मिलते हैं। उनके अधिकारों और प्रभाव का अनुमान इसी से किया जा सकता है कि यदि कोई महामात्र राजद्रोह पर उतारु हो जाय तो वह राजा के लिए काफी सिरदर्द का कारण बन जाता था। फिर उसे अपने रास्ते से हटाना ही पड़ता था (५, १)। डा० टामस ने जैसा दिखलाया है विनय पिटक को और भी कई किस्म के महामात्रों का ज्ञान है जैसे वोहारिक महामत्त (कानून के लिए), गणक महामत्त (वित्त), सेनानायकं, उपचारकं (राजसभा) और सब्बत्थकं (प्रधान मंत्री) (दे०, ज० रा० ए० सो०, १९१४, पृ० ३८९)।

४. आश्चर्य है कि इसिला नाम सांची के एक लेख में भी मिलता है (एपि० इंडि० २, नं० ४, पृ० १११)। इसिला की पहचान हम मैसूर राज्य के चितलद्रुग जिले के सिद्दपुर गांव से कर सकते हैं।

५. यह पैरा मैसूर के तीनों लेखों में ही मिलता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देवताओं के प्रिय[1] इस प्रकार आज्ञा देते हैं: अढ़ाई वर्ष से अधिक हुए कि मैं उपासक

१. मास्की के लेख में राजा का अशोक नाम आता है। इससे एक पुराना विवाद ह हुआ था।

प्रियदसि राजा 'हवें आह' का सूत्र भारत में अकेला है। न किसी ने इसके पहले इस इस्तेमाल किया था, न बाद में। ईरान के अखमनी राजा इसका इस्तेमाल अवश्य करते दारा के लेख "थातिय् (सं० शंसति) दारयवौष (धारयवसुः) क्षायथिय (क्षेता)"—"रा दारा इस प्रकार से कहते हैं" से प्रारंभ होते हैं। दारा का पंजाब के एक हिस्से से रा नैतिक संबंध था। उसी संबंध के फलस्वरूप भारत का इस फिकरे से परिचय हुआ। की बात यह भी है कि अशोक ने अपने लेखों में दिपि, लिपि शब्दों का इस्तेमाल किया है ईरान में भी लेख के लिए इसी शब्द का इस्तेमाल होता है (दे० सेनार्ट, इंस्क्रिप्शंस आ पियदसि, २. १००)। पर ध्यान देने की बात यह है कि 'एवं आह' के प्रयोग को नितांत भारतीय भी मान सकते हैं। कौटिल्य ने प्रज्ञापन-शासन (सूचना लेख) के लि उल्लिखित फ़िकरों में इसका भी उल्लेख किया है। राज-शासन के अन्य प्रकार को कौटि आज्ञा-लेख कहता है। इसके उदाहरण इस लेख में ही नहीं बल्कि चट्टान लेख ३ और में भी हैं जहां अशोक अपनी आज्ञा या डिक्री अपने विभिन्न अफसरों और परिषद् के दर्ज कराता है।

'देवानांप्रिय प्रियदर्शी' इस वाक्यांश में वी० ए० स्मिथ के मतानुसार 'देवानांप्रि आदरसूचक पद है और इसी अर्थ में हमने भी इसको लिया है किन्तु देवानां-प्रि शब्द (देव-प्रिय नहीं) पाणिनि के एक सूत्र (६, ३, २१) के अनुसार अनादर का सूच है। कात्यायन (ई० पू० ३५० सर आर० जी० भंडारकर) इसे अपवाद में रखता है पतंजलि (ई० पू० १५०) और यहां तक कि काशिका (६५० ई०) भी इसे अपवाद मानते हैं। पर इन सबके उत्तरकालीन वैयाकरण भट्टोजीदीक्षित इसे अपव में नहीं रखते। वे इसका अनादरवाची अर्थ 'मूर्ख' ही करते हैं। उनके मत से देवानां ब्रह्मज्ञान से रहित उस पुरुष को कहते हैं जो यज्ञ और पूजा से भगवान को प्रस करने का यत्न करता है जैसे गाय दूध देकर मालिक को (दे० तत्त्वबोधिनी और बा मनोरमा)। इस प्रकार एक उपाधि जो नंदों, मौर्यों, और शुंगों के युग में आदरवाची उस महान् राजा के प्रति ब्राह्मणों के दुराग्रह के कारण अनादर-सूचक बन गई।

पाणिनि का सूत्र है "षष्ठ्या आक्रोशे" अर्थात् आक्रोश अनादर के लिए समस्त प में षष्ठी की विभक्ति वर्तमान रहती है, जैसे चौरस्य-कुलम्, इसके विपरीत ब्राह्मण-कुल में षष्ठी विभक्ति लुप्त है क्योंकि इस पद से किसी अनादर की सूचना नहीं मिलती। इ प्रकार देवानांप्रिय वार्त्तिक का उदाहरण है। पतंजलि ने पाणिनि ५, ३, १४ के भाष्य देवानांप्रिय को तो दीर्घायुः और आयुष्मान की भांति आशीर्वाद का संबोधन माना है बाण के हर्षचरित में दोनों ही अवसरों पर इसे आदरसूचक माना है।

२. य हकं उपासके......
य सुमि पाका सयके...(रूपनाथ),
(या) प्रकास सके (जैसा हुल्ट्श ने पढ़ा है);
यं अं सुमि बुंपाशके (मास्की).
अं सुमि बुध-शके (मास्की, जैसा हुल्ट्श ने पढ़ा है).
इस प्रकार हुल्ट्श के मत से रूपनाथ पाठ में कहा है: अढ़ाई वर्ष और इससे कुछ अधि (बीत गए) जब मैं खुलेआम "शाक्य", मास्की पाठ के अनुसार "बुद्ध शाक्य" बना। शाक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बना, मैंने पराक्रम (उद्योग) नहीं किया।[1]

पर एक वर्ष—एक वर्ष से कुछ अधिक हुए जब मैं संघ[2] में गया, मैंने

(जारी)

का अर्थ बौद्ध होता है। कौटिल्य (३, २०) शाक्याजीवकादीन् पद का व्यवहार करता है जिसका अर्थ है शाक्य, आजीविक आदि। रुम्मिनदेई स्तंभ में बुद्ध को शाक्यमुनि कहा गया है।

१. प्रक्रम क्रिया से प्रकंते।

२. इस अंश का वास्तविक अर्थ समझने के लिए जैसा पुस्तक के मुख्य अंश में स्पष्ट किया गया है, चट्टान लेख १३ को सामने रखना होगा। इस चट्टान लेख में कलिंग युद्ध के बाद बौद्ध धर्म में अशोक की भक्ति बढ़ने का उल्लेख है। इस भक्ति की वृद्धि का मतलब निष्क्रिय उपासक से आगे बढ़कर एक ऊंचे धरातल पर जाना है। यह धरातल भिक्खु-गतिक का हो सकता है या फिर अन्य कोई। यह बात पुस्तक में स्पष्ट कर दी गई है।

अशोक इस स्थिति में "एक वर्ष से अधिक" ही रह चुका था जब उसने पहला लघु चट्टान लेख जारी किया। यह लेख ई० पू० २६० में अर्थात् कलिंग युद्ध के करीब दो साल बाद जारी किया गया था। कलिंग युद्ध के बाद ही बौद्ध धर्म के प्रति अशोक का वास्तविक पराक्रम शुरू हुआ था। यह एक कारण है जिससे इस लेख को पहला लेख मानना पड़ता है। चट्टान लेखों की स्वयं की साक्षी के अनुसार वे ई० पू० २५८-५७ में जारी हुए थे।

मूल पाठ ये हैं :

संघे उपयीते (ब्रह्मगिरि और सिद्दपुर) या उपेते (रूपनाथ) या उपयाते (वैराट) या उपगते (मास्की)। निद्देस की टीका में उपेतो का अर्थ आसन्नं गतो (पास जाना) और उपगतो का अर्थ उपगंत्वा थितो (पास जाकर ठहरना) कहा है।

इस प्रकार इस वाक्यांश से यह बात जाहिर नहीं होती कि अशोक हमेशा के लिए भिक्षु बन गया था जैसा कि लोग प्रायः अनुमान कर लेते हैं। इसका मतलब सिर्फ उसके संघ में जाने से हो सकता है जैसा कि जनश्रुतियां कहती हैं।

वास्तव में इस दुरुह अंश पर जनश्रुतियां प्रकाश डालती प्रतीत होती हैं। लेखों की ही भांति जनश्रुतियों में भी बौद्ध धर्म के प्रति अशोक की प्रगति की दो अवस्थाएं कही हैं। पहली अवस्था में वह निष्क्रिय था और दूसरी अवस्था में उसने पराक्रम किये। लेखों की भांति इनमें भी पहली अवस्था तीन वर्षों की कही गई है। उदाहरणार्थ, महावंश और समंतपासादिक में कहा है कि अभिषेक के तीन वर्ष बाद तक अशोक अपने पैतृक धर्म के प्रति आस्थावान था। उसके बाप-दादे बौद्ध न थे (राजाकिर अभिसेकं पापुणित्व तीणि येव संवच्छरानि बाहिरक पासंडं परिगण्हि)। इस अवधि में वह निग्रोध के संपर्क में आया था जिसने उसे अप्पमाद (लेखों का पराक्रम) के सिद्धान्त का उपदेश किया। उसने अनेक भिक्षुओं से उसका परिचय भी कराया। चौथे वर्ष में अशोक संघ में गया (गंत्वा संघं) और उसने मोग्गलिपुत्त तिस्स के नेतृत्व में संघ को अपने महल में आमंत्रित किया। अब तक अशोक एक आचार्य का अनुगत था। अब वह संघ का अनुगत हो गया। इस दूसरी स्थिति को जनश्रुतियां सासनप्पवेशो कहती हैं जो लेखों के संघे उपगते के समान है। लेखों में इसे धार्मिक पराक्रम कहा है। जनश्रुतियों में उसके पराक्रम का भाष्य भी है : (१) विहारकम्म—तीन वर्ष तक धार्मिक इमारतें बनवाना (स्तम्भ लेख ७ का धंमथंभस्); (२) अभिषेक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

खूब पराक्रम किया।

इस बीच जंबुद्वीप के मनुष्य जो देवताओं से नहीं मिले-जुले थे, वे अब देवताओं से मिल गए हैं।[1]

(जारी)
के चौथे वर्ष में उसके भाई तिस्स व दामाद अग्निब्रह्मा ने प्रव्रज्या ली; (३) छठे वर्ष में उसके पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा ने प्रव्रज्या ली और अशोक शासनदायाद बना। उत्तर के ग्रंथ दिव्यावदान में यह कथा कुछ दूसरी तरह से कही है। इस ग्रंथ के अनुसार पहली अवस्था में अशोक भिक्षु बालपंडित या समुद्र के प्रयत्नों से संघ के प्रति आकर्षित हुआ। दूसरी अवस्था में उसने (क) उपगुप्त को अपना आचार्य माना, और (ख) उनके नेतृत्व में बौद्ध तीर्थों की यात्रा की। दिव्या० के अनुसार अशोक ने आचार्य, बुद्ध और धर्म की शरण जाने (शरणं ऋषि उपैमि तं च बुद्ध गणवरं आर्यनिवेदितं च धर्मम् और धर्मराजस्य शासने) के लिये अपना सर्वस्व—बाल-बच्चे, घर-द्वार, पत्नियां और धनजन—न्योछावर करने की इच्छा की घोषणा की। डा० बरुआ का मत है कि संघं उपगते या उपेते संक्षेप में संघं शरणं गतो या सरणत्थं उपेतो या संघस्स सिस्सभावूपगतो (सुमंगलव. १, २३०-२३६). ही है। उन्होंने विसुद्धिमग्ग में संघ-गत पद भी खोज निकाला है जो संघं उपगते के अधिक नजदीक है (पालि टे० सो० का संस्करण, खंड १, पृ० १८)।

१. इस अंश का पूरी तरह से खुलासा नहीं हो पाया है। इसके विभिन्न पाठ नीचे दिये गये हैं:

रूपनाथ—या इमाय कालाय जंबुदिपसि
सहसराम—एतेन च अंतलेन जंबुदीपसि
ब्रह्मगिरि—इमिना चु कालेन
मास्की—पुरे जबुंदीपसि
रूपनाथ—अमिसा देवा हुसु ते दानि मिसा कटा
सहसराम—अमिसं देवा संत मुनिसा मिसंदेव कटा
ब्रह्मगिरि—अमिसा समाना मुनिसा जंबुदीपसि मिसा देवेहि
मास्की—ये अमिसा देवा हुसु ते दानि मिसिभूता

हुल्ट्श तक सभी अनुवादकों ने यही माना है कि इसमें देवताओं के मनुष्यों से या मनुष्यों के देवताओं से मिलने-जुलने का उल्लेख है। पर उन्होंने यह बतलाने का कष्ट नहीं किया है कि इस मिलने-जुलने (Commingling) से उनका क्या तात्पर्य है। डा० टामस (कैंब्रिज हिस्ट्री, पृ० ५०५) के अनुसार इसका तात्पर्य है कि "अशोक दावा करता है कि उसने इस एक साल से किंचित अधिक की अवधि में ब्राह्मण देवताओं का ज्ञान भारत की उन जातियों—जैसे वन्य जातियों—को कराया जो इसके पहले उनके बारे में कुछ भी नहीं जानती थीं। यहाँ मैं इससे भी अधिक सरल स्पष्टीकरण प्रस्तुत करता हूं:

(१) इस दर्म्यान जंबुद्वीप में लोग जो 'देवताओं से मिले-जुले न थे' (अर्थात् जिनका न कोई देवता था न धर्म) वे 'देवताओं से मिल-जुल गए' (अर्थात् वे धार्मिक या देवताओं के उपासक बन गए)।

अशोक जब संघ के निकट गया तो उसके धर्म-प्रचार के कार्यों की वजह से जनता में धर्म का काफी प्रचार हो गया।

(२) इस दर्म्यान जंबुद्वीप में लोग जिनके देवता एकताबद्ध न थे अब ऐसे हो गए जिनके देवता एकताबद्ध हों।

(टिप्पणी अगले पृष्ठ पर जारी)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(जारी)

दूसरे शब्दों में इस समय में देवताओं और उनके उपासकों (अर्थात् परस्पर विरुद्ध संप्रदायों) का संघर्ष प्रायः समाप्त हो गया।

दूसरे लेखों में अशोक धार्मिक सहिष्णुता और ब्राह्मणों-श्रमणों के प्रति आदर का उपदेश करता है। यहाँ वह कहता है कि धार्मिक अनुशासन के कारण वह उस स्थिति पर पहुंच गया है जहाँ उसकी दृष्टि में विभिन्न संप्रदायों के देवताओं में एकता संभव है। अब वह सभी धर्मों के बीच एकता के लिए प्रयत्न करने लगा।

इन दोनों व्याख्याओं में पहली रूपनाथ और मास्की पर लागू नहीं होती। इनमें पहले में एकतारहित देवताओं में एकता स्थापना की बात कही है। इनमें लोगों का या मनुष्यों में धर्म या देवभक्ति का कोई उल्लेख नहीं है। रूपनाथ के लेख में साफ-साफ कहा है कि पहले देवताओं में एकता न थी, अब उनमें एकता हो गई है, अर्थात् धार्मिक संघर्ष प्रायः समाप्त हो चुके हैं। मास्की का लेख भी देवताओं और धर्मों की एकता के बारे में प्रायः इतना ही स्पष्ट है।

अब एक ही ऐसा लेख शेष रहता है जिसमें यह अंश है, वह है ब्रह्मगिरि का। और इसमें मनुष्यों और देवताओं दोनों का उल्लेख है। इसकी व्याख्या (१) और (२) दोनों में से किसी भी एक रूप में की जा सकती है। यदि "मिसा देवेहि" का अर्थ 'देवताओं से मिल-जुल गए' करें तो (१) वाला अर्थ निकलेगा। यदि इसका अर्थ 'और देवताओं सहित मिल-जुल गए' या 'देवताओं के जरिए मिले-जुले' करें तो इसका वही अर्थ होगा जो (२) में है। हाँ, "अमिसा समाना मुनिसा" का अर्थ "देवताओं से अलग-थलग" (disunited) नहीं हो सकता, जैसा (१) के अर्थ में होना चाहिए। इसका सहज अर्थ "आपस में एकतारहित" होगा जोकि (२) से मेल खाता है।

इस प्रकार (२) वाला अर्थ सभी पाठों के अनुकूल है। अतः यही शुद्ध पाठ होगा।

इसके बाद अशोक का कथन है कि सभी धर्मों में एकता के प्रचार का कार्य किसी राजा या राजकुमार या उच्च वर्ग का एकाधिकार नहीं है। सद्भाव व सहिष्णुता का प्रचार कोई भी कर सकता है चाहे उसका समाज में कितना ही निम्न स्थान क्यों न हो। सभी इस गुण पर अमल कर सकते हैं और उन्हें करना भी चाहिए।

अन्य धर्मों के प्रति कर्त्तव्यों का निर्देश करने के बाद यह लेख (दूसरे हिस्से में जिसे लघु चट्टान लेख २ कहते हैं) अपने संबंधियों जैसे माता-पिता, आचार्य, बांधव, पड़ोसी व अन्य प्राणियों के प्रति व्यवहार का वह उपदेश करता है। इस लेख की विषयवस्तु साथियों संबंधियों और जीवों के प्रति कर्त्तव्य है।

ऊपर जो दो व्याख्याएं दी हैं उनके अतिरिक्त एक तीसरी व्याख्या भी हो सकती है जो लेख के प्रसंग को देखते हुए अधिक संभाव्य भी मालूम पड़ती है। प्रसंग से ऐसा प्रतीत होता है कि अशोक यहाँ कहना चाहता है कि "उसके एक साल से कुछ अधिक पराक्रम के फलस्वरूप मैंने इतनी प्रगति कर ली (बाढं च मे पकंते...पकमस हि इयं फले) कि इतने अल्प-काल में अब जंबुद्वीप (शास्त्रों के अनुसार अध्यात्म जीवन के लिए संसार में श्रेष्ठ भूमि) के लोग 'देवताओं से मिल-जुल सकते हैं'। पर कोई यह न समझ ले कि ऐसी उन्नति हमारे जैसे बड़े लोगों के लिए ही संभव है 'सुई के छेद में से ऊंट निकल जाना संभव है, पर धनी के लिए स्वर्ग पहुँचना दुष्कर है'। बड़ा हो या छोटा सभी को पराक्रम करना चाहिए। पराक्रम से ही ध्येय अर्थात् विपुल-सर्ग की प्राप्ति हो सकती है।" इस व्याख्या में पराक्रम और उसका फल राजा की वैयक्तिक चीज है निर्वैयक्तिक नहीं। यहाँ अशोक अपने अनुभवों के आधार पर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यह उद्योग का ही फल है ! पर इसे केवल बड़े लोग[1] ही प्राप्त कर सकते हों, ऐसी बात नहीं, क्योंकि छोटे लोग[2] भी उद्योग करें तो विपुल स्वर्ग का सुख पा सकते हैं।[3]

इसीलिए यह संदेश सुनाया गया कि (छोटे भी) बड़ों के साथ इसी तरह उद्योग करें और कि सीमांत पर रहने वाले भी[4] (इसे) जानें और कि यह उद्योग चिरस्थायी हो। यही नहीं, इसका विस्तार होगा, बहुत विस्तार होगा, इसका कम से कम[5] डेढ़ गुना विस्तार होगा।[6] और यह संदेश राजा ने २५६ बार दौरों

(जारी)
अपनी प्रजा से अपील कर रहा है कि वे भी धर्म के लिए पराक्रम करें। अन्य व्याख्याओं में एक असंभव कल्पना यह करनी होगी कि एक साल के ही प्रचार-कार्य से अशोक ने सारी प्रजा को देवतुल्य बना दिया या वन्य जातियों को देवताओं का ज्ञान करा दिया या सभी संप्रदायों के संघर्ष समाप्त कर उनमें एकतानता का प्रचार कर दिया। इसलिए अशोक के पक्ष में इसकी वैयक्तिक व्याख्या ही उचित होगी। जहाँ तक जंबुद्वीप की जनता की श्रेष्ठ आध्यात्मिक क्षमता का प्रश्न है, जिसका गुणगान सभी शास्त्रों में है, हम मनु की ब्रह्मावर्त की परिभाषा का उल्लेख कर सकते हैं। वे इसे 'देवर्भूमि' अर्थात् देवनिर्मित भूमि कहते हैं। विष्णुपुराण में कहा है कि सहस्रों जन्मों के संचित पुण्यों के फलस्वरूप मनुष्य का भारत-भूमि में जन्म होता है। भारतवासी धर्म के मामले में देवताओं से भी बढ़े-चढ़े हैं। इसलिए देवता भी यहाँ जन्म धारण करने को लालायित रहते हैं। यह भाव सबसे पहले अथर्ववेद में मिलता है। (दे० मेरी पुस्तक नेशनलिज्म इन हिंदू कल्चर, एशियन लाइब्रेरी सीरीज, लंदन, १९२१)।

१. महात्पेनेव (अर्थात् महात्मनैव)। कौटिल्य (1, १३) प्रधान और क्षुद्रक शब्दों का इस्तेमाल करता है। मास्की और अन्य पाठों में उडालके या उडाला शब्दों का इस्तेमाल हुआ है जो संस्कृत उदार का तद्भव है।

२. ध्यान देने की बात है कि धार्मिक पराक्रम का पहला फल देवताओं का सानिध्य और दूसरा फल स्वर्ग की प्राप्ति बतलाया है।

३. पकमि...णेण=पकममिनेना (रूप०), पलकममीनेना (सहस०), किन्तु मास्की में धमयुतेन अर्थात् धर्म-भक्ति है। इससे धंमयुत शब्द का अर्थ स्पष्ट हो जाता है जो अन्य लेखों में कई बार आया है (चट्टान लेख ५, स्तंभ लेख ७)।

४. इन सीमांत जातियों (अंतों) के नाम चट्टान लेख २ और १३ में दिए गए हैं। ध्यान देने की बात यह है कि ये लघु चट्टान लेख सीमांत जातियों के लिए थे। अतः साम्राज्य की सीमा—मैसूर में पाए जाते हैं। अतः इन स्थानों का चुनाव संयोगवश नहीं अपितु उद्देश्य के लिए किया गया था।

५. अवरधिय=अवलधियेना (सहस०)=अवरार्द्धेन अर्थात् कम से कम (मिला० पाणिनि 5, ४, ५७). मिला० अपरार्द्धय=बिना अधिकतम के।

६. रूपनाथ और सहसराम के पाठ में इसके आगे भी है : "यही संदेश चट्टानों और स्तंभों पर भी जहाँ हों वहाँ (हध) खुदवाया जाए।"

इससे पता चलता है कि कुछ स्तंभ अशोक से पहले के भी वर्तमान थे। ये उसके पूर्ववर्तियों ने बनवाये और लगवाये होंगे।

इससे यह भी सिद्ध होता है कि ये लघु स्तंभ लेख अन्य सभी लेखों से पहले के हैं क्योंकि इसमें लेख खुदवाने की मंशा जाहिर की गई है, वे तब तक खोदे नहीं गए थे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(विवास) पर प्रसारित कराया।[1]

---

१. यह अंश अशोक के लेखों में सबसे कठिन माना जाता है। इसकी व्याख्या करने से पूर्व इसके विभिन्न पाठ देना जरूरी है :

बैराट—इयं च स्रावणे सावापिते व्यूथेन २०० ५० ६.

रूपनाथ—व्युठेना सावने कटे २०० ५० ६ सत विवासा त।

सहस०—इयं च सवने विवुथेन दुवे सपंना लाति-सता विवुथा ति २०० ५० ६

(१) ऊपर के पाठों से जाहिर है कि व्यूथेन या व्युठेना और विवुथेन एक ही हैं और इसी तरह विवुथा और विवासा भी। विवुथ दोनों में वर्तमान है : अतः व्यूथ, व्युठ, विवुथ और विवास का एक ही मूल हैं। विवास का शाब्दिक अर्थ है "बाहर रहना (या घर से बाहर निवास करना)"। विवास का प्रयोग दौरे या मिशन के लिए हो सकता है और ऐसे दौरे के दिनों की गिनती इतने विवास के रूप में दी जा सकती है। व्यूथ या व्युठ [संस्कृत व्युषित या व्युष्ट मोनियर विलियम्स की डिक्शनरी के अनुसार "घर से गैर-हाजिर" या "जिसने वितायी हो" (उदा० के लिए रात्रिम्—रात)] का अर्थ 'जो दौरे या मिशन पर हो' हो सकता है।

इसमें शक नहीं कि व्युष्ट के दूसरे अर्थ भी हैं। कौटिल्य (२, ६ व ७) में इसका प्रयोग 'राज्यवर्ष, महीना, पक्ष और दिन' के अर्थ में आया है। वराह श्रौत सूत्र (अकुल-पद, खंड ३) में इसका प्रयोग 'रात्रि के चौथे याम' और बौधायन धर्म सूत्र (४, ५, ३०) में "पूजा में रात्रि बिताकर" के अर्थ में हुआ है; पर अशोक के इन लेखों में व्यूथ या व्युठ को विवास के साथ देखना होगा। इसलिए इसका संबंध घर या राजधानी से दूर दौरे या मिशन पर होना चाहिए।

(२) अब २०० ५० ६ का विचार करें।

रूपनाथ "२०० ५० ६ सत विवासात" (या ति जैसा हुल्ट्श का प्रस्ताव है) और सहसराम "दुवे सपंना लाति सता विवुथा ति"—दोनों पाठों से स्पष्ट है कि यह विवासों या विवुथों की संख्या है।

यदि विवास या विवुथ का अर्थ 'राजधानी से दूर के दिन' है तो ऐसे २५६ दिन हुए। यदि व्यूथ की भांति विवास या विवुथ का अर्थ है "अधिकारी जो किसी विशेष कार्य से भेजा गया हो" या "अधिकारी जो भेजा गया हो" तो २५६ अधिकारी इतने ही स्थानों में भेजे गए होंगे। दक्षिण भारत के ब्रह्मगिरि के लेख में सावापिते व्यूथेन के तुरंत बाद २०० ५० ६ आता है। इनसे घोषणा के ब्योरों का बोध होता है। रूपनाथ और सहसराम के लेखों से विदित होता है कि इन ब्योरों का संबंध या तो भेजने के दिनों से या फिर इसके तरीकों से होना चाहिए। वास्तव में इन लेखों से उन सभी तरीकों का बोध होता है जिन्हें अशोक ने अपने संदेशों के प्रचार के लिए अपनाया था। उसने सबसे पहले उन्हें चट्टानों (पवतिसु) और खंभों (सिलायंभसि) पर खुदवाया (लेखापेतवालत) और इस प्रकार उन्हें स्थायी बनवाया होगा। उन्हें अपने प्रचार अधिकारियों को या फिर घोषणाओं की प्रतियों को विभिन्न इलाकों में भेजकर लोगों में प्रसारित कराया। वस्तुतः ब्रह्मगिरि के सावणे सावापिते और रूपनाथ के सावने कटे में भेद है। सावापिते का अर्थ सुनवाने से है और कटे=कृता का अर्थ पाणिनि (४, ३, ८७, ११६) से 'अधिकृत्य कृते ग्रन्थे' और 'कृते ग्रन्थे' नियम ग्रन्थ देखने से है।

(टिप्पणी अगले पृष्ट पर जारी)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(जारी)

(३) सहसराम के लेख में 'दुवे संपंना लाति-सता' '२०० ५० ६' संख्या का में अर्थ है। इसका संस्कृत रूप होगा "द्वे पत्पंचाशदधिके शते"। यहां 'लाति' 'राति' (रातें) है जैसा कि सामान्यतया विद्वानों का मत है क्योंकि तब इसका अन्वयार्थ होगा 'दो (छ रातें) सौ' या 'दो छप्पन (रातें सौ)" और अर्थ होगा 'रातें दो सौ छप्पन' पर २५ लिए यदि पूरी दशमिक लेखन विधि नहीं तो कम से कम अंकों का स्थानिक मूल्य तो चाहिए। अंकों के स्थानिक मूल्य की विधि की ईजाद से पहले 'छप्पन (में जोड़ो) दो अर्थात् छप्पन और दो सौ के बीच अति (अधिक के अर्थ में) का होना जरूरी है। प्रकार लाति अति के अर्थ में है। इसलिए अधिक संभावना यही है कि यह राति, लिए नहीं होगा। इसमें शक नहीं कि वसुबंधु और व्यासभाष्य में स्थानिक मूल्य की का उल्लेख है। पर इससे इस प्रणाली का इतिहास ईस्वी दूसरी शती तक ही जाएगा। जहां तक अशोक के लेखों का संबंध है २०० ५० ६ की संख्याओं से ही स्पष्ट है कि समय तक स्थानिक मूल्य की प्रणाली का ईजाद नहीं हुआ था। हम यह भी नहीं कह स कि 'दुवे सपंना लाति-सता' का अर्थ शब्दों में २०० ५० ६ का लेखन है क्योंकि ५० ६ के लिए नहीं हो सकता। 'दुवे' और 'सता' के बीच संपना का खुलासा मु हो जाएगा।

अब हम फिर से मूल प्रश्न पर आ जाएं। तो 'लाति' में 'ल' क्या है? इसकी व्याख्याएं संभव हैं :

(i) सपंनालाति=सपंनासाति=सपंनाशा+अति=छप्पन (में जोड़े)। इसमें लिपिकार की भूल मानकर स या श मानना होगा। या फिर पंनाल पंनाश का एक विभा गत रूप होगा (यद्यपि ध्वनिशास्त्र की दृष्टि से यह तर्क पुष्ट नहीं है)।

(ii) (मूलतः) सपंना+अति=सपंनायति (या सपंनायाति)=सपंनालाति।

स्वयं रूपनाथ के लेख में हमें 'य' के स्थान पर 'ल' का प्रयोग मिलता है। जैसे पंक्ति में 'पवतिसु लेखापेत वालत' निश्चय ही 'पवतिसु लेखापेतवायत' है जो पांचवीं पं में 'सिलाठंभसि लाखापेतवयत' से तुलना करने पर स्पष्ट है। अतः या तो यह लिपि की भूल है या फिर (यद्यपि यह ध्वनिशास्त्र की दृष्टि से पूर्णतया सिद्ध न है) यह ध्वनिगत रूप है। ध्यान देने की बात यह है कि रूपनाथ में हमें 'वाय' और 'वय' दोनों रूप मिलते हैं जैसे पांचवीं पंक्ति में 'विवसेतवाय ति' में।

किंतु 'स-पंना-लाति' की एक तीसरी व्याख्या भी संभव है जो मेरी राय में समीचीन है। पालि का सूत्र है यवमदनतरला चागमा। इस सूत्र के अनुसार य, व, म, द त, र और ल व्यंजनाक्षर पूर्व पद के अंतिम स्वर और उसके बाद के पद के प्रारंभिक स्वर मध्य संधि होने की अवस्था में आते हैं। इस नियम के उदाहरण हैं छ+असीति छलासीति आदि। अतः इसी नियम से छ-पंनालाति की संधि छपंना+अति=छपंनाला हो जाती है। (पालि के इस सूत्र की ओर मेरा ध्यान चरण दास चटर्जी ने आक किया है।)

(४) रूपनाथ का सत और सहसराम का सता प्रथम दृष्ट्या एक ही प्रतीत हैं पर वास्तव में वे एक नहीं हैं। २०० ५० ६ सत विवासा (रूपनाथ) में 'सत' का सौ नहीं होगा क्योंकि तब इसका अर्थ २५६०० होगा। और 'दुवे सपंना लाति-सता' में का अर्थ सौ है। क्योंकि अन्यथा २५६ की संख्या सिद्ध नहीं होती है। अतः सत विवा सत=संतः है।

. RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

२[1]

और भी देवताओं के प्रिय ऐसा कहते हैं: माता-पिता की शुश्रूषा (सेवा) करनी चाहिए,[2] इसी तरह सभी प्राणियों पर दया[3] दृढ़ सिद्धांत[4] हो, सच ही बोलना चाहिए। इन धार्मिक गुणों (धंमगुण) का आचरण करना चाहिए।

इसी प्रकार अंतेवासी को अपने आचार्य का आदर करना चाहिए[5] और अपने संबंधियों के प्रति यथायोग्य (यथार्ह) व्यवहार करना चाहिए। यही प्राचीन रीति[6]

(जारी)

ऊपर (१), (२) और (३) की व्याख्याओं के प्रकाश में इस अंश की नीचे लिखी व्याख्याएँ संभव हैं :

१. यह घोषणा (मैंने) तब निकाली जब दौरे पर २५६ दिन बीत चुके थे।

अत: स्पष्ट है कि उस समय दौरों की डायरी रखते थे। यह घोषणा २५६वें विवास या दौरे पर अनुपस्थिति के दिन निकली।

२. विवुथा, विवासा=जो दौरे या मिशन पर हों (मिला० विवसेतवाय रूपनाथ), मानने से यह घोषणा (मैंने) तब निकाली जब दौरे पर था और २५६ अधिकारी (इतनी ही जगहों में) इस घोषणा के साथ भेजे गए।

चलते-चलते इस बात की ओर भी ध्यान दिला दें कि २५६=१६×१६ या ४×८×८ की संख्या शुभ है। या फिर यह ८ दिशाओं के ३२, ३२ विभाग हैं या यह प्रशासन के विशिष्ट प्रदेश के जिलों की संख्या होगी।

१. यह लेख सिर्फ मैसूर के तीन स्थानों में मिला है।

२. सुसूसितविये=शुश्रूषितव्य:।

३. गरुत=गुरुता, बुहलर के मत से गुरुत् (वं), किंतु हुल्ट्श इसे गुरुसु=गुरुजनों में पढ़ते हैं।

४. द्रहितव्यं, शाब्दिक अर्थ दृढ़ करना चाहिए, किन्तु हुल्ट्श के मत से इस अंश का अर्थ है (दया की) दृढ़ता दिखलानी चाहिए, यह दृह् धातु से व्युत्पन्न दर्ह्योति का क्रियावाचक संज्ञा रूप है।

५. अंतेवासिना=विद्यार्थी जो गुरु के घर में रहता है।

६. पुराण : इस शब्द की सार्थकता इसी से प्रकट होती है कि यहाँ सदाचार के जिस नियम का अशोक ने उल्लेख किया है वह तैत्तिरीय उपनिषद् (1, 11) में स्नातकों को आचार्य के उपदेश से लिया गया है। अशोक के उपदेश का आधार है : 'सत्यं वद, धर्मं चर, मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव, अतिथिदेवो भव'। सिगालोवाद-सुत्त का भी यही उपदेश है (कुछ विद्वानों के मत से इन सूत्र की उद्धरणी भाब्रू के लेख में है)। गृहस्थपुत्र सिगाल को छह दिशाओं की पूजा करते देख भगवान बुद्ध बोले कि इन छह दिशाओं की पूजा करनी चाहिए (१) माता-पिता, (२) आचार्य, (३) पत्नी और बच्चे, (४) मित्र-बांधव, (५) नौकर-चाकर, और (६) ब्राह्मण और संन्यासी। महाभारत में भी बारंबार यही उपदेश किया है। अकस्मात् याद आ गया एक श्लोक है :

'वृद्धोपसेवा दानं च शौचमुत्थानमेव च।
सर्वभूतानुकंपा च......' (शांति० राज० प०, अध्या० ५६, १४२)

इस लेख में अशोक ने पहली बार अपने धर्म की परिभाषा—धंमगुणा जनता के लिए प्रस्तुत की है। इससे यह सिद्ध होता है कि यह लेख अन्य चट्टान लेखों और स्तंभ लेखों से पहले का है। उन लेखों में धर्म की विस्तृत व्याख्याएँ हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है और इससे आयु बढ़ती है। इसी के अनुसार चलना चाहिए।[1] चपड़ लिपिकार[2] ने इसे लिखा।

ख. भाब्रू या बैराट सं० २ चट्टान लेख[3]

मगध[4] के राजा प्रियदर्शी[5] संघ को अभिवादन करते हैं और उनके स्वास्थ्य और सुख की कामना करते हुए कहते हैं :

भंते ! आपको विदित ही है कि बुद्ध, धर्म और संघ में मेरी कितनी श्रद्धा है।[6]

भंते ! भगवान बुद्ध ने जो कुछ कहा है वह सब सुभाषित है।[7] पर भंते ! इसमें सद्धर्म को चिरस्थायी करने के लिए[8] जो कुछ मैंने चुना है उसे यहां कहता हूं।

१. विनय-समुकस—(विनय-समुत्कर्ष)।[9]

---

१. जटिंग रामेश्वर के पाठ में इतना और है 'हेवं धंमे देवाणंपियस' अर्थात् यह देवताओं के प्रिय का धर्म है।

२. लिपिकरेण : यह शब्द उस लेख में जो देश में सबसे दक्षिण में मिला है—खरोष्ठी लिपि में है। शायद इसका मंतव्य लिपिकार का प्रदर्शन का भाव था कि वह विभिन्न शैलियों से परिचित है। इससे यह भी प्रकट होता है कि वह उत्तर-पश्चिम सीमा का रहने वाला था, जहाँ यह लिपि प्रचलित थी।

३. यह लेख एक छोटी चट्टान पर खुदा हुआ था जिसे वहां से हटाना मुश्किल न था। अब यह शिला-खंड कलकत्ते की एशियाटिक सोसायटी के संग्रहालय में सुरक्षित है। बैराट में यह उस शिला के पास में ही था जिस पर लघु चट्टान लेख १ खुदा है। इस प्रकार यह उसका समकालीन ही हुआ।

४. मागधे : पूरा पद है 'प्रियदसि लाजा मागधे'। इसका अर्थ हुआ 'पियदसि, मगध का राजा'। वैसी अवस्था में यह लेख पूरे 'संघ' को संबोधित है न कि मगध के संघ को (जैसा कि कुछ विद्वान मानते हैं)। दूर राजपूताना से मगध के संघ को संबोधित करने का कोई तुक नहीं प्रतीत होता।

५. प्रियदसि : शाब्दिक अर्थ 'प्रिय अर्थात् दूसरों की भलाई देखने वाला' या 'दूसरों की भलाई सोचने वाला।' राजा के लिए यह सबसे उत्तम उपाधि है 'प्रकृतिरंजनात्' प्रजा को प्रसन्न करने से ही राजा बना है। इसके अन्य अर्थ भी हैं, 'जो सबका प्रिय देखे' या 'जो देखने में प्रिय या सुंदर' हो।

६. बौद्ध त्रिरत्न के प्रति भक्ति के इस एलान की तुलना लघु चट्टान लेख १ के 'संघे उपगते' से करनी चाहिए जिसकी व्याख्या को लेकर इतना विवाद हुआ है।

७. पूशिन ने अंगुत्तर (४, पृ० १६४) से इसकी पहचान की है।

८. महाव्युत्पत्ति और अंगुत्तर में यह पद मिलता है।

९. मिला० सामुक्कंसिका-धंमदेसना (उदान ५, ३)। सारनाथ में भगवान के प्रथम उपदेश में आए चार आर्य सत्यों के लिए इसका प्रयोग होता है। ए० जे० एडमंड्स (ज० रा० ए० सो०, १९१३, पृ० ३८७) की राय में यहां अशोक का ध्यान उस ओर अवश्य रहा होगा। डा० वेणी माधव बरुआ इसकी पहचान सिगालोवाद-सुत्तंत (दीघ निकाय, ३, १८०-१९४) से करते हैं। उनका तर्क है कि जैसा कि बुद्धघोष की टीका में कहा है यह गृहस्थों के लिए है (इसी से इसे गिहिविनय कहते हैं) और सबके लिए भिक्षु, भिक्षुणियों, और उपासकों के लिए है। अशोक ने इन सबको इसका मनन और धारण करने का उपदेश किया है। इस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

२. अलिय-वसानि—अर्थात् आर्य-जीवन— ऋषियों का आचरण—आदर्श जीवन के तरीके।[1]

३. अनागत-भयानि—अनागत का भय—संघ और धर्म के लिए खतरे।[2]

४. मुनि-गाथा—कौन मुनि है—का गीत।[3]

५. मौनेय-सूते—मौन के बारे में उपदेश।[4]

६. उपतिस-पसिने—उपतिष्य के प्रश्न।[5]

७. लाघुलोवादे[6] मुसावादं[7] अधिगिच्य[8]—भगवान बुद्ध के राहुल को उपदेश—मृषा अर्थात् झूठ के बारे में उपदेश से प्रारंभ कर।

(जारी)
सुत्तंत में अरियस्स विनय अर्थात् अशोक के विनय-समुकस (आदर्श विनय) का भी उपदेश है (ज० रा० ए० सो०, १९१५, पृ० ८०९)। डा० बरुआ के अनुवाद को मैंने अंशतः स्वीकार किया है। डा० एस० एन० मित्र ने एक दूसरी पहचान का भी सुझाव दिया है (इ० ए० ४८, १९१९, पृ० ८-११)। वे इसकी पहचान सप्पुरिससुत्त (मज्झिम ३, पृ० ३७-४५) से करते हैं जिसमें विनयधार और अत्तान उक्कंसेति=सामुकंसो शब्द आए हैं।

१. धर्मानंद कोसांबी और लेनमेन ने इ० ए० १९१२, पृ० ३७-४० में अंगुत्तर २ पृ० २७ से इसकी पहचान की है। राइज डेविड्स के मतानुसार यह अंगुत्तर ५, पृ० २९ (संगीति-सुत्त) है। हुल्ट्श इस पद का अर्थ अरिय वंसानि करते हैं।

२. अंगुत्तर ३, पृ० १०३, सुत्त ७८ (वही)।

३. सुत्त निपात, १, १२, पृ० ३६ (वही)।

४. सुत्त निपात ३, ११, पृ० १३१-४ का नालक सुत्त।

५. सारिपुत्त-सुत्त (वही ४, १६, पृ० १७६-९)। राइज डेविड्स (ज० रा० ए० सो०, १८९३, पृ० ६३९ में) इसकी पहचान विनय १, ३९, ४१ से करते हैं।

६. मज्झिम निकाय १, पृ० ४१४-४२०। इन वचनों की पहचान के बारे में एक बात ज्ञातव्य है। विभिन्न मतों की एक झलक देते हुए बुद्धघोष ने अपनी कृति विसुद्धिमग्ग में एक ऐसे भिक्षु की कहानी दी है जो निम्नलिखित सुत्तों में दिये बुद्ध के उपदेशों का आचरण करता था (१) रथ-विनीत-सुत्त (=अशोक का सं० ६), (२) नालक-सुत्त (=अशोक का सं० ५), (३) महा-अरियवंश (=अशोक के अलियवसानि के समकक्ष), और (४) तुवटक-सुत्त जिसमें बुद्ध पटिपदा (धार्मिक आचरणों), पटिमोक्ख और समाधि का उपदेश करते हैं। यही विनय समुकस की हीर है। भिक्षुओं के लिए बुद्धघोष ने जो वचन आदर्श माने थे अशोक ने भी उनकी ही उद्धरणी की है। इस महत्त्वपूर्ण हवाले के लिए मैं श्री चरण दास चटर्जी का ऋणी हूँ।

७. मृषा=झूठ के लिए बैराट के इस लेख में मुसा शब्द रूप का प्रयोग हुआ है इससे बैराट के अन्य लेख में आए अमिसा शब्द की सही व्याख्या करने में मदद मिलती है। यह एक दूसरा ही शब्द है जिसका संबंध मिस्र से है।

८. कुछ विद्वान (जैसे कर्न) इसे अधिगिच्य=अधिकृत्य (वही) पढ़ते हैं और कुछ (जैसे माइ-केलसन) अधिगिदृय=अधिगृह्य (?)।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भंते ! मैं चाहता हूं कि धर्म-ग्रंथों का बहुत से भिक्षु और भिक्षुणियां बार-बार श्रवण करें[1] और धारण करें और इसी प्रकार उपासक और उपासिकाएं भी (सुनें और धारण करें)।

इसीलिये भंते ! मैं यह लेख लिखवाता हूं कि लोग मेरा अभिप्राय जानें।[2]

ग. कलिंग चट्टान लेख

१

(धौली)[3]

देवताओं के प्रिय की आज्ञा से तोसली[4] के महामात्र नगर-व्यावहारिक

---

१. सुनयु या सुनेयु (हुल्ट्श)=शृणेयुः ; जैसा सेनार्ट (इंस्क्रिप्शंस आफ पियदसि, पृ० ७०) ने कहा है इससे पता चलता है कि विद्या उस समय लिखित नहीं बल्कि मुखस्थ थी।

२. इस लेख से स्पष्ट ही बौद्ध आगम-साहित्य के इतिहास पर प्रचुर प्रकाश पड़ता है। इससे यह बात सिद्ध हो जाती है कि अशोक बौद्ध ही था। इतना ही नहीं संघ पर उसका बड़ा अधिकार भाव भी था। वह भिक्षु-भिक्षुणियों और उपासकों सबको समान रूप से उपदेश करता था। सेनार्ट (इंस्क्रिप्शंस आफ पियदसि, २, पृ० १०३) को इस बात से आश्चर्य हुआ है कि यदि दक्षिणी जनश्रुतियों की बात मान ली जाय कि अशोक के समय तक बौद्ध आगम-साहित्य स्थिर हो चुका था तो संघ को संबोधित कर उसने भगवान के उपदेशों का सार बतलाने के लिए 'इतने अल्प विशिष्ट, संक्षिप्त, शास्त्रीय महत्त्व से हीन अंश क्यों चुने?' इतना ही नहीं उसने बड़े-बड़े ग्रन्थों का कोई उल्लेख नहीं किया है जिनके नामोल्लेख ही अपरिमित महत्त्व के होते। उनकी ओर ध्यान आकृष्ट करना तो और भी स्वाभाविक होता।

ध्यान देने की बात यह भी है कि लेख का विषय सिर्फ संघ से ही ताल्लुक रखता है और लेख सीधे संघ को संबोधित हैं। किंतु सारनाथ, सांची और कोसांबी के लघु स्तंभ लेखों के विषय भी संघ से संबंध रखते हैं पर ये तीनों लेख संघ को संबोधित नहीं हैं बल्कि संबंधित महामात्रों को संबोधित हैं। जैसा कि चट्टान लेख ५ से स्पष्ट है अशोक ने इन अधिकारियों की नियुक्ति सब धर्मों के हितसाधन के लिए की थी। अतः यह तर्कसंमत है कि भाब्रू का लेख महामात्रों को संबोधित नहीं है क्योंकि यह लेख उस समय जारी हुआ था जब महामात्रों के पदों की सृष्टि ही नहीं हुई थी। यह एक और प्रमाण है जिससे सिद्ध होता है कि भाब्रू का चट्टान लेख शेष चट्टान लेखों से पहले का है।

३. धौली में चट्टान पर लेख तीन कालमों में हैं। चट्टान लेख १ से ४ मध्य में हैं, दाहिने कालम में चट्टान लेख ७ से १० और १४, उसके बाद कलिंग चट्टान लेख २ है और कलिंग चट्टान लेख १ पूरा बायां कालम घेरे है।

४. तोसली की जगह जौगड़ के लेख में समापा है। नगर के इन अधिकारियों के लिए महामात्र-नगल-वियोहालक=नगरव्यावहारिक-महामात्र पद का व्यवहार हुआ है। यह कौटिल्य (१, १२) के पौरव्यावहारिक के तुल्य है जिसकी गणना उसने अठारह तीर्थों (राज्य के मुख्य अधिकारी) में की है। अन्यत्र (४, ५) कौटिल्य ने नागरिकमहामात्र पद का व्यवहार किया है। जौगड़ के लेख की 'दसवीं' पंक्ति में भी इसी पद का व्यवहार हुआ है। इससे सिद्ध होता है कि कौटिल्य और अशोक दोनों नगर-मजिस्ट्रेटों को महामात्रों का दर्जा देते हैं। कौटिल्य में नगरों में नागरिक (मुख्य कार्यकारी अधिकारी) का वही स्थान था जो जनपद

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रिकों[1] (वे ऊँचे अधिकारी जिनके अधीन नगर-प्रशासन था) से इस प्रकार कहना :

जो कुछ मैं (उचित) समझता हूं उसके अनुसार काम करने की और उचित उपायों से उसे पूरा करने की मेरी इच्छा होती है।

और इस उद्देश्य की पूर्ति का मुख्य उपाय मैं यह मानता हूं कि मैं आप लोगों को अनुदेश (दूं)।

क्योंकि आप लोग सहस्रों प्राणियों के ऊपर[2] इस उद्देश्य से रखे गए हैं कि उनका स्नेह प्राप्त करें।[3]

सभी मनुष्य मेरी (संततियां) प्रजा हैं।[4] जिस तरह मैं चाहता हूं कि मेरे बच्चे इहलोक में और परलोक में सभी तरह के हित और सुख प्राप्त करें उसी तरह (सभी) मनुष्यों के बारे में मेरी इच्छा है।[5]

आप लोग पूरी तरह से नहीं समझते कि यह बात कहां तक जाती है।[6]

कदाचित् कोई इसे समझता है, पर वह भी कुछ ही अंशों में, पूरी तरह नहीं।

यद्यपि आप लोग सुविहित[7] (भली-भांति उपकरण-सामग्री युक्त) हैं, तो भी

(जारी)

(जिला) में समाहर्ता का। दोनों के प्रशासन का नमूना एक ही था। नगर और प्रांत दोनों चार-चार हिस्सों में बंटे हुए थे। हर हिस्से का प्रधान अधिकारी स्थानिक कहलाता था। इसके नीचे के अधिकारी को गोप कहते थे। नगरों में गोप के अधीन दस से चालीस परिवार होते थे और प्रदेश में पांच से दस गांव होते थे (२,३५,३६)। कौटिल्य नगर के प्रीफेक्ट को पुर-मुख्य कहता है (१, १६)।

जहां तक तोसली का ताल्लुक है हुल्ट्श कटक जिले में मिले दो ताम्र-शासनों का उल्लेख करता है जिनमें उत्तरी और दक्षिणी तोसली का जिक्र है (ए० इं० ६,२८६)।

१. नगर-व्यावहारिक का चार्ज काफी बड़ा था। गवर्नर के बाद उसी का दर्जा था।

२. स्तंभ लेख ४ में राजूक=गवर्नर 'कई शत सहस्र व्यक्तियों पर नियुक्त' कहे गए हैं।

३. सु मुनिसानं; सु=संस्कृत स्वित् (हुल्ट्श)।

४. प्रजा के प्रति राजा के पितृवत् व्यवहार पर कौटिल्य भी जोर देता है : 'निवृत्त-परिहारान् पितेवानुगृह्णीयात्'। जो लोग कर देने की अवधि बिता चुके हैं राजा उनके प्रति पितृवत् अनुग्रह का व्यवहार करे (२, १), सर्वत्र चोपहतान् पितेवानुगृह्णीयात् 'राजा दुःखी जनों की उसी प्रकार रक्षा करे जैसे पिता अपने पुत्रों की करता है' (४, ३)।

महाभारत (शांति०, राज०, ५६, ४४, ४६) में प्रजा के प्रति राजा के संबंधों की तुलना माता और पुत्र के संबंधों से की गयी है। जैसे माता अपने पुत्र के लिए अपना सब कुछ बलि दे देती है वैसे ही राजा भी अपनी व्यक्तिगत इच्छा-अनिच्छा की चिंता न करता हुआ प्रजा का हित करे।

५. हुल्ट्श ने अश्वघोष के बुद्ध-चरित, २, ३५ की उद्धरणी की है : 'स्वाभ्यः प्रजाभ्यो हि यथा तथैव सर्वप्रजाभ्यः शिवमाशशंसे'।

६. आवगमुके=यावद् गमकः।

७. सुविहिता।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस बात पर ध्यान देवें। शासन में[1] ऐसा होता है कि कोई व्यक्ति बंदीगृह डाल दिया जाता है या उसे यातना दी जाती है जो अकस्मात् उसकी मृत्यु का कार हो जाता है[2] और इससे बहुत से लोगों को अपार दुःख होता है।[3] ऐसी दशा आप लोगों को मध्य मार्ग के अवलंबन की इच्छा करनी चाहिए। पर बहुत सी ऐ प्रवृत्तियां हैं जैसे ईर्ष्या, क्रोध, निष्ठुरता, जल्दबाजी, अभ्यास का अभाव, आल और तंद्रा जिनके कारण मनुष्य को सफलता नहीं मिलती। आप लोगों को ऐ चेष्टा करनी चाहिए कि ये प्रवृत्तियां आप में न आने पावें। इन सबका मूल है जल बाजी न करना और अभ्यास करना। शासन में जो आलस्य करेगा, उसका उत्था नहीं होगा। उठो और आगे बढ़ो।[4]

जो यह समझता है[5] वह आपसे कहेगा : "(राजा के प्रति) जो ऋण उससे उऋण हों[6]। देवताओं के प्रिय की अमुक अमुक आज्ञा है।"

जो इसका पालन करेगा उसको बड़ा फल मिलेगा। पालन न करने से ब विपत्ति होती है। जो इसमें चूक करते हैं वे न तो स्वर्ग प्राप्त कर सकते हैं और राजा का प्रसाद ही। इस बारे में मैं इतना अधिक क्यों सोचता हूं इसकी वजह य है कि इस कर्त्तव्य से दोहरा लाभ होता है,[7] क्योंकि यदि इसका आप पूरी तरह पालन करेंगे तो आपको स्वर्ग मिलेगा और मेरे प्रति ऋण से उऋण हो जाएंगे।

---

१. नितियं=दंड-नीत्याम्, जौ० में बहुक=बहुधा है।

२. बधनंतिक=बंधन जिसका 'अंत' हो जाय। मौर्य काल में दंड-विधान बड़ा कड़ा था। अ ने मनमाने ढंग से इसका दुरुपयोग रोकने की कोशिश की। कौटिल्य (४, ८-९, ११) पता चलता है कि यह विधान कितना कड़ा था। अंग-भंग और उसके बदले में जुर्मा दोष-विचार और उसमें जुर्म तस्लीम करने के लिए यातनाएँ (दिव्य-परीक्षा), मनमाने ढं यातनाएँ देना और उसके लिए दंडित होने के अनेक वर्णन हैं। हुल्ट्श ने लुइडर का अ गमन करते हुए बधनंतिक=बंधनांतिक मानकर पूरा वाक्य 'तेन बंधनांतिकः (प्राप्नो अर्थात् "बंधन-समाप्ति का आदेश प्राप्त करता है" किया है।

३. दवियेे दुखीयति; जौगड़ में 'बहुके वेदयति' पाठ है।

४. जौगड़ में एतविये। इसके बाद नीतियं है इसका अर्थ हुआ 'प्रशासन के कार्यों में प्र करना'।

५. हेवंमेव ए दखेय (जौगड़)=एवे दखेया (जौगड़) अर्थात् एवं ए दखेया। इसमें महामात्रों जिनका उल्लेख लेख के अंत में है प्रशासन का निरीक्षक कहा है।

६. आनंने=आनृण्यम्। पहले इसे अंनं ने=सं० आज्ञां नः (बुहलर) या अन्यत्+नः (लुडर पढ़ा गया था। हुल्ट्श ने अब पाठ को दुरुस्त कर दिया है। जौगड़ का पाठ है 'आ णिमपेतविये'।

७. विंसेंट स्मिथ ने इसका अनुवाद किया है : "इस कर्त्तव्य का ठीक से संपादन न क वाला मेरा प्रसाद कभी नहीं प्राप्त करेगा।" कठिनाई दुआहले=द्वाहर, दूना लाभ (आहर) वाला या "दो देने वाला"—प्रथमा एकवचन नपुंसकलिंग—की व्याख्या की है। अ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस लेख को (प्रति) तिष्य[1] के दिन सुनना चाहिये। बीच-बीच में शुभ दिनों[2] पर अकेले भी इसे सुनना चाहिए।

इस प्रकार करते हुए[3] आप (इस उद्देश्य की) पूर्ति करेंगे।

यह लेख इसलिए लिखा गया कि नगर-व्यावहारिक[4] (नगर मजिस्ट्रेट) सदा इस बात का प्रयत्न करें कि नागरिकों का अकारण बंधन या अकारण दंड न हो।[5]

और इसलिए मैं हर पांच साल पर [एक महामात्र (जौगड़ का पाठ)] जो नरम, क्रोधरहित और दयालु[6] होगा यह देखने के लिए भेजा करूँगा कि (नगर-व्यावहारिक) मेरे आदेशों के अनुकूल आचरण कर रहे हैं कि नहीं।[7]

(जारी)

शब्द रूपनाथ के लघु चट्टान लेख १ में आया है। किंतु हुल्ट्श इसे फ्रंके का अनुगमन करते हुए दुर+आहर=ठीक से संपादन न करने वाला, मानते हुए पूरे वाक्य का अर्थ करते हैं "यदि कोई इस कर्त्तव्य का ठीक से पालन नहीं करता तो मेरा मन कैसे प्रसन्न होगा (मे कुते मनो-अतिलेके)"। पर क्या यहां दुआहले दुलाहले नहीं हो सकता ? तो फिर अतिलेक= अतिरेक का अनुवाद कहां हुआ ? इसलिए बूहलर और सेनार्ट के ही अनुवाद यहां ग्रहण किये गये हैं।

१. इस दिन का अशोक के जीवन में विशेष महत्त्व रहा होगा।

२. खनसि खनसि=क्षण-क्षण पर=बार-बार (हुल्ट्श)।

३. चघथ का सम्बन्ध शक् धातु से है जिससे कलिं० च० ले० २, धौली ल० च० ले०, सहस० और वैराट के लेख में आया चकिये शब्द बना है।

४. नगल-वियोहालका, जौ० का महामाता-नगलक। मिला० कौटिल्य का नागरक-महामात्र जिसका जिक्र ऊपर आ चुका है।

५. पलिकिलेसे; परिक्लेश शब्द कौटिल्य (४, ८) में भी आया है जहां कारागाराध्यक्ष को इस बात की चेतावनी है कि वह किसी सजा पाये कैदी को परिक्लेश न दे। इस विषय पर चट्टान लेख ५ देखें।

६. सखिनालंभे=शलाक्ष्णारंभः में 'आरंभ' शब्द का अर्थ वध नहीं लेता क्योंकि इस लेख में जीव की पवित्रता का कोई उल्लेख नहीं है।

जैसा कि मूल पुस्तक में स्पष्ट किया है इस प्रकरण का लेखों के कालक्रम निर्धारण में बड़ा महत्त्व है। यहां पहली बार पंचवर्षीय दौरों के बारे में अशोक की कल्पना का उल्लेख आया है जिसका दूसरे चट्टान लेखों में विस्तार मिलता है। अतः वे लेख कलिंग लेखों के बाद के हैं।

७. जैसा कि हुल्ट्श ने पढ़ा, पूरा किया और अनुवाद किया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उज्जैनी से भी कुमार[1] इसी कार्य के लिए इसी प्रकार के[2] कर्मचारि को[3] भेजा करेंगे और तीन साल (से ज्यादा) अंतर न देंगे।[4]

१. 'उजेनिते पि चु कुमाले'...उसके बाद 'हेमेव तखसिला ते पि' है जिसकी तुलना क चट्टान लेख २ पंक्ति १ के 'तोसलियं कुमालें', धौली पाठ और सुवंणगिरीते अयपु से की जा सकती है। इससे पता चलता है कि कुमार या आर्यपुत्र उल्लिखित न जैसे उज्जयिनी, तक्षशिला, तोसली और सुवर्णगिरि में वाइसराय या गवर्नर के में नियुक्त किये जाते थे। पर कहीं यह उल्लेख नहीं है कि ये कुमार अशोक के थे। जहां अशोक अपने पुत्रों-पौत्रों आदि का उल्लेख स्पष्ट शब्दों में 'पुत्रा च पोत्र प्रपोत्रा च देवानंप्रियस...' (चट्टान लेख ४, गिरनार)' या 'मे पुता पोता च प्रपोत्रा (चट्टान लेख ६, गिरनार) करता है। अतः यहां जिन 'कुमारों' या 'आर्यपुत्रों' उल्लेख वाइसराय के रूप आया है वे अशोक के भाई रहे होंगे न कि पुत्र। महावंश (५, १७१) से विदित होता है कि अशोक ने अपने भाई तिस्स को वाइसराय नियुक्त किया वह ई० पू० २७० ई० पू० से २६६ तक इस पद पर रहा। अशोक का जो कालक्रम ह यहां निर्धारित किया है उसके अनुसार इस लेख की तिथि ई० पू० २५६ है जब वह ४१ स का था। उस समय उसके कई पुत्र इतने सयाने नहीं रहे होंगे कि वे वाइसराय जैसे पद भार वहन कर सकें। उस समय उसका एक ही पुत्र महेंद्र शायद इतना सयाना था कि वाइसर बन सके। किन्तु महावंश के अनुसार वह ई० पू० २६४ में ही भिक्षु बन गया था। इस पहले वह तिस्स के स्थान पर थोड़े अर्से के लिए वाइसराय रह चुका था। दिव्यावदान अनुसार उसका एक दूसरा ज्ञात पुत्र कुणाल तक्षशिला का वाइसराय था। किंतु उसकी तिथि ई० पू० २६३ और वाइसराय के रूप में उसकी नियुक्ति की तिथि ई० पू० २ ठहरती है जब वह १८ वर्ष का रहा होगा। इसी उम्र में अशोक के पिता ने भी उज्जयिनी का वाइसराय बनाया था। किंतु इसमें कोई शक नहीं कि ई० पू० २५७ में उस एक या दो पुत्र इस उम्र के जरूर रहे होंगे। पर उनके नाम आदि का हमें कुछ भी नहीं। ई० पू० २८२ में संघमित्रा का और ई० पू० २६३ में कुणाल का जन्म हुआ था ई० पू० २८२ से ई० पू० २६३ के बीच अशोक के बेटी-बेटे जरूर पैदा हुए होंगे। इनके नाम तीवर और चारुमती रहे होंगे। तीवर का उल्लेख उसके एक लेख में और चार मती का नेपाल की जनश्रुतियों में हुआ है। चाहे जो भी हो कोई जरूरी नहीं कि उस लेखों में वाइसराय के रूप में काम कर रहे कुमार उसके ही बेटे रहे हों।

२. अर्थात् वैसे ही धार्मिक योग्यता वाले।

३. वर्ग : कौटिल्य (१, ७) भी वर्ग शब्द का इस्तेमाल करता है। संस्कृत में 'वर्ग' अं (Class) के अर्थ में आता है पर इस लेख की नवीं पंक्ति में 'जने' शब्द आया है जिस स्थान पर जौगड़ में "वगं" शब्द आया है। चट्टान लेख १० में आए 'वगं' शब्द के स्था पर गिरनार में "जन" पाठ है। इस प्रकार 'हेविसमेव वगं' का अर्थ 'उसी वर्ग का व्यक्ति होगा (हुल्ट्श)। चट्टान लेख १२ में अधिकारियों के वर्ग के लिए आए 'निकाय' शब्द से भी तुलना कीजिए।

४. यह समझना कठिन है कि उज्जैनी और तक्षशिला के वाइसरायों को नवविजित कलिंग की अपेक्षा फौजदारी कानून के व्यवस्थापकों की निगरानी इतनी अधिक रखने की आवश्यकता क्यों थी? इसका कारण यह हो सकता है कि ये प्रांत 'मालिक की निगाह से' दूर पड़ते थे। बाद में जब चट्टान लेख ३ जारी हुआ तो राज्य में सर्वत्र (सवंत विजिते मम) पांच साल में एक दौरे (अनुसंयान) का नियम समान रूप से लागू किया गया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तक्षशिला से भी ।[1]

जब...ये ऊँचे कर्मचारी[2] दौरों पर निकलेंगे तो[3] अपने सामान्य कार्य करते हुए इस बात का भी पता लगाएंगे कि नगर-व्यावहारिक राजा के आदेश के अनुसार कार्य करते हैं कि नहीं ।[4]

---

१. दिव्यावदान (अध्याय २७) के अनुसार तक्षशिला श्वसों का राज्य (श्वसराज्यम्, पृ० ३७२) था जो सदा विद्रोह पर उतारु रहते थे। बिंदुसार के समय में जब पहले वाइसराय कुमार सुसीम से विद्रोह का दमन शक्य न हुआ तो उसके स्थान पर अशोक भेजा गया। स्वयं अशोक के शासन के उत्तरार्ध में जब तिष्यरक्षिता उसकी अग्रमहिषी थी—अर्थात् लगभग ई० पू० २३६ में महावंश (२०, ३) के अनुसार तक्षशिला में विद्रोह की सूचना जब अशोक को मिली (राज्ञोऽशोकस्य उत्तरापथे तक्षशिलानगरं विरुद्धम्) तो उसने अपने बेटे कुणाल को उसके दमन के लिए भेजा। उस समय कुणाल की उम्र २८ वर्ष थी (दिव्या०, पृ० ४०७)। पर जैसा हम पहले ही बता आए हैं यह लेख अशोक के शासन के प्रारंभिक भाग का है जब तक्षशिला में किसी प्रकार का उपद्रव न था। इसलिए इस लेख में वाइसराय के रूप में जिस कुमार का उल्लेख है वह अशोक का कोई भाई रहा होगा या फिर उसका ही कोई अज्ञात पुत्र जिसका जन्म अधिक से अधिक ई० पू० २७५ में अवश्य हुआ होगा क्योंकि ई० पू० २५७ में उसे कम से कम १८ वर्ष का होना चाहिए।

२. जो अफसर दौरों पर भेजे जाते थे उनका दर्जा महामात्र का होता था जैसा कि यहां धौली में और जौगड़ में कहा है।

३. अधिकारी अपनी बारी पर (अनु) हर पांच साल पर दौरों पर भेजे जाते थे (न कि हर पांचवें साल उनका तबादला होता था जैसा कि विंसेंट स्मिथ ने समझा है)। ये दौरे उनके सामान्य कामों में शामिल थे। अब उन्हें जो नये और विशेष कार्य सौंपे गए उनके लिए भी ये जरूरी हो गए। अतः अनुसंयान का सामान्य अर्थ ही यहां अधिक समीचीन है। पुनः, बुद्धघोष ने अनुसंयान की यह परिभाषा दी है: 'ततो ततो गंत्वा पच्चवेक्खन' अर्थात् 'निरीक्षण के लिए यहां वहां जाना' (समंतपासादिका)। इस अंश के लिए मैं श्री चरणदास चटर्जी का ऋणी हूँ। उन्होंने अंगुत्तर १, पृ० ५६-६० की ओर भी मेरा ध्यान दिलाया है जिसमें कहा है कि उत्तर-पश्चिम के जिलों में राजाओं के लिए जब डाकू वहां सक्रिय हों अनुसंयान (पच्चंतिमे जनपदे अनुसञ्ञातुं) आसान नहीं है। टीका में इसकी यह व्याख्या दी है: "पच्चंतिमे जनपदे अनुञ्ञातुं ति—गामावास-करणत्थाय, से न तु-अत्थाय, पोक्खरणि-खणापनत्थाय, सालादीनं करणत्थाय पच्चंतिमे जनपदे अनुसासितुं पि न सुखं होति' सीमांत राज्यों में गाँवों में सार्वजनिक निर्माण और ऐसे ही निर्माणों या पोखरों के निर्माण देखने के लिए दौरे आसान नहीं हैं।' अफसरों के अनुसंयान से यहां अशोक का तात्पर्य प्रशासनिक (जिसमें न्याय-व्यवस्था का प्रशासन भी है) और धार्मिक दोनों रहा है जैसा चट्टान लेख ३ में कहा है।

ध्यान देने की बात यह है कि कौटिल्य (२, ९) ने युक्तों (सरकारी कर्मचारियों) का तबादला एक पद से दूसरे पद पर करने का विधान किया है ताकि वे गबन न कर सकें (विपर्यस्यात् च कर्मसु)। कौटिल्य (१, २१) राजा के दौरों के लिए अनुसंयान के स्थान पर निर्याण शब्द का व्यवहार करता है।

४. जैसा हुल्ट्श का अनुवाद है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

२[1]

(जौगड़)

देवताओं के प्रिय ने इस प्रकार कहा : राजा के संदेश पाने के योग्य[2] समापा के महामात्रों से इस प्रकार कहना :

जो कुछ मैं (उचित) समझता हूं उसके अनुसार काम करने की और उचि उपायों से उसे पूरा करने की मेरी इच्छा होती है।

और इस उद्देश्य की पूर्ति का मुख्य उपाय मैं यहँ मानता हूं कि मैं आप लो को अनुदेश दू।

सभी मनुष्य मेरी प्रजा (संततियां) हैं। जिस तरह मैं चाहता हूं कि मेरे बच्चे इस लोक में और परलोक में सभी तरह के हित और सुख प्राप्त करें उसी तरह सं मनुष्यों के बारे में मेरी इच्छा है।

जो सीमांत जातियां अभी तक नहीं जीती गई हैं वे कदाचित् यह जान चाहें कि हम लोगों के प्रति राजा की क्या आज्ञा है।[4]

सीमांत जातियों के प्रति मेरी यही इच्छा है कि वे जानें कि राजा यहं चाहता है कि वे मुझ से न डरें, मुझ पर विश्वास करें, मुझ से सुख ही प्राप्त करें कभी दुःख न पावें।[5] वे यह भी जान लें कि जहां तक क्षमा का व्यवहार हो सक है[6], राजा उन लोगों के साथ क्षमा का वर्ताव करेंगे। मैं उन्हें धर्म का आचर करने को कहूंगा[7] (और कि) उनका इहलोक और परलोक दोनों बनेगा।

इसी निमित्त मैं आप लोगों को अनुदेश देता हूं कि इससे (प्राणियों क

---

१. चौदहों चट्टान लेख कलिंग में नहीं प्रकाशित किये गए थे। वहां च० ले० ११, १२ औ १३ वाले लेख छोड़ दिए गए हैं। चट्टान लेख १४ के बाद ये दो विशेष लेख खुदे हैं। इ यह लेख पहले आता है अतः इसे ही प्रथम विशेष लेख मानना चाहिए था। पर अन्य स्था में क्रम उलट गया है, अतः इसे इसी रूप में दूसरा लेख माना गया है।

जौगड़ की चट्टान पर दोनों विशेष लेख मुख्य लेखों के अतिरिक्त लाइनों से दिए गए हैं। इस जगह के ऊपरी हिस्से में दोनों किनारों पर 'स्वस्तिक' का चिह्न बना है नीचे के हिस्से में विभाजक रेखा के साथ 'म' अक्षर चार बार खुदा है। श्री हारित कृ देव के मतानुसार (ज० ए० सो० बं०, १७, २३२) जिसे स्वस्तिक चिह्न माना जाता है ओ अक्षर है और 'म' के साथ जुड़कर 'ओम्' बनता है।

२. लाजवचनिक।

३. धौली में लेख 'तोसली के कुमार और महामात्रों' को संबोधित है।

४. जैसा हुल्ट्श का अनुवाद है।

५. खं=दुखं (धौ०)।

६. राजा ने सीमांत जातियों को इस शर्त पर स्वतन्त्रता दी थी कि वे उसके बताए के मुता धार्मिक आचरण करेंगी।

७. ममं निमितं अर्थात् 'मेरे निमित्त से'।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मुझ पर जो ऋण है उससे उऋण हो सकूं।[1] और आप लोगों को अनुशासन देता हूं, सूचित करता हूं कि मेरा यह निश्चय अटल और प्रतिज्ञा दृढ़ है।

इस प्रकार आचरण करते हुए[2] आप लोग अपने कर्त्तव्यों का पालन करें और उनमें भरोसा पैदा करें कि जिससे वे समझें "कि देवताओं के प्रिय राजा हमारे लिए वैसे ही हैं जैसे कि पिता, उन्हें हमसे वैसा ही प्रेम है जैसा कि अपने से और हम लोग राजा के वैसे ही हैं जैसे कि उनके लड़के।"

आप लोगों को अनुशासन देकर और अपना अटल निश्चय और दृढ़ प्रतिज्ञा सूचित कर मैं सारे देश में इस उद्देश्य से अधिकारी नियुक्त करूंगा।[3]

आप लोगों में सीमांत जातियों के विश्वास और इहलोक और परलोक में उनके हित और सुख पैदा कराने की क्षमता है। इस प्रकार करते हुए आप स्वर्ग की प्राप्ति कर सकते हैं और मेरा आप लोगों पर जो ऋण है उससे उऋण हो सकते हैं।

यह लेख इस उद्देश्य से लिखा गया कि महामात्र लोग सीमांत जातियों में विश्वास पैदा करने के लिए और उन्हें धर्म मार्ग पर चलाने के लिए निरंतर प्रयत्न करें।

---

१. अनने। यहां इसकी व्याख्या धौली के चट्टान लेख ६ के 'भूतानं आननियं यहं' के आधार पर की गई है।

२. स हेवं कटू (अर्थात् कृत्वा)।

३. देसा आयुतिके, देसावुतिके, धौली, आयुति=सं० आयुक्तिन्।

जब कि आवुति=सं० आयुक्ति, आदेश का इस्तेमाल स्तं० ले० ४ में है। युक्त शब्द का इस्तेमाल चट्टान लेख ३ में सरकारी नौकरों के अर्थ में हुआ है। यहां आयुक्त का अर्थ महामात्र=प्रांतीय अधिकारी है जो पाटलिपुत्र और उज्जयिनी और तक्षशिला से भी कुमारों की देखरेख में काम करते थे। इन्हीं को अशोक निरीक्षण के लिए कहता है। स्तंभ लेख १ में इन अधिकारियों को अंत-महामात्र कहा गया है क्योंकि अविजित अंतों से इनका वास्ता था। इन अंतों में चट्टान लेख १३ की वन्य जातियां (अटवियां) भी शामिल हो सकती हैं। किन्तु इनके लिए कौटिल्य (१, १६) ने एक पृथक् अधिकारी वर्ग का विधान किया है जिसे वह अटवीपाल कहता है।

कौटिल्य युक्त शब्द का प्रयोग निचले तबके के सरकारी नौकरों के लिए करता है जिनके नीचे उपयुक्त होते थे। इन उपयुक्तों के भी नीचे पुरुष होते थे (२, ५)। कौटिल्य की दृष्टि में ये गबन भी कर सकते थे (२, ९)। मनु युक्तों को चोरी गए माल की हिफाजत का काम सौंपता है पर यह भी चेतावनी दे देता है कि ये भी चोरी कर सकते हैं (८, ३४)। कौटिल्य युक्त के स्थान पर कभी-कभी योग-पुरुष (पृ० २४५) या युग्य पुरुष शब्द का इस्तेमाल करता है। संस्कृत में युज् (=लगाना) से योग और युक्त=कर्मचारी शब्द बनता है। कौटिल्य के एक टीकाकार ने उपयुक्त (२, ८) को युक्त से ऊपर का अधिकारी बतलाया है (युक्तानाम् उपरि नियुक्तः)।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस लेख को प्रति चातुर्मास्य अर्थात् हर चार मास पर तिष्य नक्षत्र के दि सुनना चाहिए, बीच-बीच में भी सुनना चाहिए और शुभ दिनों पर अकेले सुनना चाहिए।[1]

इस प्रकार करते हुए पूरा करने का यत्न करें।

घ. चौदह चट्टान लेख[2]

१

(शाहबाजगढ़ी)

यह धर्मलिपि[3] देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने लिखवाई है।[4]

यहां[5] किसी जीव का न वध किया जाय और न बलि दी जाय। न कोई समाज[6] किया जाय क्योंकि देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी राजा समाज में बहुत दोष देखता है।

---

१. खने संतं।

२. यद्यपि एक साथ भी चौदहों लेख मिलते हैं पर यहां लेखों का चयन पाठों की शुद्धता के आधार पर किया गया है।

३. ध्रमदिपि या धंमलिपी शब्द चौदहों चट्टान लेखों की पूरी माला और सात स्तंभ लेखों के लिए प्रयुक्त हुआ है। सेनार्ट का कथन है : 'इस पूरी माला को अखंड माना गया है अतः ये सभी लेख साथ ही खुदवाये हुए होंगे' (इंस्क्रिप्शंस आफ पियदसि, जिल्द ii, पृ० ८१)।

४. जौगड़ में तो जिस पहाड़ी पर लेख खुदा है उसका नाम भी दिया है—खपिंगलसि (खेपिंगलसि=आकाश में भूरी—हुल्ट्श) पवतसि लिखापिता"; धौली के पाठ में पहाड़ी का नाम घिस गया है, सिर्फ "...सि पवतसि" बच रहा है। यह पहाड़ी कोई अन्य ही रही होगी।

५. हिद अर्थात् यहां, पाटलिपुत्र में, जैसा कि चट्टान लेख ५ गिरनार में आया है। चट्टान लेख १३ में (हिद रज-विषवस्पि, पंक्ति ६) और लघु चट्टान लेख १, रूपनाथ (हध, पंक्ति ४) में 'मेरे राज्य में के अर्थ में' इसका इस्तेमाल हुआ है। अशोक ने जो नई आज्ञा निकाली उसकी व्याप्ति पाटलिपुत्र तक ही सीमित रही होगी इसलिए मैं पहला अर्थ ही ग्रहण करता हूं। उस समय बहुमत की इच्छा के विरुद्ध इसे सारे राज्य पर लागू नहीं किया गया होगा। फिर स्तंभ लेख ५ में स्वयं अशोक की आज्ञा से कुछ खास जीवों की ही वध से रक्षा का विधान है।

६. इस शब्द की व्याख्या के लिए दे० रा० भंडारकर (इं० एं० ४१, पृ० २५५-७) और टामस (ज० रा० ए० सो०, १९१४) देखें।

जिस समाज को निंद्य माना गया था उसकी परिभाषा दीघ निकाय (३, पृ० १८३, पा० टे० सो०) में दी है। उसमें छह बातें होती थीं 'नाच, गाना, बाजा, कहानी, नगाड़े और टम-टम'। ब्रह्मजाल सुत्त (दीघ० १, पृ० ६) में अनेक निंद्य प्रदर्शनों (विसुकदस्सनम्) का जिक्र है जिनमें ऊपर की कई बातें होती थीं। इनमें से एक को पेक्खं कहा है। बुद्धघोष ने इसकी नट-समाज के रूप में व्याख्या की है। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि अन्य प्रदर्शन दूसरी तरह के समाज रहे होंगे। इनमें से कुछ के बारे में अशोक को सख्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किन्तु एक प्रकार का समाज है जिसे देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी राजा

(जारी)
एतराज रहा होगा जैसे पशुओं की 'हाथियों, घोड़ों, भैंसों, सांड़ों, बकरों और मेढ़ों की लड़ाइयां'। 'मुर्गों और लवा पक्षियों की भी लड़ाइयां' करायी जाती थीं। धंमपद (४, पृ० ५९, पा० टे० सो०) की टीका में एक अन्य समाज का जिक्र है जिसके आयोजन में ५०० नट (नातका) भाग लेते थे। ये भारी पुरस्कार की आशा में राजगृह में राजा के सम्मुख साल में एक बार या छह महीने पर नाटक खेलते थे। ये प्रदर्शन सात दिन तक चलते थे। इनका मुख्य आकर्षण होता था प्रधान नर्तकी का सीधे डंडे पर गाते हुए नृत्य करना। एक बार ऐसे ही समज्ज में महाश्रेष्ठी का पुत्र उग्गसेन जो रंगशाला में (मंचातिमंचे ठित) तमाशा देख रहा था प्रधान नर्तकी पर मुग्ध हो गया। इसी स्थान पर यह भी वर्णन है कि कैसे ये नट गाँवों, शहरों और राजधानियों में (गामनिगमराजधानीसु) घूम-घूम कर अपनी कला का प्रदर्शन करते थे। अब एक सुधारवादी राजा ने जनता के इस मनोरंजन पर रोक लगाने का निश्चय कर लिया था।

विनय पिटक में राजगृह के एक समाज का वर्णन आया है जिसमें नृत्य, गीत और संगीत हुआ था (२. ५, २, ६) और एक अन्य समाज में भोज हुआ था (४. ३७, १)। जातकों में इस शब्द के कई अर्थों में इस्तेमाल आये है, जैसे जातक ३, ५४१, २० (गदायुद्ध), ३१८, ५४५।

इनके प्रचलन के अभिलेखीय प्रमाण भी हैं जैसे, खारवेल के लेख में 'उसव-समाज-करपनाहि' और नासिक गुफा लेख में 'उसव-समाज-कारकस' पद आये हैं।

संस्कृत में समाज्य रूप भी मिलता है। पर सामान्य रूप समाज ही है। महाभारत में समाज शैव उत्सव के रूप में आया है (हापकिंस : एपिक माइथालाजी, पृ० ६५, २२०) जिसमें शराब, नाच व गाना होता था। किन्तु लौकिक समाज रंग या प्रेक्षागार में होते थे। इनमें शिविकाएं और विभिन्न वर्गों और श्रेणियों और गणों के लिए मंच होते थे। जहां वे (१) सार्वजनिक भोज के लिए एकत्र होते थे जिनमें मांस के तरह-तरह के व्यंजन पकाये जाते थे, या (२) शस्त्रों के दंगल होते थे (हरिवंश-४५२८-३८, ४६४२-५८), (३) सैनिक प्रदर्शन होते थे (आदि० प०, अध्या० १३४ तथा आगे), या (४) स्वयंवर होता था जिसमें नृत्य, गान और संगीत भी रहता था (वही, अध्या० १८५, डा० भंडारकर द्वारा उद्धृत)।

टामस ने महाभारत १, १८५, २९ की उद्धरणी की है जिसमें एक अखाड़े (समाज-वाट) में खेल होता है जिसके चारों ओर मंच बने हुए थे। अत: यह खेल पशुओं की लड़ाई का रहा होगा। समाज की व्युत्पत्ति-मूल्य व्याख्या वही है जो अंग्रेजी के meet शब्द की है।

कौटिल्य (२, २५) में उत्सव, समाज और यात्रा का उल्लेख किया है जिसमें चार दिन तक 'पान' बराबर बिना रुकावट चलता था। एक अन्य स्थान पर (१३,५) वह बतलाता है कि विजयी राजा का कर्त्तव्य है कि वह उनके राष्ट्र प्रेम, धर्म (देश-दैवत) और उनके उत्सव, समाज और विहार का आदर करे।

यह शब्द वात्स्यायन के कामसूत्र (अधि० i, अध्या० ४, २९) में भी आया है। पर वहां इसका सामान्य अर्थ में ही प्रयोग है न कि किसी पारिभाषिक अर्थ में। सरस्वती के मन्दिर में प्रति मास या प्रति पक्ष समाज होता था जिसमें स्थानीय या बाहर के कलाकार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

साधु[1] (अच्छा) मानता है।

पहले देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा की रसोई (महानस) में प्रतिदि सैंकड़ों सहस्र प्राणियों[2] की शोरबा बनाने के लिए हत्या होती थी। पर इस सम जब यह धर्मलिपि लिखाई जा रही है सिर्फ तीन प्राणियों का वध होता है— मोर और एक मृग, और मृग का वध निश्चित नहीं है। ये तीनों प्राणी भी भवि में नहीं मारे जाएँगे।[3]

२

(गिरनार)

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा के राज्य में[4] सभी जगह और

(जारी)
नृत्य और संगीत का प्रदर्शन करते थे। कामसूत्र इनके दर्शन के लिए एकत्र जनसमूह ही समाज की संज्ञा देता है।

अंतिम बात यह है कि अशोक का दादा चंद्रगुप्त प्रति वर्ष जानवरों की लड़ का एक बड़ा उत्सव करता था। मेढ़ों, सांडों, हाथियों और यहां तक कि गैंडों की लड़ाइयां करायी जाती थीं। रथों की भी दौड़ होती थी। इनमें दो बैल और बीच में घो जुतते थे (एलियन)। अशोक ने अब इन सार्वजनिक प्रदर्शनों पर रोक लगा दी।

१. इन प्रदर्शनों का आयोजन अशोक स्वयं करता था, जैसा चट्टान लेख ४ में कहा है।

२. संभवत: यहां अत्युक्ति हुई है। अत्युक्ति के लिए साहित्यिक ग्रन्थ तो बदनाम हैं ही स्व अशोक के लेख भी इस दोष से पूरी तरह मुक्त नहीं हैं। महावंश के अनुसार बिंदुसार प्रति दिन ६०,००० ब्राह्मणों को भोजन कराता था। स्वयं अशोक ने भी यह प्रथा तीन सा तक जारी रखी थी (५, ३४)।

३. बेचारा मोर इस रक्षा कवच से वंचित रहा। स्तं० ले० ५ में जिन पशुओं और पक्षियों रक्षा का विधान है उस सूची में भी इसका नाम नहीं है। रामायण (२, ९१, ७०) मयूर को राजाओं का भोजन कहा है। बुद्धघोष कहता है कि मोर के मांस को मध्यदे (मगध) वाले बड़ा स्वादिष्ट बतलाते हैं। (सारत्थप्पकासिनि, संयुत्त निकाय की टीका श्री चरण दास चटर्जी ने मुझे इसका हवाला दिया है।)

४. विजितंहि या विजितसि का प्रयोग प्रचंतेसु या अंता से भिन्न है। प्रचंतेसु या अंता जातियां थीं जो उसकी सीमा पर पड़ती थीं, मिला० ल० च० ले० १ का अंत क० च० ले २ का अंतानं अविजितानं (स्वतंत्र पड़ोसियों), चट्टान लेख १३ का अंतेसु व च० ले० का अपरांता है। अंत और प्रत्यंत के राजनैतिक अर्थ हैं जब कि अपरांत का भौगोलि अर्थ है। कौटिल्य (१, १७) ने कहा है कि राजा अपने अविनीत पुत्रों को प्रत्यंतों में दे निकाला दे दे। यहां टीकाकार ने प्रत्यंत का अर्थ म्लेच्छदेश किया है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सीमावर्ती राज्य हैं जैसे चोल,[१] पांड्य,[२] सतियपुत्र,[3] केरलपुत्र,[४] ताम्रपर्णी[५] तक और यवनराज अंतियोक और जो अंतियोक के भी पड़ोसी[६] राजा हैं उन सबके राज्यों तक देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने दो प्रकार की चिकित्सा का प्रवन्ध किया है—मनुष्यों की चिकित्सा[७] और पशुओं की चिकित्सा। औषधियां भी—मनुष्यों के उपयोग की और पशुओं के उपयोग की—जहां-जहां नहीं थीं वहां-वहां मंगवायी

---

१. डा० भंडारकर के मत से बहुवचन का प्रयोग दो चोलों की स्थिति का सूचक है (अशोक, पृ० ३८)। इनमें से एक की पहचान वे टालेमी के सोरेतै (तमिल सोड़=चोड़) से करते हैं जिसकी राजधानी त्रिचनापल्लि के साथ ओर्थूरा=उरैयुर में थी और दूसरा उत्तरी राज्य था जिसका नाम सोड़ था जिसकी राजधानी अर्काटोस=अर्काट में थी।

२. टालेमी 'पंडिनोई' का ही नाम लेता है जिसके नगर का नाम मोडूरा=मदुरा था। वराहमिहिर (छठी शती) उत्तर-पांड्य का वर्णन करता है जिससे पता चलता है कि कम से कम दो पांड्य देश थे एक उत्तरी और दूसरा दक्षिणी (वही, पृ० ४०)।

३. स्मिथ ने इसकी पहचान कोयंबटूर जिले के सत्यमंगलं तालुक से की है। इस नाम का एक नगर पश्चिमी घाट में गजलहट्टि दर्रे पर है। यह स्थान कभी युद्ध की दृष्टि से बड़े महत्त्व का था। सत्यमंगल देश की वस्ती बृहदचरणम् (महाप्रव्रज) से बनी वस्तियों में मानी गयी है। यह महाप्रव्रजन संभवत: चंद्रगुप्त के समय में हुआ था जब महादुर्भिक्ष के कारण भद्रबाहु के नेतृत्व में बहुत से लोग उधर गए थे (अशोक, पृ० १६१, और ज०रा०ए० सो०, १९१९, पृ० ५८४ नोट)। ज०रा०ए० सो०, १९१८ (पृ० ५४१) में एक विद्वान ने सतियपुत्र की कांचीपुर के लोगों से पहचान के पक्ष में तर्क दिया है जहां युवाङ् च्वाङ् के मत से अशोक ने एक स्तूप बनवाया था। इसे सनातनी लोग सत्यव्रत देश के नाम से भी जानते हैं। एक अन्य विद्वान (ज० रा० ए० सो०, १९२३, पृ० ४१२) की धारणा है कि यह केरल के उत्तर का वह प्रदेश है जो पश्चिमी घाट के इलाके में रचे गए अनेक तमिल ग्रन्थों में सत्यभूमि नाम से उल्लिखित है। हुल्ट्श सत्तिय=सद्विय मानते हैं जिसकी हम ऐतरेय ब्राह्मण (८, १४) के सत्वतों से तुलना कर सकते हैं। पाणिनि (५, ३, ११७ में) दक्षिण भारत के क्षत्रियों में सत्वतों की गणना करता है।

४. अर्थात् चेर या मालाबार, पुत्रांत से son of the soil का भाव आता है। मूल में केतलपुतो केरलपुत्र के लिए भूल से लिखा है।

५. कौटिल्य अर्थशास्त्र के टीकाकार भट्टस्वामी के अनुसार यह पांड्य देश में एक नदी का नाम है। किन्तु पालि साहित्य में यह लंका का नाम है। चट्टान लेख १३ में तंबपंनिय तो निश्चित रूप से लंकावासियों के लिए आया है (मोनियर विलियम्स ने अपने कोश में भी यही अर्थ दिया है)। अपि च, इतने विशाल साम्राज्य का अधिपति अपने साम्राज्य के परे की सीमाएँ बतलाने के लिए तिन्नेवेल्लि की एक छोटी सी नदी का नाम नहीं लेगा। अंतिम बात यह कि लंका जहां इसका बेटा धर्म-प्रचार के लिए गया और जिसने उस देश को उसका धर्म दिया अशोक की धर्म-विजय की योजना में बड़े महत्त्व का प्रदेश रहा होगा। आ तंवपंणि=या ताम्रपर्णी।

६. चट्टान लेख १३ में नाम दिये हैं।

७. चिकीछा, चिकित्सा में (१) चिकित्सक (पशुओं के लिए पशु-चिकित्सक भी), (२) दवाएँ, और (३) अस्पताल जरूरी हैं। अत: ये तीनों जरूरतें इस शब्द से व्यक्त होती हैं। दवाओं के लिए विशेष औषधि-उद्यान और औषधिशालाएँ चाहिए थीं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon:

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गयीं[1] और रोपवायी गयी हैं।[2]

(इसी प्रकार) मूल और फल भी जहां-जहां नहीं थे वहां-वहां सब जगह मंगवाये और रोपवाये गये हैं। मार्गों पर पशुओं और मनुष्यों के आराम के लिए कुएं खुदवाये गए हैं और वृक्ष लगवाये गए हैं।

३

(गिरनार)

देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहता है: राज्याभिषेक के बारहवें वर्ष में[3] मैंने यह आज्ञा दी: मेरे राज्य में सभी जगह युक्त,[4] राजूक[5] और प्रादे

---

१. एलियन (१००, १८) ने चंद्रगुप्त मौर्य के राजमहल का वर्णन दिया है उसमें 'स्थानी (native to the soil) वृक्षों' और 'बाहर से बड़े यत्न से मंगाये (with circumspect care brought from other parts) वृक्षों' का जिक्र है।

लेखों में उल्लिखित इस बात की पुष्टि जनश्रुतियों से भी होती है। कहते हैं कि दवाओं के अभाव में एक भिक्षु की मृत्यु हो गयी। इस पर अशोक ने नगर के चारों दरवाजों पर चार तालाब दवाओं से भरवा दिये। यह कथा बुद्धघोष (समंतपासादिका, पृ० ३०६) ने लिखी है।

२. कौटिल्य (२, २१) ने भी ऐसे पौदों के बीज बाहर से मंगाने की सलाह दी है जो दवा के काम आते हैं या अन्य रूप में उपयोगी हों। इन पर आयात-शुल्क माफ था (महोपकारं उच्छुल्कं कुर्यात् बीजं तु दुर्लभम्)।

३. अभिषेक से गिनती वाले वर्ष को कौटिल्य (२, ६७) राजवर्ष कहता है।

४. सरकारी नौकरों की सामान्य संज्ञा यही थी। अर्थशास्त्र (२, ५) में भी यह शब्द मिलता है। सर्वाधिकरणेषु युक्तोपयुक्त-तत्पुरुषाणाम्="सभी विभागों के युक्तों-उपयुक्तों और उनके अधीन कर्मचारियों," (पुरुषों=यह शब्द स्तंभ लेख १, ४ और ७ में भी आता है।) यहां युक्त से तात्पर्य अधीनस्थ सचिवालयीय कर्मचारियों से है जो ऊँचे अधिकारियों के साथ दौरों पर जाते थे (टामस, ज० रा० ए० सो०, १९१४, पृ० ३९१)। कौटिल्य ने (२, ९) राजस्व उगाहने वालों में युक्तों की गणना की है जिनके बारे में उसकी धारणा थी कि वे चुपचाप सरकारी रकम का गबन कर सकते थे। आयुक्तक और विनियुक्तक शब्द गुप्त अभिलेखों में बार-बार आते हैं।

५. राजूके या रजु (मानसेहरा) शब्द संभवतः राजा से ताल्लुक रखता है। पालि में राजा का अर्थ महामत्त, महामात्र और "वे सभी जिन्हें जीवन-मरण का अधिकार है" (चाइल्डर्स) भी होता है। महावंश में राजा के लिए भी राजको आया है। स्तं० ले० ४ में राजूकों के कार्य बतलाये गए हैं, कहा है कि वे 'शत सहस्र प्राणियों पर' नियुक्त थे। उन्हें प्रभुओं के भी कुछ अधिकार प्राप्त थे। उन्हें दंड और अभिहार अर्थात् इनाम (या हमला) और अनुग्रह अर्थात् माफी देने के अधिकार प्राप्त थे। इस प्रकार राजूकों का पद राजा और वाइसराय के बाद आता था। वस्तुतः वे प्रांतीय गवर्नरों की तरह थे।

बुहलर का मत है कि यह शब्द रज्जु से संबद्ध है। पालि में राजूक का रज्जुक समांतर है। अतः राजूक 'राजस्व और बंदोवस्त अधिकारी' थे (ए० इं० २, पृ० ४६६)। डा० एफ० डब्ल्यू० टामस बुहलर से सहमति प्रकट करते हुए कहते हैं कि यद्यपि राजूक ऊँचे स्थानीय अधिकारी थे, तथापि उनका काम 'सर्वे, भूमि-बंदोवस्त और सिंचाई था' (कैंब्रिज हिस्ट्री

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शिक[1] बारी-बारी से पांच-पांच वर्ष पर[2] अन्य कामों के अलावा[3] इस काम के लिए

(जारी)

पृ० ४८७)। मेगस्थनीज भी ऐसे अधिकारियों की बात करता है जिनका काम "नदियों की निगरानी करना, जमीन नापना और उन जलकपाटों का मुआयना करना था जिनसे मुख्य नहर से शाखा नहरों में पानी जाता था; शिकारी भी इनके अधीन होते थे जिन्हें दंड देने या इनाम देने का अधिकार प्राप्त था, ये कर की उगाही करते थे और भूमि से संबंधित पेशों की निगरानी भी करते थे।"

कौटिल्य में रज्जुश्चोररज्जुश्च (२, ६) पद आया है। इसका अर्थ स्पष्ट नहीं है। किन्तु ४, १३ में कौटिल्य चोर-रज्जुक नाम के एक अधिकारी का उल्लेख करता है। इसका काम शायद चोरों को पकड़ना था। यदि उसके इलाके में किसी व्यापारी का माल चोरी चला जाता और पहले से वह अपने माल का मूल्य घोषित कर चुका होता तो इस अधिकारी को उसकी क्षति-पूर्ति करनी पड़ती थी। (टीका में चोर-रज्जुक को चोरग्रहण-नियुक्त कहा है।) किंतु जैकोबी ने जैन कल्पसूत्र में रज्जू शब्द खोज निकाला है जिसकी व्याख्या वे "लेखक, क्लर्क" के रूप में करते हैं।

१. ये राजूकों से ऊंचे अधिकारी रहे होंगे क्योंकि इनका क्रम छोटे से बड़े की ओर है। डा० टामस इनकी पहचान प्रदेष्ट्रि से करते हैं जो "कार्यांग, राजस्व और न्याय सेवाओं के इंचार्ज थे" (ज० रा० ए० सो०, १९१४, पृ० ३८३-६ और कैंब्रिज हिस्ट्री, पृ० ४८८, ५०८)। कौटिल्य में अठारह विभागों (तीर्थों) की जो सूची है उसमें भी प्रदेष्ट्रि एक विभाग का अध्यक्ष है (१, १२)। इस नाम से एक खास विभाग या लोक सेवा की एक शाखा का बोध होता है। प्रदेष्ट्रि कंटक-शोधन (फौजदारी कानून) का इंचार्ज होता था और धर्मस्थ सिविल कानून का (४, १)। धर्मस्थ और अन्य अध्यक्षों की ही भांति प्रदेष्टा पर भी जासूस लगाए जाते थे। ये जासूस समाहर्ता लगाता था (४, ४)। प्रदेष्टा पुलिस के प्रधान अधिकारी के रूप में भी आता है। इसके अधीन अपने गोप और स्थानिक होते थे जो दूसरे प्रांतों में चोरों के पकड़ने में उसकी मदद करते थे (४, ६)। समाहर्ता की भांति वह दूसरे अध्यक्षों और उनके अधीन पुरुषों के कामों की भी पड़ताल करता था (४, ९)। प्रदेष्टा और धर्मस्थों को दंड, जुर्माने और सजाएं देने का भी अधिकार था (वही)। अंतिम बात यह कि वह गोपों और स्थानिकों के कार्यों की देखरेख और धर्म-शुल्क (सेस) आदि की उगाही में स्थानीय प्रशासन की भी मदद करता था (२, ३५)। प्रदेष्टा का शाब्दिक अर्थ 'प्रदेश का शासक' है। इस प्रकार यह कौटिल्य (५, १) द्वारा प्रयुक्त राष्ट्र-पाल या जूनागढ़ के लेख में आये राष्ट्रिय=प्रांतीय गवर्नर के ही समान था। डा० टामस (ज० रा० ए० सो०, १९१५) ने भी अब प्रादेश (जैसे रिपोर्ट के अर्थ में कौटिल्य, पृ० १११) से इसकी व्युत्पत्ति का प्रस्ताव किया है। प्रादेशिकेश्वर शब्द राजतरंगिणी (४, १२६) में भी प्रांतीय राजा के अर्थ में आया है।

इस संबंध में लेखों में आए नीचे लिखे शब्दों की ओर भी ध्यान देना चाहिए जिनका संबंध ऐसे स्थानीय अधिकारियों से है जिनके स्वाधीन पद थे: नगरव्यावहारक-महामात्र ("हजारों प्राणियों पर नियुक्त", कलिं० च० ले० २), लाजवचनिक-महामात्र (वही), राजूक और प्रादेशिक।

२. अनुसंयानं नियातु (निक्रमतु, शा० और निखमातु, धौ० और जौगड़ में)। दे० कलिंग चट्टान लेख १ में आए इस शब्द पर टिप्पणी।

३. यथा अञाय पि कंमाय: मिला० 'अतने कंमम् अहापयितु एतं पि' 'अपने काम से प्रमाद न

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अर्थात् धार्मिक उपदेश देने के लिए दौरों पर अवश्य जायें : माता-पिता की सेवा करना[1] अच्छा है;[2] मित्र, परिचित, स्वजनों,[3] ब्राह्मणों, और श्रमणों[4] को दान देना अच्छा है; जीव-हिंसा न करना अच्छा है;[5] थोड़ा व्यय करना और थोड़ा संचय करना[6] अच्छा है। परिषद्[7] भी मेरे आदेशों और इनके भावों (व्यंजन)[8] के अनुसार गणना के लिए[9] युक्तों को आज्ञा देगी।

(जारी)

करते हुए दौरे पर वे यह नया काम भी करें' (कलिं० च० ले० १)। इस पुनरावृत्ति से जाहिर है कि अनुसंधान का अर्थ मामूली शासकीय दौरा था न कि तबादला जैसा कि कुछ विद्वानों का विचार है।

१. मिला० सिगालोवाद सुत्तंत : "पांच प्रकार से माता-पिता के प्रति व्यवहार करे (मातापित्रो-पच्चुपट्ठातब्बा) : 'कभी उन्होंने हमारा भरण-पोषण किया था, अब मैं उनका भरण-पोषण करूंगा (भतो नेसं भरिस्सामि); जो कर्त्तव्य उनके हैं उन्हें पूरा करूंगा, मैं कुल वंसम् (कुल वंश) की रक्षा करूंगा (अर्थात् 'मैं संपत्ति नष्ट नहीं करूंगा, यदि जरूरी हुआ तो वंश की प्रतिष्ठा पुनः स्थापित करूंगा और धार्मिक दान चालू रखूंगा') ; मैं अपने दाय के योग्य बनूंगा (दायज्जं पतिपज्जामि)' "। यह "मातरि च पितरि च शुश्रूषा" का ए[क] तात्पर्य है जिसका जिक्र लेखों में बार-बार आया है।

२. साधु।

३. मित्रों और साथियों (मित्तामच्चा) की पांच प्रकार से सेवा संभव है (वही); "दान (दानेन), शिष्टाचार (पेय्यवज्जेन), परोपकार (अत्थ-चरियाय), उनके साथ अपने जैसा व्यवहार करना (समानत्तताय), और जैसा अच्छा बोलना वैसा ही करना (अविसंवादनताय)"।

४. "पांच प्रकार से ब्राह्मणों और श्रमणों के साथ व्यवहार करना चाहिए : मनसा, वाचा कर्मणा मित्रता (मेत्तेन), उनके लिए दरवाजे सदा खुले रहें (अनावट-द्वारताय), और उनकी लौकिक आवश्यकताएँ पूरी करें (आमिसानुप्पदानेन)" (वही)।

कौटिल्य (२, १) के अनुसार राजा को चाहिए कि वह ब्राह्मण को चाहे वह ऋत्विज हो, या आचार्य हो, या पुरोहित हो, या श्रोत्रिय हो, उसे कर-रहित भूमि का दान दे।

५. प्राणानं साधु अनारंभो।

सिगालोवाद सुत्तंत—पाणातिपातो—प्राणि हिंसा को चार दुर्गुणों में (कम्म किलेसों में) गिनता है।

६. अपव्ययता अपभांडता ; अल्पव्ययता और अल्प-संचय की यह परिभाषा दी है (वही) :

"एक भाग वह खाये और खर्चे।
दो भाग वह कारबार के लिए रखे।
चौथा भाग वह संजोकर रखे (निधापेय्य),
इस प्रकार वह जरूरत पर काम आवेगा।"

७. परिसा : डा० जायसवाल की राय में मंत्रिपरिषद् जैसा कौटिल्य (१, १५) में परिभाषित है।

८. व्यंजनतो।

९. गणनायं, गणनसि : इसे मैं इसके मामूली अर्थ में ही लेता हूं न कि लेखा विभाग के विशेष अर्थ में (जैसा विंसेंट स्मिथ ने अपनी अशोक नामक पुस्तक में लिया है)। हुल्ट्श ने इसका अर्थ "(इन नियमों की) रजिस्ट्री" किया है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

४

(गिरनार)

अतीत काल में कई सौ वर्षों से पशुओं की वलि, जीवों की हिंसा और रिश्तेदारों, ब्राह्मणों और श्रमणों का अनादर बढ़ता ही गया। पर आज, देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा के धर्माचरण[1] से भेरी (युद्ध के नगाड़े) का शब्द युद्ध का आह्वान नहीं बल्कि धर्म का शब्द बन गया है[2]। देव विमान, हाथियों[3] और अग्नि-स्कंध[4] और अन्य दिव्य दृश्य[5] लोगों को[6] प्रदर्शित किये जाते हैं[7]।

(...ारी)

जैसा डा० भंडारकर ने (अशोक, पृ० २८०) बड़ी योग्यता से दिखाया है गणना से हर गृहस्थ के खाता-बही का तात्पर्य होगा जिसकी जांच युक्तों को करनी थी जिससे पता चले कि अल्पव्ययता और अल्प-संचय (अपव्ययता अपभाण्डता) के सिद्धांत का वे कितने अंशों में पालन कर रहे हैं।

यहां कौटिल्य (२, ६) द्वारा निर्धारित लोक-वित्त के सिद्धांतों का उल्लेख कर सकते हैं। इन सिद्धांतों में समाहर्ता को यह देखने का काम दिया गया था कि करों आदि से सरकार की आय बढ़ानी चाहिए और उस पर होने वाले व्यय में कमी की जाय। इसके लिए खर्च की जांच और कर्मचारियों की संख्या घटाने पर जोर दिया गया है। संभवत: ऐसे ही किसी सिद्धांत की ओर अशोक की यहां दृष्टि थी।

१. धंमचरणेन।

२. अहो=अभवत्=हुआ।

३. हस्तिदसणा; अन्यत्र हथीनि या अस्तिन पाठ है। यहां सचमुच के हाथियों के जुलूस (युद्ध के लिए नहीं) का जिक्र है। ये लोकपालों के वाहन ऐरावत के प्रतीक हैं या सफेद हाथी बुद्ध का प्रतीक है (डा० भंडारकर और हुल्ट्श दोनों का यही अनुमान है)।

रथों और हाथियों का इस्तेमाल युद्धों में होता था। इसी प्रकार अग्नि विनाश का प्रतीक है। अशोक ने इनकी जगह देवताओं के रथ, दैवी हाथी और देवताओं की प्रदीप्त आकृतियों या अनाक्रामक अग्नि का प्रदर्शन किया।

४. अगिखंधानि; शाहबाजगढ़ी में जोतिकंधनि पाठ है। ज्योति-स्कंध से दैवी ज्योति या अग्नि का तात्पर्य है। हुल्ट्श (ज० रा० ए० सो०, १९१३, पृ० ६५२) ने महंता अगिखंधा की ओर ध्यान आकृष्ट कर उन्हें इंद्र और ब्रह्मा—दिग्पालों का प्रतीक बतलाया है जो अग्नि की बड़ी-बड़ी ज्वालाओं के रूप में दिखलाये जाते थे। वैसी हालत में लेख में आए इन शब्दों का तात्पर्य दिव्यानि रूपानि (दिव्यरूप=देवताओं की आकृतियां) से होगा। डा० भंडारकर ने विमानवत्थु की उद्धरणी दी है जिसमें कहा है कि धार्मिक मनुष्य को परलोक में स्वर्ग का सुख मिलता है जहां (१) विमान=चलता-फिरता महल, (२) हस्ती=ऐरावत की सवारी, और (३) सितारों की तरह देदीप्यमान रूप की प्राप्ति होती है। अशोक ने इनके प्रदर्शन से लोगों का ध्यान धार्मिक जीवन बिताने की ओर आकृष्ट किया।

५. दिव्यानि रूपानि: अशोक ने सोचा होगा कि देवताओं के इन विमानों के प्रदर्शन से लोग उनकी तरह पवित्र जीवन बिताने को प्रेरित होंगे जैसा लघु चट्टान लेख १ में आया है (अमिसा समाना मुनिसा मिसा देवेहि)।

६. जनं; जनस और मुनिसानं अन्य पाठों में।

७. द्रशयितु (सह०), द्रशेति (मान०), दसयित्प (गि०), दसयितु (कलि०)।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जैसा पहले सैकड़ों वर्षों से नहीं हुआ था वैसा आज देवताओं के प्रिय दर्शी राजा के धर्मानुशासन से जीवों की रक्षा, रिश्तेदारों का आदर, ब्राह्मण श्रमणों का आदर, माता-पिता की सेवा[1] तथा वृद्धजनों की सेवा[2] बढ़ गई है

यह और अन्य बहुत प्रकार के धर्माचरण बढ़ गए हैं। इस धर्माचरण देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी राजा और बढ़ाएगा।

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा के पुत्र, पोते, परपोते[3] भी इस धर्मानुशासन को कल्प के अंत तक बढ़ाते रहेंगे[4] और धर्म और शील का पालन करते धर्मानुशासन का प्रचार करेंगे, क्योंकि यह—यानी धर्मानुशासन—श्रेष्ठ कार्य है

यह धर्मानुशासन भी अच्छा है। इसकी वृद्धि करना—नहीं इसकी हानि न होने देना अच्छा है। यह इसीलिए लिखाया गया[6] कि वे (अशोक के उत्तराधिकारी) इस बात की वृद्धि में लगें और इसकी हानि न होने दें।

राज्याभिषेक के बारह साल बाद[7] देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने लिखाया।[8]

---

१. सुस्रुसा: श्री और श्रीमती राइज डेविड्स चाइल्डर्स के अनुवाद 'आज्ञापालन' से नहीं हैं। उनका कथन है कि "आज्ञापालन बौद्ध ग्रन्थों में नहीं मिलता। बौद्ध संघ के नियमों में इसका स्थान नहीं है। उपासकों के लिए संक्षिप्त संस्करणों (उदाहरणार्थ लोवाद सुत्तंत) में भी यह नहीं मिलता। आर्य अष्टांगिक मार्ग या अर्हत के ३७ गुणों में इसका उल्लेख नहीं है। इसलिए कोई बौद्ध भिक्षु या बौद्ध उपासक 'आज्ञापालन' की शपथ नहीं लेता। क्या बौद्ध धर्म की सफलता का यह एक कारण था? बौद्ध धर्म 'आज्ञापालन' के परे देखता है।" (डायलाग आफ दि बुद्ध, खंड ३, पृ० १८१)। वे इसका अर्थ "सीखने की उत्सुकता" करते हैं। स्तंभ लेख ७ में अध्यापक के प्रसंग में इस शब्द का इस्तेमाल समीचीन है।

२. थेर=स्थविर; या व्युढनं अर्थात् वृद्धानाम् दूसरे पाठों में।

३. पोत्र (या नाति) च प्रपोत्रा (या प्रनतिक); मनोरंजक प्रश्न यह है कि क्या अशोक प्रपौत्र का मुख देखने को जीवित था?

४. आव सवटकपा=यावत् संवर्तकल्पम्। महाभारत में १००० युगों के बाद संवर्तक अग्नि प्रकट होने का उल्लेख है (दे० स्मिथ कृत अशोक, तृ० संस्क०, पृ०१६७)। अन्य स्थानों में आव कपं=यावत् कल्पं पाठ है।

५. तिस्टंतो।

६. लेखापितं; सह० में निपिस्तं पाठ (हुल्ट्श) है। बुहलर ने इसे दिपिस्त पढ़ा है।

७. यह और इसके पहले के लेख—दोनों लेखों में कहा गया है कि वे ई० पू० २५८ में जारी हुए थे, जबकि अगले लेख में कहा है कि वह एक साल बाद जारी हुआ था, जब महामात्रों की नियुक्ति हुई थी। अतः आंतरिक प्रमाणों से ही सिद्ध है कि चौदहों लेख एक वर्ष ई० पू० २५८-२५७ में जारी हुए थे।

८. लेखापितं या लेखिता (कलि०), किंतु शाह० में दिपपितं है। चट्टान लेख ५ धंमलिपि में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

५

(मानसेहरा)

देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहता है: "अच्छा काम करना[1] कठिन है। जो कोई सबसे पहले अच्छा काम पूरा करता है[2] वह एक दुष्कर कार्य संपन्न करता है। मैंने बहुत से अच्छे काम किए हैं।

इसलिए यदि मेरे पुत्र, पोते, और उनके बाद जो संतानें होंगी[3] वे सब (कल्प के अंत तक) वैसा अनुसरण करेंगी तो वे पुण्य करेंगी। किंतु जो इसकी थोड़ी सी[4] भी

(कलि०) के स्थान पर ध्रमदिपि दिपिस्त पाठ है।

पाणिनि (३, २, २१) लिखने वाले के अर्थ में लिपिकर और लिबिकर शब्दों का प्रयोग करता है। संस्कृत में लिपिकर के लिए दिविर शब्द भी है। इस प्रकार दिप या दिव=लिखना धातु से दिपपितं या दिपिस्त शब्द बनते हैं। हुल्ट्श दिपिस्त की जगह निपिस्त पढ़ते हैं जिससे का० प्र० जायसवाल नीवीस्थ=record=क्षेत्र या भूमि की लिखत (record) पढ़ते हैं। यह शब्द नीवी=cord=डोरी से बना है। [मिला० नासिक के एक लेख में रजिस्टर्ड के अर्थ में निबंध शब्द आया है जो निबद्ध से बना है (दे० मेरी लोकल गवर्नमेंट इन्न एंशियंट इंडिया नामक पुस्तक, दूसरा सं०, पृ० ११६)]। पर संस्कृत में सामान्यतया नीवी शब्द कमर ढंकने के लिए इस्तेमाल में आने वाले कपड़े के लिए होता है। उस समय लोग रुपये भी इसी तरह बांधते थे (कुबेर की पुरानी मूर्तियों में उनकी गर्दन से कपड़ों के थैले लटकते दिखायी पड़ते हैं!)। अत: नीवी शब्द से इस प्रकार लटकने वाला धन या पूंजी या बचत की रकम भी सूचित होता था। कौटिल्य (२, ६ और ७) में इसी अर्थ में यह शब्द आया है। अक्षय-नीवी शब्द का प्रयोग अनेक लेखों में मिलता है। इसका मतलब होता था कि खर्च में सिर्फ सूद आएगा, मूल रकम को नहीं छुआ जाएगा (मिला० मेरी पुस्तक लोकल गवर्नमेंट, पृ० ११६)। (इस नोट के लिए मैं श्री गौ० ही० ओझा की हिंदी पुस्तक अशोक, पृ० ५२ का ऋणी हूं।) हुल्ट्श (ज० रा० ए० सो०, १६१३, पृ० ६३४) निपिस्त का अर्थ निष्पिष्त (पिसी या रौंदी जमीन) करते हैं। इस प्रकार वे इस शब्द का अर्थ उत्कीर्ण या 'उकेरी हुई' लेते हैं। उनकी राय में (कार्पस, पृ० ४२) इस शब्द का संबंध प्राचीन फारसी के निपिय=लिखना से है। इस संबंध में वे जर्क्सीज के वान के लेख में 'यनैय् दिपिम् नैय् निपिश्तम्' जहाँ दारा ने "लेख नहीं लिखवाये थे" की ओर ध्यान आकृष्ट करते हैं।

हुल्ट्श के मतानुसार शाह० में इदं लेखापितं पाठ न होकर वनं हिब निपेसितं पाठ है। इसका अनुवाद वे इस प्रकार करते हैं: "(यह) कल्पना (ज्ञान) यहाँ लिखवायी गयी"।

1. कलणं, कयाने (का०)=कल्याणम्।
2. अदिकरे=आदिकर:=प्रारंभ करने वाला।
3. जिस रूप में यहाँ यह बात कही गयी है उससे यही लगता है कि अशोक ने अपने पोतों का तो मुख देखा था पर परपोतों आदि का नहीं (मिला० वे दान लेख जिनमें दशरथ देवानंपिय का उल्लेख है)।
4. देश: कलिंग चट्टान लेख १ में भी यह शब्द आया है (से पि देसं नो सवं)। मिला० एक-देशम्, एक हिस्सा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हानि[1] करेगा वह पाप करेगा। पाप का दलन करना चाहिए।[2]

पूर्व काल में धर्म-महामात्र नहीं होते थे। पर मैंने अपने अभिषेक के साल बाद धर्म-महामात्र नियुक्त किए। ये धर्म-महामात्र सभी संप्रदायों के बीच की स्थापना व वृद्धि और योन,[3] कंबोज, गंधार,[4] राष्ट्रिक,[5] पितिनिक[6] (मेरे जो भी) अपरांत[7] या पश्चिमी सीमा के लोग (भी) हैं उनमें

---

१. हपेशति=हापयिष्यति, मिला० हिनि=हानिः, चट्टान लेख ४ में।

२. सुपदरवे या सुपदालये (का०)=सुप्रदलितव्य अर्थात् पैर से दलने या नष्ट करने शाहबाजगढ़ी में और गिरनार में भी सुकरं शब्द आया है। फिर इस अंश का अर्थ 'पाप करना आसान है'।

३. चट्टान लेख २ और १३ में आये योनों को "योन-राजाओं" से अलग करके देखना सेनार्ट के मत से अपरांतों की स्थिति अंतों से कुछ भिन्न थी। अपरांत जातियों महामात्रों के जरिए राजा से निकट का सबंध था। इनके क्षेत्र में धर्म-महामात्र प्रचार करने के लिए नियुक्त होते थे। इसके विपरीत अंत (चट्टान लेख २) राजा तरह का लाभ पाते थे—वह था चिकित्सा-सेवा की मदद। इस वर्ग में सभी विदेशी जो उन यवन राजाओं के अधीन थीं, आती हैं जिनके नाम लेखों में दिए हैं। च० में अंत दूसरे लेखों के प्रत्यंत के बदले आया है।

४. हुल्ट्श (आर्कला० सर्वे, साउथ इंडिया; i, पृ० २२३) उन्हें "यवन, काबुली और के पंजाबी" मानता है।

५. आंध्र या सातवाहन युग के दकन के कतिपय लेखों में सामंत राजाओं के लिए और महा-भोज शब्द आते हैं। अंगुत्तर ३, ७० और ३०० के टीकाकारों ने पेत्तनि व्याख्या 'पैतृक' के रूप में की है जहाँ यह शब्द रट्ठिक पेत्तनिक के रूप में आया है। सुझाव डा० भंडारकर का भी है। वे पितिनिक-राष्ट्रिक या भोजों (चट्टान लेख को पैतृक राष्ट्रिक (राजा) मानते हैं। किंतु माइकेलसन पेतेणिक और पैत्तनिक को मानते। उनकी राय में यह 'ध्वनि-परिवर्तन के स्वीकृत सिद्धांतों से मेल नहीं उनका मत है कि पेतेणिक शब्द पैत्रयणिक से ही बना है (ज० अ० ओ० सो० २५७)। हुल्ट्श की राय में राष्ट्रिक=पंजाब के आरट्ट=पेरिप्लस का अरट्टिओइ है।

हुल्ट्श (कार्पस, पृ० ३८) का यह भी मत है कि रठिक या राष्ट्रिक वाड़ी रहे होंगे क्योंकि इसके गवर्नर को रुद्रदामन के जूनागढ़ वाले लेख में राष्ट्रिय

६. रठिक-पितिनिकन; रठिकनं पितिनिकनं (शाह०), रिस्टिक-पेते-णिकानं (गिर०), पितेनिकेसु (धौली)।

चट्टान लेख १३ में भोज-पितिनिकेषु या पितिनिक्येषु समास आया है।

७. अपरांत शब्द संस्कृत साहित्य में पश्चिम भारत के लिए रूढ़ है। उदाहरणार्थ, भारत के पाँच भाग किए गए हैं। (१) मध्यदेश (२) उदीच्य (उत्तर), (३) प्राच्य (४) दक्षिणापथ (दक्षिण) और (५) अपरांत (पश्चिम)। काव्यमीमांसा में ये पाँच हैं (१) पूर्वदेश (बाराणसी से), (२) दक्षिणापथ, माहिष्मती से दक्षिण, (३) उत्तरापथ, (पेहोवा=थानेसर से पश्चिम) से उत्तर, (४) अंतर्वेदी, मध्यदेश विनसान और प्रयाग और यमुना के बीच का प्रदेश, और (५) पश्चात्देश, पश्चिमी प्रदेश, पुराणों का अपरांत हिस्से हैं: देवसभा, सुराष्ट्र, दशेरक (मालवा), त्रवण, भृगुकच्छ, कच्छीय, आनर्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रत[1] लोगों के हित व सुख के लिए नियुक्त किए गए हैं। वे सैनिकों और उनके मालिकों,[2] ब्राह्मण संन्यासियों,[3] गृहस्थों, अनाथों और अशक्त वृद्धों के बीच धर्म में

(जारी)

रात), अर्बुद (आबू पहाड़ के इर्द-गिर्द) यवन और अन्य। इस प्रकार जिन जातियों का नाम अशोक ने लिया है वे अपरांत में होंगी। तृतीय बौद्ध-संगीति ने जिन प्रदेशों में भिक्षु-मंडल भेजे थे उनमें अपरांत भी हैं। पालि ग्रन्थों में अपरांत की राजधानी सूर्पारक थी जो आज ठाणा जिले में सोपारा है। यहां चट्टान लेख मिले हैं। जायसवाल अपरांत को अंतों का विलोम मानते हैं। वे इनमें एक को अशोक के राज्य के भीतर और दूसरे को बाहर मानते हैं। दे०, च० ले० १३ की टिप्पणी। ध्यान देने की बात यह भी है कि कौटिल्य भी पश्चिम भारत को अपरांत कहता है। उसने इसे हाथियों के लिए प्रसिद्ध माना है, यद्यपि ये हाथी मध्यम श्रेणी के होते थे (२, २)। यहां खूब वर्षा होती थी। इस वजह से कौटिल्य के टीकाकार इसकी पहचान कोंकण से करते हैं (२, २४)।

१. ध्रमयुतस : मैं इसका वही अर्थ लेता हूं जो मास्की में अभिप्रेत है न कि धर्मयुक्त=धर्म विभाग के कर्मचारी जो सामान्यनया मानते हैं।

२. भटमयेषु=भृत म (श्रुति मधुर) आर्येसु ; भट (सैनिक) भटक (नौकर). जैसे दास-भटकसि से भिन्न है। दास-भटकसि="दास और नौकर" चट्टान लेख ९ में आया है। भट-चाट (सामान्य और छुट्टे सैनिक) का गुप्त लेखों में बार-बार प्रयोग हुआ है।

३. बमणिभ्येषु : यहां ब्राह्मणों और इभ्यों का भेद दिखलाया है। इभ्य उन्हें कहते थे जो धन और परिवार वाले होते थे। अत: उन्हें हम गृहस्थ कह सकते हैं। संन्यासी इनसे विपरीत बिना घर-द्वार और माल-मता वाले होते थे। स्तं० ले० ७ की पंद्रहवीं पंक्ति में ऐसे ही प्रसंग में पवजीतानं गिहिथानं प्रयोग आया है। दूसरे लोगों में (मिसाल के तौर पर चट्टान लेख ४ में) ब्राह्मण-श्रमणेषु पद आया है। इससे स्पष्ट है यहां ब्राह्मण जातिसूचक नहीं है बल्कि ब्राह्मण संन्यासियों का सूचक है जिस प्रकार श्रमण दूसरे प्रकार के संन्यासियों का सूचक है। उस समय ब्राह्मण संन्यासियों के अनेक संप्रदाय थे जैसे, तीत्थिय, आजीविक, निगंथ, मुंडशावक, जटिलक, परिव्राजक, मागंडिक, तेदंडिक, एक-सातक, अविरुद्धक, गोतमक, देवधम्मिक, चरक, आचेलक, आदि (ज० रा० ए० सो०, १८९८, पृ० १९७ और सुत्त निपात)। श्रमण संन्यासियों के भी अनेक संप्रदाय थे जैसे मग्ग-जिन, मग्ग-देसिन, मग्ग-जिविन और मग्ग-दुसिन। परस्पर विवाद के कारण इनके और भी टुकड़े हो रहे थे। इस प्रकार ब्राह्मण-श्रमण पद में उस समय के सभी संन्यासी आ जाते हैं। इन ब्राह्मण-श्रमणों के प्रति आदर अशोक की अपनी कल्पना न थी। बुद्ध के समय में भी उनका उतना ही आदर था। स्वयं बुद्ध भी उनका आदर करते थे। जैसा ऊपर कहा है (दीघ निकाय, iii, पृ० १९१, पा० टे० सो० में), बुद्ध "श्रमण-ब्राह्मणों" को सबसे अधिक आदर का पात्र मानते थे। वे इनके प्रति आदर की अभिव्यक्ति पांच प्रकार से संभव बतलाते थे, मनसा, वाचा, और कर्मणा मैत्री, उनके लिए सदा घर के दरवाजे खुले रखना (अनावट-द्वारताय) और उनकी जरूरतें पूरी करना (आमिसानुप्पदानेन)। इस प्रकार अशोक ने जो इनके प्रति आदर प्रदर्शित किया है उसका कारण उसका बौद्ध होना था और ऐसी ही उस समय की प्रथा भी थी।

ध्यान देने की बात यह है कि मेगस्थनीज ने भी दो वर्गों के संन्यासी देखे थे, 'ब्राचमनीज और समनीज'। इनमें पहले प्रकार के संन्यासी बड़ी सादगी से रहते थे वे जल-बेंत या चमड़े के आसनों पर सोते थे, माँस भोजन नहीं करते थे, ३७ वर्ष की उम्र तक सदा अध्ययन-अध्यापन में लीन रहते थे, फिर वे गृहस्थ बन जाते थे। ये लोग ब्रह्मचारी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अनुरक्त जनों के हित व सुख व क्लेश से मुक्ति दिलाने के लिए नियुक्त किए गए हैं वे वध और बंधन[1] के विरुद्ध प्रतिकार[2] के लिए, क्लेश से मुक्ति[3] के लिए और उन लोगों की रिहाई के लिए जिनके बहुत से बाल-बच्चे हों,[4] या जो महाविपत्ति-ग्रस्त हों

(जारी)

ब्राह्मण रहे होंगे। एरियन ने दूसरे प्रकार के संन्यासी भी देखे थे जिन्हें वह 'सोफिस्ट' कहता है जो "नंगे रहते थे, पेड़ों की छाया में रहते थे, सिर्फ पेड़ों के फल और छालें खाते थे। ये चौथे आश्रम वाले ब्राह्मण रहे होंगे जिन्हें संन्यासी कहते थे। अन्य प्रकार के संन्यासियों को यूनानी समनी अर्थात् श्रमण कहते हैं। 'ये जंगलों में रहते थे, पत्ते और फल खाकर जीते थे और पेड़ों की छाल पहनकर रहते थे'।

१. अपलिबोधये, किंतु गिरनार में पाठ है अपरिगोधाय। डा० टामस ने बड़े विद्वत्तापूर्ण ढंग से (ज० रा० ए० सो०, १९१५, पृ० ९९-१०६) विभिन्न ग्रंथों से आए पलिगोध और पलिबोध दोनों शब्दों का अर्थ स्पष्ट किया है। गृध धातु से परिगृद्ध शब्द बना है जिसका इस्तेमाल 'इच्छा', 'लालच' या 'दुनियादारी' के अर्थ में होता है। यह शब्द इसी अर्थ में शिक्षासमुच्चय और दिव्यावदान (पृ० ३५१, परिगृद्धो विषयाभिरतश्च) में कई बार आया है। पलिबोध शब्द बुध धातु (=जानना, खबरदार होना) से निकला है किन्तु विनय पिटक, जातक आदि में इसके इस्तेमाल से स्पष्ट है कि यह 'चिंता', 'तकलीफ' या 'दुनियावी परवाह' के अर्थ में रूढ़ हो गया था। दोनों शब्दों के अर्थों में जो सूक्ष्म अंतर था जनता उससे परिचित न थी। यदि लिपिकार की पकड़ से ये सूक्ष्म अर्थ बाहर रहे हों तो हम उसे दोष नहीं दे सकते।

इस संबंध में ध्यान में रखने की बात यह है कि धर्म-महामात्रों को सरकार की ओर से अनाथों और वृद्धों (अनाथेषु वृद्धेषु) की मदद करने का काम सौंपा गया था। कौटिल्य ने भी राज्य के कर्त्तव्य में इसको रखा है। "बाल-वृद्ध-व्याधित-व्यसन्य्-अनाथांश्च राजा विभृयात्", "राजा अनाथ बालकों, लाचार बूढ़ों, रोगियों, विपद्ग्रस्तों और अनाथों का भरण-पोषण करेगा" (२, १)।

२. पटिविधनये; पटिविधानाय (गिर०): सं० प्रतिविधानम्=एहतियाती कार्यवाही। किन्तु हुल्ट्श इसे दान के अर्थ में ग्रहण करता है जिस अर्थ में चट्टान लेख ८ में इसका इस्तेमाल हुआ भी है। वह इसकी व्याख्या 'सहायता, मदद करने' के रूप में करता है।

३. बधन-बधस; बंधन-बधस (गिर०) 'बंधन में बंधा हुआ'। मिला० स्तं० ले० ४ में बंधन बधानं।

४. 'पजाव ति वा' (कालसी में) अर्थ निश्चित कर देता है कि यह 'प्रजावान् इति वा' है जिसका मतलब यह है कि जो कई बेटे-बेटियों के भार से दबा है। अतः माफी के योग्य है। जहाँ तक इन अनुबंधों या राहत के आधारों का संबंध है, सबसे पहले श्री जायसवाल ने स्मृति ग्रन्थों का प्रमाण देकर (मनु, ८, १२६; गौतम १२, ५१; वसिष्ठ, १९, ९१; याज्ञवल्क्य १, ३६७; और कौटिल्य ४, ८५) बतलाया कि अदालती सजाओं पर किन परिस्थितियों में पुनर्विचार हो सकता था।

५. कतंभिकर या कट्टाभिकर (हुल्ट्श); किटभिकरो (सह०); कटाभिकाले (का०); प्रथमा एकवचन, पुल्लिंग; बुहलर के मतानुसार; अभिकिरति शब्द का अर्थ जातक ४, १२५, ५, ७२ में 'सताता है, अभिभूत करता है' है। अतः इस अभिकर का अर्थ बूलनर के मतानुसार (१) जादू-टोना आदि, और (२) जीविका का साधन भी होता है। सेनार्ट और हुल्ट्श इसका पहला अर्थ ग्रहण कर कटाभिकाले का तात्पर्य क्रमशः 'धोखेबाजी के शिकार' और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

या जो अति-वृद्ध हों—नियुक्त हैं। वे यहां[1] और बाहर के नगरों में, सभी जगह मेरे भाइयों, बहिनों[2] और दूसरे रिश्तेदारों के सभी रनिवासों[3] में नियुक्त हैं। ये धर्म-महामात्र मेरे राज्य में[4] सभी जगह धर्मानुरागी जनों के बीच—चाहे वे धर्म के प्रति जिज्ञासु हों; धर्म में प्रतिष्ठित हों, या अच्छी तरह से दान देते हों[5]—नियुक्त हैं।

(जारी)

'जादू-टोने के शिकार' बतलाते हैं। दूसरे अर्थ में कटानिकाले=रोटी देने वाला हुआ (वूलनर ने इस संबंध में देशीनाममाला, १, २ की उद्धरणी की है।)

जहाँ तक अन्याय्य कैद (बंधन), वध और कैदियों को यातनाएं देने (पलिबोध) का संबंध है, मजेदार बात यह है कि कौटिल्य (४, ८) भी काराध्यक्ष को इस संबंध में चेतावनी देता है। बिना कारण बतलाए किसी को जेल में रखने (संरुद्धकमनाख्याय चारयतः), उन्हें अनुचित यातनाएं देने (कर्मकारयतः), उन्हें भोजन-पानी न देने, परिक्लेश देने और उनका प्राणांत करने (घ्नतः) के लिए जुर्माने किए जा सकते थे। इस प्रकार अशोक ने इस संबंध में धर्म-महामात्रों को जो काम सौंपा था उसका ताल्लुक काराध्यक्षों से था जो लोगों को अन्यायपूर्ण कष्ट देने के लिए जिम्मेदार होते थे।

१. गिरनार में यहां 'पाटलिपुते' अर्थात् 'पाटलिपुत्र में' पाठ है। इससे इस शब्द का अर्थ निश्चित हो जाता है चाहे वह जहां भी मिले (उदा० च० ले० १)। पाटलिपुत्र का उल्लेख सारनाथ के स्तंभ लेख में भी है। जहाँ तक प्रांतीय राजधानियों में राज-परिवार के लोगों के रहने का संबंध है, हम उन जगहों का उल्लेख कर सकते हैं जहाँ 'कुमार'=वाइसराय रहते थे, जैसे तक्षशिला, उज्जैन, तोसली, सुवर्णगिरि। कौटिल्य भी ऐसे महामात्रों का उल्लेख करता है जो 'विहार' स्थलों में नियुक्त थे। ये स्थल राजधानी में और बाहर भी (बाह्याभ्यंतर) (१, १०) थे।

२. स्पसुन।

३. धौली का पाठ है: 'हिद च बाहिलेसु च नगलेसु सवेसु र(ा)वेसु ओलोधनेस(‸)(मे) वा पि भात(ा)नं मे भगिनीनं वा......'। 'मे ओलोधनेसु' 'मेरे रनिवासों में' अन्य पाठों में नहीं मिलता। इससे पता चलता है कि मुफस्सिल नगरों में भी अशोक के अपने रनिवास थे। इस संबंध में ज्ञातव्य है कि उसकी रानी देवी जनश्रुतियों के अनुसार पाटलिपुत्र नहीं गयी थी। वह 'वेदिसगिरि' में ही रहती थी। इसी प्रकार अशोक का एक दूसरा अवरोधन या रनिवास कारुवाकी का भी रहा होगा जो तीवर की माता थी। यह रानी कोशांबी में रही होगी क्योंकि कोशांबी स्तम्भ पर इसका एक लेख लिखा है। जहां तक अशोक के भाइयों के रनिवासों का संबंध है वे उन चारों प्रांतीय राजधानियों में रहे होंगे जहां वे वाइसराय थे।

स्तम्भ लेख ७ में इन धर्म-महामात्रों का काम बतलाया गया है। इन रनिवासों में वे राजपरिवार के लोगों को धर्म और दान के लिए प्रोत्साहित करते थे।

४. विजितसि या विजिते, चट्टान लेख २ और ३ में भी इस्तेमाल हुआ है। किन्तु धौली में पुठवियं अर्थात् पृथिव्यं पाठ है जो महत्त्वपूर्ण है। इससे उसके राज्य की सीमाओं का पता चलता है। उसका राज्य काफी बड़ा था यह अन्यत्र भी कहा है—महालके (या महंते) हि विजितं (चट्टान लेख १४)।

५. ध्रमनिशितो तो व ध्रमधियने ति व दनसंयुते। मैंने इसका हुल्द्श वाला अनुवाद स्वीकार किया है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यह धर्मलिपि इस उद्देश्य से लिखायी गई है कि यह चिरस्थायी हो और मेरी प्रजा[1] (वंशज) इस मार्ग का अनुसरण करे।

६

(गिरनार)

देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहता है :

अतीत काल में पहले बराबर हर समय राज्य का काम नहीं होता था,[2] न हर समय प्रतिवेदकों से समाचार ही सुने जाते थे। इसलिए मैंने ये प्रबंध किये हैं: प्रतिवेदकों को हिदायत है कि हर समय चाहे मैं खाता रहूं,[3] या रनिवास में रहूं, या शयनगृह में[4] रहूं, या पशुशाला[5] में भी रहूं या धर्मोपदेश-स्थान[6] में रहूं, या

---

१. लेखों में प्रजा=बेटे और पोते-परपोते। कलिंग के दोनों पृथक् लेखों में भी यही अर्थ है। स्मिथ ने प्रजा या रियाया अर्थ किया है जो ठीक नहीं है।

२. सभी नीति-शास्त्रों में (कौटिल्य १, १९; मनु, ७, १४५, १४६, २२२-२२६; याज्ञवल्क्य, ७, ३२७-३३३; अग्नि-पुराण, २९५, १-१७) राजा की जितनी व्यस्त दिनचर्या दी है उससे इस कथन का मेल नहीं बैठता। अशोक ने इस संबंध में अपने पूर्ववर्तियों की जो आलोचना की है वह उसके दादा चंद्रगुप्त पर भी लागू नहीं होती। राजकार्य में उसकी रुचि का मेगस्थनीज ने यों वर्णन किया है : 'राजा दिन में नहीं सोता था। वह युद्ध के लिए ही अपने महलों से नहीं बाहर निकलता बल्कि न्याय के लिए भी बाहर जाता है। फिर वह दिन भर दरबार में रहता है जिससे काम में कोई विघ्न न आए। फिर वह घड़ी आती है जब वह अपने शरीर की सुधि लेता है' (मैक्क्रिंडल, पृ० ७२)। कर्टियस (८, ९) और भी कहता है : 'उसके महलों के दरवाजे आगन्तुकों के लिए सदा, चाहे वह अपने केश-प्रसाधन करा रहा हो या मालिश, खुले रहते हैं। उस समय वह राजदूतों से मिलता है और प्रजा के मुकदमों की सुनवायी करता है' (वही, एंशियंट इंडिया, पृ० ५८)।

३. भुंजमानस, अदमानसा (कालसी), अशमानस (शाह०) और अशतस (मानसे०)।

४. ओरोधनम्हि, पर कलिंग में 'अंते ओलोधनसि' 'रनिवास में' पाठ है।

५. वचम्हि, वचसि या व्रचस्पि, प्राकृत वैयाकरण हेमचंद्र इसका संबंध संस्कृत के व्रज=जानवरों और गड़रियों के बाड़े से जोड़ता है। कौटिल्य (२, ६) व्रज में इन जानवरों की गणना करता है : गायें, भैंसें, बकरियां, भेड़ें, गधे, ऊंट, घोड़े, और खच्चर। कौटिल्य (१, १९) ने राजा को अपने व्रज की निगरानी करने को कहा है। माइकेलसन (ज० अ० ओ० सो०, ४६, २५९) व्रज से वच की व्युत्पत्ति और 'ज' के 'च' में परिवर्तन में ध्वनिगत कठिनाइयां बतलाता है। पर गिरनार में चट्टान लेख १२ में वज-भूमीका है जो स्पष्ट ही व्रज-भूमिका है। शाह० में इस लेख में व्रचेयं, च० ले० १२ में व्रच-भूमिक और चट्टान लेख १३ में व्रचंति रूप है जो सभी व्रज से संबद्ध हैं।

६. विनीतम्हि, विनीतसि। मैंने सेनार्ट वाला अर्थ ग्रहण किया है। ये सभी शब्द राजा के विभिन्न राजकीय या निजी कर्मों से जैसे भोजन, शयन, नारियों की संगत, उद्यानों (उद्यानेषु) में घूमने या खेत देखने से संबंध रखते हैं। अशोक के लिए धर्मानुष्ठान का इनसे कम महत्व न था। इस लेख में अशोक का कथन महत्व का है। इसलिए वह सार्वजनिक कार्य हर समय, हर स्थान में—चाहे वह आराम कर रहा हो या घर में हो या रनिवास में—करने की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उद्यान[1] में रहूं—सभी जगह प्रतिवेदक[2] मुझे प्रजा का हाल सुनावें। मैं प्रजा का

(जारी)

घोषणा करता हूँ। कुछ विद्वान [विधुशेखर (इं० ए० ४६, ५३) और ओझा] व्रज का अर्थ छोटी यात्रा और विनीत का अर्थ लंबी यात्रा जिसमें कई सवारियों का इस्तेमाल हो और घोड़े बार-बार बदलते हों, अमरकोष के शब्दों में परम्परावाहन ग्रहण करते हैं। प्रो० विधुशेखर ने मज्झिम निकाय के रथविनीत सुत्त की ओर ध्यान दिलाया है जहाँ वर्णन है कि पसेन्दि ने सावत्थी से साकेत की यात्रा एक महत्त्व के काम के लिए की जो सात रथ-विनीत [शाब्दिक अर्थ 'रथ जिसमें विनीत अर्थात् सुशिक्षित और अच्छी नस्ल के घोड़े जुड़े हों' (बुद्धघोष)] पर थी अर्थात् जिसमें सात बार घोड़े (या सवारियां भी) बदलनी पड़ी। ध्यान देने की बात यह है कि कौटिल्य (२, ३३) ने एक प्रकार के रथों को वैनयिक या प्रशिक्षण रथ कहा है। मैं अब भी अपने अर्थ को ही सही मानता हूँ जिसका समर्थन कौटिल्य से होता है। कौटिल्य ने राजा के कर्त्तव्यों में स्वाध्याय (धार्मिक अध्ययन), संध्या-प्रार्थना (संध्यामुपासीत), और आचार्य से आशीर्वाद ग्रहण, और एकांत चिंतन (शास्त्रमिति कर्तव्यताम् चिंतयेत्) की गणना की है जिनके लिए विनीत अर्थात् इन धार्मिक कार्यों का स्थान जरूरी था। कौटिल्य और अशोक के लेख दूसरी बातों में भी एक दूसरे का समर्थन करते हैं; जैसे लेखों का ओरोधन कौटिल्य का शयीत है, लेखों का भुंजमानस कौटिल्य का स्नानभोजन; और उयानेसु स्वैरविहार है। व्रज का भी एक ही अर्थ है क्योंकि कौटिल्य ने राजा को हाथी, घोड़ों, रथों और पैदल सेना का निरीक्षण करने को कहा है (हस्त्यश्वरथा-युधीयान् पश्येत्)। विनीत के ही तुल्य शब्द कौटिल्य का उपस्थान (आश्रय) और अग्न्यागार (पवित्र अग्नि का स्थान) है जहाँ राजा अपने आचार्य के साथ धार्मिक और अन्य मामले निपटाता था (कौटिल्य, १, १६)। स्वाध्याय या अग्नि की उपासना के बदले अशोक अपने विनीत में विनय का अध्ययन करता था।

१. पाटलिपुत्र में मौर्यों का महल बगीचों में था इस बात का उल्लेख एलियन (१३, १८ मैक्रिंडल) ने किया है: "बगीचों में पालतू मोर और महोख हैं। छायाप्रद बाग हैं, चरागाहों में पेड़ लगाये गए हैं, जिनमें कुछ पेड़ तो हमेशा हरे-भरे रहते हैं, कुछ सदाबहार पर रहते हैं। कुछ पेड़ स्थानीय हैं, कुछ बाहर से मंगाये गये हैं और अपने सौंदर्य से भूदृश्य का सौन्दर्य द्विगुणित करते हैं। तोते राजा के सिर पर गोलाई में मंडराया करते हैं। महल की खुली हुई जमीनों में सुन्दर बावलियां हैं जिनमें बहुत बड़ी मछलियां पाली जाती हैं। राजा के बेटे उनसे खेलते हैं। वे इन बावलियों में नावें चलाते हैं।"

इस लेख का उद्यान संभवत: कौटिल्य (२, ३) का मृग-वन है जो राजा के आनंद के लिए होता था। इस शिकार के वन के चारों ओर खाई होती थी, उसमें तरह-तरह के फलों के वृक्ष होते थे, झाड़ियों, लता-मंडप और बिना कांटों के वृक्ष होते थे। राजा के आनंद के लिए इनमें अनेक जंगली जीव जैसे बाघ, हाथी, कबूतर आदि रखे जाते थे। इनके घातक अंग जैसे पंजे और दांत काट दिए जाते थे।

२. मेगस्थनीज ने जिन सात जातियों का उल्लेख किया है उनमें छठी जाति को वह "ओवर-सीयर या इंस्पेक्टर" कहता है। ये वही हैं। "इनके अधिकार में इस बात की जांच और निरीक्षण करना और राजा को उसकी रिपोर्ट देना था कि उसके राज्य में कहां क्या हो रहा है (मेगस्थनीज, पृ० ४३)। एरियन ने और भी कहा है कि 'परंपरा और स्वभाव से ये झूठी रिपोर्टें नहीं देते थे, पर वास्तव में किसी भारतीय पर झूठ का इलजाम नहीं है।'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

काम सभी जगह करता हूँ। यदि मैं मुख से आज्ञा दूं कि (अमुक) दान दिया जाय[१] या (अमुक) घोषणा की जाय,[२] या फिर महामात्रों को कोई महत्त्व का काम सौंपा गया हो[३] और यदि उस काम के सिलसिले में परिषद्[४] में कोई विवाद[५]

(जारी)

स्ट्राबो ने यह भी कहा है: "इन पदों पर सबसे योग्य और विश्वासपात्र व्यक्तियों की नियुक्ति होती है" (मैक्क्रिडल, पृ० ५३)। इससे कौटिल्य (१, ११) के इस कथन की पुष्टि हो जाती है कि इनकी नियुक्ति अमात्यों (सिविल सेवा के उच्चतम पद) से की जाय और इन पदों पर उनकी ही नियुक्ति की जाय जो सब प्रकार की परीक्षा में सफल हों। कौटिल्य इन्हें गूढ़पुरुष कहता है जिनसे सरकार का जासूस विभाग बनता था। इस विभाग की दो शाखाएँ होती थीं, एक संस्था (जो एक ही जगह रहते थे) और दूसरी संचार (जो इधर-उधर घूमकर सूचनाएं एकत्र करते थे)।

टामस ने (ज० रा० ए० सो०, १९१५, पृ० ११२) चट्टान लेख ३ के प्रादेशिक को प्रदेश से व्युत्पन्न माना है। यहां वे प्रदेश को क्षेत्रीय इकाई नहीं मानते बल्कि इसे 'रिपोर्ट' मानते हैं जिस अर्थ में इसका प्रयोग हुआ है, उदाहरणार्थ कौटिल्य (पृ० १११) में "तेन प्रदेशेन राजा......उपदिशेत"। यदि टामस की यह स्थापना सही है तो प्रादेशिक और प्रतिवेदक एक ही हुए [और भी मिला० एतिना च वयजनेना, ल० च० ले० १ (रू०) और ल० स्तं० लेख (सारनाथ)]।

१. दापकं: उदाहरणार्थ अशोक के वे लेख जिनमें आजीविकों को गुहावास देने का उल्लेख है।

२. स्रावापकं: अशोक के चट्टान व स्तम्भ लेख (मिला० श्रावापितं, श्रावणं, लघु चट्टान लेख १)। ओझा जी के मतानुसार इन दोनों शब्दों का अर्थ वे अधिकारी हैं जिनका संबंध राजकीय दानों से और राजा की आज्ञाओं की घोषणा से था। कौटिल्य (२, ७) ने दापक नाम के पदाधिकारियों का उल्लेख किया है जिनका संबंध दायक अर्थात् कर अदा करने वालों की कर की रकम निश्चित करना और उनसे उसकी वसूली करना था। यह भी ध्यान देने की बात है कि गुप्तों के लेखों में आज्ञा-दापक नाम के पदाधिकारियों का उल्लेख आता है। अशोक ने भी ऐसा अधिकारी अवश्य रखा होगा जो उसके जबानी आदेश नोट करता हो (मुखतो आनापयामि स्वयं दापकं वा स्रावापकं)। वैसी हालत में स्राज्ञापकं का अर्थ वह अधिकारी होगा जो आज्ञाओं की घोषणा करता था।

३. शाहबाजगढ़ी में यह पद गलती से पुनः लिख गया है वैसे लेखों में ऐसी त्रुटियां बहुत ही कम हुई हैं।

४. कौटिल्य (१, १५, १६) के अनुसार राजा अपनी मंत्रिपरिषद् से प्रायः पत्रों आदि से परामर्श करता था (मंत्रपरिषदा पत्रसंप्रेषणेन मंत्रयेत्)। अत्यंत जरूरी कामों के लिए ही वे बुलाए जाते थे। इन बैठकों में जो बहुमत होता था राजा उसे स्वीकार करता था (तत्र यद्भूयिष्ठाः ब्रूयुः तत्कुर्यात्)। कौटिल्य (१, २०) ने परिषद् की बैठकों के स्थान को मंत्र-भूमि कहा है।

५. निझती=सं० निध्यानम्। इसकी अनेक व्याख्याएं की गई हैं जैसे, "चिंतन, पुनर्विचार, संशोधन, स्थगन, और अपील।" यहाँ राजा के मौखिक आदेश का प्रसंग है जो उसके आम लिखित आदेशों से भिन्न होते थे। जायसवाल ने (हिंदू पालिटी, २,१४१) शुक्रनीतिसार का एक उद्धरण देकर बतलाया है कि राजा के मौखिक आदेश से परिषद् को बांधा नहीं जा सकता था। इसीलिये परिषद् में किसी बात पर विवाद या निझति उठ सकती थी जिसमें राजा के मौखिक आदेश को उलटा भी जा सकता था। शुक्रनीति का वह श्लोक निम्नलिखित है:

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उपस्थित[1] हो तो तुरंत ही हर घड़ी मुझे उसकी सूचना दी जाय[2]।

मैंने ऐसी ही आज्ञा दे रखी है।

क्योंकि मैं कितना ही परिश्रम करूं[3] और कितना ही राजकार्य करूं मुझे संतोष नहीं होता। सब लोगों का हित करना ही मेरा प्रधान कर्त्तव्य है। उसका मूल

(जारी)

अलेख्यमाज्ञापयति ह्यलेख्यं यत्करोति यः।
राजकृत्यमुभौ चोरौ तौ भृत्य-नृपती सदा ॥ (शु० नी० सा०, २, २६१)।

राजा जो विना लिखे आदेश देता है और अधिकारी जो उसको सम्पन्न करता है कानून की दृष्टि में वे दोनों चोर हैं।

डा० वेणी माधव वरुआ ने मज्झिम-निकाय के कोसंबिक सुत्त की एक टीका में निज्ञति या निज्झापन की परिभाषा की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। वह परिभाषा यों है "अत्थाञ्च कारणञ्च वस्सेत्वा अञ्ञमञ्ञं जानापनम्" अर्थात् "अर्थ और कारण का विचार कर सहमत होना"। वरुआ ने ही अंगुत्तर, खंड १, "परिसा-वग्ग", पृ० ६६ की ओर भी ध्यान दिलाया है जहाँ सञ्ञत्ति शब्द का प्राय: निज्झत्ति के ही अर्थ में इस्तेमाल हुआ है। सञ्ञति की परिभाषा है "ज्ञापित करना, बतलाना" (सञ्ञापेन्तीति जानापेन्ति) और निज्झत्ति का अर्थ है "परीक्षा कराना, जांच कराना" (निज्झापेन्ति पेक्खापेन्ति) (अशोक एडिक्ट्स इन न्यू लाइट, पृ० ७८, ७९)।

१. संतो; संतं (काल०), संत (मान०), सतं (शाह०)। इस शब्द की व्याख्या स्तम्भ लेख ४ में दी है।

२. चट्टान लेख ३ में भी इस शब्द का इसी अर्थ में व्यवहार हुआ है। कौटिल्य ने मंत्रियों को जरूरी काम सौंपना, उन पर तुरन्त कार्यवाही करना और उसके लिए परिषद् की बैठक बुलाना राजा का कर्त्तव्य कहा है। "मंत्रियों और मंत्रिपरिषद् को बुलाकर राजा उनसे बहुत जरूरी कामों (आत्ययिके कार्ये=लेखों के अतियायिके या आचायिके) के बारे में चर्चा करेगा।" "सभी जरूरी काम राजा तुरन्त निपटाए वह उन्हें टाले नहीं। टाल देने से काम सिद्ध होना प्राय: असंभव हो जाता है (सर्वमात्ययिकं कार्यं शृणुयान्नातिपातयेत्)" (कौटिल्य, १, १५, और १९)।

मनोरंजक बात यह है कि कौटिल्य ने (वही) उन कार्यों की भी सूची दी है जिन्हें राजा को स्वयं देखना चाहिए और उनकी तात्कालिक आवश्यकताओं की दृष्टि से (आत्ययिकवशेन) उनका क्रम भी उसने दिया है, जैसे (१) धर्म, (२) संन्यासियों, (३) अन्य संप्रदायों, (४) विद्वान ब्राह्मणों, (५) जानवरों, (६) पवित्र स्थानों, (७) अनाथों, (८) बुढ़ापे, बीमारी या विपत्ति के कारण असमर्थों, (९) नि:सहायों, और (१०) स्त्रियों के मामले।

राजा के कर्त्तव्यों में कौटिल्य ने इनका भी जिक्र किया है (क) उत्थान, (ख) यज्ञ, (ग) प्रशासन, (घ) दक्षिणा, और (ङ) वृत्ति-साम्यं (निष्पक्ष न्याय)।

३. उष्टानम्ही : कौटिल्य (१, १९) भी इसी शब्द उत्तिष्ठमानम् या उत्थानम् का प्राय: इसी प्रसंग में इस्तेमाल करते हुए राजा को सदा सक्रिय और उद्यमी रहने की आवश्यकता बतलायी है। यह पूरा अंश वास्तव में कौटिल्य की ही अनुगूंज है : "प्रजा के सुख में ही राजा का सुख, उसके हित में उसका हित, प्रजा की तुष्टि में उसकी तुष्टि है। उसे अकेले अपनी ही नहीं सोचनी चाहिए।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है परिश्रम और राज-काज पूरा करना[१]। सबके हित से बढ़कर कोई काम नहीं है। जो कुछ पराक्रम मैं करता हूं सो इसीलिए कि प्राणियों का जो ऋण मुझ पर है उससे मैं उऋण हो सकूं[२] और उन्हें[३] इस लोक में सुखी करूं और परलोक में उन्हें स्वर्ग दिलाऊं। यह धर्मलिपि इसलिए लिखायी गयी कि यह चिरस्थायी हो और मेरे पुत्र,[४] पौत्र, प्रपौत्र सबके भले के लिए इसका पालन करें[५]। पर बहुत[६] और निरंतर पराक्रम के बिना यह कठिन है।[७]

७

(शाहबाजगढ़ी)

देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी राजा चाहता है कि सभी जगह सभी संप्रदायों के लोग निवास करें।[८]

क्योंकि सभी संप्रदाय संयम और चित्त की शुद्धि चाहते हैं।

परन्तु लोगों की प्रवृत्ति, रुचि भिन्न-भिन्न होती है। अतः वे पूरी तरह या आंशिक[९] रूप में (अपने कर्त्तव्यों का) पालन करें। किंतु जो बहुत अधिक दान नहीं कर सकता उस में संयम और चित्त की शुद्धि, कृतज्ञता और दृढ़भक्तिता का होना नितांत आवश्यक[१०]

---

१. कौटिल्य (वही) की ही अनुगूंज वा उसका शाब्दिक अनुवाद ही है: अर्थस्य मूलमुत्थानम् "(सरकार की सफलता का) मूल उत्थान (सजग और सक्रिय रहना) है"।

२. शास्त्र में देवऋण, ऋषिऋण और पितृऋण की कल्पना है। अशोक ने राजा के लिए एक चौथे ऋण की भी कल्पना की है।

३. कुछ पाठों में संस्कृत एन का नानि और कानि, और एष का षे।

४. कालसी में पुतवाले पाठ है। इससे स्तंभ लेख ७ में राजा के बेटों के लिए आए दालका शब्द की तुलना कीजिए।

५. अनुवतरं; मिला० चट्टान लेख ५ के अनुवततु से। अन्य स्थानों में परक्रमंतु या इससे मिलते-जुलते पाठ हैं जिसका अर्थ है पराक्रम या परिश्रम करे (मिला ल० च० ले० १)।

६. अगेन।

७. धौली में एक अन्य शब्द सेतो भी है जिसका अर्थ श्वेत=सफेद है। इससे गिरनार के चट्टान लेख १३ के अंत के अकेले वाक्य को मिलाइये।

८. स्पष्ट ही यह कौटिल्य के इस विधान के विरुद्ध है कि 'पाषंड और चांडाल (शहर के बाहर) श्मशान के पास रहें' (२, ४)। अन्यत्र कौटिल्य (२, ३६) ने यह भी विधान किया है कि नगर के अधिकारी, गोप, की आज्ञा के बिना कोई भी पाषंड धर्मशाला में नहीं रह सकता। उनके रहने के स्थानों की संदेहास्पद व्यक्तियों के लिए तलाशी लेनी चाहिए।

९. एकदेशं: यह शब्द चट्टान लेख ५ और कलि० चट्टान लेख १ में भी आया है।

१०. निचे (शाह०, मान० और काल०); नीचे (धौ० और जौ०); निचा (गिर०)। सेनार्ट और टामस के मतानुसार इसका मतलब नित्यं है। किंतु कालसी के चट्टान लेख १४ के अनुसार नित्यं के लिए शब्द निक्यं है। बूइलर ने निचे को नीच (आदमी) का सप्तमी एकवचन रूप माना है। लूडर्स और हुल्ट्ज़ इसे नीच का प्रथमा का एकवचन पुंल्लिग रूप मानते हैं। फिर इस अंश का अनुवाद यों होगा: "किन्तु जो बहुत दान करता है पर उसमें संयम, हृदय की शुद्धता, कृतज्ञता और दृढ़ता नहीं है, वह बहुत नीच है।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है, श्रेयस्कर है ।[१]

८

(शाहबाजगढ़ी)

अतीत काल के देवानंप्रिय[२] लोग विहारयात्राओं[३] पर निकलते थे ।[४] इन यात्राओं में मृगया[५] (शिकार) और इसी तरह के दूसरे आमोद-प्रमोद[६] होते थे। किंतु देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा अभिषेक के दस वर्ष बाद संबोधि को गए[७]

(जारी)

निचा शब्द का प्रयोग 'नीचे' या 'नीचे के प्रदेश', 'दक्षिण', के अर्थ में भी च० ले० १३ में आया है ।

१. पघं ; बाढं (गि०) ।

२. देवानंप्रिय, यहां अशोक के पूर्ववर्ती राजाओं की उपाधि के रूप में भी प्रयुक्त हुआ है । गिरनार और धौली में यहां राजानो और लाजाने पाठ मिलते हैं ।

३. कौटिल्य (२, २) ने राजा के लिए एक सुरक्षित विहार वन की कल्पना की है ।

४. निक्रमिषु ; गिर० में नयासु पाठ है जिसे माइकेलसन (ज० अ० ओ० सो०, ३१, २४५) न्ययासुः=निरयासुः मानता है ।

५. महावंश (५, १५४) के अनुसार अशोक का सगा भाई तिस्स जो उपराज था शिकार करने जाता था । इस प्रकार कम से कम ई० पू० २६६ तक, जब तिस्स ने प्रव्रज्या ली थी, उसने शिकार की आज्ञा दे रखी थी । अशोक के इस कथन की कि उससे पहले राजा शिकार का आनन्द लेते थे, पुष्टि यवन लेखकों के उन कथनों से भी होती थी जिन्होंने चंद्रगुप्त मौर्य के बारे में लिखा है । तीन कामों के लिए राजा महल से बाहर निकलता है उसमें एक शिकार है (अन्य दो काम हैं यज्ञ और प्रशासन) । राजा डायनीसस की ही भाँति शिकार के लिए जाता है : "स्त्रियों का जमघट उसे घेरे रहता है, इनके घेरे के बाहर बल्लमधारी होते हैं । सड़कें रस्से बाँधकर घेर दी जाती हैं, रस्से के भीतर जाने पर चाहे कोई मर्द हो या औरत मृत्यु दण्ड दिया जाता है । बड़े-बड़े ढोल और घड़ियाल जुलूस के आगे-आगे चलते हैं । राजा एक घेरे में मचान पर बैठकर बाणों से शिकार करता है । उसके अगल-बगल में दो या तीन स्त्रियां शस्त्र लेकर खड़ी रहती हैं । यदि वह खुले में शिकार करे तो हाथी की पीठ पर बैठकर निशाना लगाता है । स्त्रियों में कुछ रथों पर होती हैं, कुछ घोड़ों पर और कुछ तो हाथियों पर भी होती हैं । उनके पास हर तरह के हथियार होते हैं मानो वे सब किसी मुहिम पर ही हों" (मेगस्थनीज, फ्रॅग० २७) । मृगय अर्थात् मृगया के गुण कौटिल्य (८, ३) भी बखानता है । पिशुन ने इसे व्यसन मानकर इसकी निंदा की है क्योंकि इसमें डाकुओं, दुश्मनों, जंगली जानवरों, दावाग्नि, दुर्घटना, भूख, प्यास, और निशाना चूकने से जान का भी खतरा होता है, किंतु कौटिल्य ने इसे व्यायाम मानकर इसका समर्थन किया है । इससे अतिरिक्त चर्बी सूखती है, पसीना आता है, कफ-वात-पित्त का नाश होता है और निशाने का अभ्यास होता है और जंगली जानवरों के स्वभाव का पता चलता है । चंद्रगुप्त को शिकार से बड़ा प्रेम था । अतः उसके योग्य मंत्री की राय दूसरी क्यों हो सकती थी ।

६. यहाँ संभवतः जानवरों की लड़ाई से तात्पर्य है जिसका उल्लेख चट्टान लेख १ में हो चुका है ।

७. निक्रमि या अयाय संबोधि शब्दार्थ संबोधि की ओर गया; मिला० लघु चट्टान लेख १ में संघे उपयीते प्रयोग । इन दोनों ही प्रयोगों में जिन घटनाओं का उल्लेख है वे एक ही तरह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तब से धर्म-यात्राएं हुईं जिनमें यह होता है : ब्राह्मणों और श्रमणों का दर्शन करना और उन्हें दान देना; वृद्धजनों का दर्शन और उन्हें सोने का दान करना;[1] ग्राम-

(जारी)

की थीं और प्रायः एक ही समय में, ई० पू० २६० में, हुईं। महावंश (५, २६६) में संबोधि बौद्ध धर्म के अर्थ में प्रयुक्त हुई है जिसकी शिक्षा अशोक को उपगुप्त ने ई० पू० २६२ के बाद दी थी (वही, २२७)। बृहत् स्वयंभू पुराणं में वर्णन आया है कि अशोक ने उपगुप्त के पास जाकर "संबोधि-वृत, संबोधि-साधन या बोधि-मार्ग" को ग्रहण करने की प्रार्थना की थी (फैसिकुलस १, पृ० २०)।

"संबोधि के लिए जाने" का अर्थ, जैसा डा० भंडारकर ने कहा है, शब्दशः शरीर से जाने से हो सकता है। इससे अशोक की संबोधि स्थान अर्थात् बोधगया की यात्रा का अनुमान होता है। अशोक ने जो धर्म-यात्राएं की थीं उसमें यह यात्रा भी थी और इसी नाम से वर्णित है। इसका फल बड़ा अच्छा निकला। संबोधि या गया जाना अशोक की पहली धर्म-यात्रा थी। बाद में उसने ऐसी अनेक यात्राएं कीं। उसके लेखों में इनका स्पष्ट उल्लेख है : तेनेसा धर्मयाता (गिर०)। दिव्यावदान के अनुसार अशोक ने सबसे पहले लुंबिनीवन की यात्रा की थी। उपगुप्त के साथ उसने सभी यात्राएं कीं। उसकी दूसरी यात्रा बोधि-मूल को थी। दिव्या० के अनुसार उसने विहारों और स्तूपों के निर्माण के बाद धर्म-यात्राएं कीं। महावंश (५, १७३) के अनुसार विहारों और स्तूपों का निर्माण उसके अभिषेक के सात साल बाद अर्थात् ई० पू० २६२ तक पूरा हो चुका था। इस प्रकार इस घटना की तिथि के बारे में लेख और जनश्रुतियां प्रायः एकमत हैं। दिव्यावदान में आगे कहा है कि अशोक ने जब बोधि-वृक्ष का दर्शन किया तो उसका उस वृक्ष के प्रति प्रेम इतना गाढ़ा हो गया कि उसकी प्रधान, पर दुष्टा, रानी तिष्यरक्षिता को वृक्ष से ही डाह पैदा हो गयी। उसने इस वृक्ष को ही नष्ट करने के लिए अभिचार कराये। जाहिर है कि उसे राजा के बोधिवृक्ष के प्रेम के आगे झुकना पड़ा और वह बड़े बाजे-गाजे के साथ पवित्र वृक्ष के दर्शन को गयी।

अयाय (संबोधि) के स्थान पर अन्य स्थानों में निक्रमि, निखमिथा शब्दों का प्रयोग हुआ है। इसमें निखमिया शब्द का प्रयोग चट्टान लेख ३ और कलिंग चट्टान लेख २ में सरकारी अधिकारियों को दौरे पर भेजने के अर्थ में हो चुका है।

१. हिरञ-प्रटिविधने : मिला० बंधनबधस पटिविधानाय (च० ले० ५)। यात्रा में अशोक स्वर्ण-दान भी करता था। इस बात की पुष्टि दिव्यावदान से भी होती है जहाँ यह कहा है कि प्रति बौद्ध तीर्थ का दर्शन कर अशोक ने १ लाख सोने के सिक्के दान किए (शतसहस्रम् दत्तम्)। उसने हर जगह अपनी यात्रा की स्मृति में एक चैत्य का भी निर्माण कराया। उसने बोधगया में भी ऐसा कोई चैत्य अवश्य बनाया होगा। यही चैत्य उस बोधिवृक्ष का मूल रहा होगा जिसकी अनुकृति सांची और भरहुत की मूर्तियों में अंकित है। इसमें वृक्ष के चारों ओर पत्थर का जंगला बना है और मंदिर है और पहचान के लिए एक लेख भी है "भगवतो साकमुनिनो बोधि (असथो)", "अश्वत्थ भगवान शाक्यमुनि का बोधि-वृक्ष" (दे० फूशर कृत बिगिनिंग्स आफ बुद्धिस्ट आर्ट, पृ० १०२ और मार्शल कृत गाइड टु सांची, पृ० ५१, ६१, ६५, ७१)। परन्तु ब्लाख की मान्यता है कि बिना किसी भग्नावशेष के पाए भरहुत की उभरी मूर्ति को अशोक के चैत्य के जंगले की अनुकृति नहीं मान सकते। जो भग्नावशेष हैं उनमें जंगला सबसे पुराना है। इस पर इंद्राग्निमित्र और ब्रह्ममित्र राजाओं के नाम खुदे हैं जो निश्चय ही अशोक के बाद शुंग काल में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वासियों का दर्शन[1] और उन्हें धर्म का उपदेश देना, और उनसे तदुपयोगी धर्म की चर्चा करना।[2]

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी की इसमें बड़ी प्रीति है[3] और यह उसका अतिरिक्त[4] भाग (लाभ) है।[5]

९.
(कालसी)

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने ऐसा कहा : लोग बहुत से मंगल[6] (मंगलाचार) करते हैं। विपत्ति[7] में, लड़के, लड़कियों[8] के विवाहों में,[9] लड़का या लड़की के जन्म पर, परदेश जाने के समय—इन और अन्य अवसरों पर लोग तरह-तरह के मंगलाचार करते हैं। पर इन अवसरों पर माताएं और पत्नियां[10] तरह-

---

(जारी)
हुए थे। दूसरा भाग, जिसमें गरुड़ों और कीर्तिमुखों और स्तूपों के अंकन हैं, गुप्तकालीन है (दे० ब्लाख : आ० स० रि०, १९०८-९, पृ० १४६)।

१. जनपदस जनस जो पौरजन से भिन्न है।

२. ततोपयं=तदोपया (गिर०), सं० तदौपायिक या तदुपयोगी से मिलता-जुलता है। दूसरे विद्वान इसे ततः परम् मानते हैं।

३. रति, लाती और अभिलामे (धौली)=अभिराम। मिला सं० रति=सुख से।

४. अंत्रि, अणे (मान०)।

५. भगो। तात्पर्य यह है कि अशोक को धर्म-यात्राओं से अतिरिक्त आनन्द मिलता था जो उनके पहले के राजाओं को विहार-यात्राओं में नहीं मिलता था।

सामान्यतया भागे अंत्रे (गिर०) को सप्तमी माना जाता है=पालि और सं० अपर-भागे। परन्तु पूर्वी बोली में सप्तमी में दोनों शब्दों के अन्त में '-असि' आना चाहिए, जैसा कि हुल्ट्श ने दिखलाया है (कार्पस, पृ० १५, नोट ६)। किंतु हुल्ट्श का अनुवाद कुछ दूसरा ही है : "देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा का यह (ऐसा) दूसरा (अन्ने) (शासन-) काल (भागे) और अधिक मात्रा में आनंदपूर्ण हो जाता है" (वही)।

६. मंगलं : इस शब्द का अर्थ, जैसा श्री का० प्र० जायसवाल ने बतलाया है, (दे०, ज० बि० उ० रि० सो०, खंड ४, पृ० १४६) महामंगल जातक से स्पष्ट हो जाता है। कुछ पाने या किसी विपत्ति को टालने के लिए ये मंगल किए जाते थे। इनमें पशु-बलि भी होती थी। अशोक के विरोध का वास्तविक कारण यह बलि ही थी। इस लेख का आशय महा-मंगल सुत्त (सुत्त निपाता २, ४) से ग्रहण किया गया है जहां बुद्ध भगवान ने महामंगलों का उदाहरण "माता-पिता की सेवा, संतान और पत्नी की रक्षा, दान देना, रिश्तेदारों का ख्याल रखना, धैर्य, और मधुर वचन, श्रमणों का साक्षात्कार आदि" दिया है।

७. आबाधसि=बीमारी या विपत्ति।

८. आवाह, विवाहित जोड़े को लाना।

९. विवाह, पुत्री को भेजना।

१०. अबकजनियो, अर्थात् अर्भकजननी; महिडायो (गिर०) (महिला), इथी (स्त्री) (धौ०), स्त्रियक (शाह०) और बलिकजनिक (मान०) (हुल्ट्श के मतानुसार अबक)।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तरह के बहुत से क्षुद्र[1] और निरर्थक मंगलाचार[2] करती हैं।

मंगलाचार करना चाहिए। किंतु इस प्रकार के मंगलाचार अल्प फलदायी होते हैं। पर जो धर्म का मंगलाचार है वह महाफल देने वाला है। इस मंगलाचार में यह होता है : दास और सेवकों[3] के प्रति उचित व्यवहार, गुरुओं का

---

१. खुदा; छुदं (गिर०) (क्षुद्रम्) और पुतिक (शाह०) (पूतिक, बदबूदार)।

२. डा० ब्लाख बोधिवृक्ष की पूजा को भी ऐसा ही मंगल मानते हैं। अशोक ने जो यहाँ ऐसे मंगलों की निंदा की है उससे ब्लाख उन जनश्रुतियों की पुष्टि मानते हैं जो यह कहती हैं कि अशोक ने एक बार "बोधिवृक्ष को नष्ट करने की पूरी कोशिश की थी।" इस जनश्रुति को युवाङ् च्वाङ् ने भी लिखा है (आ० स० रि०, १९०८-९, पृ० १४०)। यही वजह है कि बोधगया में ऐसा कोई अवशेष नहीं है जिसे अशोक का बनवाया कहा जा सके (वही)।

३. दास-भटकसि सम्या (सम्म, शाह० में) -पटिपति। सिगालोवाद सुत्तंत (च० ले० ३ में उद्धृत) के अनुसार स्वामी (अयिरक) को अपने दासों और नौकर-चाकरों (दास-कम्मकर) के साथ पांच प्रकार से व्यवहार करना चाहिए (पच्चुपट्ठातब्बा) : "उनको शक्ति के अनुसार ही काम देना (यथा बलं कम्मंत संविधानेन), उन्हें भोजन और मजदूरी देना (भत्त-वेत्तन), बीमारी में देखभाल करना (गिलानुपट्ठानेन), अच्छा भोजन आदि में हिस्सा देना (अच्छरियानं रसानं संविभागेन), समय पर छुट्टी देना [(समये वोस्सग्गेन) अर्थात् उनसे दिन भर काम नहीं कराना चाहिए, बीच-बीच में आराम भी देना चाहिए, त्योहारों पर विशेष भोजन और छुट्टी भी देनी चाहिए" (टीका)]। ध्यान देने की बात यह है कि अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने पूरे दो अध्याय दासों और नौकर-चाकरों के कर्त्तव्यों और उनकी जिम्मेदारियों के लिए दिए हैं (३, १३, १४)। कौटिल्य के मतानुसार दास बनने के तरीके थे—युद्ध में बंदी होना (ध्वजाहृतः) या घरेलू कामों के लिए ली गई कर्ज की रकम अदा करने में असमर्थता, या सरकारी जुर्माने या अदालती फीस न दे सकना। पर आर्य दासता से कभी भी मुक्त हो सकता था। इस प्रकार अशोक ने दासों और नौकर-चाकरों के साथ अच्छे व्यवहार की जो बात कही है वह कौटिल्य के अनुसार उनका कानूनी अधिकार था। कानून में ये बातें अपराध मानी जाती थीं : (क) दास को उसकी संपत्ति या विशेषाधिकारों से वंचित करना, (ख) उनसे घृणित काम कराना (जैसे लाशें ढुलाना या मेहतर का काम कराना) या उसे शारीरिक चोट पहुँचाना या उन्हें गालीगुफ्ता देना। जहाँ तक कर्मकरों का ताल्लुक है, कानून उन्हें वह मजदूरी दिलाता था जो उसके और मालिक के बीच तय पाई हो। यह रकम पड़ोसियों को भी मालूम होनी चाहिए (कर्मकरस्य कर्मसंबंधमासन्ना विधुः)। मजदूरी काम की किस्म और उसमें लगने वाले समय को ध्यान में रखकर निश्चित की जाती थी। मजदूरी अदा न करने पर जुर्माना होता था। भृतक भी अपने वेतन का हक़दार होता था। यदि वह काम से अशक्त हो जाय या उसे कुत्सित काम पर लगाया जाय, या वह बीमार पड़ जाय या विपत्ति में फंस जाय (व्याधौ व्यसने) तो उसे कतिपय रियायतें भी मिलती थीं। एक अन्य अध्याय में कौटिल्य (२, १) ने राजा का यह कर्तव्य बताया है कि यदि कोई अपने आश्रितों या रिश्तेदारों के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन नहीं करता (दासहितकबंधूनशृण्वतो) तो उसे ठीक रास्ते पर लाए (विनयं ग्राहयेत्) और यदि कोई समर्थ होते हुए भी पत्नी, बच्चे, पिता और माता, नाबालिग भाई या विधवा बहनों या लड़कियों की परवरिश नहीं करता तो उस पर जुर्माना किया जाय।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आदर,[1] प्राणियों की अहिंसा, ब्राह्मणों व श्रमण संन्यासियों को दान[2] और इसी प्रकार के और अन्य कामों को धर्म-मंगल कहते हैं।

इसीलिए पिता या पुत्र या भाई या स्वामी या मित्र या परिचित या पड़ोसी सभी से कहें "यह मंगलाचार अच्छा है; इसे तब तक करना चाहिए जब तक कार्य की सिद्धि न हो जाये।"[3] क्योंकि जो दूसरे मंगलाचार[4] हैं वे[5] अनिश्चित फल देने वाले हैं। उनसे उद्देश्य की सिद्धि हो न हो। और यह इहलोक के लिए ही है। पर धर्म का मंगलाचार सब काल के लिए है। यदि इहलोक में उद्देश्य की सिद्धि न भी हो तो भी परलोक में अनन्त पुण्य मिलता है। किंतु यदि इहलोक में अभीष्ट की प्राप्ति हो जाय तो धर्म के मंगलाचार से दो लाभ होंगे—इहलोक में अभीष्ट की सिद्धि और परलोक में अनन्त पुण्य की प्राप्ति।[6]

१०

(कालसी)

देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी राजा यश व कीर्ति को बड़ी भारी वस्तु नहीं समझता सिवाय इसके कि जो कुछ भी यश या कीर्ति वह चाहता है सो इसीलिए कि

---

१. गुरूनं अपचिति (गिर०) ; आचार्य की अंतेवासी इन पांच प्रकारों से सेवा कर सकता है : "उट्ठानेन (अपने स्थान पर खड़े हो जाना), उपट्ठानेन (साथ रहना), सुस्सूसाय (सीखने के लिए उत्सुक रहना), परिचरियाय (सेवा-टहल करना) और सक्कच्चं सिप्प-पटिग्गहणेन (उनसे पढ़ते समय सावधान रहना)" (वही)।

२. चट्टान लेख ३ और गिरनार के अन्य लेखों में जहाँ यह पद आया है वहाँ ब्राह्मण-श्रमण का ही क्रम है, पर अन्यत्र क्रम श्रमण-ब्राह्मण का है। पाणिनि (२, ४, ३४) के अनुसार संस्कृत में शुद्ध रूप श्रमण-ब्राह्मण ही है किन्तु वार्त्तिक के अनुसार ऐसे समस्तपदों में क्रम का निर्धारण सामाजिक मर्यादा को ध्यान में रखकर होना चाहिए। अतः श्रमण-ब्राह्मण का क्रम उन्हीं स्थानों में होना चाहिए जहाँ के लोग ब्राह्मण धर्म की अपेक्षा बौद्ध धर्म ही अधिक पसंद करते हों। मजेदार बात यह है कि पतंजलि ने पाणिनि (२, ४, ९) के सूत्र की व्याख्या करते हुए नकुल-सर्पवत् वैर के लिए इसी समस्तपद का उदाहरण दिया है। पतंजलि का समर्थन काशिका से भी होता है जो उसके बाद की है। इसी प्रकार अशोक के दोनों समासों देवानांप्रिय और श्रमण-ब्राह्मण के अर्थ कालांतर में बिगड़ गए।

३. हुल्ट्श का पाठ है 'इमं कछामि ति।' बुइलर यहाँ 'क(-य) -मिति' पढ़ते हैं।

४. ए हि इतले मगले; ये हि एतके मगले (शाह०); एहि इतरे मगले (मान०)।

५. से; तं (शाह०)।

६. धौली, गिरनार और जौगड़ में इस पैराग्राफ के स्थान पर यह पैरा है "और यह भी कहते हैं कि दान अच्छा है। किन्तु धर्म-दान और धर्म के अनुग्रह से बढ़कर कोई दान या अनुग्रह नहीं। इसलिए मित्र, सुहृद, संबंधी या स्वामी इन-इन अवसरों पर यों प्रोत्साहित करें : 'यह करें, यह अच्छा है, इसे करने से स्वर्ग मिलता है'। स्वर्ग की प्राप्ति से बढ़कर और क्या करने योग्य है ?"

धंमदान और धम्मानुग्गह शब्द इतिवुत्तक में भी आते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रजा धर्म की सेवा और धर्म के व्रत में संप्रति और भविष्य[1] में भी दृढ़ हो। इसीलिए देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी राजा यश और कीर्ति की कामना करता है। और जो कुछ वह पराक्रम[2] करता है सो परलोक के लिए ही करता है और इसलिए कि सभी बंधन से मुक्त हो जायें।[3] जो अपुण्य (पाप) है वही बंधन है[4]। निरंतर पूर्व-प्रयत्न,[5] सर्वस्व त्याग[6] के विना कोई भी मनुष्य, चाहे वह छोटी या बड़ी[7] हैसियत[8] का हो, यह कार्य नहीं कर सकता। इन (दोनों) में,[9] बड़े आदमी के लिए तो यह और भी दुष्कर है।

११

(शाहबाजगढ़ी)

देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहता है : कोई ऐसा दान नहीं जैसा धर्म का दान[10] है, धर्म का परिचय,[11] या धर्म का संविभाग (वंटवारा), या धर्म का

---

१. अयतिये, गिरनार का पाठ है दिघाय=दीर्घाय=आगामी काफी अर्से तक। "वर्तमान समय" के लिए शब्द तदात्पनो (गिर०) या तदत्वाये (काल०) है जिसकी व्याख्या टामस ने तदात्वानुबंधी (तुरंत और भावी प्रभाव) और तादात्विक (जैसा जब हो वैसे रहना) (यो यद् यद् उत्पद्यते तद् तद् भक्षयति सो तादात्विकः) जिसका इस्तेमाल कौटिल्य (२, ६; ६, ४) ने भी किया है—के प्रकाश में की है (ज० रा० ए० सो०, १६१६, पृ० १२०)। कौटिल्य में तदात्वे च आयत्याम् च (५, १ और ४) का भी प्रयोग है।

२. लकर्मति, परकमति (शाह०), अशोक का एक प्रिय शब्द है (ल० च० ले० १, च० ले० ६)।

३. √श्री=घेरना से अपपलायवे, अपरिस्रवे (शाह०) अपपरिस्रवे (गिर०)। शाब्दिक अर्थ 'अल्प खतरे में'=अल्प-परिश्रवे।

४. मिला० बद्ध-जीव अर्थात् जो जीवात्मा बंधन में हो। मुक्त न हो।

५. अगेना, मिला०, च० ले० ६।

६. षवं पलितिदितु [परिचजित्वा (गिर०) और परितिजितु (शाह०) भी]। इससे ल० च० ले० १ में आए पराक्रममानेन या धमयुतेन (मास्की) पदों का अर्थ निश्चित हो जाता है। इसमें अन्य सभी हितों का त्याग कर मात्र पराक्रम करने का उल्लेख है। हुल्ट्श का कथन है कि : "इसका सामान्य अनुवाद 'सब कुछ त्यागकर' असंभव है क्योंकि अशोक ने कहीं भी 'नितांत अकिंचनता' की वकालत नहीं की है उसने अल्पभांडता='संचय पर संयम रखने' की सिफारिश च० ले० ३ में जरूर की है।" हुल्ट्श ने इस शब्द का अनुवाद किया है "सभी (दूसरे उद्देश्यों) को एक तरफ करके"। मिला० सवचति रति (शाह०; च० ले० १३, पंक्ति १२)।

७. उपुटेन=उच्छ्रतेन, 'ऊंची श्रेणी का'।

८. वगेना=वर्गेन अर्थात् हैसियत की दृष्टि से। यह शब्द क० च० ले० १ में भी आया है पर दूसरे ही अर्थ में जिसे कुछ विद्वान यहाँ भी सही मानते हैं। फिर इसका अर्थ होगा 'ऊंची और नीची श्रेणी के अधिकारी'।

९. हेत, मानसेहरा में अत्र।

१०. धंमदानं शब्द और इस पूरे अंश का तात्पर्य, जैसा सेनार्ट ने कहा है, धम्मपद, ३५४ में मिलता है : सब्बदानं धम्मदानं जिनाति "धर्मदान सभी दानों से बढ़कर है"।

११. इस लेख के व्याख्याकारों ने यह स्पष्ट नहीं किया है कि इसके बाद जिन विषयों का उल्लेख

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रिश्ता। वह यह है : दास और सेवकों के साथ उचित व्यवहार, माता-पिता की सेवा, मित्रों, परिचितों, रिश्तेदारों, ब्राह्मणों और श्रमण संन्यासियों को दान, प्राणियों की हिंसा न करना।

पिता, पुत्र, भाई, स्वामी, मित्र, साथी या पड़ोसी सभी कहें यह अच्छा है, इसे करना चाहिए। जो ऐसा करता है वह इहलोक[1] की सिद्धि करता है और धर्म-दान से अनन्त पुण्य का भागी होता है।

१२

(गिरनार)

देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी राजा विविध दान और पूजा से सभी संप्रदायों[2] के प्रव्रजितों और गृहस्थों[3] की पूजा करता है। किंतु देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी राजा दान व पूजा को इतना नहीं मानता जितना सभी संप्रदायों में सार-वृद्धि[4]

(जारी)

है वे; जैसे (१) धर्म-दान, (२) धर्म-संस्तव, (३) धर्म-संविभाग, (४) धर्म-संबंध के उदाहरण कैसे माने जायें? जब तक इसका मर्म न समझ लें, पूरे लेख का भावार्थ-ग्रहण नहीं होगा। इन चारों शब्दों का जीवन के विभिन्न कर्मों और संबंधों से ताल्लुक है, जैसे दान देना, लोगों से मिलना-जुलना, रिश्तेदारी या धन का बंटवारा (संविभाग)। अशोक ने इन सबका आधार धर्म को बनाना चाहा था। यदि दान देना है तो ब्राह्मणों और श्रमणों को दें, जिससे धर्म की वृद्धि हो। यह दान धर्म-दान होगा जो अधर्म-दान अर्थात् गैर-कानूनी कामों के लिए दान देने से अच्छा है। माता-पिता की सेवा यह धर्म-संबंध हुआ। मित्रता का आधार सिर्फ भावुकता नहीं हो, बल्कि उदारता हो, फिर यह धर्म-संस्तव होगा। अंतिम बात यह कि धर्म का वरदान अधिक से अधिक लोगों में विभाजित हो, ताकि परिवार वाले, आश्रितों, नौकर-चाकरों ही नहीं मूक प्राणियों, पशु-पक्षियों को भी उसमें शामिल किया जाय। उनके साथ अच्छा बर्ताव हो, किसी प्रकार की हिंसा न हो। धर्म-संविभाग का तात्पर्य यही है।

गृहस्थ जीवन और संबंधों पर धर्म के प्रयोग से संबंध रखने वाले इन चारों शब्दों के अतिरिक्त एक और शब्द अशोक ने इस्तेमाल किया है जो चट्टान लेख १३ में आया है। वह शब्द है धर्म-विजय जिसका संबंध राजा से है। ऐसे अन्य शब्द भी हैं जैसे धर्म-यात्रा (च० ले० ८), धर्मानुग्रह, धर्म-दान, धर्म-मंगल (च० ले० ९), धर्म-स्तंभ, धर्म-श्रावण (स्तं० ले० ७) और धर्म-महामात्र जिसका अनेक लेखों में इस्तेमाल बार-बार हुआ है।

१. अरधेति : धंमपद, २८१ में प्रयुक्त आराधये मग्गं की ओर सेनार्ट ने ध्यान दिलाया है।
२. पासंडानि, प्रषंडनि (शाह०) भी, पशडनि (मान०), कालसी में पाशड और शाह० में प्रषड रूप भी हैं। च० ले० ७ और १३ में भी इस शब्द का इस्तेमाल हुआ है।
३. विभिन्न पाषंडों=संप्रदायों में संन्यासी और गृहस्थ दोनों होते थे।
४. सारवढी=सार-वृद्धि। अशोक का मत है कि किसी संप्रदाय की महत्ता इस बात में नहीं है कि उसके कितने समर्थक या पोषक और अनुयायी हैं। महत्ता उसकी आंतरिक वस्तु, उसके सिद्धांतों की है। हर संप्रदाय के मूल सिद्धांत बेशक अलग-अलग होते हैं पर अशोक ने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

को मानता है। सार-वृद्धि कई तरह की होती है। किंतु इसका मूल है वाक्संयम अर्थात् लोग अपने ही संप्रदाय का आदर और दूसरों के संप्रदाय की अकारण निंदा न करें। निंदा खास कारण से ही की जाय।[1] दूसरे संप्रदायों की इस या उस प्रकरण[2] में प्रशंसा ही करनी चाहिए। ऐसा करने से, मनुष्य अपने संप्रदाय की उन्नति करता है और दूसरे संप्रदायों का उपकार करता है। जो इसके विपरीत करता है वह अपने संप्रदाय की क्षति करता है[3] और दूसरे संप्रदायों का अपकार करता है। क्योंकि जो कोई अपने सप्रदाय की भक्ति में आकर इस विचार से कि कैसे मैं अपने संप्रदाय का गौरव बढ़ाऊँ,[4] अपने संप्रदाय की प्रशंसा और दूसरे संप्रदाय की निंदा करता है वह ऐसा करके[5] वास्तव में अपने संप्रदाय को गहरी क्षति ही पहुंचाता है। इसलिए समवाय[6] ही अच्छा है, इस अर्थ में कि लोग दूसरे के धर्म को ध्यान से सुनें और सुनने को तैयार रहें। वास्तव में, देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा की यही इच्छा है कि सभी संप्रदायों के लोग बहुश्रुत हों[7] और कल्याणकारी ज्ञान से युक्त हों। इसलिए जो लोग अपने संप्रदाय में ही अनुरक्त हैं उनसे कहना चाहिए कि देवताओं के प्रिय दान या पूजा को इतना बड़ा नहीं समझते जितना इस बात को कि सभी संप्रदायों में सार की वृद्धि हो और सभी संप्रदायों का विस्तार हो।[8]

इसीलिए धर्म-महामात्र, स्त्री-अध्यक्ष-महामात्र[9] (महामात्र जो स्त्रियों

(जारी)

उनकी मौलिक एकता की खोज की। हर संप्रदाय यह मानता है कि दूसरे संप्रदायों के सिद्धांतों में भी सत्य है जिसका आदर सभी संप्रदायों को करना चाहिए।

१. लघु से लहुका।

२. तेन तन प्रकरणेन, शाह० और मान० में अकरेन=आकारेण अर्थात् "हर तरह से" है।

३. छणति, क्षणति (शाह०) "क्षति पहुँचाता है"।

४. दीपयेम।

५. सो च पुन तथ करातो या करंतं (शाह०), शाहबाजगढ़ी में दूसरी गलती यह भी है कि यह पद दो बार लिखा गया है।

६. समवायो, किन्तु शाह० में सयमो अर्थात् संयमः पाठ है। भंडारकर ने (अशोक, पृ० २९९) इसका अनुवाद "पास आने, निकट आने" के अर्थ में किया है किन्तु शाह० के संयम शब्द के लिए यह अनुवाद अधिक समीचीन होता क्योंकि अगले पद का भाव "सुनने से" है और उससे सभा, सम्मेलनों का अनुमान होता है।

७. बहुस्रुता: इसका अनुमान इसके पूर्ववर्ती उपदेश से होता है जिसमें कहा है कि सभी संप्रदायों को अपने में ही सीमित नहीं रहना चाहिए बल्कि एक दूसरे के सिद्धांतों से परिचित होना चाहिए। इस प्रकार के ज्ञान से मेल-मिलाप बढ़ता है। बौद्ध भिक्षुओं की उपाधि के रूप में "बहुश्रुत" शब्द का उल्लेख इ-त्सिंग ने किया है (तककुसु का अनु०, पृ० १८०)।

८. बहुका, दृष्टिकोण और सहानुभूति का विस्तार जो बहुश्रुत का फल है। हुल्द्श इसका अर्थ 'अनेक' करते हैं अर्थात् वे इसे परवर्ती वाक्य के अधिकारियों का विशेषण मानते हैं।

९. इथीझख-महामाता; इथिधियख-महामाता (काल०); इस्त्रिजक्ष-महमत्र (मान०)। इसका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के इचार्ज या अध्यक्ष थे), व्रजभूमिक[1] और इसी तरह अन्य

(जारी)
अनुवाद प्रायः 'स्त्रियों का नियंत्रक' करते हैं पर इसमें अध्यक्ष शब्द की ओर ध्यान नहीं दिया गया है। सम्भव है कि महामात्र ही अध्यक्ष रहे हों जिन पर स्त्रियों संबंधी मामलों का भार रहा हो। स्त्रियों संबंधी मामलों का भार महामात्रों पर था, यह बात च० ले० ५ में भी कही गयी है।

१. वचभूमीका, व्रचभुमिक भी (शाह० और मान०)। व्रच शब्द (च० ले० ६ में भी आया है) का अर्थ व्रज=चरागाह होता है और भूमि दफ्तर का सूचक है। किन्तु यह बात साफ नहीं हो पायी है कि चरागाह और स्त्रियों के मामलों से संबंध रखने वाले अधिकारी विभिन्न संप्रदायों में संयम को कैसे बढ़ावा दे सकते थे। इस अंश की अब तक जो व्याख्या की गयी है वह यहां प्रसंगानुकूल नहीं है। हाँ, यदि हम यह मान लें कि ये अधिकारी राजपथों के भी इंचार्ज रहे होंगे जिन पर लोग और तीर्थयात्री चला करते थे और ये व्रजभूमिक उनके बीच भी काम कर सकते थे—तो बात दूसरी है। एक दूसरा सुझाव यह भी है कि ये व्रज-भूमिक व्रज-भूमि=मथुरा और वृन्दावन के आसपास के रहने वाले रहे होंगे। इन्हें तीर्थयात्राओं और धार्मिक शास्त्रार्थों आदि का शौक रहा होगा। इसलिए सरकार ने इन्हें इस काम के लिए उपयोगी समझकर लगाया होगा। अशोक ने सड़कों और धर्मशालाओं के निर्माण में बड़ी उदारता दिखायी थी। इसलिए इनका भार उठाने वाले विशेष अधिकारियों की आवश्यकता रही होगी। ध्यान देने की बात यह है कि कौटिल्य ने (२, १) दरबारियों, कार्मिकों (कर वसूलने वालों), डाकुओं और अंतपालों से, और जानवरों के झुंडों, पशुओं के घूमने-फिरने (पशुव्रजान) से नुकसान, डाकुओं, बाघों, विषैले जंतुओं, रोगों आदि से वणिकपथों की रक्षा करना राजा का कर्त्तव्य बतलाया है। इस प्रकार पशुव्रजों और वणिकपथों के बारे में राजा के कर्त्तव्यों और उत्तरदायित्वों की पूर्ति में व्रजभूमिक जैसे अधिकारी की जरूरत थी जो पशुओं और संचार-व्यवस्था का जिसमें जमीनी और समुद्री दोनों मार्ग (स्थलपथ वारिपथश्च दोनों का) शामिल थे, भार उठा सके (कौटिल्य २, ३७)। कौटिल्य (२, ३४) का विवीताध्यक्ष इस अधिकारी से मिलता-जुलता है। उसका काम अनुदक मार्गों पर कुएं और तालाब खुदवाना, और फलों और फूलों के बगीचे लगवाना, सड़कों की मरम्मत कराकर उन्हें दुरुस्त रखना, चोरों को पकड़ना, सार्थों की सुरक्षा का प्रबंध करना और जानवरों की रक्षा करना था। अंतिम ध्यान देने की बात यह है कि कौटिल्य (२, ६) ने समाहर्ता के अधीन विषयों में व्रज को भी रखा है। व्रज से तात्पर्य देश के पशुधन, जैसे गोवंश, महिष-वंश, भेड़-बकरियों, ऊंटों, गधों, घोड़ों और खच्चरों की देखभाल से था।

जहाँ तक स्त्रियों का संबंध है उनके पूरे समाज में धार्मिक सहिष्णुता के उपदेश की आवश्यकता समझी गयी थी! कौटिल्य (१, १०) से अनुमान होता है कि रनिवासों में भी महामात्र होते थे। इनका वास्ता स्त्रियों से पड़ता था, इसलिए इनके चुनाव में इनकी यौनगत पवित्रता (कामोपधाशुद्धान्) को विशेष महत्त्व दिया जाता था। राजधानी और बाहर के नगरों में बने विहार-स्थलों का भी भार इन पर था (बाह्याभ्यंतर-विहाररक्षासु)। कौटिल्य का बाह्य शब्द च० ले० ५ में भी आया है: "हिद च (या पाटालिपुते च) बाहिलेसु च नगलेसु'। विनय (४, पृ० १५८) में भी रनिवास के लिए धर्मोपदेशकों की नियुक्ति का उल्लेख है (इत्थागारं धम्मं वचेहीति)। हुल्ट्श ने इथीझख की तुलना कौटिल्य (२, २७) के गणिकाध्यक्ष से की है। च० ले० ५ में स्त्रियों के मामले धर्म-महामात्रों के अधीन रखे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निकायों[1] के राजकर्मचारी नियुक्त हैं। इसका फल यह है कि अपने संप्रदाय की उन्नति होती है[2] और धर्म का गौरव बढ़ता है।[3]

१३[4]

(शाहबाजगढ़ी)

अभिषेक के आठ वर्ष बाद देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने कलिंग की विजय की। वहां डेढ़ लाख व्यक्तियों का देशनिकाला हुआ, एक लाख मारे गए[5] और इससे कई गुने मरे।[6]

(जारी)

गए हैं, पर यहां उनके लिए एक विशेष अधिकारी वर्ग का विधान है। अतः यह च० ले० १२, च० ले० ५ से बाद का है—यह एक और सबूत इस बात का है कि सभी लेखों की रचना एक साथ नहीं हुई थी (दे० च० ले० ४ के नीचे टिप्पणी)।

१. निकाया। मिला० क० च० ले० २ के वर्ग शब्द से। विभिन्न संप्रदायों के इंचार्ज अधिकारियों का उल्लेख च० ले० ७ में है।

२. दीपना।

३. यहां धर्म का अर्थ सभी धर्मों के सार से है जिस पर इस लेख में जोर दिया गया है। इसका तात्पर्य अन्य लेखों में परिभाषित धर्म से नहीं है।

यहां ध्यान देने की बात यह है कि शाहबाजगढ़ी और मानसेहरा दोनों जगहों में—यह लेख अलग चट्टानों पर खुदा है। शायद इन जगहों में धार्मिक सहिष्णुता पर—जिस का उपदेश इस लेख में है—विशेष तौर पर ध्यान देने की आवश्यकता रही होगी। कौटिल्य (१३, ५) ने भी कहा है कि राजा को विजित देश के धर्म और उत्सवों आदि का आदर करना चाहिए।

४. ध्यान देने की मजेदार बात यह है कि यह लेख, जिसमें कलिंग की विजय और उसमें हुई हत्या और अन्य बुराइयों का वर्णन है, यहां नहीं खुदवाया गया। इसका कारण शायद राजा का पश्चात्ताप और नवविजित प्रदेश की भावनाओं का आदर रहा होगा।

५. हते। गिर० में पाठ तत्राहतं=तत्र आहतम् है। यदि यह बात ठीक है तो तात्पर्य हते से नहीं आहत=घायलों से है। किन्तु बाद में हते, 'मारे गए' के अर्थ में पुनः आया है। 'वध व मरणं व अपवहो व' बाद में आया है जो इस लेख में अपवुढे, हते और मुटे' है।

६. हो सकता है कि इस बारे में अत्युक्ति हो। यदि (युद्ध में लगी चोट से) मरे व्यक्तियों की संख्या तुरत खेत रहे व्यक्तियों की संख्या की तिगुनी मानें तो इस युद्ध से कुल मरे हुए लोगों की संख्या चार लाख बनती है। यदि इसमें उन लोगों को भी शामिल कर लें जिन्हें देश-निकाला हुआ तो सेना में जितने लोग लड़े थे उनकी संख्या ५½ लाख रही होगी। गोल्ड्ज की राय है (दि नेशन इन आर्म्स, पृ० १४८, जायसवाल द्वारा ज० वि० उ० रि० सो०, खंड ३, पृ० ४४० पर उद्धृत) कि विदेशी आक्रमण के मुकाबले के लिए हर पंद्रहवां व्यक्ति हथियार उठा सकता है। यदि हम इस अनुमान को स्वीकार कर लें तो अशोक के समय में कलिंग की आबादी कम से कम ७५ लाख रही होगी। पर इस समय वहां की आबादी ५० लाख है। अशोक से करीब सौ साल बाद के खारवेल के लेख में कलिंग की आबादी ३८ लाख बतलाई गई है। यह संख्या लेख के जायसवाल (वही) के पाठ को सही मानने पर है। यदि हम यह मान लें कि गोल्ड्ज के छह प्रतिशत के स्थान पर आठ प्रतिशत लोगों ने हथियार उठाए तो यह संख्या सही है। इस युद्ध में हताहतों की संख्या अधिक होने के कारण वहां की जनता की वीरता और भारी सेना का होना रहा होगा। मेगस्थनीज (फ्रैग० १, ६) के अनुसार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इसके बाद[1] अब[2] जब कि कलिंग जीत लिया गया है देवताओं के प्रिय का धर्मानुशासन,[3] धर्म-प्रेम[4] और धर्मोपदेश तीव्र हो गया है।[5] कलिंग जीतने पर[6] देवताओं के प्रिय को पश्चात्ताप हुआ है।[7] क्योंकि जब किसी अविजित देश की विजय की जाती है तो लोगों की हत्या, मृत्यु और देश-निकाला होता है जिससे देवताओं के प्रिय को बड़ा दुःख और खेद हुआ है। देवताओं के प्रिय को इस बात से और भी दुःख हुआ कि वहां[8] ब्राह्मण, श्रमण और अन्य संप्रदायों के लोग रहते हैं[9] जिनमें वृद्धजनों की सेवा,[10] माता-पिता की सेवा, आचार्य की सेवा, मित्रों, परिचितों, सहायकों और रिश्तेदारों, सेवकों और आश्रितों के प्रति उचित व्यवहार और भक्तिता पायी जाती है। ऐसे लोगों का विनाश, वध या प्रियजनों से बलात् वियोग[11] होता है।

या जो लोग स्वयं तो सुरक्षित होते हैं,[12] पर जिनके मित्र, परिचित, सहायक,

---

(जारी)
कलिंग के राजा की अंगरक्षक सेना में स्थायी तौर पर "६०,००० पैदल, १००० घुड़सवार और ७०० हाथी थे"।

१. ततोपच, ततः पश्चात्।
२. अधुन।
३. ध्रमपलनम्, दूसरे लेखों में धंम-वायो। हुल्ट्श ने इसे ध्रमशीलन=धर्म का अनुशीलन पढ़ा है।
४. ध्रम-कमत; धंम-कामता (काल०)।
५. तिव्रे, तीवो (गिर०) भी। अशोक के जीवन के इतिहास की एक गलत व्याख्या के कारण इस शब्द का महत्त्व प्रायः विद्वानों की पकड़ में नहीं आया है। मैंने इस पुस्तक के मुख्यांश में उसके जीवन के इस चरण पर प्रकाश डाला है। मेरा मत यह है कि कलिंग के युद्ध के कारण, न कि उसके धर्म-परिवर्तन के कारण, अशोक की बुद्ध धर्म में निष्ठा बढ़ी। अशोक का धर्म-परिवर्तन तो इस युद्ध से भी पहले ही हो चुका था। वह युद्ध के पूर्व ही बौद्ध उपासक था इसलिए इस युद्ध की विभीषिकाओं का उस पर और भी अधिक असर पड़ा।
६. विजिनिति; कालसी में विजिनितु।
७. अनुसोचन; अनुसये (काल०) भी।
८. तत्र।
९. अंञे व प्रषंड; बौद्ध अन्य सभी संप्रदायों को पाषंड (heretics) कहते हैं।
१०. अग्रभुटि; मिला० अन्य लेखों में (च० ले० १० व ६) में आए अग्र शब्द से। का० में अगभुति पाठ है जिसे बुइलर अग्रजन्मन्=ब्राह्मण मानते हैं। पर हुल्ट्श की राय में अग्रभुटि में भुटि सं० भृति है। वे अग्रभुटि का अर्थ ऊंची तनख्वाह वाला मानते हैं।
११. निक्रमणं, मिला० दूसरे लेखों में [च० ले० ३ (कालसी), च० ले० २] इसके प्रयोगों से।
१२. सुविहितनं, इससे लड़ाई में भाग न लेने वाले नागरिकों का तात्पर्य है जिन पर भी युद्ध का असर पड़ा क्योंकि उन्हें भी प्रियजनों का विछोह सहना पड़ा। उन्हें स्नेह के कारण, जो एक गुण है, शोक हुआ। अशोक ने इस प्रकार युद्ध के लिए पश्चात्ताप किया क्योंकि इससे (१) सैनिकों को क्लेश हुआ, (२) उनके परिवारों को कष्ट हुआ जो धर्मप्रिय थे, और (३) शोकग्रस्त परिवारों के इष्टमित्रों को भी कष्ट हुए क्योंकि वे उनसे स्नेह करते थे या उनका रक्त-सम्बन्ध था। इस प्रकार युद्ध का क्लेश सीमित नहीं बल्कि सर्वसामान्य होता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

या संबंधी विपत्ति में फंस जाते हैं[1] उन्हें भी अत्यन्त स्नेह के कारण बड़ी पीड़ा[2] होती है।

यह विपत्ति सबके हिस्से में बराबर[3] पड़ती है, पर इससे देवताओं के प्रिय को विशेष पीड़ा हुई।[4] (यवनों[5] को छोड़कर ऐसा कोई देश नहीं जहां ब्राह्मणों, श्रमण संन्यासियों के वर्ग[6] न हों।) ऐसा किसी भी देश में कोई स्थान नहीं जहाँ इस या उस संप्रदाय को न मानते हों।

इसलिए कलिंग देश की विजय में जितने लोग घायल हुए, मारे गए या देश से निष्कासित हुए उसके सौवें या हजारवें हिस्से का नाश भी देवताओं के प्रिय को बड़े दुःख का कारण होगा। यदि कोई देवताओं के प्रिय का अपकार करता है तो यदि वह क्षमा के योग्य हो तो देवताओं का प्रिय उसे क्षमा कर देगा। देवताओं के प्रिय के राज्य में जितने वनवासी लोग हैं[7] वह उन्हें भी अपने विचारों में ढालने की कोशिश करता है।[8] उनको कहा जाता है कि पश्चात्ताप[9] में भी देवताओं के प्रिय

---

१. वसन, व्यसनं (गिर०); उनकी मृत्यु के कारण आयी विपत्ति।
२. अपप्रथो, उपघातो (गिर०) भी।
३. प्रतिभगं।
४. राजा जो "अपनी प्रजा को अपनी ही संतान" मानता था (क० च० ले०) उसे भी क्लेश हुआ।
५. इसमें अस्सलायन को कहे बुद्ध के वचन की ध्वनि है : "सुतंते : योनकंबोजेसु अञ्ञेसु च पच्चंतिमेसु जनपदेसु द्वे व वण्णा, अय्यो च एव दासो च; अय्यो हुत्वा दासो होति, दासो हुत्वा अय्यो होतीति ?" "क्या तुमने सुना है : कि योन, कंबोज और अन्य सीमान्त देशों में सिर्फ दो ही वर्ण हैं; आर्य (मालिक) और दास (नौकर); आर्य दास हो सकता है और दास आर्य।" इससे यह सिद्ध होता है कि बुद्ध और आश्वलायन के समय में भी योन, कंबोज और अन्य जातियां जो भारतीय सीमाओं पर रहती थीं भारतीय समाज के बाहर थीं। इनकी अपनी वर्ण-व्यवस्था और धर्म-व्यवस्था थी। योनों आदि में जो विभाग थे उनका आधार आर्थिक था—मालिक और नौकर का। और ये भेद रूढ़ नहीं थे। वहाँ नौकर मालिक बन सकता था और मालिक हालत बिगड़ने पर नौकर हो सकता था। जबकि भारतीय वर्ण-व्यवस्था जन्माश्रित थी। यहाँ वर्ण-परिवर्तन संभव न था (मज्झिम-निकाय, २, १४९, पा० टे० सो०)। (इस संदर्भ के लिए मैं श्री चरण दास चटर्जी का ऋणी हूं।)
६. निकाया, यह वाक्य सिर्फ कालसी, गिरनार और मानसेहरा में मिलता है। शाह० में नहीं।
७. अटवि, अटवियो (गिर०) भी। ध्यान देने की बात यह है कि कौटिल्य (१३, ५) ने दो प्रकार की विजयों का उल्लेख किया है (१) अटवी-विजय=पहाड़ी जातियों की विजय, और (२) ग्रामादि-विजय। उसने अटव्यों को अटवीपालों के अधीन रखा है जो विशेष अधिकारी थे (१, १६ आदि)।
८. अनुनेति, अनुनयति (मान०) भी। मैं इसका शाब्दिक अर्थ अनुनयति=लाना, ही ग्रहण करता हूं। अनुनिझपेति, अनुनिझपयति (मान०)=अनुनिध्यापयति अर्थात् उनको एक ही विचारधारा का अनुगमन कराना।
९. अनुतपे : ऊपर उल्लिखित अनुशोचनं से मिला०।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का कितना प्रभाव[1] है कि वे (अपने अपरावों के प्रति) लज्जित हों और मृत्यु-दण्ड से बचे रहें। देवताओं का प्रिय चाहता है कि सभी प्राणियों के साथ अहिंसा, संयम, समानता और मृदुता का व्यवहार किया जाय।[2]

जो धर्म-विजय है[3] देवताओं का प्रिय उसे ही सबसे बड़ी विजय मानता है और वह देवताओं के प्रिय ने यहाँ (अपने राज्य में) और सभी सीमांतवासियों में छह सौ योजन दूर तक जहाँ अंतियोकस नाम का यवन राजा है और उस अंतियोकस के भी परे चार राजा तालेमी, अंतिगोनोस, मगस और अलेक्जेंडर[4] है; और उसी

---

१. प्रभवे=प्रभाव, ताकत। यह परवर्ती शब्द हुम्नेयसु से संवद्ध है। अटवियों से अच्छा व्यवहार किया जाएगा, बशर्ते कि वे स्वयं अच्छा व्यवहार करें, अन्यथा उन्हें राजकीय कोप का भाजन होना होगा।

२. धर्म की यह विशेष व्याख्या उन लोगों के लिए थी जो असभ्य थे। सबसे पहले उन्हें जीवन के कुछ मूलभूत गुणों से, जिनका उल्लेख यहाँ है, परिचित कराना होगा। सबसे पहले उन्हें "प्राकृत अवस्था" (state of nature) से निकलकर 'सभ्य समाज' का अंग बनना होगा जिसका आधार संयम, परस्पर भाईचारे का भाव और सामूहिक जीवन का आनन्द है। अत: अशोक ने धर्म की अपनी सामान्य व्याख्या उचित गृहस्थ और सामाजिक संबंध इन जातियों पर लागू नहीं की।

'प्रसन्नता' के लिए यहाँ 'रभसिये' शब्द का इस्तेमाल है जिसे बुइलर सं० रामस्य से निकला मानता है। किन्तु रामस्य का अर्थ 'हिंसा' भी है जिसे लुइडर और हुल्ट्श ग्रहण करते हैं। ये रभसिये को सप्तमी प्रयोग मानकर समचरियं रभसिये का अर्थ "हिंसा के मामले में समचर्या" करते हैं। रभसिये के स्थान पर गिर० और काल० में मादव और मदव पाठ है जिसका अर्थ मृदुता है।

३. ध्यान देने की बात यह है कि धर्मविजय शब्द की सृष्टि अशोक ने नहीं की थी, यद्यपि उसने इसको एक नया अर्थ अवश्य दिया। इसका इस्तेमाल कौटिल्य (१२, १) में भी है। कौटिल्य ने तीन प्रकार के विजयी बतलाए हैं (१) धर्मविजयी, यह विजित से मात्र पराधीनता मान लेने और आदर पाकर ही संतुष्ट हो जाता है; (२) लोभ-विजयी, जिसका लोभ भूमि और धन पाकर ही संतुष्ट होता है; और (३) असुर-विजयी, जो भूमि और धन पाकर ही संतुष्ट नहीं होता अपितु वह पराजित राजा के पुत्र और दारा के समर्पण की भी मांग करता है और यहाँ तक कि वह उसकी हत्या भी कर देता है। इस दृष्टि से अशोक शायद असुर-विजयी अर्थात् अधर्म विजयी सिद्ध होगा। अशोक जब चंडाशोक से धर्माशोक बना तो उसी समय वह असुर-विजयी से धर्म-विजयी भी हो गया!

ध्यान देने की बात यह है कि महाभारत (शांतिपर्व, राजधर्म, अध्या० ५९, ३८) में भी तीन प्रकार की विजयें कही गई हैं (१) धर्मयुक्त-विजय, (२) अर्थ-विजय, और (३) असुर-विजय।

४. इतिहास की दृष्टि से यह अंश सभी लेखों में संभवत: सबसे महत्व का है क्योंकि इससे अशोक के शासन के कालक्रम निर्धारण में मदद मिलती है। अशोक के समकालीन ये पांचों राजा ई० पू० २५८ तक साथ-साथ जीवित थे जब इनमें से एक की मृत्यु हो गई। हो सकता है कि अशोक को यह समाचार एक साल बाद मिला हो। वैसी परिस्थिति में यह उल्लेख ई० पू० २५७ का होगा। हमें अशोक के च० ले० ३, ४ और ५ से ही ज्ञात है कि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रकार अपने राज्य के नीचे[1] चोलों, पाण्डयों और ताम्रपर्णी[2] तक बार-बार प्राप्त की है।

(जारी)
उसके सभी चट्टान लेख उसके अभिषेक के बारहवें और तेरहवें वर्ष में जारी हुए थे। इस प्रकार उसका अभिषेक ई० पू० २७० में हुआ होगा। अतः ई० पू० २७४ में उसे राज्य मिला होगा। उल्लिखित यवन राजाओं के नाम हैं (१) सीरिया का अंतियोकस द्वितीय थीयस (ई० पू० २६१-२४६), जिसका उल्लेख चट्टान लेख २ में भी है, (२) तालेमी द्वितीय। मिस्र का फिलाडेल्फस (ई० पू० २८५-२४७), (३) मैसिडोनिया का अंतिगोनस गोनातास (ई० पू० २७८-२३९), (४) सीरिन (मिस्र के पश्चिम) का मगास (ई० पू० ३००-२५८), और (५) एपिरस का अलेक्जेंडर (ई० पू० २७२ ?-२५८)। इन यूनानी राजाओं की पहचान का श्रेय लासेन को है (Indische Alterthümskunde, Bd. २, पृ० २५६)। अशोक के कालक्रम का जो दृष्टिकोण यहाँ स्वीकार किया गया है (कैंब्रिज हिस्ट्री का भी यही मत है). इसमें ब्लाख के इस मत के लिए गुंजाइश नहीं है कि सं० (५) का अलेक्जेंडर एपिरस का नहीं बल्कि कोरिंथ का अलेक्जेंडर है जिसने ई० पू० २५२-२४४ में राज्य किया (दे०, ज० रा० ए० सो०, १९१४, पृ० ९४४)। अन्य राजाओं की तिथियां वही हैं जो कैंब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, खंड १, पृ० ५०२ पर स्वीकृत हैं।

१. निच, अर्थात् दक्षिण में। इस शब्द का अर्थ पूरी तरह से निश्चित नहीं हुआ है। क्या इसका सम्बन्ध निचयों से तो नहीं है जो पश्चिम के रहने वाले थे और जिनका उल्लेख ऐतरेय ब्राह्मण (८, १४, २, ३) में भी आया है?

यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि पंक्ति ८ में आए "इह च सवेषु च अंतेषु" में अशोक अंतों को अपनी प्रजा से अलग करके देखता है। क० च० ले० १ में अंतों को अविजित माना है और चट्टान लेख २ में भी इनका उल्लेख है और इन्हें प्रत्यंत भी कहा है। ल० च० ले० १, च० ले० २ और इस लेख से भी जाहिर है कि अंतों से अशोक का तात्पर्य उन जातियों से है जो उसके राज्य से बाहर भारत में और उससे भी परे थीं जैसे चोल, पांडय, सतियपुत्र, केरलपुत्र भारत में थे और उससे बाहर ६०० योजन दूर, उन पाँच यूनानी राजाओं की प्रजा थीं जिनके नाम दिए हैं। एक दूसरे ही वर्ग, अपरांतों का भी उल्लेख है। अपरांतों का प्रदेश निश्चित था जो अपरांत के ही रहने वाले थे। इनमें योन, कंबोज, पितिनिक (च० ले० ५ में और यहाँ भी जिनके नाम दिए हैं), नाभपंक्ति, भोज, आंध्र और पुलिंद (इस लेख में उल्लिखित) और गंधार और राष्ट्रिक (च० ले० ५ में उल्लिखित) शामिल थे। किन्तु अपरांत शब्द च० ले० ५ में उल्लिखित लोगों के लिए ही प्रयोग में आया है, जबकि इस लेख में इन्हें "इध-राज-विसयम्हि" कहा है (गिर०), अर्थात् वे राजा के राज्य में शामिल थे, पर उसके सीधे अधिकार-क्षेत्र (विजितसि, च० ले० २) में नहीं थे। इस प्रकार अपरांत एक प्रकार की रक्षित जातियाँ थीं जबकि अंत एकदम स्वतंत्र थे। ध्यान देने की बात यह भी है कि अपरांत योन वे यवन थे जो भारत में बस गए थे। एक योन-राजा जिसका नाम तुषास्फ था अशोक की सेवा में भी था और गिरनार में (अपरांत में ?) उसका गवर्नर था।

२. च० ले० २ में इस शब्द पर टिप्पणी देखिए।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इसी प्रकार, यहाँ राजा के राज्य में[1] यवनों[2] और कंबोजों में, नाभकों[3] और

१. हिद रजविषवसि; रज-विषवसि (मान०); राजविसयम्हि (गिर०); और लाजविशवषि (काल०)। "राजविषय" को आठवीं पंक्ति के अंतेसु का विलोम समझना चाहिए। तात्पर्य यह है कि जहां अंतों या विदेशी जातियों के मध्य राजा धर्म-विजय कर रहा था, अपने राज्य के अर्द्ध-स्वतंत्र लोगों में वह धर्मानुशास्ति अर्थात् धर्मोपदेश कर रहा था। इस प्रकार जो उसके राज्य में थे उनको वह स्वाभाविक तौर पर अनुशासन या उपदेश देता था और जो उसके राज्य के बाहर थे उन्हें वह प्यार से जीत रहा था (विजय)। ओझा इसे "इतः राज्ये विष (अज्ञात जाति)—वज्जिसु (अर्थात् वृज्जियों में)" मानते हैं। जायसवाल (हिंदू पालिटी, खंड १, १४४) इसका अर्थ "यहाँ राज-विषयों" में, और राजविषय=शासक या प्रनुराज्य मानते हैं। उनके मत से ये राजविषय च० ले० ५ के अपरांत साम्राज्य की सीमा के भीतर के राज्य थे जो अंतों=सीमा के बाहर के देशों से भिन्न थे। वे राज-विषय को अशोक का अपना राज्य नहीं मानते। उनका कथन है कि "अशोक अपने राज्य के लिए हमेशा किसी उत्तम पुरुष पष्ठी (मम, मे) का इस्तेमाल करता है।" किन्तु उनकी यह मान्यता ठीक नहीं है। लेखों में तीन बार उसके राज्य का उल्लेख आया है। इनमें दो बार उत्तम पुरुष पष्ठी का इस्तेमाल नहीं हुआ है "सवत्र विजिते देवनं-प्रियस [च० ले० २ (शाह०)] और "महलके हि विजिते" [च० ले० १४ (शाह०)], और सिर्फ एक बार ही ऐसा है "सर्वत विजिते मम युता..." [च० ले० ३ (गिर०)], पर इसमें उत्तम पुरुष षष्ठी का सम्बन्ध युता से हो सकता है, न कि विजिते से। दूसरी बात यह कि जायसवाल की स्थापना में राजविषय को बहुवचन मानना होगा जब कि वह एकवचन है।

२. ये योन वे यूनानी (आयोनियन) रहे होंगे जो अशोक के राज्य के अपरांत प्रांत में बस गए थे। इनकी स्थिति का अनुमान किया जा सकता है। ये कंबोजों के पड़ोसी रहे होंगे क्योंकि लेखों में और मनु में भी इनका कंबोजों के साथ उल्लेख है। कंबोज काबुल नदी के किनारे बसे थे। इसलिए योन भी वहीं रहे होंगे। जायसवाल ने (वही, पृ० १४७) इनकी पहचान न्यस के नगर राज्य से की है। इस नगर का यूनानी वातावरण सिकंदर और उसकी सेना को बहुत रुचा था इनके राष्ट्रपति का नाम अकोमी था। जायसवाल इस नाम का सम्बन्ध वैदिक कूमा=काबुल नदी से जोड़ते हैं। लासेन इसकी पहचान सिंध नदी के पश्चिम के एक प्रदेश से करते हैं जो अशोक के दादा चंद्रगुप्त को सेल्यूकस से मिला था। ध्यान देने की बात यह है कि योनों का देश, योन-रट्ठ भी उन देशों में है जहाँ महावंश के अनुसार अशोक के नेतृत्व में हुई तृतीय बौद्ध-संगीति ने बौद्ध दूतमंडल भेजा था। ये योन, आयोनियन या यूनानी यहाँ साईरस, दारा और जर्क्सीज के शासन में आए होंगे। कुछ ईरानियों और हेल्लास के बीच हुए युद्ध के समय भी आए होंगे। इससे पहले इन योनों के उल्लेख पाणिनि (४, १, ४९) के यवनानी लिपि के रूप में और ऊपर उल्लिखित मज्झिम-निकाय में हैं।

३. बुहलर ने वैवर्त्त पुराण के एक उल्लेख की ओर हमारा ध्यान दिलाया है जिसमें नाभिकपुर को उत्तर-कुरुस में बतलाया गया है। फिर तो नाभपंक्ति हिमालय की एक जाति रही होगी जो उत्तर-पश्चिम में कंबोजों के पड़ोस में थी। च० ले० ५ में नाभपंक्तियों के स्थान पर गंधारों का उल्लेख है। अतः नाभपंक्ति और गंधारों का सम्बन्ध रहा होगा। पाणिनि (४, १, ११२; और मिला० ४, २, ५३) के एक सूत्र के गण-पाठ में नाभक और ऊर्ण-नाभ के उल्लेख हैं। जायसवाल के विचार से ऊर्ण-नाभ का गंधार से संबंध है जो ऋग्वेदिक काल से ऊर्ण=ऊन के लिए प्रसिद्ध था। शाह० में नाभपंक्ति के स्थान पर 'नभितिन' पाठ है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नाभितों (कलिं० में नाभपंतियों) में, पितिनिकों[1] में, आंध्रों और पुलिंदों[2] में, सभी जगह लोग देवताओं के प्रिय के धर्मानुशासन का अनुसरण करते हैं। जहां-जहां देवताओं के प्रिय के दूत नहीं जाते,[3] वहाँ-वहाँ भी लोग देवताओं के प्रिय का धर्माचरण, धर्म-विधान और धर्मानुशासन सुनकर धर्म का पालन करते हैं और करेंगे। इस प्रकार सर्वत्र जो विजय हुई है वह विजय वास्तव में प्रीति देने वाली है। धर्म की विजय में अपार प्रीति होती है[4] यह आनंद तुच्छ[5] हो सकता है, पर देवताओं का प्रिय[6] इसे परलोक में महान् फलदायी समझता है।

यह धर्मलिपि इसलिए लिखवायी गयी ताकि मेरे पुत्र, प्रपौत्र[7] जो भी हों नई विजयें करने की न सोचें, किंतु यदि उन्हें विजयों में रस मिलता ही है[8] तो, वे क्षमा

(जारी)
जिसे जायसवाल तीन नाभ मानते हैं। उनकी राय में नाभकों के भी तीन भाग वैसे ही रहे होंगे जैसे यौधेयों के तीन और वृचियों के पाँच भाग थे।

१. प्रसंग से लगता है कि ये अशोक के प्रत्यंत शासन के बाहर रहे होंगे न कि उसके आनुवंशिक सरदार जैसा कि डा० भंडारकर पेतेणिक का अर्थ मानते हैं (दे०, च० ले० ५ में टिप्पणी)। बुइलर भोजों को विदर्भ में रखते हैं किन्तु हुल्ट्श की राय में ये पश्चिम में रहे होंगे। कल्हण ने कश्मीर के शंकरवर्मन के समकालीन एक भोज राजा का उल्लेख किया है।

२. महत्व की बात यह है कि ऐतरेय ब्राह्मण (७, १८) भी आंध्रों और पुलिंदों के साथ ही लिच्यों का उल्लेख करता है। पाणिनि (५, ३, १४४) की काशिका में पुलिंद-गण का उल्लेख है। गिरनार में पारिंदेसु और कालसी में पालदेषु पाठ है। हुल्ट्श (कार्पस, पृ० ३६) का विचार है कि आंध्रों की ही भाँति ये पूरब के रहे होंगे। वायु पुराण में पुलिंदों को विंध्यमूलीय अर्थात् विंध्य पर्वत के पादतल में रहने वाले बतलाया है। महाभारत, सभापर्व (२६, ११) में इन्हें चेदियों के पास रखा है। इस प्रकार इनके प्रदेश में रूपनाथ रहा होगा जहां लघु चट्टान लेख मिला है।

३. इससे पता चलता है कि अशोक भी यवन देशों में वैसे ही दूत भेजता रहा है जैसे उनके दूत मेगस्थनीज, डेइमेकस और डायोनीसियस मौर्य दरबार में रहते थे। अशोक ने इन दूतों का उपयोग चाहे वे राजनैतिक कार्य के लिए ही क्यों न गए हों अब धर्म-प्रचार के लिए वैसे ही करना शुरू किया जैसे वह अपने सिविल कर्मचारियों का उपयोग उनके सामान्य कामों के अतिरिक्त धर्म-प्रचार के लिए भी करता था जिसका उल्लेख उसके च० ले० २ में है। कौटिल्य (१, १६) तीन प्रकार के दूत बतलाता है।'

४. लघा (गिर०), पर का० में गधा=सं० गाढ़ा=परम पाठ है जिसे बुइलर पालि गाधति=दृढ़ रहना, कायम रहना, खड़ा रहना मानता है।

५. लहुक : यह शब्द च० ले० १२ में भी आया है।

६. कालसी में पिये के स्थान पर पिने पाठ है। संभवतः यह भी लेखन की एक भूल ही है। इस लेख में एक दूसरी भूल भी है। इससे पहले के वाक्य में पिति शब्द दो बार लिखा गया है।

७. आश्चर्य है कि इस लेख में पोत्रा शब्द छूट गया है।

८. स्पकस्पि यो विजये क्षंति; पयकषि नो विजयषि खंति (काल०); स्पकस्पि, पयकषि=स्वकीये, अपने। गिरनार में "सरसके एव विजये" अर्थात् "यदि उन्हें विजयों में रस आए" पाठ है। इस प्रकार सरसके का सं० शर-शक्य: से कोई संबंध नहीं है जैसा कुछ विद्वानों का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और दया से काम लें[1] और धर्मविजय को ही विजय समझें। उससे इहलोक और परलोक दोनों बनते हैं। त्याग में उनकी रति हो[2] और धर्म में निरति हो। इससे इहलोक और परलोक दोनों सिद्ध होते हैं।[3]

१४
(गिरनार)

ये धर्मलिपियां देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी[4] राजा ने संक्षेप में,[5] मध्यम रूप में,[6] और कहीं विस्तार से लिखायी हैं।[7]

(जारी)
अनुमान है। और न ही इसका अर्थ "शराकर्षिणम् विजयम्" 'हिंसा से प्राप्त विजय' है क्योंकि स्पक=स्वक, मिला० स्पग्रम (च० ले० ६)=स्वर्गम्।

१. क० च० ले० १, पंक्ति १० में भी दंड देने में मध्यम मार्ग (मझं पटिपादयेमा ति) अपनाने पर जोर है।

२. हुल्ट्श ने सवचति-रति में चति को सं० त्यक्ति=त्याग माना है। पर काल० और मान० में यहां पाठभेद है "यवा च क निलति होतु युयाम-लति" (काल०) "(उनका) सभी सुख पराक्रम में हो" (च क=च कम्, यहां च वही है जो "पुता च कं नताले चा", च० ले० ४, का० में है; युयाम=उद्याम, वही है जो च० ले० ६ और १० का उत्थान और पराक्रम है); "सव च क निरति होतु य ध्रमरति" (मान०)="और (उनको) सभी सुख धर्म-रति में हो"।

३. गिरनार में दाईं ओर अंत में एक वाक्य और है: (स)र्वस्वेतो हस्ति सर्व-लोक-सुखाहरो नाम ="सर्वश्वेत हाथी जो सारे संसार को सुख देने वाला है"। यहां इस वाक्य का लेख के विषय से कोई संबंध नहीं है। "यह अंश संभवतः उस हाथी के बारे में है जिसकी आकृति यहां बनी थी पर अब वह नष्ट हो चुका है। ऐसे ही एक हाथी की आकृति कालसी में चट्टान काटकर निकाली गई है जिसके नीचे 'गज(ो) तमे'=गजोत्तम लेख खुदा है। धौली में एक हाथी का उच्चित्र चट्टान में बना है। हाथी नीचे लेख की ओर देख रहा है। हाथी बुद्ध का सुपरिचित प्रतीक है" (विंसेंट स्मिथ, अशोक, तृ० सं०, पृ० १८९)। धौली में च० ले० ६ के नीचे सेतो शब्द खुदा है।

गिरनार में लेख के नीचे हुल्ट्श ने दो लाइनें खोज निकाली हैं जो नितांत कटी-पिटी हैं, पहली पंक्ति में तेष और दूसरी में पिपा शब्द पढ़े जाते हैं। हुल्ट्श का अनुमान है कि ये यहां बौद्ध मंत्र, हेतुं तेषां तथागतो ह्यवदत्। तेषां च आदि—खुदा रहा होगा (कार्पस, पृ० २६)।

४. शाह० में प्रियदसिना के स्थान पर उसका विचित्र रूप प्रिशिन है जो अन्यत्र लेखों में कहीं नहीं मिलता। इस प्रकार लिपिक की भूल का यह भी एक उदाहरण है। वैसे इस लेख में स्थायी रूप प्रियद्रशिस है (मिला० च० ले० २)।

५. मास्की का लेख संभवतः संक्षिप्तीकरण का एक उदाहरण है।

६. उदा०, शाह० के च० ले० १३ में कुछ शब्द नहीं हैं (दे० टिप्पणी)। शाह० में दूसरे स्थानों में प्राप्त "मझमेन" शब्द भी नहीं है।

७. उदा० रूपनाथ ल० च० ले० १ में कुछ शब्द अधिक हैं जो अन्यत्र नहीं हैं। शाह० के च० ले० ६ में भी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पुन:[1] सभी बातें सर्वत्र नहीं दिखलायी गयी हैं[2] (या उपयुक्त न थीं)[1] मेरा विजित (राज्य) बहुत बड़ा है,[3] बहुत कुछ लिखाया जा चुका है और अभी मैं बहुत लिखाऊंगा।[4] कहीं-कहीं[5] विषय की रोचकता के कारण एक ही बात बार-बार कही गयी है[6] ताकि लोग तदनुसार आचरण करें।

कहीं-कहीं लेख अधूरा छूट गया होगा,[7] इसका कारण देश विशेष[8] है या सकारण[9] है या फिर लिपिकार[10] का अपराध है।[11]

---

१. च; हि दूसरे स्थानों में। फिर इसका अनुवाद होगा "क्योंकि सभी सर्वत्र नहीं लिखाया गया है"। हुल्ट्श 'घटितं' का अनुवाद 'उपयुक्त' करता है।

२. उदा० जहां चौदह चट्टान लेख खुदवाए गए हैं वहां लघु चट्टान लेख नहीं खुदे हैं। सोपारा में शायद आठवां लेख ही खुदा था जिसके कुछ शब्द ही मिल पाए हैं।

३. इससे यह लक्षित होता है कि उसका राज्य इतना विस्तृत था कि लेख सर्वत्र नहीं खुदाए जा सकते थे (न च सवं सर्वत घटितं)।

४. उदा० स्तंभ लेख बाद में जारी हुए। कालसी में लेखापेशामि चेव नि्क्यं अर्थात् "मैं बराबर लिखता रहूंगा" है।

५. "अस्ति च एत कं......" जिसका हुल्ट्श ने अनुवाद किया है "इसमें कुछ बातें बार-बार कही गई हैं। अन्यत्र एत कं के स्थान पर अत्र पाठ है। इससे यही लक्षित होता है कि एत कं=अत्र किंचित् है।

६. उदा० धर्म की परिभाषा बार-बार दुहरायी गयी है। वुतं=उक्तं, लपितं (शाह०)

७. तत्र एकदा, शाह० में "सो सिय व अत्र किचे" अर्थात् "यहां भी कुछ (अपूर्ण) लिखा गया होगा" है।

८. उदा० धौली और जौगड़ में च० ले० ११, १२, और १३ के स्थान पर दो पृथक् कलिंग लख हैं। यहां मूल शब्द थे: 'देसं (काल० में दिया) व सछाय (या षंखेये)। मिला० सुत्त निपात (१, १२, २०८): संखाय वत्थूनि, "वस्तुओं के बारे में खूब विचार कर"। कौटिल्य (१, ८) ने भी कहा है 'संख्यातार्थेषु कर्मसु नियुक्ता ये' अर्थात् 'जो यह समझते हैं कि उनका कार्य क्या है'। कालसी में देश के अर्थ में दिया का प्रयोग देशं के लिए लिपिक की भूल है। मिला०, स्तं० ले० ७, पंक्ति २७ में दिसासु। सेनार्ट ने सछाय या संखय को सं० संक्षेप से संबद्ध मानकर इस अंश का अनुवाद "एक अंश के कट जाने के कारण" किया है। बुह्लर ने इसका अनुवाद 'जगह की कमी के कारण' किया है। संक्षेप से संखय के लिए दे०; "मूलं पपंचसंखाया" (तुवटक सुत्त ५, २)='प्रपंच का मूल ही काट दे'।

९. कारणं [करण (शाह०), कालनं (काल०)] व अलोचेत्पा [अलोचेति (शाह०), अलोचयितु (काल०)]। यहां अलोचेत्पा का अर्थ आलोच्य=विमर्श करके लिया गया है। पर कुछ विद्वान् इसका अर्थ आलोचयिशु करते हैं जैसा कि च० ले० ४ में प्रयोग है [हीनि च मा अलोचयिसू (धौ०)=उन्हें कमी का सामना न करना पड़े]। अतः हुल्ट्श इस पूरे अवतरण का अनुवाद यों करता है: "स्थान विशेष को दृष्टि में रखकर या मेरा मंतव्य पसंद नहीं किया गया"। सछाय का अर्थ संक्षिप्त मानने पर अनुवाद होगा: "मैंने स्वयं किसी अंश को निकाल दिया और दूसरे के लिए वाजिब कारण नहीं मिला"। वूलनर को इस पर ठीक ही आपत्ति है। वह कहता है कि राजा के अधीन कर्मचारियों को उसके मंतव्य के पसंद करने न करने का अधिकार नहीं है और न वे अपनी मर्जी से कोई अंश निकाल ही सकते हैं (अशोक टेक्स्ट एण्ड ग्लासरी, पृ० १३८)।

१०. शाह० में दिपिकरस पाठ है।

११. इनमें कुछ त्रुटियां ऊपर कही गई हैं। इस लेख से जाहिर है कि अशोक ने चट्टान लेखों की माला इसके बाद बंद कर दी थी। या उसने इसमें आगे किसी लेख की गुंजाइश नहीं रखी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ङ. सात स्तंभ लेख

१

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने इस प्रकार कहा : अभिषेक के छब्बीसवें वर्ष में मैंने यह धर्म लेख लिखाया।[1] इहलोक और परलोक दोनों का पाना कठिन है,[2] सिवाय खूब धर्म-प्रेम,[3] खूब आत्म-परीक्षण,[4] खूब शुश्रूषा, खूब भय[5] और खूब उत्साह के। किन्तु मेरे धार्मिक उपदेश के कारण धर्म-प्रेम और धर्म के प्रति आदर दिनों-दिन[6] बढ़ा है और बढ़ेगा।

और मेरे पुरुष[7] भी चाहे वे ऊंची हैसियत के हों या नीची[8] या मध्यम हैसियत के मेरे अनुदेशों के अनुसार काम करते हैं और उनका सुसंपादन कराते हैं "वे इस योग्य हैं[9] कि जो लोग चपल हैं उन्हें उनके कर्त्तव्य का ध्यान दिलावें। इसी प्रकार मेरे अंत-महामात्र भी करते हैं।[10] मेरा आदेश भी यह है : धर्म से पालन,

---

१. स्तंभ लेख ई० पू० २४४ में जारी किए गए थे। यह तिथि स्तंभ लेख ४, ५ (दो वार), ६ और ७ में दुहरायी गई है। अनुवाद के लिए दिल्ली-टोपरा वाले स्तंभ के लेखों को आधार बनाया गया है।

२. दुसंपटिपादये=दु:-संप्रतिपाद्यम्। किंतु माइकेलसन (ज० अ० ओ० सो०, ४६, २५९) इस व्युत्पत्ति को ध्वनिशास्त्र के आधार पर अस्वीकार करता है। हुल्ट्श (कार्पस, पृ० १२२) -य को भविष्यत् कर्मवाच्य कृदंत मानता है जैसे देखिय या आवासयिय।

३. अगाया धंम-कामताया, मिला० च० ले० १३ में प्रयुक्त धंम-कामता से।

४. पलीखाया=परीक्षया। पच्चवेक्खन या आत्मालोचन की आवश्यकता पर राहुलोवाद सुत्त में जोर दिया गया है। यह सुत्त भाब्रू के लेख में उल्लिखित है।

५. अर्थात् पाप का भय।

६. सुवे सुवे : मिला० सं० स्व:=आगामी काल।.

७. स्तं० ले० ४ और ७ में प्रयुक्त।

८. गेवया। बुइलर इसे √गेव्=सेवा करना से निकले गेवया से इसका संबंध जोड़ते हैं। इसी धातु से सेवका: शब्द निकला है।

९. वूलनर ने इसका अनुवाद यही किया है। समादापयति=जांच करना, पालि समादापेति=उकसाना, उत्साहित करना। अत: हुल्ट्श ने इसका अनुवाद 'भड़काना' किया है।

१०. कलिंग च० ले० २ में अशोक की विदेश नीति का आख्यान है। ध्यान देने की बात यह है कि अंत-महामात्रों का उल्लेख क० च० ले० २ में नहीं है, यद्यपि इसकी गुंजाइश वहाँ अवश्य थी। हो सकता है कि इनके पदों की सृष्टि इस लेख के बाद हुई हो। कौटिल्य (२, ४) को अंत-पालों का ज्ञान है जिन्हें वह १८ तीर्थों या विभागाध्यक्षों में गिनता है (१, १२)। अंत-महामात्र का अर्थ बुइलर 'सीमांत-रक्षकों' करता है। वूलनर इन्हें चार्ल मैंग्ने के मार्कग्राफेन की भाँति 'सीमांत प्रदेश का निरीक्षक'; हुल्ट्श 'अंतों के महामात्र' मानते हैं। ये वे ही महामात्र रहे होंगे जिन्हें अंतों में काम करने के लिए नियुक्त किया गया था। ल० च० ले० १, च० ले० २ और च० ले० १३ में अशोक की धर्म-विजय की नीति के अंतर्गत सीमांतों में धर्म-प्रचार और अन्य कल्याण-कार्यों के लिए ऐसे महामात्रों की नियुक्ति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(पोषण), धर्म से नियमन (विधान), धर्म से सुख और धर्म से रक्षा।[1]

२

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने इस प्रकार कहा : धर्म अच्छा साधु है। पर धर्म क्या हैं ?[2] अति भोग[3] से मुक्ति, खूब अच्छे काम करना (बहु-क या ने=बहुकल्याण), दया, दान, सत्य और शौच (धर्म है)।[4]

(जारी)

का उल्लेख है। अधिकारियों के इस विशेष वर्ग अर्थात् महामात्रों की नियुक्ति की बात सबसे पहले इस स्तंभ लेख में कही गयी है, इसलिए इस लेख को हम चट्टान लेख २, ५ और १३ से बाद का मान सकते हैं। इन चट्टान लेखों में इनके व धर्म-महामात्रों के काम सामान्य तौर पर बतलाए गए हैं। कार्यों की रूपरेखा स्पष्ट हो जाने पर उसके लिए कार्यकर्ताओं की आवश्यकता होती ही है जिनका उल्लेख स्तंभ लेख १ में है। अंत महामात्रों की इस व्याख्या से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि इनका कार्यक्षेत्र साम्राज्य से बाहर था। अतः इन्हें पुरुषों से अलग करके देखा गया है जिनका कार्यक्षेत्र साम्राज्य के भीतर था। अंत में ध्यान देने की बात यह है कि अंत-महामात्रों से ही मिलते-जुलते च० ले० १३ के दूत हैं जो अशोक की योजना के अंतर्गत दूर विदेशों में कल्याण-कार्य संपादित करने के लिए भेजे गए थे।

१. जैसा क० च० ले० २ में इंगित किया गया है सीमांतवासियों की रक्षा और स्वतंत्रता इस बात पर मुनहसर थी कि वे धर्म का पालन करते हैं या नहीं। हुल्‍द्श इसका अनुवाद "धर्म के अनुसार (अपनी वाणी का) संयम" करता है। वह गोती को चट्टान लेख १२ का वचिगुती, वचगुत्ति का गुति मानता है।

२. कियं=कियाम्।

३. अपासिनवे; अप (या अल्प)+आसिनवम् से। स्तं० ले० ३ में आसिनव को पाप कहा है। आसिनव की दो व्युत्पत्तियां हैं (१) आस्नव=आ+√स्नु। मि० पाप के लिए जैनों का शब्द अण्हय, तण्हा, तपिना=तृष्णा (२) आस्रव=√स्रु=प्रवाहित होना, बहना से आत्मा का इंद्रियों से उनके विषयों की ओर बहना। सर्वदर्शन-संग्रह ने इसकी परिभाषा "दरवाजा जो जल में खुलता है और जिससे धारा नीचे वह जाती है" किया है और "जैनों की दृष्टि में इंद्रियों का कार्य जो आत्मा को वाह्य विषयों में प्रेरित करता है"। आपस्तंब धर्म-सूत्र (२, २५, १६) में यह शब्द 'वाह्य विषयों' को सूचित करता है, यैः पुरुषः आस्राव्यते अर्थात् 'वे विषय जो पुरुष को बाह्य की ओर आकर्षित करते हैं'। माइकेलसन इस दूसरी व्युत्पत्ति को ज्ञात ध्वनि सिद्धांतों के विरुद्ध मानता है (ज० अ० ओ० सो०, ४६, २५७)। आश्रवों की सूची जैन और बौद्ध ग्रंथों में दी हुई है (जिसका उल्लेख मुख्य ग्रंथ में हम कर चुके हैं)।

आस्रव से ही मिलता-जुलता एक दूसरा शब्द परिस्रव है जिसका इस्तेमाल च० ले० १० में हुआ है जिसे अपुण्यं=पाप का पर्यायवाची माना है। किन्तु परिस्रव शब्द परिश्रय की कल्पना करता है जो √श्री, घेरना से बना है। अतः इसका अर्थ '(पाप का) बंधन' हो सकता है। मि० धम्मं परिस्सय-विनयं, 'धर्म जो सभी खतरे दूर करता है' (तुवटक सुत्त ५, ७)। अपासिनवे में अप (अल्प) को हम बहुकयाने में बहु का विलोम मान सकते हैं। फिर इसका अनुवाद 'अल्प पाप, बहुत अच्छे काम' कर सकते हैं।

४. यहां अशोक के धर्म की एक और परिभाषा मिलती है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मैंने लोगों को अनेक प्रकार से आध्यात्मिक दृष्टि (=चक्षुदान)[1] भी दी है,[2] और द्विपदों, चतुष्पदों, पक्षियों और जलचरों पर मैंने विविध अनुग्रह किये हैं—प्राण-दान भी।[3] इसी प्रकार मैंने बहुत से अच्छे काम (अन्य कल्याण)[4] भी किये हैं।

मैंने यह धर्म लेख इसीलिए लिखाया कि (लोग) इसका पालन करें[5] और कि वह चिरकाल तक रहे। और जो इसका पालन करेगा, वह एक अच्छा काम करेगा।

३

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने इस प्रकार कहा: लोग अपने काम ही देखते हैं, सोचते हैं कि "यह अच्छा काम मैंने किया है।" किंतु लोग अपने बुरे काम भी देखते हैं[6] और सोचते हैं कि "यह बुरा काम मैंने किया है, या कि यह पाप लिप्तता[7] है।"

पूरा देखना कठिन है।[8] पर इसे इस प्रकार देखना चाहिए: "ये पाप की ओर ले जाने वाले कहे हैं,[9] अर्थात् क्रूरता, निष्ठुरता, क्रोध, मान, ईर्ष्या, इन कारणों[10] से मुझे (अपने को) बरबाद नहीं करना चाहिए।"[11] इस बात का खास ध्यान रखना

---

१. चखुदाने; सबसे पहले बुहलर ने इसका सही अर्थ पहचाना। हुल्श (कार्पस, पृ० १२१ टि०) ने इतिवुत्तक की उद्धरणी की है जिसमें तीन प्रकार के चक्षु कहे हैं, मांसचक्खु, दिब्बचक्खु और पञ्ञचक्खु।

२. मनुष्यों को। अशोक ने मनुष्यों और पशुओं दोनों की सेवा की है, मिला० च० ले० २; स्तं० ले० ७।

३. स्तं० ले० ५ में इसके विस्तृत नियम दिए हैं।

४. उदा० च० ले० २ और स्तं० ले० ७ में उल्लिखित जनकल्याण के अनेक कार्य।

५. अनुपटिपजंतु: स्तंभ लेखों में यह शब्द कई बार आया है।

६. मिन या मिना की बुहलर ने सं० मनाक् के रूप में व्याख्या की है। नोमनाक्=कतई नहीं, बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं। किंतु माइकेलसन (ज० अ० ओ० सो०, ४६. २६१) मिन की मनाक् से व्युत्पत्ति ध्वनिशास्त्र की दृष्टि से असंभव मानता है। माइकेलसन अ से इ में परिवर्तन को असंभव मानता है। पालि और प्राकृत मनाक् दोनों में अ है। उदा० पालि मना, मनम्; प्राकृत मणा, मणम्; जैन महाराष्ट्री मणागं। अतः वह नोमिन=नो अमिन और अमिन= पालि अमिना "भी" मिला० इमिना, अमुना मानता है। फिर इस अंश का अनुवाद होगा "कोई बुरे कामों को भी नहीं देखता"।

७. आसिनवे, इससे पहले के लेख में इसका इस्तेमाल हो चुका है।

८. दु-पटिवेखे; पटिवेखे=पालि पच्चवेक्खनम्। हुल्श इसे प्रथमा एकवचन नपुं०=दुष्प्रति-वेक्ष्यम्='पहचानने में कठिन' मानता है। पटिवेखामि शब्द स्तं० ले० ६ में दो बार आया है और अनुवेखमाने शब्द स्तं० ले० ७ में आया है।

९. आसिनवगामीनि।

१०. कालनेन; मिला० आसिनवगामीनि; मनोविकार बदनामी के कारण होते हैं।

११. पलिभसयिसं: बुहलर इस शब्द को सं० परिभ्रंशयिस्यामि से जोड़ता है, मिला० सं० शब्द, 'पतित'। फिर इस अंश का अनुवाद होगा "इनसे भी मेरा पतन ही होगा" या "क्या मैं इनसे अपना पतन करूं?"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चाहिए कि "यह मेरे इहलोक के लिए है और वह[1] मेरे परलोक के लिए।"

४

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने इस प्रकार कहा : अभिषेक के छब्बीसवें वर्ष में मैंने यह धर्म लेख लिखवाया।

मैंने राजूकों[2] को लाखों प्राणियों के ऊपर रखा है।[3] अभिहार[4] (=व्यवहार=कानून) और दंड[5] (न्याय) (के प्रशासन) मैंने उनके अधीन[6] कर दिये हैं ताकि आश्वस्त[7] और निर्भय होकर वे अपने कार्यों का प्रवर्त्तन करें,[8] जानपद जनों[9] को हित और सुख वितरित करें[10] और अनुग्रह भी बांटें।[11] वे सुख और दुःख के

---

१. इयंमन को हुल्ट्श इदं अन्यत् मानता है । संधि के लिए उसने हेवंमेव आदि का दृष्टांत दिया है ।

२. च० ले० ३ की टिप्पणी दे०। इस पंक्ति में 'मे' को नेनितिवे की भाँति एकवचन का रूप मानना चाहिए, न कि तृतीया का।

३. आयता=आयुता=आयुक्ताः, नियुक्त या फिर, √यत्='परवाह करना, व्यस्त होना' से इसकी व्युत्पत्ति ढूंढनी होगी।

४. अभिहाले=अभिहाराः। जैसा बुइलर ने दिखलाया है यह शब्द एक जातक (खंड ५, पृ० ५८, गाथा १४३; वही, पृ० ५६) में पूजा के अर्थ में आया है जैसा कि टीकाकार ने व्याख्या में कहा है। मिला० ल० च० ले० १ (रूप०) में अहाले। जायसवाल (ज० बि० उ० रि० सो०, खण्ड ४, पृ० ४१) अभिहार को 'हमले' का पर्याय मानते हैं। इस प्रकार उनकी राय में राजूक "राजा के (वे) उच्च अधिकारी" थे जो राजा की ओर से मिले अनेक प्रभु-अधिकारों का जैसे दंड और अभिहार, अर्थात् प्रशासन या युद्ध और शांति का उपभोग करते थे। पर जैसा सेनार्ट ने दिखलाया है नीचे अभिहाल और दंड को वियोहाल-समता और दंड-समता के साथ जोड़ा गया है। अतः अभिहाल=व्यवहार अर्थात् कानून हुआ जबकि दंड=न्याय हुआ। इस प्रकार राजूकों को न्यायपालिका और कार्यपालिका अथवा विधान और न्याय के विस्तत अधिकार मिले हुए थे।

५. दंडे=दंडः।

६. अतपतिये मे कटे अर्थात् मया आत्मपत्यः कृतः (अभिहार और दंड का विशेषण)।

७. अस्वथ अर्थात् आश्वताः।

८. पवतयेवू : सं० प्रवर्तयेयुः।

९. जनस जानपदसा, मिला० इससे पहले का वाक्य "लजूका मे बहूसु पानसतसहसेसु जनसि आयता"। इससे साफ जाहिर होता है कि राजूक जानपद या प्रांतों के ऊँचे अधिकारी थे जिनको राजा ने विश्वास कर लाखों मनुष्यों के ऊपर रखा था, जैसे कोई आदमी किसी चतुर धाय में विश्वास कर अपने बच्चों को उसके रक्षण में रख देता है जैसा कि आगे लेख में कहा है।

१०. उपदहेवु=उपदधेयुः, उप+√धा।

११. अनुगहिनेवु=अनुगृह्णीयुः।

.RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कारण जानें।[1] और धार्मिक[2] जनों की सहायता से जानपद जनों[3] को याद दिलायें कि वे इहलोक और परलोक पा सकते हैं।

राजूक भी मेरे आदेशों के पालन के लिए उत्सुक रहते है।[4]

वे पुरुषों के भी आदेशों का पालन करेंगे जो जानते हैं कि (मेरी) इच्छाएं[5] क्या हैं, वे भी उनको[6] प्रेरित करेंगे ताकि राजूक मुझे प्रसन्न कर सकें।[7]

जैसे कोई अपने बच्चे को किसी चतुर धाय[8] को सौंपकर आश्वस्त हो जाता है और सोचता है कि "चतुर धाय मेरे बच्चे को ठीक तरह से रखेगी," इसी तरह

---

१. सुखीयन-दुखीयनं। इसमें शुद्ध बौद्ध धर्म की ध्वनि है जिसका आधार सुख और दुःख के कारण का अन्वेषण है। लेखों में आस्रव या परिस्रव (च० ले० १०) या पाप को क्लेश का कारण माना है और धर्म को सुख का।

२. घ्रंमयुतेन : इसका अर्थ यहां वही है जो मास्की के लेख में है।

३. जनं जानपदं : देहात के निवासी या ग्राम जनता, राजूकों का जिनसे वास्ता था।

४. लघंति=सं० रंघंते "वे त्वरा करते हैं, उत्सुक हैं" (बुइलर)। इसका संबंध अर्हन्ति "अवश्य" से भी हो सकता है। अचरज है कि जायसवाल (हिंदू पालिटी, २, १४५) इस वाक्य को यों लेते हैं "लजूका पि लघंति पटिचलितवे मं"="और राजूक मेरी घोषणाओं का उल्लंघन करते हैं (लघंति=लंघंति)"। किंतु मं=मे तृतीय है, षष्ठी नहीं और पटिचलितवे को सभी विद्वानों ने चतुर्थी क्रियार्थक संज्ञा माना है जिसका संबंध सं० परिचरितुम्=सेवा करना से है। मिला० दूसरे स्थानों का पटिभोगाय=परिभोगाय (गिरनार चट्टान लेख २)।

५. छंदंनानि=छंदाज्ञानि। किंतु बुइलर इसे छंदाज्ञाः अर्थात् "वे जिन्हें राजा की इच्छा या आज्ञा का पता है" मानता है। जो पुलिसानि का विशेषण है। जहां तक पुरुषों का संबंध है जाहिर है कि इनमें जो ऊंचे होते थे (उकसा, स्तं० ले० १) वे राजूकों से भी ऊंचे थे ताकि वे उन्हें अपने कर्त्तव्य पूरा करने का उपदेश कर सकते थे। बुइलर इनकी पहचान च० ले० ६ के प्रतिवेदकों से करता है। वस्तुतः पुरुष राजूकों की अपेक्षा राजा के अधिक निकट संपर्क में होते थे। इस प्रकार वे यह जानते थे कि राजा की इच्छा क्या है। इस प्रकार वे प्रतिवेदकों से मिलते-जुलते हैं। स्तं० ले० ७ में इन दोनों प्रकार के अधिकारियों का पुनः उल्लेख हुआ है।

६. कानि; बुइलर के मतानुसार "कुछ" अर्थात् राजूकों या प्रांतीय अधिकारियों में कुछ। फिर इस वाक्य का अर्थ होगा कि पुरुष कर्त्तव्य का उल्लंघन करने वाले राजूकों या ग्राम जनता को राजा और धर्म के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन करने के लिए प्रोत्साहित करेंगे। कानि शब्द कालसी के च० ले० ६ में और गिरनार में नानि के लिए और शाह० और मान० में या या बे के लिए आया है अतः इसे निश्चयवाची 'वे' मानना चाहिए। इसका एकवचन का रूप कं है जिसका इस्तेमाल क० च० ले० जौग० में हुआ है।

७. मिला० क० च० ले० २ में लाजालधि। चघंति शब्द की तुलना क० च० ले० २, धौली, ल० च० ले० सहस० और वैराट के चघथ से करनी चाहिए। इस प्रकार यह सं० शक्नुते का पर्याय है।

८. वियत अर्थात् व्यक्ता 'बुद्धिमान, विद्वान, चतुर'।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मैंने जानपद जनों के हित और सुख के लिए राजूक बनाये हैं।[१]

राजूकों को मैंने व्यवहार और दंड[२] के क्षेत्र में स्वतंत्रता दे दी है ताकि वे निर्भय और आश्वस्त होकर[३] एकचित्त से अपने काम मन लगाकर करें।

व्यवहार-समता और दंड-समता वांछित[४] हैं, अतः अब से[५] मेरा आदेश है :[६] जो लोग कैद में हैं,[७] जिनका विचार हो गया है[८] और उन्हें मृत्यु का दंड दिया जा चुका है[९] उन्हें मैंने तीन दिन की मोहलत दी है।[१०]

(इस मोहलत की अवधि में) चाहे (उनके रिश्तेदार) उनके[११] जीवन के लिये[१२] उन (राजूकों) को अपने फैसले पर पुनर्विचार के लिए राजी करेंगे[१३] या यदि ऐसा

१. जानपदस्य हितसुखाये : यह प्रयोग और इससे पहले की नर्स की उत्प्रेक्षा राजूकों से जाहिर है कि राजूकों की हैसियत और जिम्मेदारियां बहुत ऊँची थीं। इनके अधीन राजा ने लाखों मनुष्यों को वैसे ही कर दिया था जैसे कोई पिता विश्वास करके किसी चतुर धाय को अपने बच्चे सौंप देता है।

२. ध्यान देने की बात यह है कि न्याय करना और विशेषकर उसकी बुराइयों को सुधारना च० ले० ५ में धर्म-महामात्रों का काम बतलाया गया है। पर यहाँ ऐसा लगता है कि ये काम राजूकों को सौंप दिए गए थे जो प्रांतीय गवर्नर होते थे। क्या यह एक और सबूत इस बात का नहीं है कि चट्टान लेख, स्तंभ लेखों से पहले के हैं ?

३. संतं : इसे हुल्ट्श कलंतं (क० च० ले० १ और २), -पतयतं [क० च० ले० १ (जौ०)], संतं [च० ले० ६ संतो (गिर०)] और -पजंतं (स्तं० ले० ७) के दृष्टांतों पर प्रथमा एकवचन निश्चयवाची मानता है। किन्तु माइकेलसन (ज० अ० ओ० सो०, ३६, २०५) संतं को क्रियाविशेषण मानकर इसका अर्थ शांतं=धीमे से, करता है। लुइडर संतं को च० ले० ८, कालसी के संतं (गिर० संतो, शाह० सतो) के दृष्टांत पर प्रथमा बहुवचन मानता है। पर कालसी में तो यह स्पष्ट ही प्रथमा एकवचन, पु० है और लाजा का विशेषण है। सहस्राम के ल० च० ले० में 'अमिसं देवा संत' में संत बहुवचन है।

४. वियोहाल (व्यवहार) -समता, दंड-समता, कानून (प्रक्रिया) और दंड की समता। अशोक ने कानून की दृष्टि से सभी मनुष्यों को बराबरी का दर्जा दिया था।

५. अव इते पि च; हुल्ट्श ने इसका अनुवाद 'इतना भी' किया है।

६. आवुति=आयुक्ति।

७. बंधन-बधानं।

८. तीलितदंडानं अर्थात् तीर्णदंडानाम् 'जिसके फैसले हो चुके हैं।'

९. पत (प्राप्त) -वधानं।

१०. योते=यौतकम्। यौतक में सजायापता कैदियों के एक अधिकार का भी भाव है। अशोकावदान में कथा आयी है कि अशोक ने एक भिक्खु को प्राणदंड दिया था। बाद में पता चला कि वह भिक्खु उसका भाई था। इस पर उसने प्राणदंड की सजा ही समाप्त करा दी।

११. तानं; मिला० तेयां।

१२. जीविताये।

१३. निझपयिसंति, 'पुनर्विचार करायेगा'। लुइडर ने अयोघर-जातक के एक वाक्य में निज्झपन शब्द का इस्तेमाल एक पारिभाषिक अर्थ में पाया है 'प्राणदंड के मामलों में निज्झपन, छूट या

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कोई नहीं हैं[1] जो उन्हें राजी करा सके[2] तो वे (अर्थात् कैदी) दान करेंगे ताकि परलोक बने या उपवास करेंगे।

क्योंकि मेरी इच्छा है कि (मोहलत की) अवधि बीत जाने पर भी[3] वे परलोक बना सकते हैं, और धर्म और संयम और दान के साथ-साथ लोगों के धर्माचरण में वृद्धि हो सकती है।

५

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने इस प्रकार कहा : अभिषेक के छब्बीसवें

(जारी)

प्रतिसंहार' नहीं होता (ज० रा० ए० सो०, १९१६, पृ० १२० में टामस ने उद्धृत किया)। डा० वेणी माधव बरुआ ने टीका से उद्धरणी दी है जिसमें कहा है कि यम के मामलों में निज्झपन बलिकम्म (बलि देने से) हो सकता है जिससे यम देवता क्षमा कर सकते हैं (खमापेन्ति) या द्रवित हो सकते हैं (पसादेन्ति) है। पर सांसारिक राजा गवाहों के बयान से निरपराधी सिद्ध होने पर ही निज्झपन देते हैं (सक्खीहि अत्तनो निरपराध-भावं पकासेत्वा पसादेत्वा) (अशोक एडिक्ट्स इन न्यू लाइट, पृ० ७७)।

१. नासंतम् = 'न हो, यदि कोई न हो'; इसे कानि के साथ लेना होगा। बुइलर ने इसे नाश्यन्तम् अर्थात् नाश्यमानम् "मरता हुआ, मरने के करीब' समझा था। सेनार्ट ने इसे नाश + अन्तम्, नाश का अंत, सीमा माना है। लुइडर और हुल्ट्श ने वही अर्थ दिया है जो यहां दिया गया है।

२. निझपयिता; अन्य तीन स्थानों में पाठ निझपयितवे है। इसका अर्थ है 'जो कायल करें', और इसमें कैदी की ओर से बीच में पड़ने वाले किसी संबंधी के न होने का उल्लेख है। हुल्ट्श का कथन है कि इस प्रकार कायल करने का साधन बदले में धन देना रहा होगा जिसका कैदियों की रिहाई को एक आधार के रूप में उल्लेख कौटिल्य भी (२, ३६) करता है (हिरण्यानुग्रहेन वा)।

निझपयितवे से अर्थ बदल जाएगा : 'यदि (लाजूकों को) कायल करने वाला कोई न हो' अर्थात् यदि कैदी को मरना ही है तो दूसरे लोक में इससे अच्छा जीवन पाने के लिए उसे व्रत-उपवास और दान करना चाहिए।

३. निलुधसि पि कालसि; पहले इसकी व्याख्या निरोधकालेपि "कैद के समय में भी" (बुइलर) या "बंद काल कोठरी में" (सेनार्ट) के रूप में की गई थी। डा० एफ० डब्ल्यू० टामस 'निरोध' का अर्थ 'बंद करना' और काल = 'मारण-काल' मानकर पूरे पद का अर्थ "यद्यपि उनके मारने का समय अटल है किया है" [(टामस), ज० रा० ए० सो०, १९१६, पृ० १२३]। हुल्ट्श 'काल' का अर्थ 'तीन दिन की रियायत का समय' और 'निरुद्धे अपि काले' का अर्थ उस अवधि की समाप्ति से लेते हैं। पालि 'निरोध' का अर्थ अंत या समाप्ति है। मिला० पतंजलि का योग-सूत्रम् "योगः चित्तवृत्ति-निरोधः" अर्थात् योग मानसिक क्रियाओं का स्थगन है।

इस प्रकार इस अंश का अर्थ यह मालूम पड़ता है कि अशोक धर्माचरण से किसी को वंचित नहीं रखना चाहता, चाहे वह ऐसा व्यक्ति ही क्यों न हो जिसे उसके अपराधों के लिए मौत की सजा मिल चुकी हो। जब इस संसार में उसकी सारी आशाएं समाप्त हो जायें तो अशोक उसे परलोक में आशाएं दिलाता है। संसार में चाहे सभी दगा दे दें तो भी धर्म उसे दगा नहीं देता। उसके लिए धर्म का मार्ग सदा खुला रहता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वर्ष में मैंने इन जीवों को[1] अवध्य घोषित किया, यथा[2] शुक, सारिका, चमर घेंच[3] (?), चक्रवाक, हस,[4] नन्दीमुख,[5] गेलाट (संभवत: सारस), चमगादड़,[6] पिपीलिका, रामानंदी कछुवा, झींगा मछली,[7] एदवेयक,[8] गंगापुपुटक (एक मछली), संकुज-मत्स्य,[9] कछुवा, साही मछली,[10] गिलहरी,[11] बारासिंगा हिरन,[12] सांड, ग्रोकपिंड,[13] गैंडा,[14] श्वेत-कपोत,[15] ग्राम-कपोत, और अन्य चौपाये जिनका इस्तेमाल नहीं होता[16]

---

१. जातानि।

२. सेयथा=सं० तद् यथा।

३. अलुने : शायद कोई लाल पक्षी होगा, अरुण=लाल।

४. हंसे।

५. एक जल पक्षी जिसका उल्लेख भावप्रकाश में आया है (सेंट पीटर्सबर्ग डिक्शनरी), थेरीगाथा टीका (पृ० २०४, पा० टे० सो० संस्क०) में मच्छ-मकर-नंदियादयो च वारिगोचरा, 'मछली, मकर, नंदी और ऐसे ही जल जीव' का प्रयोग आया है। (इस संदर्भ के लिए मैं श्री चरण दास चटर्जी का ऋणी हूँ।) डा० बेणी माधव बरुआ ने मेरे लिए एक संदर्भ दिया है जिसमें 'नन्दीमुख' का एक दूसरे ही अर्थ में प्रयोग है "परिप्पव-कीवमयुन-दीविय (पीपीलिय) .. नंदीमुह नंदमाणग ..." (जैन ग्रन्थ, प्रश्न-व्याकरण सूत्र १, ७) टीकाकार ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है : "पारिप्लवाश्च कीवाश्च शकुनाश्च पीपीलिकाश्च (अर्थात् पी-पीतिकारका हंसाश्च)...सारिकाविशेषा: नंदीमुखाश्च।" इस प्रकार इसमें नंदीमुख और नंदमाण सारिकाओं या मैना के किस्मों के नाम हैं, न कि किसी जलचर के। ये पक्षी बड़े-छोटे दो अंगुल के और रात में जमीन पर आराम करने वाले कहे गए हैं।

६. मॉरिस ने जलूका=जलौका:=जोंक पढ़ा है।

७. अनठिकमछे=अनस्थिक-मत्स्यानि।

८. सं० वैदर्व्यं, वि-दर्व्यं या विदर्वी से=विना फल के वाम मछली (वूलनर)।

९. संखुज-मछे, एक प्रकार की मछली सं० संकुच् से।

१०. कफट-सयके, या -सेयके (कमठ+शाल्यक), कछुआ और साही मछली। याज्ञवल्क्य (१, ७७) के अनुसार य खाद्य थीं। मॉरिस ने इसे कपाट-सय्यक 'खोल या कवच में रहने वाला' कहा है (दे० वूलनर)।

११. पंनससे=पर्ण (पत्ता) -शश (खरगोश)।

१२. सिमले=सं० श्रीमर, वह शब्द कौटिल्य पृ० १००, व जातकमाला २६, ९ में भी आया है।

१३. अर्थात् ओके पिण्डो येषां ते, "जानवर जो घरों में अपना भोजन पाते हैं" जैसे "बिल्ली, चूहा, गोह, और नेवला" (बिलाल-मूसिक-गोधा-मंगुसा), बुद्धघोष की महावग्ग ६, १७ (सै० बु० ई० खंड १७, पृ० ७०) की टीका के अनुसार। बुहलर के मतानुसार यहाँ गोधा=गोह से तात्पर्य है जो धर्मशास्त्रों के अनुसार (आपस्तंब, १, १७, ३७; बौधायन १, १२, ५; गौतम, १७, २७; और वसिष्ठ १४, ३९) खाद्य थे।

१४. पलसते (बुहलर)। ऊपर उल्लिखित धर्मशास्त्रों में गैंडों को खाद्य मानते हैं जिनका मांस पुरखों को श्राद्ध में देने से वे अनंत काल तक तृप्त रहते हैं (मनु, ३, २७२)। हुल्ट्श पलापते=सं० पारावत:, काल्हक फाख्ता मानते हैं। चिड़ियों की सूची में गैंडे का नाम सबसे पहला होना सचमुच ही विचित्र बात है!

१५. सेत-कपोते।

१६. पटिभोगं नो एति। यहां पशुओं के आर्थिक दृष्टि से इस्तेमाल का तात्पर्य है जैसे वे जिनके चमड़े, बाल, पंख, सींग, दांत आदि का इस्तेमाल होता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और जिन्हें खाया नहीं जाता।[1]

वे बकरियां, भेड़ें या शूकरियां जो गाभिन हों या दूध दे रही हों या उनके बच्चे जो छह महीने से कम उम्र के हों।[2]

मुर्गों को वधिया करना मना है। ऐसा तूस जलाने की मनाही है जिसमें जीव हों।[3]

व्यर्थ या (प्राणियों की) विहिंसा के लिए जंगल जलाने की मनाही है।

किसी जीव से किसी जीव का पोषण करने की मनाही है।

तीन चातुर्मासियों [अर्थात् पूर्णिमाएं जो चार मास की ऋतुओं[4] के पूर्व (या

१. इस सूची में रक्षित जीवों में मयूर का नाम नहीं है। इससे यही प्रतीत होता है कि च० ले० १ में उनके वध के निषेध का जो उल्लेख है, अंततोगत्वा वह कार्यान्वित नहीं हो पाया था। और वह सुस्वादु भोजन के रूप में राजा की रसोई में परोसा जाता रहा! पर इस सूची में गाय का भी नाम नहीं होने की बात स्मिथ ने कही है जो सही नहीं है क्योंकि गाय को अशोक से भी पहले जनता धार्मिक दृष्टि से अवध्य मानती चली आ रही थी। यह खादियती के अंतर्गत चौपायों में भी आ जाती है जिनका मांस नहीं खाते थे। मृग का उल्लेख भी इसमें नहीं है शायद च० ले० १ में इसकी घोषणा के बाद इसकी जरूरत न थी।

ध्यान देने की बात यह है कि कौटिल्य (२, २६) में भी रक्षित प्राणियों की एक सूची है (प्रदिष्टाभयानाम्) इस लेख में उल्लिखित अवध्य प्राणियों में ये नाम कौटिल्य में भी मिलते हैं: हंस, चक्रवाक, शुक, सारिका और अन्य मांगलिक पशु (मंगल्याः)। मजेदार बात यह है कि इसमें मयूर भी है, यद्यपि लेख में मृग और मयूर का जिक्र नहीं है। कौटिल्य ने सामान्य नियम यह बतलाया है कि वे प्राणी, पशु-पक्षी, जलचर अवध्य हैं जो दूसरों का शिकार नहीं करते (अप्रवृत्तवधानाम्) या जो मांगलिक माने जाते हैं (मंगल्याः)। इनमें गाय का स्थान सबसे ऊपर है। कौटिल्य ने बछड़ों, सांडों और दूध देने वाली गायों के भी वध पर निषेध किया है। इसका उल्लंघन करने वालों को जुर्माने का विधान है। इसलिए यह कहना बेवकूफी है कि उसने गो-वध का निषेध नहीं किया है! (वत्सो वृषो धेनुश्चैसानवध्याः)।

२. बुइलर ने गौतम (१८, ३१) की उद्धरणी यह दिखाने के लिए की है कि अशोक ने ऐसे पशुओं का वध निषिद्ध किया है जिनके दूध के दांत न टूटे हों।

३. झापेतविये; झापयितविये भी। मिला० सं० क्षापयति, क्षायति=जलाता है का प्रेरणार्थक प्रयोग; सं० ध्मापित=क्षार हो गया। संभवतः इन दोनों रूपों से झापित बना होगा।

४. चातुंमासीसु, 'हर मौसम की पूर्णिमा को,' चातुर्मासी से। पतंजलि (पाणिनि ५, १, ९४, बुइलर द्वारा उद्धृत) ने चातुर्मासी की परिभाषा की है: "चतुर्षु मासेसु भवा चातुर्मासी, पौर्णमासी," "पूर्णिमा जो प्रति चार मास पर पड़ती है चातुर्मासी कहलाती है"। काशिका में कहा है कि ऐसी तीन पूर्णिमाएं हैं जो आषाढ़, कार्तिक और फाल्गुन में पड़ती हैं। इस प्रकार वर्ष का तीन भाग मौसम के अनुसार हर चार मास पर किया गया है। इनके अंत पर [(ऋत्वन्ते), मनु, ४, २६] या प्रारंभ में [(ऋतुमुखे) बौधायन] ब्राह्मण चातुर्मास्य बलि देते थे। ये तीन मौसम थे ग्रीष्म, वर्षा और हेमंत। ये क्रमशः फाल्गुन या चैत्र, आषाढ़ या श्रावण और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वाद) पड़नी हैं] और तिष्या (=पौष मास) की पूर्णिमा पर तीन दिन अर्थात् चौदस, पंचदसी पहले पक्ष की और दूसरे पक्ष की प्रतिपदा के दिन न तो मछलियों का वध किया जाएगा, न अन्य भोज्य के लिए बिक्री, यह ध्रुव नियम है।[1]

इन्हीं दिनों में नागवनों में[2] और केवटभोगों में[3] अन्य जीवों के वध की भी मनाही है।

प्रति पक्ष की अष्टमी (तिथि) चौदसी व अमावस्या, तिष्या, और पुनर्वसु के दिन, तीनों ऋतुओं की पूर्णिमा के दिन[4] और सुदिवसों पर बैलों को, न बकरों को,

---

(जारी)

कार्तिक या मार्गशीर्ष से प्रारंभ होते थे। इस प्रकार यह स्पष्ट नहीं है कि लेखों में किस पूर्णिमा से तात्पर्य है फाल्गुन, आषाढ़ या कार्तिक की, या मौसमों के प्रारंभ या अंत की। संभवतः अशोक का तात्पर्य फाल्गुनादि पूर्णिमाओं से ही है। मनु और बौद्ध शास्त्रों (सुमंगलविलासिनी टीका, दीघ निकाय २, १, पृ० १३९, बुइलर द्वारा उद्धृत) में यही नियम था। बुइलर ने उपर्युक्त टीका में दिखलाया है कि कार्तिक पूर्णिमा ऋतु का अंत सूचित करती है, अशोक शायद यही मानता था।

१. बुइलर ने दिखलाया है कि इस प्रकार मछलियों को साल में छप्पन दिन की राहत मिली। (१) हर मौसम के प्रारंभ के महीने में छह दिन और पौष में अर्थात् हर पक्ष की अष्टमी, हर मौसम के प्रारंभ और अंत की पूर्णिमा अर्थात् ६×४=२४ दिन, (२) बाकी ८ महीनों में चार दिन—पूर्णिमा और प्रतिपदा को और हर पक्ष की अष्टमी को। इस प्रकार ८×४ =३२, कुल ५६ दिन। इन दिनों के निश्चय में अशोक ने प्रचलित ब्राह्मण-पद्धति का ही अनुसरण किया है जिसमें चंद्रमा के परिवर्तन के चारों दिनों को पर्व माना जाता है। पूर्णिमा और प्रतिपदा को व्रत और यज्ञ का विधान था। पर्व दिनों में ब्रह्मचर्य, पूजा-पाठ और अहिंसा यहां तक कि वनस्पतियों की भी हिंसा न करने का अनुदेश है (मि० "घास की पत्ती भी न काटें"—विष्णु ७१, ८७, बुइलर द्वारा उद्धृत)। ये दिन छुट्टियों के होते थे (मनु, ४, ११३-११४)। इस प्रकार बौद्धों और जैनों ने अपने उपोसथ दिनों के निश्चय में ब्राह्मण परंपरा का ही पालन किया है। अशोक ने भी इसके प्रति अपना आदर लेखों में प्रकट किया है। चार पर्व दिनों के अतिरिक्त तीन चातुर्मासी पूर्णिमाओं के दिन भी ब्राह्मणों के लिए यज्ञ और अनध्याय के होते थे। जहां तक पौष या तैष की तीन पूर्णिमाओं का संबंध है संभवतः उत्तरायण से उनका संबंध होने के कारण अशोक ने उन्हें पवित्र माना होगा जो आज भी मानी जाती हैं। जहां तक इन निषेधों का संबंध है, अचरज की बात यह है कि इस दिशा में अशोक ने कौटिल्य का ही अनुगमन किया है "राजा चातुर्मास्य (जुलाई से सितम्बर) में आध महीने, चारों पूर्णिमाओं के दिन, अपनी जन्म तिथि को, अपनी विजय की स्मृति में इन दिनों में मादा और शिशु जानवरों के वध करने और दागने पर रोक लगा दें" (१३, ५)।

२. नागवनसि, कौटिलीय (२,२ और ३१) में नागवनाध्यक्ष के साथ उल्लेख है। (दे० एन० ला कृत स्टडीज इन एंशियंट हिंदू पालिटी, अध्याय ४)।

३. केवटभोगसि, जल के कुछ भाग केवटों के भोग के लिए सुरक्षित कर दिए जाते थे।

४. बुइलर का कथन है कि पुनर्वसु शायद अशोक का जन्म नक्षत्र था। इसलिए वह तिष्य के दिन को पवित्र मानता था। पशु-वध पर सीमित प्रतिबंध लगाना जरूरी था। इसके प्रति-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मेढों को, सूअरों को या दूसरे जानवरों को, जिन्हें प्रायः वधिया करते हैं, वधिया करने की मनाही है।[१]

तिष्या और पुनर्वसु के दिन, ऋतुओं की पूर्णिमाओं, और ऋतुओं की पूर्णिमाओं से सबंध रखने वाले पक्षों में घोड़ों और बैलों को दागने की मनाही है।[२]

यावत् अभिषेक के छब्बीसवें वर्ष[३] में अब तक मैंने पच्चीस बार जेल से रिहाइयां करायी हैं।[४]

६

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने इस प्रकार कहा : अभिषेक के बारहवं वर्ष में मैंने लोगों के हित और सुख के लिए धर्म लेख[५] लिखाये ताकि उनका पालन करते हुए[६] वे तदनुसार[७] धर्म की वृद्धि करें।

(यह सोचकर कि) "केवल इसी प्रकार लोगों का हित और सुख हो सकता है" मैं सिर्फ (अपने) संबधियों का ही ध्यान नहीं रखता, बल्कि उनका भी जो नजदीक हैं या दूर,[८] ताकि मैं उन्हें कैसे सुख दे सकता हूँ और मैं तदनुसार ही आदेश देता हूँ।

(जारी)
रिक्त राजा का जन्म-दिन भी मनाया जाता था। कौटिल्य के अनुसार उस दिन कैदियों की रिहाई की जाती थी।

१. नीलखितविये, स० निर्लक्ष्यते (यहाँ लिंग के लक्षण न रहने का उल्लेख है)। गोने=सांड, सं० गो=बैल से।

२. ब्राह्मण परंपरा में गो को दागने के लिए फाल्गुन प्रतिपदा को उत्तम मानते थे (शांख गृह्य सूत्र ३, १०, बुइलर द्वारा उद्धृत)।

३. इस प्रकार छब्बीसवां वर्ष चालू था न कि बीत चुका था क्योंकि तब तक कैदियों की २५ रिहाइयाँ ही हुई थीं। अतः हम सामान्यतया यह मान सकते हैं कि लेखों में उल्लिखित सभी वर्ष अशोक के शासन के चालू वर्ष थे।

४. शायद राजा के जन्म-दिन के उपलक्ष में, जैसा कि कौटिल्य (२, ३६) के प्रमाण पर स्मिथ ने बतलाया है (अशोक, पृ० २०७ टीका)। रिहाई पाने वाले कैदी "बाल, वृद्ध, व्याधित (रोगी), अनाथानाम्" (वही) होते थे। रिहाई के जो आधार च० ले० ५ में दिए हैं उनसे तुलना कीजिए। शायद अच्छे चाल-चलन के लिए भी रियायत मिलती थी (वही, कौटिल्य)।

५. अर्थात् चट्टान लेख जिनमें कुछ में यही तिथि, ई० पू० २५८ दी है।

६. अपहटा अर्थात् अपहृत्य या अपहृत्वा जिसके दो परस्पर विरोधी अर्थ—'लेना' या 'छोड़ देना' हो सकते हैं। सेनार्ट पहला अर्थ ग्रहण करता है बुइलर दूसरा। कर्न ने इसे अ+प्र+हृत्वा=क्षति न पहुँचाते हुए, उल्लंघन न करते हुए माना है। वह तं०=लेखों के कथन मानता है।

७. तं तं, जो जितना स्वीकार करेगा और पालन करेगा वह धर्म की उतनी ही वृद्धि करेगा।

८. अपकठेसु=अपकृष्टेसु, अशोक ने सभी संबंधियों की, नजदीकी (जिनका उल्लेख च० ले० ४ और ७ में है) और दूसरे जो दूर भी हों बराबर सेवा करता था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस प्रकार मैं सभी वर्गों का ध्यान रखता हूँ[1]।

मैं विविध प्रकार की पूजा से सभी सम्प्रदायों का आदर करता हूँ। किंतु जो अपना अभिगम[2] (या चयन) है उसे मैं सबसे मुख्य मानता हूँ।

अभिषेक के छब्बीसवें वर्ष में मैंने यह धर्म लेख लिखवाया।

७[3]

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने इस प्रकार कहा : पहले जो राजा[4] हुए हैं उनकी इच्छा होती थी : कैसे धर्म की वृद्धि के साथ लोग बढ़ें ? पर धर्म-वृद्धि के अनुरूप[5] लोगों की वृद्धि नहीं हुई।

अत्र[6] देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने इस प्रकार कहा : मुझे ऐसा हुआ : पहले के राजाओं की इच्छा होती थी : कैसे धर्म की वृद्धि के साथ लोग बढ़ें ? पर धर्म की वृद्धि के अनुरूप लोग नहीं बढ़े। फिर[7] किस उपाय से धर्म की वृद्धि के अनुरूप लोग बढ़ेंगे ?

कैसे[8] धर्म की वृद्धि के साथ लोग बढ़ेंगे ? कैसे मैं धर्म की वृद्धि के साथ उनका अभ्युदय कर सकता हूँ ?

अब देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने इस प्रकार कहा : मुझे ऐसा हुआ : मैं धार्मिक संदेश घोषित कराऊंगा,[9] धार्मिक उपदेश

---

१. निकायेसु; यह शब्द च० ले० १३ और १२ में भी आया है।

२. अतना पचूपगमने अर्थात् आत्मनः प्रत्युपगमनम्, "अपना ध० स्वयं चुनना"। हुल्ट्श इसका अनुवाद दूसरे ही रूप में करता है : "पर इसे मैं (अपना) प्रधान (कर्त्तव्य) मानता हूँ कि स्वयं (लोगों के) दर्शन करूं।" मोख्यमते के लिए मिला० मुखमुत विजये, च० ले० १३, "ए चु इयं...से मे" को मिला० "एस हि विधि या इयं स्तं० ले० १। लोगों के दर्शन के लिए मिला० च० ले० ८ की धर्म-यात्रा से। अतना पचूपगमने की तुलना रुम्मिनदेई और निग्लीव के प्रसार लेख के अतन आगाच से की जा सकती है।

३. यह लेख सिर्फ दिल्ली-टोपरा वाले स्तंभ पर ही है। यह स्तंभ के दंड पर गोलाई में है। पहले इसे एक पृथक् लेख ही मानते थे। पर यह अलग नहीं है।

४. लाजाने। बहुवचन के प्रयोग से सिद्ध होता है कि यहां अशोक अपने कम से कम दो पूर्ववर्तियों का उल्लेख उनकी पदवियों 'देवानांप्रिय' के बिना कर रहा है जो च० ले० ८ में आयी हैं। अशोक ने अपने पूर्ववर्ती राजाओं को भी इस बात का श्रेय दिया है कि वे अपनी प्रजा का हितचिंतन करते थे, पर इसके लिए साधन ढूंढने का श्रेय वह स्वयं लेना चाहता है। अशोक के ये साधन दो प्रकार के थे (१) धर्म-श्रावणानि (धार्मिक संदेश), और (२) धर्मानुशास्ति (धार्मिक उपदेश)। इनको कार्यरूप देने का काम उसने पुरुषों, राजूकों और धर्म-महामात्रों को सौंपा था।

५. अनुलुपाया (सं० अनुरूप)=उचित मात्रा में।

६. एतं=अत्र, जैसा हुल्ट्श ने यहाँ और च० ले० ११ में अनुवाद किया है।

७. किनसु=पालि केनस्सु और सं० केनस्वित् (हुल्ट्श)।

८. कानि, मिला० च० ले० ६, कालसी, स्तं० ले० ४, ५ और ६ में कानि।

९. धंम-सावनानि सावापयामि। हुल्ट्श ने इसका अनुवाद 'मैं धर्म की घोषणाएं निकालूंगा'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दिलाऊंगा।[1] लोग उन्हें सुनकर उनका पालन करेंगे और अपना अभ्युदय करेंगे। वे धर्म की वृद्धि के अनुरूप बढ़ेंगे।

इसीलिए मैंने धार्मिक-संदेश घोषित कराये हैं, विभिन्न धार्मिक उपदेश बतलाये हैं, ताकि मेरे पुरुष भी, जिनको बहुत से लोगों पर नियुक्त किया गया है,[2] इसका उपदेश करें[3] और (इनका) विस्तार करें।[4] राजूक भी, जिन्हें लाखों लोगों के ऊपर नियुक्त किया गया है—उन्हें भी मैंने आदेश दे दिया है कि "धार्मिक जनों को[5] इस-इस प्रकार से प्रेरित करें।"

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने इस प्रकार कहा: मैंने यह देखकर ही धर्म-स्तभ[6] लगवाये हैं, धर्म-महामात्र नियुक्त किये हैं, धर्म लेख लिखवाये हैं।[7]

(जारी)
किया है और 'इयं साधणे सावापिते' (ब्रह्मगिरि) और रूपनाथ के सावने कटे को धंम-सावनानि का पर्याय मानकर लघु चट्टान लेखों को इसका उदाहरण मानता है।

१. धंमानुसथिनि; धार्मिक उपदेश जिसे अशोक स्वयं देता था (च० ले० ८) और बाद में जिसके लिए उसने विशेष अधिकारियों—धर्म-महामात्रों की नियुक्ति की (च० ले० ५)। यह धार्मिक उपदेश या प्रचार उसने अपने राज्य में और उसके बाहर भी अपनी प्रजा और संरक्षित या स्वतंत्र जातियों और विदेशियों के बीच कराया (च० ले० ५ और १३)। विदेशों में इस प्रचार का साधन मनुष्यों और पशुओं के लिए चिकित्सा का प्रबंध था (च० ले० २)।

२. यथा पुलिसा पि बहुने जनसि आयता। डा० भंडारकर यथा के स्थान पर व्यूथा पढ़ते हैं जो ल० च० ले० १ का कुख्यात शब्द है। स्मिथ ने भी यही पाठ स्वीकार किया है। पर इसके बिना अर्थ की हानि नहीं होती। हम पहले ही बतला चुके हैं कि पुरुष कितने ऊंचे अधिकारी थे (दे० स्तं० ले० ४ की टिप्पणी)। इसका एक प्रमाण यह भी है कि उनके अधीन बहुत से प्राणी होते थे। स्तंभ लेख १ में भी पुरुषों को बहुत ऊंचा अधिकारी (उकसा) कहा है।

३. पलियोवदिसंति, परि+अय+वद्=उपदेश देना।

४. पवियलिसंति=प्रविस्तारयिष्यंति।

५. जनं धंमयुतं। इससे लेखों में आए धंम-युत शब्द का अर्थ स्पष्ट करने में सहायता मिलती है। यह च० ले० ५ के इस कथन की पुनरावृत्ति करता है कि उसकी प्रजा में जो लोग धार्मिक प्रकृति के हैं राजा उनका विशेष ध्यान रखेगा और उनके धर्मोपदेश की व्यवस्था करेगा।

६. धंम-थंमानि; मिला० नीचे के सिला-थंमानि और सिला-फलकानि, सिला-ठंभसि (रूप० च० ले०), सिला-थंमा (सह० च० ले०), सिला-थमे (रुम्मि० स्तं० ले०), थुबे (निग्ली० स्तं० ले०=पालि थूपो, सं० स्तूप) और सिला-ठुभे या ठुबे (स्तूप) (रूप० च० ले०, हुल्ट्श इसे सालाथभे=स्तंभ मानता है)।

जैसा बुहलर ने कहा है कि स्तंभ लेखों के उल्लेख का अर्थ पहले छह स्तंभ लेखों से है। किन्तु डा० बेणी माधव बरुआ ने दिखलाया है कि धर्म-स्तंभों से तात्पर्य धर्म-महामात्रों से है। यह प्रयोग लाक्षणिक है। धर्म-स्तंभों को विजय-स्तंभों से भिन्न समझना चाहिए (अशोक एडिक्ट्स इन न्यू लाइट, पृ० ५४)। ये स्तंभ और स्तूप जैसा कि दिव्यावदान, पृ० ३८९-९७ में कहा है कि अशोक ने उन स्थानों में यात्रियों की सुविधा के लिए बनवाए थे।

७. अन्य बातों के अलावा ये तीन चीजें अशोक अपनी कृति बतलाता है। 'रचित' के लिए कटे शब्द का प्रयोग हुआ है। यह शब्द ल० च० ले० १ रूपनाथ में भी आया है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने इस प्रकार कहा : राजमार्गों पर मैंने बरगद के वृक्ष लगवाये हैं ताकि मनुष्यों और पशुओं को छाया मिले, आम के बगीचे[1] लगवाये हैं, आधे-आधे कोस पर कुएं खुदवाये हैं,[2] धर्मशालाएं[3] बनवायी हैं, यत्र तत्र बहुत से प्याऊ बनवाये हैं[4] ताकि मनुष्यों और पशुओं को सुख मिले। यह सुख तो थोड़ा ही है, क्योंकि मेरे पहले के राजाओं ने और मैंने भी लोगों के सुख के लिए विविध प्रकार के काम किये थे।[5] पर लोग धर्म के मार्ग पर चलें यह काम मैंने

---

१. अंबावडिक्या अर्थात् आम्रवाटिका। रानी के लेख में अंबा-वडिका शब्द आया है। अंबा=आम्र परन्तु वडिका=सस्कृत वृतिका (=वृति, झाड़ी) का प्राकृत रूप है न कि संस्कृत वाटिका का। वाटिका से वतिका रूप पहले आएगा (दे० हुल्ट्श, कार्पस, पृ० १३४ टीका)।

२. अढकोसिक्यानि। क्रोश =८००० हस्त =४००० गज=तीन मील से कम। इस पर यह आपत्ति की गयी है कि इस प्रकार कुएं एक दूसरे के बहुत नजदीक होंगे। पर इसका जवाब स्ट्राबो के इस कथन में ही मिल जाता है कि चंद्रगुप्त ने मील के पत्थर १० स्टेडिया=२०२२½ गज=करीब आध कोस पर लगवाए थे। अढ को अठ=८ से अलग करके देखना होगा। अठ रुम्मिनदेई के लेख में भी आया है। अठ की तुलना मास्की और सहसराम के लेखों में आए वियढिय शब्द से करनी होगी। यदि अढकोसिक्यानि का अर्थ ८ कोश मानें तो एक कुएं से दूसरे की दूरी बहुत ज्यादा हो जाएगी। युवाङ् च्वाङ् ने १ योजन=८ कोश माना है और उसका योजन ५, १० और १४ मील=१०० लि था। उसने अपनी यात्रा में दूरियों के लिए तीसरा अर्थात् १४ मील का योजन स्वीकार किया है जैसा कि फ्लीट (ज० रा० ए० सो०, १६०६, पृ० १०११) ने दिखलाया है। फ्लीट ने योजन की परिभाषा 'वह दूरी जहाँ तक भरी गाड़ी में जुते बैल एक बार में जा सकें' बतलायी है। युवाङ् च्वाङ् के अनुसार (वॅटर्स १, १४१) योजन से तात्पर्य उस दूरी से भी था जितनी अभियान के समय सेना एक दिन में तय करती थी। प्राचीन ग्रंथों में योजन की दूरी हस्तों में मिलती है जिसके सहारे गजों और मीलों में उसका परिवर्तन किया गया है।

३. निंसिढया=सं० निषद्या। खारवेल के लेख की पंद्रहवीं पंक्ति में अर्हत-निसिदिया समीपे प्रयोग आया है। नागार्जुनी पहाड़ी के गुफा लेखों में वाप-निषिदिया (वर्षा-आश्रय) प्रयोग मिलते हैं। अचरज की बात है कि लुडर ने कैसे इसे सं० निश्रयणी और श्लिष्टि से निकला मानकर इसका अर्थ "सीढ़ियां (पानी तक)" किया है। हुल्ट्श ने भी लुडर का ही अनुगमन किया है पर वे इसकी व्युत्पत्ति सं० निश्लिष्टका से की है। पर जैसा बूलनर ने ठीक ही कहा है 'कि भारत में लोगों की वास्तविक आवश्यकता कुएं या नदी में सीढ़ियों के सहारे जाने की नहीं है बल्कि वे ऐसी ठंडी छायादार जगह चाहते हैं जहां वे बैठ सकें और ठंडा पानी पी सकें। और इनकी उन्हें आठ कोस (जैसा कि कुछ विद्वान समझते हैं), पर नहीं बल्कि और नजदीक-नजदीक जरूरत पड़ती है!

४. आपानानि।

५. सार्वजनिक हित के इन अनेक कार्यों का श्रेय अशोक नहीं लेता। ये काम तो उसके पूर्ववर्ती राजाओं ने भी कराए थे। ब्राह्मण धर्मशास्त्रों में ये कार्य राजधर्म में गिनाए गए हैं। शुक्रनीति में उन वृक्षों के नाम हैं जो सड़कों के किनारे, गांवों व जंगलों में लगवाए जाते थे। उसी ग्रन्थ में जल के साधनों के रूप में 'कूप, वापी, पुष्करिणी और तड़ाग' बनवाने को भी राजधर्म में शामिल किया गया है। कौटिल्य (२, १) ने राजा को सेतु (जल के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ही किया।[1]

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने इस प्रकार कहा : मेरे वे[2] धर्म-महामात्र भी बहुत से कामों के लिए नियुक्त हैं। वे राजा के अनुग्रह के कामों में—प्रव्रजितों और गृहस्थों[3] दोनों के, सभी संप्रदायों के बीच नियुक्त हैं। उन्हें संघ के काम के लिए भी मैंने आदेश दिया है। इसी तरह मैंने आदेश दिया है कि वे ब्राह्मणों और आजीविकों[4] के बीच नियुक्त किये जायें। वे निर्ग्रंथों में भी नियुक्त किये जायें। मैंने आदेश दिया है कि ये विभिन्न संप्रदायों में नियुक्त किये जायें। ये-ये महामात्र (विशेष कर) अमुक-अमुक (संप्रदाय) के लिए नियुक्त हैं। पर मेरे धर्म-महामात्र[5] इनके और अन्य संप्रदायों के बीच नियुक्त हैं।

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने इस प्रकार कहा : ये और अन्य मुख्य अधिकारी[6] मेरे और देवियों[7] के दान-विसर्ग में व्यस्त रहते हैं। और मेरे रनिवासों

(जारी)

साधन), वारि-स्थल-पथ, आराम (बगीचे) और इसी तरह के सार्वजनिक हित के कार्य कराने का उपदेश किया है। पहले के राजाओं के निर्माणों की रक्षा व नए निर्माण कराना राजधर्म माना है (वही)। संयुक्त निकाय (१, ५ ७) में भी कहा है कि जो लोग—

वगीचे और फलों के पेड़ लगवाते हैं और जो लोग
पुल के सिरों की ऊँची सड़कें और बांध बनवाते हैं
कुएं और प्याऊ बनवाते हैं
और (बेघरबार लोगों को) आश्रय देते हैं।

—वे स्वर्ग में जाते हैं।

१. एतदथा मे=एतद् यथा मे (माइकेलसन)। पर हुल्ट्श अथ=अर्थाय मानता है। किंतु लेखों में अर्थ के लिए सदा अठ का प्रयोग हुआ है न कि अथ का जबकि इसका कर्माण प्रयोग अठाये होगा। हुल्ट्श ने अपने समर्थन में इसी लेख की ३१वीं पंक्ति में अ(थ)ाये की ओर ध्यान दिलाया है, पर उसका यह पाठ संदिग्ध है। बुहलर ने इसे अठाये पढ़ा (ज० अ० ओ० सो०, ४६, २६३)। हुल्ट्श ने गिरनार के च० ले० १२ की नवीं पंक्ति में एताय अथा (अर्थात् अर्थाय) का उल्लेख अपने समर्थन में दिया है। पर स्तंभ लेखों में द्वितीया के अंत में सदा -आये रहता है। इसी लेख में गिरनार का यथा=कालसी का अथा है।

२. ते अर्थात् वे धर्म-महामात्र जिनका उल्लेख लेख की तेरहवीं पंक्ति में आया है।

३. पवजीतानं चेव गिहिथानं। इसी प्रसंग में चट्टान लेख ५ में ब्राह्मण इभ्येषु प्रयोग आया है जहां इभ्येषु से गृहस्थ का तात्पर्य लिया गया है न कि वैश्यों का ही।

४. अशोक ने आजीविकों का इतना ख्याल रखा है और उनके लिए गुहावास भी बनवाकर दिए थे पर कौटिल्य अपनी ब्राह्मणपंथी विचारधारा के कारण किसी देव या पितृ कार्य में (देव-पितृ-कार्येषु) में बौद्धों और आजीविकों (शाक्याजीवकादीन्) को बुलाने योग्य नहीं समझता (३. २०)।

५. ये धर्म महामात्र इससे पूर्व के वाक्य में उल्लिखित महामात्रों से भिन्न हैं।

६. मुखा=विभागों के अध्यक्ष। इनमें से कुछ का उल्लेख च० ले० १२ में आया है। इस अर्थ में स्मृतियों में (याज्ञ० १७, २०) में मुख्य शब्द आया है। किन्तु डा० टामस इन्हें 'लेखा या राजस्व के अध्यक्ष' समझता है (ज० रा० ए० सो०, १९१५)।

७. देविनं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में, यहां[1] और प्रान्तों[2] में, भी ये विभिन्न प्रकार के सुखदायी[3] कार्य करते हैं। मैंने आदेश दिया है कि (रानियों और मेरे अलावा) वे मेरे पुत्रों,[4] अन्य देवियों के कुमारों[5] के दान-विसर्ग का काम देखेंगे ताकि धर्म के कार्यों[6] की वृद्धि हो और धर्म का पालन हो।[7] धर्म के उत्तम कार्य और उनका पालन यह है जिससे ये बढ़ते हैं[8] अर्थात् इस तरह दया, दान, सत्य, शौच, मृदुता और लोगों को कल्याण की वृद्धि होगी।

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने इस प्रकार कहा : मैंने[9] जो भी अच्छे काम किये हैं लोग उनका अनुसरण करते हैं और वे उनका अनुकरण करेंगे और इस तरह उनकी माता-पिता की सेवा, गुरुओं की सेवा, वयोवृद्धों की सेवा बढ़ेगी,

---

१. अर्थात् पाटलिपुत्र में जैसा च० ले० ५ में कहा है।

२. दिसासु। इससे दिशा या देसं शब्द का अर्थ स्पष्ट हो जाता है जिसका इस्तेमाल च० ले० १४ में आया है। इससे मौके या स्थान का तात्पर्य है न कि हिस्से या भाग का। च० ले० ५ में इसके लिए 'बहिरेपु च नगरेषु' का प्रयोग हुआ है। ध्यान देने की बात यह है कि राजपरिवार के सभी लोग राजधानी में ही नहीं रहते थे। कुछ पाटलिपुत्र से बाहर—प्रांतीय राजधानियों में भी रहते थे। इससे यही सिद्ध होता है कि राजा का परिवार काफी बड़ा था और इसकी अनेक शाखाएं-प्रशाखाएं थीं।

३. तुठायतनानि=तुष्टायतनानि, तुष्टि के साधन, दान के अवसर (बुइलर)। यहां 'पती...' क्रिया का प्रयोग हुआ है जिसका पूरा रूप बुइलर ने 'पटीपादयंति'=दिखाना बतलाया है पर मैं इसका अर्थ 'संपादन करना, पूरा करना' लेता हूं। किंतु हुल्ट्श पूरा शब्द पटिवेदयंति=प्रतिवेदन=रिपोर्ट करते हैं, लेता है। मिला० च० ले० ६ का पटिवेदका और प्रटिवेदयंतु (वही) जोगड़।

४. दालकान।

५. देविकुमालानं; बुइलर के अनुसार ये कुमार अशोक की रानियों या देवियों के पुत्र न थे बल्कि उसके पिता की रानियों या देवियों के पुत्र थे अर्थात् वे उसके सौतेले भाई थे (ए० इं, २, २७६)। कौटिल्य (१, १०) ने भी रानियों के लिए देवी-शब्द का प्रयोग किया है। उसने राजकुमारों के लिए कुमार (१, २०) शब्द का प्रयोग किया है।

६. धंमापदाने : चाइल्डर्स ने बताया है कि खुद्दक निकाय के तेरहवें खंड को जिसमें बुद्ध और अर्हतों के चरित की कहानियां हैं, अपदान (सं० अवदान) कहते हैं।

७. च० ले० ५ में रनिवासों का भार धर्म-महामात्र को दिया गया है। उनके कुछ कार्य बतलाये गए हैं। कौटिल्य (१, २०) ने अपने समय के रनिवासों से संबंधित प्रशासन के कार्य बतलाए हैं। उसने अंतःपुर और उसके सदस्य अवरोधों को अंतर्वंशिक-सैन्य के अधीन रखा है। उसने रनिवासों के असैनिक अधिकारी को अभ्यागारिक कहा है जिनमें स्त्री और पुरुष दोनों होते थे। ये अभ्यागारिक रनिवास और बाहर के सारे पत्रव्यवहार का नियत्रण करते थे। ध्यान देने की बात यह है कि कौटिल्य ने रनिवासों में मुंडों और जटिलों (शायद बौद्ध भिक्षुओं और जैन मुनियों) का प्रवेश निषिद्ध किया है। रनिवास के इंचार्ज अधिकारी का च० ले० १२ में स्त्री-अध्यक्ष-महामात्र कहा गया है। कौटिल्य (५, ३) ने उसे अंतर्वंशिक कहा है।

८. अशोक के धर्म की एक अन्य परिभाषा।

९. ममिया। अशोक हमेशा कहने से अधिक करने में विश्वास करता था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ब्राह्मणों और श्रमणों, निर्धन और दुःखी जनों[1] के प्रति, यहाँ तक कि दासों और आश्रितों के प्रति उचित व्यवहार बढ़ेगा।

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने इस प्रकार कहा: मनुष्यों की धार्मिक उन्नति दो तरह, मात्र दो प्रकार से हुई है: धर्म-नियमन और आंतरिक चिंतन से।[2] पर इनमें धर्म-नियमन का महत्त्व कम है।[3] पर आंतरिक चिंतन (से धर्म की) प्रचुर वृद्धि हो सकती है। धर्म-नियमन यह है कि मैंने यह आदेश दिया है कि अमुक-अमुक प्राणियों की हत्या न की जाय। इनके अलावा भी बहुत से धर्म के नियम[4] कहे हैं। किंतु आंतरिक चिंतन से लोगों में धर्म की काफी वृद्धि हुई है। वे जीवों को कष्ट पहुँचाने और उनके वध से बचते हैं।

इसीलिए यह किया कि मेरे पुत्रों और पौत्रों के समय तक यह यावत् चंद्र दिवाकर कायम रहें और लोग इस मार्ग का अनुसरण करें। क्योंकि यदि लोग इस मार्ग का अनुसरण करेंगे तो इहलोक और परलोक में सुख पायेंगे।

अभिषेक के छब्बीसवें वर्ष में मैंने यह धर्म लेख लिखवाया।

---

१. कपन-वलाकेसु, लेखों में एक नया प्रयोग।

२. निझतिया, स्तं० ले० ४ में भी आया है। वहाँ एक बार इसका इस्तेमाल पारिभाषिक अर्थ में और एक बार सामान्य अर्थ में आया है। मिला० निज्झति-वलं, सोचने की शक्ति; सं० निध्यप्ति।

३. लहु=लघु, अल्प महत्त्व का क्योंकि यह एक प्रकार की बाहरी वस्तु है। "उच्च जीवन के सभी साधन आंतरिक होते हैं" (मैथ्यू आर्नल्ड)।

४. अशोक के धर्म-नियम में विधि और निषेध दोनों हैं। निषेध ये हैं:

(१) किसी प्राणी की हत्या न करो (च० ले० ३, ४, ११ और स्तं० ले० ७)।
(२) किसी प्राणी की हिंसा (चोट) न करो (च० ले० ४, ९, १३ और स्तं० ले० ७)।
(३) समाज न करो जिसमें हिंसा होती है (च० ले० १)।
(४) मंगल न करो, ये अंधविश्वास हैं (च० ले० ९)।
(५) अपने सम्प्रदाय की प्रशंसा न करो और न दूसरों के सम्प्रदाय की ही निंदा करो (च० ले० १२)।

विध्यात्मक कर्मों के उदाहरण हैं, माता-पिता और गुरुजनों की सेवा, सभी प्राणियों की सेवा, दान देना, सच बोलना, आदि-आदि जिनका उल्लेख पहले हो चुका है।

राजाओं के लिए कुछ खास उपदेश हैं: धर्म-घोष, धर्म-यात्रा, धर्म-विजय, धर्मानुग्रह, धर्म-दान, धर्म-मंगल, सार्वजनिक हित के निर्माण कराना (च० ले० २ व स्तं० ले० ७), न्यायव्यवस्था के दोषों को दूर करना (क० च० ले० और च० ले० ५), धर्मानुशास्ति अर्थात् धर्म उपदेश की व्यवस्था करना (च० ले० ३, ४, १३ और स्तं० ले० ७), सभी समय में जनता के कार्य करना (च० ले० ६), धर्म की वृद्धि से ही यश और कीर्ति की कामना करना (च० ले० १०), सभी सम्प्रदायों का सम्मान करना (च० ले० १२ और स्तं० ले० ६) और सभी धर्मों के सार की वृद्धि करना (सार-वृद्धि, च० ले० १२), क्षुद्र जीवों की रक्षा करना (स्तं० ले० ५) आदि। इनमें से अधिकांश की व्याख्या पहले ही हो चुकी है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस बारे में[1] देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी ने कहा : यह धर्म लेख जहाँ पत्थर के स्तंभ हों या पत्थर के फलक[2] लिखाये जायें ताकि चिरस्थायी हों।[3]

च. चार लघु स्तंभ लेख

१[4]

(सारनाथ का लेख)

देवताओं के प्रिय (प्रियदर्शी) राजा ने[5] (इस प्रकार कहा):.......... पाट(लिपुत्र)[6]..........कोई भी क्यों न हो, वह संघ का भेद नहीं कर सकता।[7] जो भी,[8] भिक्षु या भिक्षुणी, संघ का भेद करेगा[9] उसे श्वेत[10] वस्त्र[11] पहनाकर[12] विहार से बाहर[13] अनावास-स्थान में[14] रखा जाय।

इस प्रकार भिक्षुओं और भिक्षुणियों के संघों में यह आदेश विज्ञापित किया जाय।[15]

देवताओं के प्रिय ने इस प्रकार कहा : ऐसा एक लेख[16] आपके पास विहार

१. एतं, जैसा हुल्द्श ने इस लेख और शाह० के च० ले० ११ की २४वीं पंक्ति में इसका अनुवाद किया है। ६वीं पंक्ति में भी इस शब्द का इस्तेमाल हुआ है।
२. सिला-फलकानि, यहाँ इससे चट्टानों पर खुले लेखों का तात्पर्य है।
३. एल, जैसा धौली के क० च० ले० १ और २ में प्रयोग है।
४. पहली तीन पंक्तियाँ खंडित हैं।
५. कौशांबी ल० स्तं० ले० के आधार पर पूरा पाठ देवानंपिये आनपयति है।
६. संभवत: यह लेख पाटलिपुत्र के महामात्रों को संबोधित है जैसे की कौशांबी का लेख वहाँ के महामात्रों को है।
७. भेतवे अर्थात् भेतव्य:, √भिद् से; मिला० 'भिंदति'। पातिमोक्ख में "समग्गस्स संघस्स भेदाय" आता है। बुद्धघोष ने संघ-भेदक की व्याख्या 'संघं भिंदति अयम् इति' के रूप में की है।
८. ए चुम् खो अर्थात् य: तु खलु।
९. भाखति=भनक्ति।
१०. ओदातानि=सं० अव+दात (सफेद)।
११. दुसनि=सं० दूष्यम्।
१२. संनंधापयिया, सं० संनह्य से।
१३. आवासयिये=सं० आवास्य।
१४. अंनावाससि : ऐसा आवास जो संघ के योग्य न हो, जिसे बुद्धघोष ने "अभिक्खुको आवास" कहा है (समंतपासादिका, भूमिका)। उसने अनावास के उदाहरण भी दिए हैं, जैसे "चेतियघरम् (कब्रिस्तान), बोधिघरम्, सम्मञ्जनि-अट्टको (स्नानघर या चबूतरा), दारु-अट्टको (लकड़ी का घर), पानियमालो (पानीशाला), वच्चकुटि (शौचघर) और द्वार-कोट्ठको (नगरद्वार की मीनारें या फसीलें)" (चुल्लवग्ग, २, १, ३)।
१५. विनपयितविये=सं० विज्ञापयितव्यम्।
१६. इका लिपी; धंमलिपि से भिन्न।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के संसरण[1] में रख दिया जाय।[2] और इसकी दूसरी प्रति उपासकों के पास रखी जाय।

वे उपासक उपोसथ (उपवास) के दिन आकर इस आदेश से परिचित हो जाएँगे। प्रति उपोसथ के दिन निश्चित रूप से[3] हर महामात्र उपोसथ के लिए[4]

१. संसलनसि; कुछ विद्वान इसे संस्मरणम् मानते हैं। डा० टामस (ज० रा० ए० सो०, १६१५, पृ० १०६-११२) इसे विहार में ही सभाकक्ष या तोरणपथ जैसी कोई चीज मानते हैं जहाँ यह लेख रखा जा सके ताकि इस पर सबकी नजर आसानी से पड़ सके। यह शब्द इसी अर्थ में विनय (पृ० १५२-३; चुल्लवग्ग, ६, ३, ४) में भी आया है। इस प्रकार इस अंश का अनुवाद इस प्रकार होगा : "ऐसा ही लेख आप सबको सुलभ हो इसलिये इसे संसरण में रख दिया गया है। आप भी ऐसा ही लेख उपासकों को सुलभ करने के लिए (अंतिकम्) रखें।" संसरण विहार का ही अंग है [जहाँ कोई टहल सकता है (संक्रमन)]। इसका उल्लेख उपासकों के प्रसंग में नहीं है क्योंकि वे बाहर रहते थे। "इकं च लिपि हेदिसं का अर्थ है "उपासकों के लिए लेख की दूसरी प्रति"।

२. निखिता=निक्षिप्ता।

३. धुवाये=ध्रुवाय, मिला० धुवं, जौग० च० ले० १ और ध्रुवाये, स्तं० ले० ५ में। यहाँ यह बतलाया गया है कि महामात्रों को संघ और अन्य सम्प्रदायों के प्रसंग में क्या काम करने पड़ते थे (च० ले० ५, स्तं० ले० ७)।

४. पोसथाये; उपोसथ से, सं० उपवसथ, व्रत-उपवास का दिन। यह वैदिक याग या दर्श और पूर्ण-मास यज्ञ—अर्थात् प्रतिपदा व पूर्णिमा से एक दिन पहले पड़ता था। इसे उपवसथ दिवस इसलिए कहते थे क्योंकि यह विश्वास था कि उस दिन देवता पूजक के साथ निवास (उप+वस) के लिए आ जाते थे (शतपथ ब्रा०, १, १, १, ७) या उस दिन पूजक व उसकी पत्नी देवता (अग्नि) के साथ पूजाकक्ष में निवास करेंगे (वही, ११; २, १, ४)। इसी प्रकार वैदिक पूजा में अष्टमी व प्रतिपदा और पूर्णिमा व उससे पहले के दिन को भी पवित्र मानकर व्रत-उपवास करते थे।

हर पक्ष में ये तीन दिन पवित्र होते थे। इन दिनों में ब्राह्मण संप्रदाय के संन्यासी मिलकर धार्मिक चर्चा करते थे। यह एक अच्छी परंपरा थी जिसे बुद्ध ने भी पसन्द किया। अतः उन्होंने भी अपने भिक्षुओं को उस दिन एकत्र होने का विधान किया (महावग्ग, २, १, ४)। वह उनके मौन का दिन न होकर धार्मिक प्रवचन का दिन था (वही, २,२,१)। इसी धार्मिक प्रवचन को प्रातिमोक्ष कहा गया (वही, २,४,१) जो प्रति पक्ष में तीन वार होता था। बाद में इसके लिए प्रतिपदा या पूर्णिमा का एक दिन निश्चित किया गया (वही, २, ४, २; ३४, १) और इसे भिक्षुओं तक सीमित कर दिया गया। यह गृहस्थों के लिए सुलभ न था। न ही श्रामणेर, श्रामणेरी या भिक्षुणी (वही, २, ११, ८; ३६) इसमें शामिल हो सकते थे। किंतु इस प्रातिमोक्ष या मुख्य उपोसथ दिवस को छोड़कर शेष दो दिन धार्मिक प्रवचनों में सभी या उपासक शामिल हो सकते थे।

अशोक ने अपने सिविल अधिकारियों—महामात्रों—के लिए निश्चित किया कि वे प्रति उपोसथ (अनुपोसथम्) के दिन उपोसथ (पोसथाये) के लिए एकत्र हों। इस उपोसथ का तात्पर्य सामान्य उपोसथ से रहा होगा जिसमें धार्मिक प्रवचन होते थे। यह उपोसथ अष्टमी या चतुर्दशी को होते थे। यहाँ उपोसथ से मुख्य उपोसथ, प्रातिमोक्ष, का तात्पर्य नहीं है जो सिर्फ भिक्षुओं के लिए था। अशोक के आदेश समझने के लिए इन दोनों उपोसथों का अन्तर ध्यान में रखना जरूरी है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जाएगा ताकि वह इस आदेश से परिचित हो और इसे पूरी तरह समझे। जहाँ तक आपका अधिकार-क्षेत्र है[1] आप सर्वत्र इसी आशय[2] का आदेश भिजवाएँगे।[3] इसी प्रकार सभी कोट नगरों में[4] और जिलों में इसी आशय[5] का यह आदेश भेज दें।[6]

१. आहाले; रूपनाथ के ल० च० ले० १ में भी इसका प्रयोग हुआ है।

२. "इस (लेख) के अनुसार सभी जगह (एक अधिकारी) भेज दो" (हुल्ट्श)। अधिकारियों के भेजने का अनुमान वह क० च० ले० १ से करता है जिसमें राजा ने महामात्रों को भेजा है।

३. विवासयाथ। यहाँ इसका वही अर्थ लिया गया है जो रूपनाथ के ल० च० ले० में है। टामस (ज० रा० ए० सो०, १६१५, पृ० ११२) का अनुसरण करते हुए स्मिथ ने इसे "निकाल देने" के अर्थ में लिया है।

४. कोट; वास्तुविद्या (११, २८) के अनुसार किला, दुर्ग। अचरज की बात यह है कि इस लेख में आए कोट्टम् और विषय शब्द दक्षिण भारत के अभिलेखों में क्षेत्रीय इकाइयों के अर्थ में आए हैं जो उरु (गाँव), नगर या पर्र, और नड्ड या कुरंम् से बड़ी, किन्तु मण्डल या राष्ट्र से छोटी होती थीं (दे० मेरी पुस्तक लोकल गवर्नमेंट, पृ० २०६)। विषय शब्द गुप्त अभिलेखों में 'जिले' के अर्थ में आता है और हम इससे सुपरिचित हैं (जैसे लाट विषय)। यह भुक्ति या प्रांत से छोटा होता था।

५. कौशांबी और सांची के स्तंभ लेख एक वर्ग में आते हैं क्योंकि इन सबका विषय एक ही है —संघ में भेद और उसे दूर करने और भेद डालने वालों को दंड देने के लिए राजा के प्रयत्न। इन लेखों में अशोक "संघ के प्रधान और धर्म के रक्षक के रूप में आया है।" पर ध्यान में रखने की बात यह है कि उसने यह भूमिका एक निरंकुश शासक की भाँति स्वयं नहीं ली, पर इसका आदेश उसे उस धर्म के उपदेशों में ही मिला। संघ-भेद के बारे में अशोक के विचार बौद्ध-शास्त्रों के विधानों के आधार पर ही स्थिर हुए थे। यह विधान भी सहसा नहीं बना था। इसका विकास कई चरणों में हुआ था। प्राचीन बौद्ध आगमों के आधार पर हम इसे देख भी सकते हैं।

इन ग्रंथों में भेद के अपराध की कई मात्राएँ और उसी प्रकार उनके भिन्न-भिन्न दण्ड भी बतलाए गए हैं। उदाहरण के लिए महावग्ग (१०, १, ६ आदि) में भिक्षुओं के मतभेद की कई स्थितियाँ—एक से दूसरी अधिक गंभीर हैं—बतलायी हैं। ये हैं भण्डन (तकरार), कलह, विग्रह (मनमुटाव), विवाद (झगड़ा), संघभेद, संघराजि (विच्छेद), संघववत्थानं (पार्थक्य) और संघनानाकरणं (अपने अलग-अलग संघ बना लेना)। चुल्लवग्ग (७, ५) में संघराजि को संघभेद से अलग माना गया है। संघराजि सिर्फ छोटे संघों में हो सकती है जहाँ ४ से ६ भिक्षु रहते हों और संघभेद ऐसे संघों में होता है जहाँ ६ से अधिक भिक्षु हों और संघ टूट जाय। संघभेद के १८ कारण हो सकते हैं जिनका सम्बन्ध (क) धंम क्या है? धंम क्या नहीं है?, (ख) विनय क्या है? विनय क्या नहीं है?, (ग) तथागत ने क्या (१) कहा (२) आचरित किया और (३) उपदेश किया, और (घ) उनसे संबंधित नियम व दंड (वही, ७, ५, २; महाव० १०, ५, ४, ५) से है। यही बातें चुल्लवग्ग (४, १४, २) में विवाद का कारण बतलायी गयी हैं। किन्तु विवाद और संघभेद में अन्तर किया गया है। विवाद में सभी बातों का फैसला संघ ही कर सकता था। अतः उसके पास ये मामले रखे जाते थे। पर कभी कभी मतभेद और गहरे जा सकता था। वह ईमानदारी से भी हो सकता है और कभी-कभी बुरे उद्देश्य से भी। इन दोनों ही अवस्थाओं में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(जारी)

अंततोगत्वा संघभेद भी हो सकता था। विवादाधिकरण में संघभेद करने की नीयत नहीं है।

संघभेद के प्रयत्नों पर कानूनी प्रतिबंध भी थे। ऐसे प्रयत्न उसी भिक्षु के लिए वैध हो सकते थे जो किसी प्रकार की अयोग्यता (पकतत्त) से बाधित न हो, जो उसी समुदाय का (समान-संवासक) हो और जो उसी अहाते में रहता (समानसीमायथिता) हो। किसी विवाद का विचार नौ से कम भिक्षुओं के संघ में नहीं हो सकता अर्थात् संघ इतना बड़ा हो कि दोनों पक्षों में कम से कम चार-चार भिक्षु हो सकें और नवाँ व्यक्ति सलाक-गाहापको हो सके। इस प्रकार संघभेद के लिए किसी बात के पक्ष में कम से कम चार भिक्षुओं का रहना और संघ में भेद डालने के लिए कम से कम ६ भिक्षुओं के संघ के सामने उसे रखना आवश्यक था। इसके लिए उन्हें यह जानना जरूरी न था कि वे जिस प्रश्न को बड़े संघ के सम्मुख रख रहे हैं वह गलत या संदेहास्पद है (चुल्लव० ७, ५, ५) या बिना पूरी तरह विचार किए यह विश्वास करना कि वे सही हैं (वही, ५, ६)। चुल्लव० (७, ५, ६) से लगता है कि पिछली स्थिति की निन्दा नहीं की गयी थी। संघ में ईमानदारी से मतभेद या विचार-स्वातन्त्र्य पर रोक न थी।

संघभेद से सम्बन्धित अपराधों के लिए विभिन्न अवस्थाओं में भिन्न-भिन्न दंड विहित हैं। संघभेदक को पहला दंड निस्सारणं अर्थात् कुछ अवधि के लिए संघ से हटा देना था (महाव०, १०, ५, १४) जिसमें उसे परिवास (अर्थात् पाँच या दस दिन के लिए अलग रहना) और मानत्त (या छह दिन के लिए प्रतिबन्धों में रहना पड़ता था) जैसा पातिमोक्ख, संघादिसेस, १३ में विहित है। उसकी वापसी (ओसारणम्) की अनुमति इस स्थिति में दी जा सकती थी जब वह अपना अपराध स्वीकार कर ले (महाव०, वही)।

इस सम्बन्ध में ध्यान देने की बात यह भी है कि संघभेद को पातिमोक्ख में संघादिसेस वाले अपराधों में रखा है। ऐसे अपराधों में अथ से इति तक प्रायश्चित्त देने का अधिकार संघ को था। इन अपराधों की व्याख्या इस प्रकार की है (क) समग्ग अर्थात् एकतावद्ध संघ में भेद डालना; (ख) लगातार ऐसे प्रश्न उठाते रहना जिनसे संघ में भेद हो सकता है। यह अपराध अकेले एक भिक्षु भी कर सकता था या अनेक भिक्षु मिलकर। वसी परिस्थिति में वे सभी अपराधी होगें। यद्यपि यह अपराध काफी गंभीर था, पर इसके लिए पातिमोक्ख में, जो संघ की प्रारम्भिक अवस्था के नियम माने जा सकते हैं, हमेशा के लिये संघ से निकालने का दंड विहित नहीं है। ऐसे दंड पाराजिक अपराधों में दिए जाते थे। इन अपराधों का सम्वन्ध चरित्र से था, जैसे जारी, चोरी, हत्या, धोखा (यह दावा करना कि मुझमें अतिमानवीय शक्ति है)।

संघभेद के लिए सबसे कड़ा दंड महावग्ग (१, ६०, ६७ और ६९) में है। इसे नासनम् कहा है। यह दंड निश्चित्त रूप से संघ से स्थायी निष्कासन है और इसे (क) उक्खेपनम् और (ख) पव्वाजनम् से अलग करके देखना चाहिए। यदि कोई भिक्षु अपना अपराध स्वीकार करने या प्रायश्चित्त करने या किसी अप सिद्धांत को छोड़ने से इंकार करे तो उसे संघ से मुअत्तल या कुछ समय के लिए उसके बहिष्कार का दंड देते थे। इसे उक्खेपनम् कहते थे (वही, १, ७९; चुल्लव०, १, २५; २७)। यदि कोई भिक्षु अपने व्यवहार से संघ के नाम को बट्टा लगाता तो उसे कुछ समय के लिए संघ से निष्कासित कर देते थे। इसे पव्वाजनम् कहते थे। पर इन दोनों ही स्थितियों में प्रायश्चित्त करने पर अपराध का मार्जन हो जाता था और भिक्षु को संघ में वापस ले लेते थे (वही; महाव०, १०, ६)।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(जारी)

अशोक ने इस लेख में भेतवे और आनावाससि आवासयिये का प्रयोग किया है। इससे यह जानना मुश्किल है कि किस हद तक संघभेद और उसके लिए कितने दण्ड का उसका मंतव्य है। यदि उसका उद्देश्य पाषंडी भिक्षुओं को सदा के लिए संघ से निकालना था तो उसका आधार ऊपर कहे महावग्ग के तीन विधान और इस संबंध में महावग्ग (३; ११, ५) का ही चौथा विधान रहा होगा जिससे संघ में भेद करने को महापाप कहा है और सद्भिक्षुओं को इस बात की इजाजत दी है कि वे अपराधी भिक्षु से संबंध-विच्छेद कर लें।

पाषंडी भिक्षुओं को विहार से बाहर अनावास में रखने के अलावा अशोक उनके पीले वस्त्र छीनकर उन्हें सफेद कपड़े पहनाने का भी दण्ड निश्चित करता है। इस प्रकार के दण्ड के लिए कोई शास्त्रीय प्रमाण नहीं है। हाँ, यदि हम इसे संघ से भिक्षु को सदा के लिए निकाल देने का पर्याय मानें तो बात दूसरी है। जनश्रुतियों में ऐसे उल्लेख हैं जिनसे पता चलता है कि संघभेद करने वाले अनेक भिक्षुओं को ऐसे दंड अशोक ने दिये भी थे। महावंश (५, २७०) में कथा आयी है कि एक बार उसने अशोकाराम में "पूरे संघ को बुलवाया"। "अनेक वर्गों के भिक्खुओं से उसने पूछा 'भंते तथागत ने क्या उपदेश किया था ?' उनमें से हर एक ने अपने-अपने अप सिद्धांत का उल्लेख किया। उसने इन सभी भिक्षुओं को संघ से निकाल दिया (उपपब्बजेसि)।" समंतपासादिका में बुद्धघोष ने लिखा है कि अशोक ने इन भिक्षुओं को सफेद कपड़े देकर (सेतकानि वत्थानि दत्वा) संघ से निकाल दिया था। इस प्रकार लेखों में संघभेद के लिए उसके दंड-विधान की पुष्टि जनश्रुतियों से हो जाती है। जनश्रुतियों में लेखों की पुष्टि के अनेक उदाहरण पहले आ चुके हैं।

अन्त में ध्यान देने की बात यह है कि संघभेद के लिए बौद्ध कानून के समानांतर ब्राह्मण कानून भी रहा है। ब्राह्मण धर्म-शास्त्रों में ग्राम-समाज या सभा में फूट डालने वाले दुष्टों को गाँव से निकाल देने का विधान है। कानून, करार और संविधान (समय या संवित्) की रक्षा करना, जिससे कुल, जाति, जनपद या संघ चलते थे, राज-धर्म का अंग माना गया था। स्मृतियों में, जो इन कानूनों का उल्लंघन करते थे, उनको गाँव से निकाल देने का भार राजा को सौंपा गया है (देखि० मेरी पुस्तक लोकल गवर्नमेंट इन एंशियंट इंडिया में इस सम्बन्ध में स्मृतियों के प्रमाण)।

इस प्रकार इन लेखों में अशोक ने धार्मिक क्षेत्र में भी प्रभुसत्ता ग्रहण और इस्तेमाल की। यह कार्य निरंकुशता का उदाहरण नहीं है अपितु स्मृतियों में राजा को इस प्रकार के अधिकार दिए गए हैं। अशोक को उसके इस कार्य में ब्राह्मण और बौद्ध दोनों शास्त्रों का समर्थन प्राप्त था (देखि० सुकुमार दत्त : अर्ली बुद्धिस्ट मोनाकिज्म। इस पुस्तक में संघभेद पर बड़ा अच्छा विमर्श मिलेगा)।

६. विवासापयाथा; यहाँ दोहरे प्रेरणार्थक की आवश्यकता इसलिए पड़ी क्योंकि आदेश का प्रसरण सीधे नहीं किया गया, बल्कि वह, जैसा स्मिथ ने दिखलाया है, उन लोगों के माध्यम से किया गया जिनका स्वतन्त्र अधिकार-क्षेत्र था। लेख की ६-११ पंक्तियों से स्पष्ट है कि अशोक ने "सभी संबद्ध व्यक्तियों में आदेश के प्रसारण के लिए कौन से साधन अपनाए थे। इसके लिए उसने (१) यह लेख भिक्षु और भिक्षुणियों में प्रसारित करवाया जिनसे इसका वास्ता था, और (२) उसने यह आदेश दिया कि इसकी एक प्रति महामात्र अपने पास रख लें और दूसरी प्रति उपासकों को दे दें। ये दोनों उपोसथ के दिनों में धार्मिक प्रवचन के समय इसका अध्ययन करें। अभिलेख के अन्तिम दो खंडों में इसके और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

२[1]

(कौशांवी का लेख)

देवताओं के प्रिय (इस प्रकार) आज्ञा देते हैं : कौशांवी के महामात्र...... ......समग्र रहेगा............संघ में न लिया जाय। जो भी, भिक्षु या भिक्षुणी, संघ का भेद करेगा उसे श्वेत वस्त्र पहनाकर विहार से वाहर अनावास-स्थान में रखा जाय।

३[2]

(सांची का लेख)

............भेद नहीं हो सकता।...भिक्षुओं और भिक्षुणियों का संघ, जव तक (मेरे) पुत्र पौत्र (राज्य करेंगे) सूर्य और चंद्र में प्रकाश होगा, समग्र रहेगा। जो भी भिक्षु या भिक्षुणी संघ का भेद करे उसे श्वेत वस्त्र पहनाकर विहार से वाहर अनावास में रखा जाय। मेरी क्या इच्छा हो सकती है ? कि संघ समग्र (अखंड) रहे

(जारी)

विस्तृत प्रचार का विधान है। पूर्ववर्ती पैराग्राफों में पाटलिपुत्र के नागरिकों में इसके प्रचार का जिक्र है। ६ से ११ पंक्तियों में राजा ने पाटलिपुत्र के महामात्रों को आदेश दिया है कि वे इसका प्रचार पाटलिपुत्र के आसपास और जिले के वाहर के जंगलों में करें" (हुल्ट्श, कार्पस, पृ० १६३, टि० १०)। पर अव हुल्ट्श ने अन्तिम दो खंडों के अर्थ के बारे में अपना यह विचार वदल दिया है। अव वे इसका अर्थ "(भेद डालने वाले भिक्षुओं और भिक्षुणियों को) निकाल दो (विवासयाथ)" और "(भेद डालने वाले भिक्षुओं) या भिक्षुणियों को निकाल देने के लिए (विवासापयाया) आदेश जारी कर दो।" (वही, शुद्धि-पत्र, पृ० २५९)।

१. प्रयाग के स्तंभ पर यह लेख स्तं० ले० १ से ६ और रानी के लेख के वाद आता है। इस प्रकार यह इनसे वाद का होगा। यह स्तंभ मूल रूप में कौशांवी में था जिसे आज जमुना के किनारे का कोसम गांव सूचित करता है। फ्लीट ने (ज० रा० ए० सो०, १९०७, पृ० ५११) इसकी पहचान वन या पाणिनि के कौशांवी-वन से की है जवकि स्मिथ ने इसे भरहुत के निकट वतलाया था (वही, १८९८, पृ० ५०७-१९)। कनिंघम का अनुमान था कि फिरोजशाह इसे इलाहावाद ले गया होगा। यही तुगलग सुल्तान अशोक के दो स्तंभ उनके मूल-स्थानों से दिल्ली ले गया था जो उसकी राजधानी थी। पर उसका यह अनुमान ठीक नहीं प्रतीत होता क्योंकि फिरोजशाह को इलाहावाद से वहुत कम वास्ता था। इस नगर का निर्माण तो अकवर ने कराया जो उससे दो सौ साल वाद हुआ था। शायद कोसम से यह स्तंभ अकवर ही इलाहावाद ले गया होगा। इसी स्तंभ पर अकवर के प्रिय दरवारी वीरवल और पुत्र जहांगीर के भी लेख खुदे हैं (दे० हुल्ट्श, कार्पस, पृ० २०)।

२. समगे : "मन और शरीर से एक" जैसा समंतपासादिका में कहा है (समग्गस्साति सहितस्स चित्तेन च शरीरेण च अवियुक्तस्साति अत्थो)। सुत्तविभंग में इसकी यह व्याख्या मिलती है : "समग्गो नाम संघो समान संवासको समानसीमाठितो," "समग्र संघ उसे कहते हैं जहाँ भिक्षु एक साथ और एक ही सीमा में रहते हैं"।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और चिरस्थायी हो।[1]

४

(रानी का लेख)

देवताओं के प्रिय के वचन से सभी स्थानों के महामात्रों से इस प्रकार कहना: जो भी दान दूसरी रानी यहाँ[2] देती है, चाहे वह आम की बगीची[3] हो या बाग[4] या दान-गृह[5] या अन्य कोई भी चीज, ये[6] रानी के नाम ही लिखे जायें।[7] यह दूसरी रानी, तीवर की माता,[8] कारुवाकी[9] की प्रार्थना हैं।[10]

छ. स्मारक स्तंभ लेख

(रुम्मिनदेई)

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने अभिषेक के बीसवें वर्ष[11] में यहाँ आकर पूजा की क्योंकि यहाँ बुद्ध शाक्यमुनि[12] का जन्म हुआ था। यहाँ एक शिला-विग्रह[13] बनवाया और एक पत्थर का स्तंभ भी लगवाया कि भगवान् यहाँ जन्मे थे।

---

१. हुल्ट्श के अनुवाद के आधार पर। ध्यान देने की बात यह है कि जैसा अशोक ने च० ले० ५ में कहा और उसे स्तं० ले० ७ में दुहराया है। उसने सभी सम्प्रदायों के संघों के लिए महामात्र नियुक्त किए थे। अतः ये तीनों लेख उन्हीं को सम्बोधित थे न कि संघ को यद्यपि लेखों का विषय संघ से ही ताल्लुक रखता है। भाब्र लेख महामात्रों को सम्बोधित है।

२. हेता, अत्र, सम्भवतः पाटलिपुत्र में।

३. अंबा-वडिका, जो स्तं० ले० ७ में आया है।

४. आराम (आलमे)।

५. दान-गहे। जैसा स्तं० ले० ७ में कहा है ये राजा और उसकी रानियों के दानविसर्ग के ठोस उदाहरण हैं।

६. नानि।

७. गनीयति।

८. यह असामान्य नाम है। सिर्फ एक गुप्त अभिलेख में कोसल के एक राजा का यही नाम मिलता है (दे० फ्लीट: गुप्त इंस्क्रि०, पृ० २९३)।

९. बुहलर इसका सम्बन्ध वैदिक गोत्र नाम कारु से जोड़ता है।

१०. हुल्ट्श ने इसे यों पूरा किया है: "[हे] वं [वि] [न] [ति]"; विनति=सं० विज्ञप्ति।

११. अर्थात् ई० पू० २५०।

१२. हुल्ट्श ने महापरिनिब्बान-सुत्त की उद्धरणी की है: "आगमिस्संति खो आनंद सद्धा भिक्खु-भिक्खुनियो उपासक-उपासिकाय इध ताथागतो जातो ति" और लेख के पहले वाक्य को इस शब्द तक ले जाता है। दिव्यावदान में जब उपगुप्त और अशोक लुंबिनीवन में पहुँचे तो उपगुप्त ने अशोक से कहा: "अस्मिन् महाराज प्रदेशे भगवान् जातः"; महाराज! इसी जगह भगवान् ने जन्म लिया था।

१३. सिला-विगडभी; विगड शब्द सं० विकट से निकला है जो विकृत का ही एक दूसरा रूप है जिसका अर्थ विकार होता है। जब किसी वस्तु का रूप बदल जाता है तो उसे उसका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लुंमिनि ग्राम को[1] अपवलिक[2] किया और अष्टभागिक किया।[3] [अर्थात्

विकार कहते हैं जैसे जब पत्थर से कोई मूर्ति गढ़ी जाती है तो वह मूर्ति पत्थर का विकार होती है। विकट का एक दूसरा अर्थ भी हो सकता है। कोई अपरूप आकृति जैसी कपड़ों आदि पर बनती है। शिला-विकृत की तुलना हम पालि शब्द पासादविकतिका से भी कर सकते थे जिसका अर्थ ऐसा भवन है जिसमें सजावट के लिए आकृतियाँ बनी हों। बुद्धघोष ने विकतिका की व्याख्या "सीहब्यग्घादि-रूपविचित्तो उण्णामयो अत्थरको," "चादर जिस पर सजावट के लिए सिंह, बाघ आदि की आकृतियाँ बनी हों" कहकर की है। महावंश (२७, ३०) में ऐसे स्तंभों का उल्लेख है जिन पर शेर, बाघ आदि या देवताओं की मूर्तियाँ बनी हुई थीं (सीहब्यग्घादि-रूपेहि देवता-रूपकेहि च......थम्भेहि)। -भी शब्द संस्कृत √भृत्=धारण करना से बना है। इस प्रकार सिला-विगडभी का अर्थ हुआ वह पत्थर जिसमें आकृति बनी हो अर्थात् वहीं स्थापित स्तंभ का शीर्ष। इस प्रकार इस लेख में इस बात पर जोर है कि वहाँ न केवल एक प्रस्तर-स्तंभ स्थापित किया गया (कालापित) बल्कि उस पर आकृति भी बनी हुई थी जिससे इस स्थान की पवित्रता प्रकट होती थी। यह शिला-विकृत अर्थात् पत्थर की आकृति घोड़े की थी जैसा कि युवाङ् च्वाङ् ने देखा था। चार्पेंटियर ने विगड का ही अर्थ घोड़ा सिद्ध करने की कोशिश की है। उसकी राय में विगड=अगड=अगलिताश्व—एक ताकतवर घोड़ा है। सर भंडारकर ने शिला-विकट (असाधारण आकार का) -भित्या (भित्तिका=भीत) पढ़ा है। यहाँ वेणी माधव बरुआ का अर्थ ग्रहण किया गया है (अशोक एडिक्ट्स इन न्यू लाइट, पृ० ८५)।

ध्यान देने की बात यह है कि '-भी' स्त्रीलिंग और कालापित दोनों को सूचित करती है। मि० स्तंभ लेखों में स्त्रीलिंग के कुछ रूप दय, अपेख, इस्य, सालिक आदि जिनमें आकारांत घिसकर अकारांत रह गया है।

विकट=विकृत से विगड की व्युत्पत्ति (जो ध्वनिशास्त्र की दृष्टि से कुछ असंभव सी है) के अतिरिक्त इसे विगड़=विगर्ह=विग्रह से भी व्युत्पन्न मान सकते हैं। फिर भी का अर्थ "भी" करना होगा जैसा हिन्दी में होता है। आकृति के लिए विग्रह का प्रयोग सुख्यात है। इन 'भी' और 'चा' दोनों का प्रयोग जोर देने के लिए माना होगा: "सिला-विगड-भी चा कालापित सिलाथभे च उसपापिते; एक पत्थर की आकृति ही नहीं बनायी गयी बल्कि एक स्तंभ भी लगाया गया।"

१. इस गाँव का नाम रुम्मिनदेई है पर वहाँ वाले इसे रूपन-देहि, परगना (माल्) विथ्री, जिला विथ्री, नेपाल सरकार कहते हैं। मैं इस गाँव में (अपने शिष्य नरहरिया, बस्ती के पी० पी० पांडे के साथ) गया था। रेलवे स्टेशन नौतनवा से घोड़े पर करीब बारह मील चलकर मैं खुंगई नाम के गाँव में पहुँचा था जहाँ रात भर मैं चौधरी सीतारामजी का अतिथि रहा। दूसरे दिन सवेरे (२८ फरवरी, १९२७ को) पडरिया से होकर वहाँ से करीब २ मील पर अशोक के स्तंभ के पास पहुँचा था। मैंने जो फोटोग्राफ इस स्तंभ के लिए हैं उसमें स्तंभ की दरार पूरे दंड पर दीखती है। युवाङ् च्वाङ् के अनुसार यह दरार बिजली गिरने से पड़ी थी।

स्तंभ से कुछ ही कदम दूर एक मन्दिर है जिसमें एक प्राचीन मूर्ति है जिसमें बुद्ध के जन्म का अंकन है। साल वृक्ष के नीचे बुद्ध की माता, महामाया, प्रसव के बाद खड़ी हैं। उनके साथ तीन परिचारिकाएँ हैं। माता की मूर्ति खंडित हो चुकी है। पर वहाँ के हिंदू "रूपम् देहि" देवी के रूप में इसकी पूजा करते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(जारी)

मूर्ति के चित्र में (फलक १३) (यह चित्र आ० स० रि०, २६ के पी० सी० मुखर्जी के चित्र पर आधारित है) महामाया सौम्य मुद्रा में खड़ी हैं, वे दायें हाथ से साल वृक्ष की एक शाखा पकड़े हुए हैं और अपने बाएँ हाथ से वे अपने अधोवस्त्र को ठीक कर रही हैं। उनके मुख पर प्रसव-वेदना का कोई चिह्न शेष नहीं है। वृक्ष की शाखाओं और पत्तियों, उनके सिर और हाथ और लहरियादार बालों के अंकन में शिल्पकार की कला के उच्च स्तर के दर्शन होते हैं। उनके दाईं ओर दाएँ हाथ के नीचे एक छोटी सी नारी की आकृति है जिसमें वह अपने दाएँ हाथ से महामाया को सहारा दे रही है। बुद्ध जन्म की कथाओं के आधार पर इसे प्रजापति गौतमी माना गया है जो उनकी बहन थी पर थी पी० सी० मुखर्जी इसे मात्र एक परिचारिका मानते हैं (वही, ३७)। तीसरी ऊँची आकृति पी० सी० मुखर्जी (वही) प्रजापति की मानते हैं परन्तु स्मिथ (वही) इसे पुरुष की आकृति मानते हैं। उनकी राय में यह इंद्र की मूर्ति है जो कथाओं के अनुसार जन्म के बाद बुद्ध को एक कपड़े पर ग्रहण करता है। चौथी मूर्ति परिचारिका की है। इसमें एक शिशु भी खड़ा है जिसकी पहचान बोधिसत्त्व से की गयी है। ज्ञनश्रुतियों में जन्मते ही वे खड़े हो गए थे।

जहाँ तक इस मूर्ति के काल का प्रश्न है वैटर्स (ऑन युवाङ् च्वाङ्, २, १७) का कहना है कि "चूंकि इसका सूक्ष्म परीक्षण नहीं हुआ है, अतः इसका समय निश्चय के साथ नहीं बतलाया जा सकता।" मैंने इसका सूक्ष्म परीक्षण किया है। यह मूर्ति इसी विषय पर सांची और भरहुत की मूर्तियों से मिलती-जुलती है (फलक २८, कनिंघम कृत स्तूप ऑफ भरहुत)। स्मिथ (आ० स० रि०, २६, ६) का कथन है कि "संभवतः रुम्मिनदेई वर्ग बुद्ध के जन्म के विषय का सबसे पुराना अंकन है।" पी० सी० मुखर्जी का विचार है कि "जिस शैली की इसकी कारीगरी है उसका संबंध सामान्यतया अशोक के समय से है" (वही, ३७)। मूर्ति का पत्थर भी इसे अशोककालीन सिद्ध करता है। "यह पीताभ पत्थर वैसा ही है जैसा अशोक के स्तंभों में प्रयोग में आया है। कलकत्ता संग्रहालय में सुरक्षित पाटलिपुत्र के दो द्वारपाल यक्षों की मूर्तियों में भी इसी पत्थर का इस्तेमाल हुआ है" (वही)। मूर्ति की प्राचीनता इस बात से भी स्पष्ट है कि यह मूर्ति, जैसा मुखर्जी ने दिखलाया है, जमीन से २० फुट नीचे रही होगी (वही)। अतः यदि यह मूर्ति अशोककालीन है तो मायादेवी और उनके परिचारक-परिचारिकाओं की ये आकृतियाँ ही वह शिला-विग्रह है जिसका उल्लेख इस लेख में है। इस प्रकार इस दुरूह पद का अर्थ भी निश्चित हो जाएगा। इस प्रकार इस अंश का तात्पर्य यह है कि अशोक ने बुद्ध के जन्म-स्थान की पहचान के लिए दो निर्माण कराए थे (१) सिला-थभे (प्रस्तर-स्तंभ) और (२) सिला-विगड (शिला-विग्रह) जिसमें बुद्ध के जन्म का अंकन था। ध्यान देने की यह भी बात है कि अशोकावदान जैसे ग्रंथों में अशोक के किसी स्तंभ लगवाने का कोई उल्लेख नहीं है। इनमें लिखा है कि उपगुप्त अशोक को लुंबिनीवन की यात्रा पर ले गया, वहाँ पहुँचने पर उसने राजा को बतलाया था कि भगवान् बुद्ध यहीं जन्मे थे। उसने वह साल वृक्ष भी दिखलाया था जिसके नीचे बुद्ध को जन्म देकर महामाया खड़ी थीं। अशोक ने वहाँ एक चैत्य बनवाया था, राजा वहाँ १ लाख स्वर्ण का दान कर वापस लौटा था। वैटर्स (वही) का ठीक ही अनुमान है कि चैत्य वही है जो वहाँ मिला है जिसमें एक मूर्ति में साल वृक्ष के नीचे खड़ी मायादेवी का अंकन है। यह मूर्ति उस स्थान के लिए एक उपयुक्त स्मारक था जिसकी घोषणा लेख में है। शायद स्तंभ से अधिक महत्त्व इस चैत्य को प्राप्त था

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस गाँव से कोई बलि धार्मिक कर नहीं लिया जाएगा और उपज का आठवाँ भाग कर लिया जाएगा ।]

(जारी)

और इसका निर्माण भी उससे पहले हुआ होगा जैसा कि लेख में लिखा है। यही वजह है कि इन दोनों निर्माणों का उल्लेख अशोक ने अपने लेख में अलग-अलग किया है।

स्तंभ पर लेख छह पंक्तियों में खुदा है । इनमें में पहली तीन पंक्तियां ही दीखती हैं। बाकी पंक्तियां जमीन में गड़ी हैं। जब युवाङ् च्वाङ् ने इसके दर्शन किए थे तो उस समय शायद पूरा लेख जमीन में छिपा था। इसीलिए स्तंभ पर खुदे किसी लेख की बात वह नहीं करता। किन्तु चीनी ग्रंथ फाङ्-चिह् में इसका उल्लेख है। उसमें कहा गया है कि इस लेख में बुद्ध के जन्म की कहानी है।

अंत में ध्यान देने की बात यह है कि स्तंभ और चैत्य दोनों एक डूह पर खड़े हैं जिसमें बहुत समय का पुरानी इमारतों का मलबा है। इनमें स्तूप भी रहे होंगे। यद्यपि फा-हियान या युवाङ् च्वाङ् दोनों कोई भी किसी स्तूप का उल्लेख नहीं करता। फिर भी "(एक चीनी ग्रंथ में) एक विशाल स्तूप का उल्लेख है, जिसे ७६४ ई० के आसपास एक चीनी यात्री वुकुङ् ने देखा था" (वैटर्स २, १७)।

बुद्ध के जन्म का अंकन प्राचीन भारत के शिल्पियों का एक प्रिय विषय था। विभिन्न शैलियों, युगों और स्थानों—सांची, भरहुत, गंधार, अमरावती और सारनाथ में इसका अंकन हुआ है। सांची और भरहुत इसमें सबसे पुराने हैं। रुम्मिनदेई मन्दिर का शिल्प शैली और रूप-विधान की दृष्टि से इनसे मिलता-जुलता है। भरहुत की मूर्ति में अपनी माता की कोख में बोधिसत्त्व के अवतार का अंकन है। सांची में इस विषय का अंकन प्रतीकों के माध्यम से हुआ है, जैसे घट में कमल या कमल का गुच्छा या पूर्ण कमल के ऊपर बैठी माया या दो हाथी माया का अभिषेक करते हुए (इसे भूल से 'श्री' समझ लिया गया था), किन्तु बौद्ध ग्रंथों के सबसे अनुरूप अंकन वह था जिसमें माया प्रसव से पूर्व खड़ी हैं जैसाकि रुम्मिनदेई में है। रुम्मिनदेई की सांची के इसी सादृश्य के कारण मैं इसे अशोककालीन मानता हूं। (मूर्तियों में बुद्ध के जन्म के अंकन के लिए दे० मार्शल कृत गाइड टु सांची, पृ० ४२ और फूशर कृत बिगिनिंग्स आफ बुद्धिस्ट आर्ट, पृ० २०, २१, ७० और फलक १, ३, ४।)

२. उबलिके=उद्‌बलिक (टामस) या अवबलिक या अप-बलिक (बुइलर)। बलि और भाग शब्दों का प्रयोग कौटिल्य (२, ६) में है।

३. अठभागिये : इसका अर्थ यह हुआ कि राजा को मिलने वाला भूराजस्व अशोक ने बुद्ध के जन्म वाले इस गाँव के लिए आधा कर दिया। मेगस्थनीज के अनुसार चंद्रगुप्त के समय में राजा उपज का चौथाई ग्रहण करता था। बुइलर ने अठ को अर्थ समझा था और इसका अर्थ "धन में भागीदार, राज का दान ग्रहण करने वाला" किया था क्योंकि जनश्रुतियों के अनुसार राजा ने यहाँ १ लाख स्वर्ण दान किया था (दिव्या०, पृ० ३९०)। पिशेल ने इसकी व्याख्या "करयोग्य भूमि के आठ (अष्ट) खंड" की है। कौटिल्य (२,२८), 'चतुर्थ-पंच-भागिकः' का इस्तेमाल "उपज का चौथाई या पाँचवाँ भाग देने वाला" के अर्थ में किया है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

२

(निग्लीव[1])

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने अभिषेक के चौदहवें वर्ष में बुद्ध कोनाकमन[2] के स्तूप का आकार दुगुना कराया[3] और अभिषेक (के वीसवें वर्ष में) स्वयं आकर यहाँ पूजा की और (एक स्तंभ) लगवाया।

ज. गुफा लेख[4]

१

(निग्रोध गुफा)

देवताओं के प्रिय राजा ने अभिषेक के बारहवें वर्ष में यह निग्रोध गुफा आजीविकों को दी।

---

१. जहाँ यह स्तंभ खड़ा है उसे निगाली सागर कहते हैं। हुल्ट्श ने इसी आधार पर इस लेख को निगाली सागर स्तंभ लेख कहा है।

२. चौवीस बुद्धों में एक का नाम जो बुद्ध से पहले के तीसरे बुद्ध थे।

३. दुतियं वढिते : मूल आकार को दुगुना कराया, जैसा हुल्टश ने अनुवाद किया है। वह सहस० के ल० च० ले० के दियढियं वढिसति से इसकी तुलना करता है।

४. ये गुफा लेख बराबर की पहाड़ियों में खुदे हैं। ये साईनिटिक ग्रेनाइट की अलग चट्टानें हैं जो गया से करीब १५ मील दूर उत्तर में हैं। पहाड़ियों में गुफाओं के दो वर्ग हैं जिन्हें बराबर और नागार्जुनी पहाड़ी कहते हैं। नागार्जुनी में तीन गुफाएँ हैं जिनमें हर एक में अशोक के पोते "दपलथ देवानंपिय" के लेख खुदे हैं। बराबर में चार गुफाएँ हैं। इनमें तीन में अशोक के लेख हैं जिनका विवेचन यहाँ किया जा रहा है। जैसा कि इनमें से दो लेखों में कहा है अशोक के समय में इस पहाड़ी का नाम खलतिक पर्वत था। बराबर की चौथी गुफा को लोमश ऋषि की गुफा कहते हैं। इस गुफा से मौखरी अनंतवर्मन् (६-७वीं शताब्दी) का एक लेख है जिससे विदित होता है कि बाद में खलतिक पर्वत का नाम प्रवर पर्वत हो गया था। अशोक और मौखरी राजा के समयों के बीच में कभी यह पहाड़ी गोरथगिरि कहलाती थी जैसा कि उन दो लेखों से विदित होता है जिनमें से एक "बराबर की चार में में तीन गुफाओं की रीढ़ वाली पर्वत श्रेणी से करीब १०० गज की दूरी पर एक शिलाखंड पर खुदा है" और दूसरा "पर्वत श्रेणी के पश्चिमी मुख पर लोमश ऋषि की गुफा के मुख से ६ या ७ गज दूर खुदा है। इनकी खोज वी० एच० जैक्सन ने की थी। पहले लेख में पहाड़ी का नाम गोरथागिरि और दूसरे में गोरधगिरि आया है। कलिंग के राजा खारवेल के हाथीगुम्फा गुफा के लेख की सातवीं पंक्ति में भी इस पहाड़ी का नाम गोरधगिरि आया है। खारवेल ने अपने शासन के आठवें वर्ष में गोरधगिरि को घेर लिया था।" खारवेल का समय ई० पू० १६५ के लगभग माना जाता है। इस प्रकार अशोक और मौखरी काल के बीच ई० पू० दूसरी शती के आसपास खलतिक पर्वत या इसके एक भाग को गोरथगिरि कहते थे। शायद पूरी पहाड़ी का नहीं बल्कि उसके एक भाग का ही नाम बदला था क्योंकि यह नाम पतंजलि के समय में इतना प्रसिद्ध था कि उसने पाणिनि के एक सूत्र (१, २, ५२) की व्याख्या में अपने महाभाष्य (१, २, २) में इसका उल्लेख किया। कात्यायन (लगभग ३५० ई० पू०) ने भी इसी सूत्र की व्याख्या की है। उदाहरण के तौर पर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

२

(खलतिक पर्वत लेख)

देवताओं के प्रिय राजा ने अभिषेक के बारहवें वर्ष में खलतिक पर्वत में यह गुफा आजीविकों को दी।

३

(खलतिक पर्वत गुफा सं० २)

देवताओं के प्रिय राजा ने अभिषेक के उन्नीसवें वर्ष में इस सुप्रिय[1] खलतिक पर्वत में वर्षा से बचाव के लिए[2] यह गुफा दी।[3]

(जारी)

"खलतिकादिपु वचनं" कहा है। पतंजलि ने इसकी व्याख्या में कहा है "खलतिकस्य पर्वतस्य अदूरभवानि वनानि खलतिकं वनानि"। इस प्रकार ई० पू० दूसरी शती में खलतिक एक प्रसिद्ध पहाड़ी का नाम था।

डा० ए० पी० बनर्जी-शास्त्री ने एक सुझाव के अनुसार खारवेल के बराबर पहाड़ियों से संबंध होने का एक और प्रभाव बच रहा है। अशोक के बराबर की पहाड़ी के दो लेखों और नागार्जुनी पर्वत में दशरथ के तीन लेखों में सभी में आजीविकों को गुफा-दान का उल्लेख है। इनमें से तीन लेखों में आजीविकेहि शब्द को मिटाने की कोशिश की गयी है मानो किसी व्यक्ति को यह नाम बर्दाशत न था और उसने इसे मिटा देना चाहा है। यह व्यक्ति कौन रहा होगा? हुल्ट्श का अनुमान है कि मौखरी अनंतवर्मन् ही वह व्यक्ति रहा होगा जिसने बराबर की एक गुफा कृष्ण के नाम और नागार्जुनी की दो गुफाएँ शिव और पार्वती के नाम की थीं। कट्टर हिंदू विचारों का होने के कारण वह आजीविकों के पक्ष में न था। डा० बनर्जी-शास्त्री का अनुमान इससे अधिक तर्कसंगत है। वे इसका दोप खारवेल जैन को देते हैं, जैन आजीविकों के सदा विरुद्ध रहे थे। इस प्रकार नाम मिटाने का यह कृत्य मौखरी अनंतवर्मन् से बहुत पहले का है। जबकि अशोककालीन ब्राह्मी लिपि को लोग भूल चुके थे। अपि च। ब्राह्मण धर्मानुयायी हिंदू आजीविकों से द्वेष नहीं रखते जैसाकि कर्न ने दिखलाया है वे उन्हें कृष्ण या विष्णु का अनुयायी मानते हैं (इं० ए०, २०, ३६१)। मौखरी राजा यदि इस कुकृत्य पर उतारू ही होता तो वह देवानंपिय अशोक का नाम मिटाता। कोई बौद्ध भी अशोक के परम पवित्र नाम से संबद्ध इस लेख से ऐसा व्यभिचार नहीं करेगा। अतः डा० बनर्जी-शास्त्री का यही अनुमान है कि वह दुष्ट कोई जैन ही रहा होगा (दे० हुल्ट्श, कार्पस, पृ० २८, ज० बि० ओ० रि० सो०, १२, पृ० ४९-५२, ५८-६२)।

१. सुपिये=सुप्रिय।

२. जलघोसागमथात="जलघोष के लिए"। मिला० "वाष-निषिदियाये," "वर्षा में आश्रय के लिए" जैसा कि दशरथ के गुफा लेखों में आया है।

३. दाता अशोक हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परिशिष्ट ख

अशोक के लेखों का कालक्रम

स्वयं अशोक के लेखों से उनका पारस्परिक क्रम निर्धारित किया जा सकता है किंतु ध्यान देने की बात यह है कि अशोक ने जब इन लेखों की रचना की और जब राजधानी से बाहर के दूर के स्थानों में ये चट्टानों या पत्थर के स्तंभों पर खुदवाये, ये दोनों तिथियां एक न रही होंगी। इस प्रकार यह मानना नितांत तर्कसम्मत होगा कि विभिन्न लेख राजा ने विभिन्न समयों पर रचे होंगे और जारी किये होंगे, जिनमें राजा के विचारों का विकास क्रम स्पष्ट दीखता है और ये सभी बाद में किसी चट्टान या पत्थर के स्तंभ पर एक साथ खोदे गए होंगे। यहाँ हम लेखों के आंतरिक क्रम पर विचार कर रहे हैं जिसका पता इन लेखों में लिखित सामग्री से ही मिल सकता है। यह इस प्रकार नीचे दी जा रही है :

(१) महामात्रों की नियुक्ति : इस विषय का उल्लेख (क) धौली और जौगड़ के पृथक् लेखों, (ख) चट्टान लेख ३, (ग) चट्टान लेख ५, और (घ) स्तंभ लेख ७ में है। जिस रूप में इस विषय का उल्लेख इन लेखों में है उससे उनका कालक्रम दीखता है।

(क) में अशोक ने कार्य विशेष के लिए महामात्र नियुक्त करने की इच्छा व्यक्त की है। वह कार्य धौली के लेख के अनुसार नगल-वियोहालक (=नगर-व्यावहारक) और जौगड़ के लेख के अनुसार माहामाता-नगलक (मिला० कौटिल्य का पौरव्यवहारिक, १, १२, और नागरिक-महामात्र, ४; ५) अर्थात् न्याय-अधिकारियों और मजिस्ट्रेटों के कार्यों की निगरानी था ताकि "अनुचित कैद और अनुचित परिक्लेश" (अकस्मा पलिबोधे व अकस्मा पलिकिलेसे व) न होने पाये। इस प्रकार यहाँ अशोक विचार करता है कि न्यायिक दुरुपयोग रोकने के लिए वह महामात्रों के एक विशेष वर्ग (धौली, पंक्ति २४ में वगम्) की सृष्टि करे। उसका यह विचार था कि इन न्यायिक निरीक्षकों को वह प्रति पाँच वर्ष पर दौरे (अनुसंयानम्) पर भेजे (निखामयिसामि)। दौरे के इस नियम में उज्जैन और तक्षशिला के राज्यपालों को छूट देकर पाँच के बदले तीन साल की अवधि निर्धारित की गयी।

(ख) में अशोक की इच्छा पूरी हुई प्रतीत होती है। राजा ने इस संबंध में नीचे लिखा आदेश निकाल दिया था :

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

"मेरे राज्य में (विजिते) सर्वत्र युक्त, राजूक और प्रादेशिक बारी-बारी से हर पाँचवें साल दूसरे कामों के अलावा इस काम अर्थात् धार्मिक उपदेश के लिए दौरे पर निकलेंगे (अनुसंयानं नियातु, गिरनार, निखमंतु, कालसी और निक्रमतु, शाह०)" ।

हम देखते हैं कि (क) में सम्राट की जिस इच्छा और कल्पना का उल्लेख है, वह और स्पष्ट और निश्चित रूप धारण कर चुकी थी ताकि उस संबंध में राजकीय आदेश निकाला जा सके। इस प्रकार (ख), (क) का ही पल्लवित रूप है। यह बात उस समान तत्त्व से भी स्पष्ट हो जाती है जो दोनों लेखों में मिलता है—वह है अधिकारियों के पंचवार्षिक दौरे का नियम। (ख) तक पहुँचते-पहुँचते नियम स्थिर हो चुका था क्योंकि (क) में जिस अपवाद का उल्लेख है (ख) में उसकी इजाजत नहीं है। शायद यह अपवाद प्रशासनिक दृष्टि से दुरुस्त नहीं समझा गया। इसीलिए अंतिम रूप से जो सरकारी आदेश निकला उसमें इसे शामिल नहीं किया गया। अपि च। (क) में न्यायिक निरीक्षण के लिए महामात्र पद के अधिकारियों को भेजने की आवश्यकता का उल्लेख है जबकि (ख) में इन महामात्रों की तफसील दी है और उनके अलग-अलग उल्लेख हैं। अन्त में, (ख) में न्यायिक विभाग में अधिकारियों के भेजने का उल्लेख है जबकि (क) में राजा ने अपने उच्च अधिकारियों को धर्म-उपदेश का भी काम सौंपा है।

(ग) और (घ) में विषय का और पल्लवन है। (ख) में अधिकारियों को धर्म-उपदेश का भी भार दिया गया है, जबकि (ग) में धर्मोपदेश के लिए एक नये अधिकारी-वर्ग अर्थात् धर्म-महामात्रों के पद की सृष्टि की गई है। इस लेख में इनके कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व का वर्णन सामान्य रूप में ही है जिससे यह बात जाहिर होती है कि (क) में जबसे राजा के मन में इस बारे में विचार आया, तबसे कितनी प्रगति हुई है। ध्यान देने की बात यह है कि (क) में न्यायिक च्युतियों—अनुचित कैद (पलिबोधे) और परिक्लेश (पलिकिलेसे) के रोकने का विचार व्यक्त किया गया है। (ग) में धर्म-महामात्रों के ब्योरेवार कर्त्तव्य बतलाते हुए इसे भी उनके कामों में शामिल किया गया है। उन्हें धर्म-युत (धंम-युतानं नागरिकों को अनुचित उत्पीड़न (अपलिबोधाये, अपरिगोधाय, गिरनार) से बचाने, कैद का प्रतिकार (बंधन-बधस पतिविधानाय), और मुक्ति (मोखाये=मोक्षाय) के उपाय करने का आदेश है।

किंतु इस विचार का अंतिम रूप (घ) में मिलता है। इसमें धर्म-महामात्रों के कर्त्तव्यों में कुछ और बातें जोड़ दी गयी हैं जो (ग) में न थीं। स्तं० ले० ७ की २५वीं पंक्ति में साफ-साफ कहा है कि धर्म-महामात्र "सभी संप्रदायों के लिए" (सव-पासंडेसु पि च वियापटासे) जैसे बौद्ध संघ, ब्राह्मण और आजीविकों, निर्ग्रंथों आदि के लिये हैं। विभिन्न महामात्र विभिन्न संप्रदायों के लिए थे। वास्तव में इस लेख से यह बात साफ हो जाती है कि अशोक ने अधिकारियों में किसको क्या काम सौंपे थे। इन सभी अधिकारियों की सामान्य संज्ञा धर्म-महामात्र ही थी, पर इनके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

काम अलग-अलग थे। अशोक के धर्म मंत्रालय में विषयों को दृष्टि में रखते हुए भिन्न-भिन्न पद के अधिकारी काम करते थे। (ग) में एक वर्ग के अधिकारियों को धर्म-महामात्र कहा है, पर (घ) में इनके अधीन विभिन्न वर्ग के अधिकारी भिन्न-भिन्न कामों और हितों के लिए थे जैसे संन्यासियों, गृहस्थों, धार्मिक संप्रदायों, राजा, रानियों, उनके बेटों और अन्य रानियों के बेटों के दानों आदि के लिए अलग-अलग कर्मचारी थे।

इस प्रकार (क), (ख), (ग), और (घ) के आंतरिक प्रमाणों से उनके रचना काल का क्रम, जो उनके प्रकाशन से भिन्न था, स्पष्ट हो जाता है।

कलिंग के पृथक् लेख इन चारों से पहले के हैं यह बात चट्टानों पर उनके स्थान से भी प्रकट होती है। उदाहरण के लिए धौली में ये अलग खुदे हैं, एक लिखित शिला-मुख के बाएं स्तंभ में है और दूसरा च० ले० १४ के नीचे खुदा है। ये सभी लेख एक ही बार में खोदे गये होंगे, पर राजा ने उनके प्रारूपण और एलान भिन्न-भिन्न समयों में किये होंगे। जैसा हमने पहले कहा है यहाँ हम लेखों के विषयों के कालक्रम पर विचार कर रहे हैं।

(२) स्त्री-अध्यक्ष-महामात्रों की नियुक्ति : इसका उल्लेख च० ले० १२ में है। ध्यान देने की बात यह है कि च० ले० ५ में राजा, उसके भाइयों, बहनों और अन्य संबंधियों के विभिन्न रनिवासों की देखरेख के लिए धर्म-महामात्रों की नियुक्ति की बात कही गयी है। ये रनिवास पाटलिपुत्र में थे और उसके बाहर भी। इस विषय में राजा के विचारों का पल्लवन च० ले० १२ में है जिसमें रनिवास के धार्मिक उन्नयन के लिए स्त्री-अध्यक्ष-महामात्रों के एक विशेष वर्ग की सृष्टि की गयी है।

(३) संघ और महामात्र : भाब्रू का लेख अर्थात् कलकत्ता-बैराट चट्टान लेख "मागध राजा प्रियदर्शी" की ओर से सीधे संघ को सम्बोधित है पर राजा के संघ के नाम जो संदेश हैं वे सांची, सारनाथ और कौशांबी के महामात्रों को संबोधित हैं। इसका कारण यह है कि राजा की ओर संघ और अन्य संप्रदायों के लिए महामात्रों की नियुक्ति की जिस बात का उल्लेख पहली बार चट्टान लेख ५ में हुआ है और जिसे स्तं० ले० ७ में दुहराया गया है, भाब्रू का लेख उनसे पहले का है। इस प्रकार सारनाथ, सांची और कौशांबी के स्तभ लेख जो उन जगहों के संघों के इंचार्ज महामात्रों को संबोधित हैं तथा कालक्रम की दृष्टि से भाब्रू या च० ले० ५ से काफी बाद के हैं।

(४) अंत-महामात्रों की नियुक्ति : अशोक की अंतों—अपने सीमांतवासियों के हित सुख की कामना का उल्लेख कई लेखों में हुआ है जैसे ल० च० ले० १, क० च० ले० १ (पृथक्), च० ले० २, ५ और १३ में, पर स्तं० ले० १ से पहले इस कार्य के लिए किसी प्रशासनिक व्यवस्था की कल्पना नहीं की गयी थी। स्तं० ले० १ ही एकमात्र ऐसा लेख है जिसमें अंतों के हित सुख के लिए अंत-महामात्रों का उल्लेख है। अतः यह स्तं० ले० १ इन सब चट्टान लेखों से बाद का है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(५) क्षुद्र जीवों की रक्षा : सभी जीवों के प्रति अहिंसा का उपदेश अनेक लेखों में है जैसे, ल० च० ले० २, च० ले० ३, ४, ९ और ११। पर इस कार्य के लिए प्रशासनिक कार्यवाही का उल्लेख पहली बार च० ले० १ में ही मिलता है जिसका पूर्ण विस्तार स्तं० ले० ५ में हुआ है जिसे हम अशोक का जीव रक्षा अधिनियम कह सकते हैं। ध्यान देने की बात यह भी है कि यद्यपि च० ले० १ में राजा की रसोई में निकट भविष्य में मोर के वध पर रोक की कल्पना की गयी है, तथापि स्तं० ले० ५ में, जिसमें इस संबंध के राजा के विस्तृत आदेश हैं, मोर की रक्षा का उल्लेख नहीं है। किंतु इन दोनों ही लेखों में हिरन की रक्षा का उल्लेख है।

(६) पुरुष : सभी वर्गों के ऊँचे, नीचे या मध्यम श्रेणी के सरकारी कर्मचारियों के लिए पुरुष शब्द का प्रयोग किसी चट्टान लेख में नहीं मिलता। बाद में कई लेखों में जैसे, स्तं० ले० १, ४, ७ में इस शब्द का इस अर्थ में प्रयोग है।

(७) राजूक : च० ले० ३ में इनका उल्लेख मात्र है। पर स्तं० ले० ४ में इनके कार्य बतलाये गये हैं जो यह बतलाते हैं कि ये अशोक की निजी कल्पना हैं। इसी लेख में कानून और न्याय से संबंधित कुछ अधिकार भी जो चट्टान लेख ५ में धर्म-महामात्रों को दिये गये थे अब इन राजूकों को सौंप दिये गये हैं। इस प्रकार स्तं० ले० ४ चट्टान लेखों से बाद का होगा।

(८) स्तं० ले० ७ की स्थिति : सामान्य राय यह है कि स्तं० ले० ७ चट्टान लेखों से बाद का है। पर इधर कतिपय विद्वानों ने इस स्थापना को चुनौती दी है। उनका मुख्य तर्क यह है कि च० ले० २, ५ और १३ में अशोक की एक सबसे महत्त्वपूर्ण नवीन कृति अर्थात् अपने सीमांतों में ही नहीं बल्कि विदेशों में भी सार्वजनिक हित के निर्माण और धर्म-प्रचार का उल्लेख है, पर स्तं० ले० ७ में इसका कोई जिक्र नहीं। पर यह नयी धारणा सही नहीं है, पुराना मत ही ठीक है, यह बात नीचे लिखे तर्कों से सिद्ध हो जाती है :

(क) छूट या मौन का तर्क सदा भयावह माना गया है। इस मामले में तो वह खासकर है। इसमें कल्पना यह कर ली गयी है कि स्तं० ले० ७ में उन सभी बातों का उल्लेख है जो अशोक ने किये। पर यह कल्पना मात्र है। इस लेख में ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे इसका समर्थन हो। बल्कि इससे यह बात जरूर प्रकट होती है कि इस लेख में अशोक के उन सभी कार्यों का सार अवश्य है जो उसने अपने राज्यों में अपनी प्रजा के धार्मिक उत्थान के लिए संपन्न किये थे न कि विदेशों में। अतः यहां राजा की विदेश नीति या विदेशों में किये गये उसके कार्यों के उल्लेख की जरूरत न थी।

(ख) अतः स्तं० ले० ७ में उन सभी घरेलू उपायों का उल्लेख है जिनका विभिन्न चट्टान लेखों में जिक्र आया है। अनुभव के आधार पर अब इसमें कुछ का विस्तार से वर्णन है और कुछ का सामान्य ढंग से ही। यह बात नीचे लिखे उदाहरणों से स्पष्ट हो जाएगी : (i) चट्टान लेखों में उल्लिखित प्रधान अधिकारियों जैसे, राजूकों, महामात्रों और धर्म-महामात्रों का उल्लेख स्तं० ले० ७ में भी है; (ii) नव-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नियुक्त धर्म-महामात्रों के कार्यों का विस्तृत वर्णन च० ले० ५ में है, पर स्तं० ले० ७ में इनका सारांश दिया है; (iii) च० ले० २ में मनुष्यों और पशुओं के हित और सुख के लिए जिन सार्वजनिक निर्माणों का उल्लेख है, उनका पूरा उल्लेख स्तं० ले० ७ में भी है; सामान्य उल्लेखों के उदाहरण ये हैं: (iv) अशोक ने धर्म-प्रचार के लिए धर्म-संदेश (धंम-सावनानि) घोषित कराये (सावापितानि), अनेक धार्मिक उपदेश (धंमानुसथिनि विविधानि) आज्ञापित किये (आनपितानि), धर्म के उपदेश के लिए पुरुष और लजूका अधिकारी लगाए, धर्म-स्तंभ लगवाये, धर्म-महामात्र नियुक्त किए, धार्मिक संदेश लिखे (कटे); (v) अशोक का यह बयान कि लोगों की धार्मिक उन्नति दो तरह से हो सकती है (१) धंम-नियम, और (२) निझति अर्थात् आंतरिक चिंतन।

(ग) सबसे बड़ी बात यह है कि किसी बात का शामिल होना और किसी का न होना कालक्रम निर्धारित करने का अंतिम प्रमाण नहीं हो सकता। क्या च० ले० १४ में अशोक ने स्वयं इस संबध में चेतावनी नहीं दी है?—"न च सर्वं सर्वत्र घटितं", "सभी बातें सभी जगहों के लिए अनुकूल नहीं होतीं।"

(६) ल० च० ले० १ की स्थिति: हुल्ट्श और कुछ अन्य विद्वानों की इस राय से मैं सहमत हूँ कि यह अशोक का पहला लेख है। जैसा हुल्ट्श ने कहा है (कार्पस, पृ० ४४) इस लेख की रूपनाथ और सहसराम की वाचनाएँ कहती हैं कि (क) शिलाओं और स्तंभों पर लेख लिखाये जाएँगे, न कि लिखाये गये हैं (लाखापेतवय), (ख) मैसूर लेखों के साथ इनमें अशोक के धर्म के बीज तत्त्व हैं जिनका विस्तार चट्टान और स्तंभ लेखों में हुआ है।

जहाँ तक (क) का संबंध है, डा० बेणी माधव बरुआ ने आपत्ति उठाई है कि अशोक की शिलाओं और स्तंभों पर लेख लिखाने की इच्छा उसके तथाकथित अंतिम लेख स्तं० ले० ७ में भी व्यक्त हुई है: "इयं धंम लिबि अत अथि सिला-थंभानि वा सिला-फलकानि वा तत कटविया", "यह धर्म लिपि उन सभी जगहों में लिखाई जाये जहाँ पत्थर के खंभे और पत्थर के फलक उपलब्ध हों।" अतः इसके आधार पर कोई कालक्रम निर्धारित करना संभव नहीं, बशर्ते कि यह न मान लिया जाये कि स्तं० ले० ७ ल० च० ले० १ से पहले का है जिसमें चट्टान लेखों और स्तंभ लेखों का आभास है। डा० बरुआ की इस आपत्ति का उत्तर यह है कि अन्य आधारों पर भी यह सिद्ध किया जा चुका है कि स्तं० ले० ७ सबसे बाद का है। जहाँ तक इस वाक्य का संबंध है, ल० च० ले० १ में इसके तुल्य वाक्य से इसमें एक अंतर है। स्तं० ले० ७ में जो कुछ लिखाने को है वह एक खास लेख है "इयं धंम लिबि"—जबकि ल० च० ले० १ में हुल्ट्श के अनुसार (कार्पस, पृ० १६८) "अशोक की घोषणाओं का विषय अर्थात् बौद्ध प्रचार है, 'इय च अठे' है न कि सामान्य कथन—'इयं धंम लिपि लेखिता'"। भेद की अन्य बात यह है कि ल० च० ले० १ में राजा के संदेश पर्वतों पर लिखाने की बात जबकि स्तं० ले० ७ में सिला-फलकों पर उसे लिखाने का उल्लेख है। संभवतः इन दोनों के अर्थों में अंतर अभीष्ट था। शिलाफलक तो पर्वत और स्तंभ दोनों में मिल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सकते हैं। फिर तो स्तं० ले० ७ के इस वाक्य में स्तंभ लेखों से ही तात्पर्य होगा।

लघु चट्टान लेखों में अन्य भी बहुत से ऐसे उल्लेख हैं जिनसे अशोक के समूचे कालक्रम पर प्रकाश पड़ता है। इनका महत्त्व च० ले० १३ के उल्लेखों से तुलना करने पर स्पष्ट होगा। ये दो लेख नीचे दिये गये हैं :—

(१) ल० च० ले० १ : अढिकानि अढातियानि वसानि य हकं उपासके नो तु खो बाढं प्रकंते हुषं। एकं सवछरं सातिरेके तु खो संवछरें यं मया संघे उपयीते बाढं च मे पकंते (२-३ पंक्ति, ब्रह्मगिरि)।

(२) च० ले० १३ : पंक्ति १—अठ-वष अभिसितस देवनप्रिअस प्रिअद्रशिस रजो कलिग विजित......

पंक्ति २—ततो पच अधुन लधेषु कलिगेषु तिव्रे ध्रमशिलन ध्रमकमत ध्रमनुशस्ति च देवनप्रियस।

(१) में अशोक कहता है कि "अढ़ाई साल से अधिक हुए कि मैं उपासक हुआ था, मैंने इस बीच पराक्रम नहीं किया। पर परसाल—एक साल से अधिक ही हुआ कि मैं संघ में गया—मैंने खूब पराक्रम किया।"

(२) में अशोक कहता है कि "अभिषेक के आठवें साल में राजा ने कलिंग को जीता। उसके बाद जब कलिंग की विजय हो गयी तो राजा की धर्मशीलता, धर्म-प्रेम और धर्मोपदेश तीव्र हो गया।"

(२) में धर्म के लिए उत्साह तीव्र होने की तुलना (१) में पराक्रम वृद्धि (बाढम् च मे पकंते) से करनी चाहिए। (१) और (२) दोनों में अशोक के जीवन में धर्म के लिए पराक्रम के अभाव और पराक्रम में वृद्धि के चरणों का उल्लेख है।

इन दोनों तुलनाओं के आधार पर हम कालक्रम की दृष्टि से इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं :

(१) कलिंग की विजय ई० पू० २६२ में हुई (कैंब्रिज हिस्ट्री की अशोक के अभिषेक की तिथि ई० पू० २७० मानकर)।

(२) इस विजय से पूर्व "अढ़ाई वर्ष से अधिक" अशोक बौद्ध धर्म का उपासक था जब उसने धर्म के लिए कोई विशेष उत्साह नहीं दिखलाया। इस प्रकार संघ में अशोक की प्रवेश तिथि ई० पू० २६५ होती है जब वह उपासक बना और उसने अपना धर्म-परिवर्तन किया।

(३) ई० पू० २६२ के बाद अशोक ने अपने नये धर्म के प्रति पराक्रम दिखलाया। ई० पू० २६० तक अर्थात् 'एक साल के भीतर' उसके पराक्रम के फल का उल्लेख ल० च० ले० १ में है जिसकी तिथि ई० पू० २६० माननी होगी।

(४) उसके पराक्रम का दूसरा फल उसकी प्रथम धर्म-यात्रा—बोधगया की यात्रा हुई जिसका उल्लेख च० ले० ८ में है। यह यात्रा उसने अभिषेक के दसवें वर्ष में अर्थात् ई० पू० २६० में की थी।

(५) ई० पू० २५९ में दो पृथक् कलिंग लेख जारी हुए।

(६) ई० पू० २५८-२५७ में अन्य चट्टान लेख जारी हुए।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अध्याय ८

मूल अभिलेख

क लघु चट्टान लेख

१

(ब्रह्मगिरि)

पंक्ति

१ [स]ु व्[ा]ंणगिरीते अयपुतस महमाताणां च वचन[े]
न इसिलसि महामाता आरोगियं वतविया हेवं च
वतविया[1]
देवाणंपिये[2] आणपयति[3]

२ अधिकानि[4] अढातियानि व्[ा]सानि य हकं......सके[5]
नो तु खो बाढं प्रकंते हुसं
एकं सवछरं[6] सातिरेके तु खो संवछरें[7]

३ यं मया संघे उपयीते[8] बाढं च मे पकंते
इमिना चु कालेन अमिसा समाना
मुनिसा जंबुदीपसि

---

१. इस लेख की पहली पंक्ति में इस शब्द तक लेख उत्तरी वाचनाओं में नहीं मिलता। सिद्दपुर में "हेवं च वतविया" गायब है।
२. मास्की में यहाँ "देव[ा]न[ं]पियस असोक्[ा]स" मिलता है।
३. आह या आहा दूसरी वाचनाओं में।
४. सार्ति[र] केकानि (रूप०)।
५. रूप० य सुमि प्रकास [स]क[े]
वैरा० य हकं उपासके
सह० [अ]ं उपासके सुमि।
मास्की अं सु[ि]म बु[ध]-शके।
६. उत्तर की वाचनाओं में कालक्रम की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण "एकं सवछरं" गायब है।
७. संवछरे के लिए भूल से।
८. उपगते (मास्की); उपयाते (वैरा०); उपेते (रूप०)।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पंक्ति

४ मि[स]ा देवेहि[1]

पकमस हि इयं फले

नो हीयं सक्ये महात्पेनेव पापोतवे[2]

कामं तु खो खुदकेन पि

५ पर्कि[म]...णेण[3] विपुले स्वगे[4] सक्ये आराधेतवे[5]

ए[त्]ायठाय इयं सावणे सावापिते[6]

६ ....महात[प]ा[7] च इमं पकमे[यु] ि[त] अंता[8]

च मै[9] जानेयु[10] चिरठितीके च इयं

७ [पक[11]].........

इयं च अठे वढिसिति विपुलं च वढिसिति अवरधिया

दियढियं

८ [व]ि[ढ]सिति[12]

---

१. रूप० या [इ]माय कालाय जंबुदिपसि

सह० [एतेन च अंत] लेन जंबुदीपसि

मास्की पुरे जंबु...[ि]स

रूप० अमिसा देवा हुसु ते दानि [ि]मस[ा] कटा।

सह० अंमिसं-[दे]वा संत मुनिसा ि[म]सं-देव [कटा]

मास्की [ये अमिसा देवा हुसु] ते [दाि]न मिसिभूता।

२. वैराट [नो] हि ए[स]ˋ म[ह]तनेव चकिये।

मास्की न हेवं दखितविये [उडा]लके व इम अधिगछ[ˋ]या

३. मास्की में इस शब्द के स्थान पर "धम-युते[न]" शब्द का प्रयोग हुआ है जो बड़ा सारगर्भ है। जो शब्द यहाँ लिखा है वह भूल से पकममीणेण के लिए लिख दिया गया है।

४. मास्की में यहाँ अठे शब्द है।

५. अधिगतवे (मास्की)

६. रूप० एतिय अठाय च सावने कटे।

७. रूप० ख[ु]दका च उडाला।

८. रूप० और सिद्द० में "अटा" रूप मिलता है।

९. मे के लिए गलती से।

१०. जानंतु (रू०, स० और वैं०)।

मास्की का भिन्न पाठ है : [खुदक]ˋ[च][उड]लके च वतविया हेवं वे कलंतं भ[दक]ˋ[सि अठे ति से अठे चिरथि]टक[ˋ] च व[ढि]सिति चा दिय[ढि]यं हे[वं] ति; "जो लोग छोटे हैं या बड़े उनसे कहना : 'यदि आप ऐसा करेंगे तो शुभ (होगा) और चिरस्थायी होगा और फिर डेढ़ गुनी वृद्धि होगी'" (हुल्द्श)।

११. पकमे (सिद्द०); पलाकमे (सह०); पकरा (रूप०)।

१२. यहाँ रूपनाथ और सह० में कुछ नई सामग्री मिलती है :

रूप० इय च अठे पवतिस[ु] लेखापेत वालत

सह० इम च अठम् पवतेसु [लिखाप]यथा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पंक्ति

इवं च सावन[े] साव[ा]पते व्यूथेन २०० ५० ६[1]

२

(ब्रह्मगिरि)

(पूर्व लेख जारी)

८ से हेवं देवाणंपिये

९ आह

माता-पितिसु सुसू[ि]सतविये हेमेव गरु[सु] प्राणेसु द्रढ्यि-
तव्यं सचं

१० वतवियं से इमे धंम-गुणा पवतितविया
हेमेव अंतेवासिना

११ आचरिये अपचायितविये आतिकेसु च [क] य...रहं[2]
पवतितविये

१२ एसा पोरा[ण]ा प[ि] [क]ती द[ीघ]ावुसे च एस
हेवं एस कटिविये

१३ चपडेन लिखिते लि[पि]करेन[3]

ख. भाब्रू या बैराट सं० २ चट्टान लेख

१ [ि]प्रयद[ि]स ल[ा]जा मागधे संघं अभिवादे[तू]नं आहा
अप[ा]बाधतं च फासु-विहालतं चा

२ विदिते व[े] भंते आवतके ह[ा]मा बुधसि धंमसि
संघसी ति गालवे चं प्रसादे च
ए केचि भंते

(जारी)

रूप० हध च अथि साला-ठ्[भ]` सिलाठ[ं]भसि लाखापेतवय त

सह० य...[वा] अ[ि]थ हेता सिला-थं[भ]ा तत पि [लिखापयथ] ि[त] ।

इसके बाद रूपनाथ में निम्नलिखित वाक्य है जिसकी तुलना सारनाथ के लघु स्तंभ लेख से की जा सकती है :

रूप० एतिना च वयजनेना यावतक तुपक अहाले

सार० आवते च तुफाकं आहाले

रूप० सवर विवसेतवा[य] ति

सार० सवत विवासयाथ तुफे एतेन वियंजनेन

१. रूप० व्य[ ]ठेना सावने कटे २०० ५० ६ सत विवासा त ।
सह० इयं [च सवने] ि[व]वुथेन दुवे सपंना लाति-सता विवुथा ति २०० ५० ६ ।

२. यथारहं जटिंग-रामे० में ।

३. यह शब्द खरोष्ठी लिपि में लिखा है ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पंक्ति

३ भगवता बुधे[न] भासिते सवें से सुभासिते वा
ए चु खो भंते हमियाये दिसेया[1] हेवं सधंमे

४ चिल्[ा-ठि]तीके होसती ति अलहामि हकं तं व[ा]तवे[2]
इमानि भंत[े ध]ंमपलियायानि विनय-समुकसे

५ अलिय-वसाणि अनागत-भयानि मुनि-गाथा मोनेय-सूते उप-
तिस-पसिने ए चा लाघुलो—

६ वादे मुसा-वादं अधिगिच्य भगवता बुधेन भासिते
एतानि भंते धंम-पलियायानि इछामि

७ किंति बहुके भिखु-[प]ाये चा[3] भिखुनिये च[ा] अभि-
खिनं सुन[े]यु चा उपधाल्[ा]येयू चा

८ हेवंमेवा उपासका चा उपासिका चा
एतेनि[4] भंते इमं लिखा[प]यामि अभिप्रेतं मे
जनंतू ति

ग. कलिंग चट्टान लेख

१

(धौली)

१ [देवान]ं[पि]य्[ास वच]नेन तोसलियं म[हा]माता
[नग]लवि[यो]हालक[ा]

२ [व]तविय[5]
[अं किछि दखा]मि हकं तं इछामि [कि]ंति[त]कं-
[मनप]टि[पादय]ेहं

३ दुवालते च आलभेहं
एस च मे मोख्य-मत दुवा[ल एतसि अठ]सि अं
तुफ[ेसु]

४ अनुसथि
तुफे हि बहूसु पान-सहसेसुं आ[यत] प्[ा]न[यं]
[ग]छ[े]म सु मुनिसानं
सवे

---

१. जैसा डा० वेणी माधव बरुआ ने कहा है लेख के फलक में यह शब्द विसेयो मालूम पड़ता है (इं० हि० क्वा०, २, ८८)।

२. जैसा बरुआ ने दिखलाया है (वही) इसे वितवे पढ़ना चाहिए।

३. हुल्ट्श के फलक में यह अंश "भिखुपो ये चा भिखुनि ये चा," "बहुत लोग जो भिक्षु हैं या भिक्षुणी हैं" मालूम पड़ता है। यह बात बरुआ की बतलाई है (वही)।

४. एतेना के लिए भूल से।

५. जौगड़ में "देवानंपिये हेवं आहा : समापायं महामात नगलवियोहालक हेवं वतविया।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पंक्ति

५ मुनिसे पज ममा

अथ[ा] पजाये इछामि ह[ा]क[ं किति स]वे[न हि]त-
सुखेन हिदलो[किक]-

६ पाललोकिके[न] य[जेव] f[त] [तथा......मुनि]सेसु[१] पि [इ]
छामि [ह]क [ं]
नो च पापुनाथ आव[ा]-ग-

७ [म] [क]े [इयं अठे]
[क]े[छ] व[ा] एक-पुलि [से]...नाति[२] ए[त]ं से पि देसं
नो सवं
दे[ख]व[ा हि त] [फे] एतं

८ सुवि[हि]ता पि
f[न]तियं[३] एक-पुलिसे [पि अथि] य[े] वंधनं वा [प]ालि-
किलेसं वा पापुनाति
तत होति

९ अकस्मा तेन वधन [ं]तिक[ा] अंने च......हु जने[४]
दf [व]ये दुखीयति[५]
तत इछितविये

१० तुफेहि किति म[ा]भं पतिपादयेमा ति
इमे[f]ह चु [जाते]f[ह]
नो संपटिपजति इसाय आसुलोपेन

११ नि[ठु]लियेन तूलना[य] अनावूतिय आलसियेन [f]कलमथेन
से इछितविये किति[६] एते

१२ [जाता नो] हुवेवु म[म]ा ति
एतस च सव[स] मूले अनासुलोपे अ[तू]ल[ा]ना च
निति[य]ं ए किलंते सिया

१३ [न] ते उग[छ][७] संचलितविय[े] तु
वf[ट]तf [व]य[े] एतविये वा[८]
हेवंमेव ए द[खेय] त[ ]फाक[ा] तेन वतविये

---

१. पूरा रूप सव-मुनिसेसु होगा ।
२. पूरा रूप पापुनाति होगा जैसा जौगड़ में है ।
३. जौगड़ में बहुक अर्थात् बहुधा, अक्सर ।
४. जौगड़ में अन्ये च [व]गे बहुके ।
५. वेदयति (जौ०) ।
६. किंति के लिए मूल से ।
७. उथाय[ा] (जौ०); उगछ उगछे के लिए मूल से ।
८. एतविये पि नी[f]तयं (जौ०) ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पंक्ति

१४ आनंने देखत[1] हेवं च हेव्[ा]ं च [द]ेवानंपियस
अनुसथि
से[2] मह[ा-फ]ले [ए] त्[ा]स [संप]टिपाद

१५ महा-अपाये असंपटिपति
[वि]प[ि]टपादयमीने हि एतं नथि स्वगस [आ]लिध [=लधि] नो
लाज[ा]लि[ध]

१६ दुआ[ह]ले हि इ[म]स के कंम्[ास] म[े] कुते मन[ो]-अतिलेके
स[ं]पटिपजम[ो]न[े] चु [एतं] स्वग[ं]

१७ आलाध[यि]स[थ मम च आ]ननियं एहथ
इयं च [ि]ल[ि]प [ि]तसन[ख]तेन[3] सो[त]विय[ा]

१८ अंत[ल]ा ि[प] च ि[तस]े[न ख]नसि ख [न]ि[स] एकेन पि
सोतविय
हेवं च कलंतं तुफे

१९ चघथ संप[टि]पाद्[ि]यतवे
[ए]त[ा]ये अठाये इय[ं] ि[ल]ि[प] लिखित्[ा] ि[ह]द एन

२० नगल-वि[य]ो[हा]लका[4] सस्[व्]ातं समयं यूजेवू [ि]त......
[न]स[5] अकस्मा [प]लिबोधे व

२१ [अ]क्[ा]स्मा पलिकि[ल]े[स]े व नो सिया ति
एताये च अठाये हक[ं]...मते[6] प्[ा]ंचसु
पंचसु [व]से-

२२ सु[7] ि[नखा]म[ि]यसामि ए[8] अखखसे अ[चं]ड[े] स्[ा]खिना-
लंभे होसति एतं अठं जानितु......[त]था

२३ कल[ं]ति अथ मम अनुसथी इत्
उजेनिते पि चु कुमाले एताये व्[ा] अठाये [नि]खाम[यिस]
....

२४ हेदिसमेव वगं नो च अतिकामयिसति तिंनि वसनि
हेमेव त्[ा]खि[स]लाते पि
[अ]दा अ......

---

१. णिक्षप[े]त[वि]ये (जौ०)।
२. जौ० में एतं।
३. जौ० में अनुतिसं।
४. जौ० में "महामत नगलवियोहालक" है।
५. पूरा पाठ है एन जनस; जौ० में "एन [मुनि]स[ानं]" है।
६. इसे महामातं पढ़िये।
७. जौ० में यहां एक शब्द और है "मनु[स]यानं"।
८. जौ० में यहां ये शब्द हैं "महामात[ं] अचंड[ं] अफल[ुस]ं त"।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पंक्ति

२५ ते महामाता[१] निखमिसंति अनुसयानं तदा अहापयितु
अतने कंमं एतं पि जानिसंति

२६ तं पि त[था] कलंति अ[थ] लाजिने अनुसथी ति

२

(जौगड़)

१ देवानंपिये हेवं आ[ह]
समापायं महमता ल[ा]ज-वचनिक्[ा] वतविया[२]
अं किछि दख[ा]मि हकं तं इ[छ]ामि हकं [िं]कति
कं कमन

२ पटिपातयेह दुवा[ल]ते च आलभेहं
एस च मे मोखिय-मत्[ा] दुवाल्[ा] एतस अ[थ]स अ[ं]
त[़फ] ेसु अनुस[थि]

३ सव-मुनि-सा मे पजा
अथ पजाय[े] इछामि किंति मे सवेण हित-सु[ख] ेन
यु[जे]यू [अ]थ पजाये इछामि किं[ति] म[े] सवेन हित-सु-

४ ख[े]न युजेयू[३] ति हिदलोगिक-पाललोकि[क] े[ण] हेवं मेव
मे इछ सवमुनिसेसु
सिया अंतानं [अ]विजिता

५ -नं किं-छांदे सु लाजा अफेसू ति
एताका[४] [वा] मे इछ [अ] तेसु पापुनेयु लाजा हेवं
इछ्[ा]ति अनुवि[व]ि [ग]न ह्वे [यू]

६ ममियाये [अ]स्वसेयु च मे सुखं[म] ेव्[ा] च लहे य[़]
ममते [न]ो ख[ं][५] हेवं च पापुनेयु खमि[मस]ति
ने लाजा[६]

---

१. जौ० में यहां शब्द है "...वचनिक्[ा]"=शायद लाजवचनिक जो कि दूसरे कलिंग चट्टान लेख, जौगड़ में है।

२. धौ० का पाठ है : "देवानंपियस वचनेन तोसलियं कुमाले महामाता च वतविय"।

३. अंतिम आठ शब्द भूल से पुनः लिखे गए हैं। लिपिकार ने ऐसी भूलें कम ही की हैं (मिला० लिपिकरापराधेन, च० ले० १४)।

४. शायद एतका के लिए भूल से।

५. दुखं के लिए जैसा धौ० में है।

६. धौ० में इस शब्द के लिए "देवानंपिये अफाका ति" है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पंक्ति

७ ए सु[ा]किये खमितवे ममं निमितं च धंम[ं]
चलेय[ू]ति हिदलोग् [ं] च पललोगं च आलाधयेय[ू]
एताये

८ च अठाये हकं तुफेनि अनुसासामि अन[ने एत]केन
[ह]कं तुफेनि अ[नु]सासितु छंद[ं च] वेदि-

९ [त]ु आ मम धिति पतिना च अचल
स हेवं [क]ट्ट क्[ं]मे [च]लितविये अस्वासनि[न]या च् [अ]
ते एनृ[ा] ते पापुने-

१० यु अ[थ]ा पित [ह]ेवं [न]े लाजा ति अथ [अ]तानं अनुकंप[ि]त
[हे]वं अ[फ]ेनि अनुक[ं प]ति अथा पजा हे-

११ वं [मय]े लाि[ज]ने
तुफेनि हकं अनुसासित[१] [छ]ांदं [च व]े[दि]त[२]
[आ] [म]म धिति पटि[ं]ना चा अचल[३] [सक]ल-

१२ देसा-आय[ु]ि[त]के[४] होसामी एत[ा]सि [अ]थ[ि]स
[अ]लं[५] ि[ह] तुफे अस्वास[ना]ये हि[त]-सुखाये [च
ते]स[ं] हिद-

१३ लोगि[क]-प[ा]लल[ो]कि[क]ा[य]े
हेवं च कलंतं स्वग[ं च आ]लाधयिस[थ] मम
च आन[न]ेयं एस[ा][६]थ ए-

१४ ताये च अ[थ]ाये इ[य]ं लिपी लि[खत हि]द ए[न म]ह[ा]-
माता सास्वतं समं[७] युजेयू अस्वासनाये च

१५ धंम-चल[ना]ये [च] अंता[न]ं
इयं च लिपी अ[नु]च[ा] तुं[म]ासं[८] स[ोत]विया तिसेन
अंत[ला][९] पि च सोतविया

१६ खने संतं एके[न] पि [सोति]वया
हेव[ं] च [क]लं[त]ं चघथ संपटिपातयित[ावे]

---

१. अनुसासितु के लिए भूल से।
२. वेदितु के लिए भूल से।
३. धौ० के लेख में अंतिम छह शब्द नहीं मिलते।
४. धौ० में "देसावुतिके" पाठ है जो देसायुतिके के लिए भूल से लिखा है।
५. धौ० में पटिबला।
६. धौ० में एहथ।
७. समयं के लिए भूल से।
८. धौ० में इस शब्द के बाद "तिसेन नखतेन" पाठ भी है।
९. धौ० में यहाँ पाठ-भेद है : "कमं चु खणसि खनसि अंतला पि तिसेन"।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

घ. चौदह चट्टान लेख

१
(शाहबाजगढ़ी)

पंक्ति

१ [अय] ध्रम-दिपि[1] देवनप्रिअस रञो लिखपितु
हिद नो कि[ि]च जिवे अर[भितु प्]रयुहोतवे
नो पि च्[ा] सम[ज] कटव
व[हु]क [हि] दोष स[मय]स्पि
देवणप्रिय[े] प्रिअद्रशि रय्[ा द]खति

२ [अ]स्ति पि चु एकतिअ समये ससु-मते[2]
देवनपिअस प्रिअद्रशिस रञो
पुर[3] महन[स]ि [स देवनि]प्रअस
प्रिअद्रशिस रञो अनुदिवसो वहुनि प्र[ण]-शत-सहसनि
[अरभि]यिस[ु] सुपठये
स[ो इ]दनि[4] यद अय

३ ध्रम-दिपि लिखित तद अयो[5] वो प्रण हंञं[ि]त[6]
मजुर[7] दु[ि]व २ अ्रुगो १ सो पि अ्रुगो नो ध्रुव[ं]
एत पि प्रण त्रयो पच नो अरभिशंति

२
(गिरनार)

१ सवंत विजितम्हि[8] देवानंप्रियस पियदसिनो राञो
२ एवमपि प्रचंतेसु[9] यथा चोडा पाडा[10] सतियपुतो[11]
केतलपुतो[12] आ तंब-

---

१. इस शब्द के बाद जौ० में "खेपिंगलसि पवतसि" और धौ० में "...[सि पव]तसि" है।
२. साधु-मता (गिर०)।
३. पुलुवं (जौ०)
४. अज (गिर०, धौ० और जौ०)।
५. ती (गिर०), तिनो (काल०)।
६. आरभरे (गिर०)।
७. मोरा (गिर०), मजूला (जौ०)।
८. विजितसि (काल०), विजिते (शाह०)।
९. अंता (काल०), अत (मा०)।
१०. अन्यत्र पंडिया।
११. सातियपुतो (काल०), सतियपुत्रो (शाह०)।
१२. केरलपुत्र (मा०), केललपुतो (काल०), केरडपुत्रो (शाह०) के लिए भूल से।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पंक्ति

३ पंणी अंतियको योन-राजा ये वा पि तस अंतिय्[ा]कस्[ा] सामीप्[ां][1]

४ राजानो सर्वत्र देवानंप्रियस प्रियदसिनो राञो द्वे चिकीछा कता

५ मनुस-चिकीछा च पसु-चिकीछा च ओसुढानि च यानि म्[ा]नुसोपगा[ि]न च

६ पसो[प]गानि च यत यत नास्ति सर्वत्रा हारापितानि च रोप[ा]पितानि[2] च[3]

७ मूलानि च फलानि च यत यत्र नास्ति सर्वत हारापितानि च रोप[ा]पितानि च

८ पंथेसू[4] कूपा[5] च खानापिता व्रछा[6] च रोपापित[ा] परिभोगाय[7] पसुमनुसानं

३
(गिरनार)

१ देवानंपियो पियदसि र[ा]जा एवं आह द्वादस-वासा-भिसितेन मया इदं आञ्[ा]पितं

२ सर्वत विजिते मम युता च राजूके च प्रादेसिके च पंचसु पंचसु वासेसु अनुसं-

३ य[ा]न[ं] ि[न]यातु[8] एतायेव अथाय इमाय धंमानुसस्टिय यथ अञा-

४ य पि कंमाय्[ा] [स]ाधु मातरि च पितरि च सुस्रूसा मित्र-संस्तुत-ञातीनं बाम्हण-

---

१. अन्यत्र सामंता ।
२. वुत (शाह०) ।
३. शाह० में यहाँ से प्रारम्भ कर पंक्ति ८ में पंथेसु शब्द तक लेख नहीं है ।
४. अन्यत्र मगेसु ।
५. अन्यत्र उदुपानानि ।
६. लुखानि (काल०, धौ० और जौ०), रछनि (मा०) । शाह० में यहाँ से तीन शब्द नहीं हैं
७. पटिभोगाये (काल०, धौ० और जौ०) ।
८. निक्रमतु (शाह० और मा०), निखमंतु (काल०), निखमावु (धौ० और जौ०) ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पंक्ति

५ समणानं साध[ु द]ानं प्राणानं[1] साधु अनारंभो
अप-व्ययता अप-भाडता[2] साधु

६ परिसा पि युते आञपयिसति गणनायं हेतुतो च व्यंजनतो
च

४

(गिरनार)

१ अतिकातं अंत[ा]रं बहूनि वास-सतानि वधितो एव प्राणा-
रंभो विहिंसा च भूतानं ञातीसु

२ अस[ं]प्रतिपती ब्रा[म्]हण-स्रमणानं[3] असंप्रतीपती
त अज देवानंप्रियस प्रियदसिनो राञो

३ धंम-चरणेन [भे]री-घोसो अहो धंम-घोसो विमान-
दर्सणा च हस्ति-द[स]णा च

४ अगि-ख्[ा]ंधानि[4] च [अ]ञानि च दिव्यानि रूपानि दसयित्पा
जनं
यारिसे बहूहि व[ास]-सतेहि

५ न भूत-पुवे तारिसे अज वढिते देवानंप्रियस प्रिय-
दसिनो राञो धंमानुसस्टिया अनारं-

६ [भ]ो प्राणानं अविहीसा भूतानं ञातीनं संपटिपती
ब्रम्हण-समणानं[5] संपटिपती मातरि पितरि

७ [स]ुस्रुसा थैर[6]-सुस्रुसा
एस अञे च बहुविधे [ध]ंम-चरणे व[ढि]ते
वढयिसति चेव देवानंप्रियो

८ [प्रि]य[द]सि राजा धंम-[च]रणं इदं
पुत्रा च [प]ोत्रा च प्रपोत्रा[7] च देवानंप्रियस
प्रियदसिनो राञो

---

१. धौ० और जौ० में जोवेसु।
२. अन्यत्र अपभंडता।
३. समास के दोनों शब्द अन्यत्र उलट गए हैं।
४. शाह० में जोति-कंधनि।
५. धौ० में समन-बामनेसु।
६. बुढ-सुस्रुसा (धौ०), बुढनं सुश्रुष (शाह०)।
७. नताले चा पनातिक्या चा (काल०)।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पंक्ति

९ [प्र]वधयिसति इदं [ध]ंम-चरणं आव सवट-
कपा[1] धंमम्हि सीलम्हि तिस्टन्तो [ध]ंमं अनुसा-
सिसंति

१० [ए]स हि सेस्टे[2] कंमे य धंमानुसासनं
धंम-चरणे पि न [भ]वति असीलसा
[त]इमम्हि अथम्हि

११ [व]धी च अहीनी च साधु
ए[त]ाय अथाय इद[ं] लेखापित[3] इमस अथ[स] व्[ा]धि
युजंतु हीनि च्[ा]

१२ [नो] लोचेतव्या[4]
द्वादस-वासाभिसितेन देवान्[ा]ंप्रियेन प्रियदसिना
राञ्[ा] इदं लेखापितं[5]

५

(मानसेहरा)

१ दे[वनं]प्रियेन प्रियद्रशि रज एव[ं] अह
कलण[ं] दुकर[ं]
ये अदिकरे कयणस से दुकरं करोति
तं मय बहु
[क]अयणे [क]टे
[त]ं म[अ] पुत्र [च]

२ नतर[ॆ] च पर च त्[ॆ]न ये अपतिये[6] मे [अ]व-[क]पं
तथ अनुवटीशति से सुकट क[ष]ति
ये [चु] अत्र देश पि हपेशति[7] से दुकट कषति[8]

३ पपे हि नम सुपदरवे[9]
स[ॆ] अतिक्रत[ं] अ [ं]तर[ं] न भुत-प्रुव ध्रम-
[म]हमत्र नम

१. आ-कपं (धौ०), आव-कपं (काल०)।
२. शाह० में स्रेठं।
३. शाह० में निपिस्तं।
४. अलोचयिसु (काल०, मा०, धौ० और जौ०)।
५. निपेसितं (शाह०)।
६. शाह० में "मे अपच व्रक्षंति" है।
७. हापयिसति (काल० और धौ०)।
८. कछंति (काल० और धौ०)।
९. यहाँ गिर० का पाठ है "सुकरं हि पापं"।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पंक्ति

से त्रेडश-व[ष]भिसितेन मय ध्रम-महमत्र
कट
ते सव्र-प[ष]डेष

४ वपुट ध्रमधिथ[न]ये च ध्रम-वध्रिय हिद-
सुखये च ध्रम-युतस योन-कंवोज-गधरन[1]
रठिक-पितिनिकन[2] ये व पि अब्रे अपरत[3]
भटमये-

५ पु ब्रमणिभ्येपु अनथेषु वुध्रेषु[4] हिद-सु[खये]
ध्रम-युत-अपलिवोधये[5] विय[प]ुट ते
वधन-ब्रध[स] पटिवि[धनय] े अपलिबोधये
मोक्षय[े] [च इयं]

६ अनुबध प्रज[6] [f]त व कट्रभिकर ति व महलके[7]
ति व वियप्रट ते
हिद[8] वहिरेषु च नगरेषु सव्रे सु[9] [ओ]रोधनेसु[10]
भतन[11] च स्पस[ु]न[12] [च]

७ ये व पि अब्रे ञतिके सव्रत्र वियपट
[ए] इयं ध्रम-निशितो[13] तो व ध्रमधिथने ति व
दन-संयुते ति व सव्रत्र विजितसि[14] मध्र ध्रम-युतसि
वपुट [ते]

---

१. गंधारानं (गिर०)।
२. रिस्टिक-पेतेणिकानं (गिर०); रठिकनं पितिनिकनं (शाह०); लठिक-पितेनिकेसु (धौ०)।
३. अपरंत (शाह०), आपलंता (धौ०)।
४. महालकेसु (धौ०)।
५. अपरिगोधाय (गिर०), अपलिगोध (शाह०)।
६. पजाव (काल०)।
७. थैरेसु (गिर०)।
८. पाटलिपुते च (गिर०)।
९. धौ० में "सवेसु सवेसु" है।
१०. इस शब्द और इससे अगले शब्द के बीच धौ० में "मे ए वा पि" भी है।
११. भातीनं (धौ०); भतुन के लिए भूल से भतन।
१२. भगिनीनं (धौ०)।
१३. धंम-निस्रितो (गिर०)।
१४. धौ० में "सव-पुठवियं" है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पंक्ति

८ ध्रमं-महमत्र

एतये अथ्रये अयि ध्रम-दिपि[1] लिखित[2] चिर-थितिक[2] होतु

तथ च मे

प्रज अनुवटतु

६

(गिरनार)

१ [देवा]........[3] [स] राजा एवं आह

अतिक्रात[ं] अंतर [']

२ न भूत-प्रु[व्][4].[स्].[व्]...[ल्].[5] अथ-कंमे व पटि-

वेदना वा

त मया एवं कटं

३ स्[ा]वे काले भुंज्[ा]मानस[6] मे[7] ओरोधनम्हि गभागा-

रम्हि वचम्हि व

४ विनीतम्हि च उयानेसु च सवत्र पटिवेदका स्टिता अथे मे

[ज]नस

५ पटिवेदेथ[8] इति

सर्वत्र च जनस अथे करोमि

य च किंचि मुखतो

६ आञपयामि स्वयं[9] दापकं वा स्रावापकं[10] वा य वा

पुन महामात्रेसु

७ आचायि[के][11] अरोपितं भवति[12] ताय अथाय विवादो निझती

व[ा स्]ंतो परिसायं

---

१. अन्यत्र लिपि ।

२. शाह० में निपिस्त ।

३. पूरा पाठ है "देवानंप्रियो पियदसि" ।

४. पढ़िए "-पुवं" ।

५. पूरा पाठ सवे काले ।

६. अदमानसा (काल०), अशमनस (शाह०), अशतस (मा०) ।

७. धौ० और जौ० में 'मे अंते ओलोधनसि" पाठ है ।

८. जौ० में "प्रटिवेदयंतु मे ति" ।

९. शाह० और मा० में अहं ।

१०. काल०, धौ० और जौ० में सावकं ।

११. काल०, धौ० और जौ० में अतियायिके ।

१२. काल०, मा०, धौ० और जौ० में होति ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पंक्ति

८ आनंतरं[१] प[ि]टवेदेत[व्]यं मे[२] स[र्]वत्र सर्वे
काले
एवं मया आनपितं[३]
नास्ति हि मे तो[स]ो

९ उस्टानम्हि अथ-संतीरणाय व
कतव्य-मते हि मे स[र्वं] लोक-हितं

१० तस च पुन एस मूले उस्टानं च अथसंतीरणा च
नास्ति हि कंमतरं

११ सर्व-लोक-हितत्पा[४]
य च किंचि पराक्रमामि अहं किंति भूतानं
आनंणं गछेयं[५]

१२ इध च नानि[६] सुखापयामि परत्रा च स्वगं[७] आराध-
यंतु त[८]
एताय अथाय

१३ अयं ध[ं]म-लिपी लेखपिता[९] किंति चिरं तिस्टेय इति[१०]
तथा च मे पुत्रा पोता च प्रपोत्रा च

१४ अनुवतरं सव-लोक-हिताय
दुकरं [त]ु इदं अञत्र अगेन पराक्रमेन

७

(शाहबाजगढ़ी)

१ देवनंप्रियो प्रियशि[११] रज सवत्र इछति सव-

---

१. शाह० में अनंतरियेन।
२. शाह० में मूल से पांचवीं पंक्ति में सर्वत्र शब्द से लेकर यहाँ तक की इबारत फिर से लिख दी गई है।
३. धौ० और जौ० में "हेवं मे अनुसथे" पाठ है।
४. अन्यत्त "सव-लोक-हितेन" पाठ है।
५. अन्यत्त येहं और शाह० में व्रचेयं पाठ है।
६. काल०, धौ० और जौ० में कानि, शाह० में ए और मा० में चे।
७. शाह० में स्पग्रं।
८. काल० और मा० में से=अमी, अव।
९. शाह० में "ध्रम निपिस्त"।
१०. "चिरथितिक भोतु" (शाह०), "चिल-ठितिक्या होतु" (काल०)।
११. पढ़िये प्रियद्रशि।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पंक्ति

२ [प्]रषंद वसेयु
सवे हि ते सयमे भव-शुधि च इछंति
३ जनो चु उचवुच-छंदो उचवुच-रगो
ते सव्र व एक-देशं व
४ पि कषंति
विपुले पि चु दने यस नस्ति सयम भव-
५ शुधि किट्रनत हढ़-भतित निचे पढम्[1]

८

(शाहबाजगढ़ी)

१ अतिक्रतं अतरं देवनंप्रिय विहर-यत्र नम
निक्रमिषु[2]
अत्र म्रुगय अञनि च एदिशनि अभिरमनि अभुवसु[3]
सो देवनंप्रियो प्रियद्रशि रज दशवषभिसितो सतं
निक्रमि[4] सबोधि[5]
तेनद ध्रंम-यत्र
अत्र इयं होति श्रमण-ब्रमणानं[6] द्रशने दनं
वुढन[ं][7] दशन हिरञ-प्[त्र]टिविधने च [जन]-
पदस जनस द्रशन ध्रमनुशस्ति ध्रम-प[रि]प्[रु]-
छ च ततोपयं
एषे भुय[े र]ति[8] भोति देवनंप्रियस प्रियद्रशिस रञो
भगो अंञि

९

(कालसी)

१ देवानंपिये पिय्[ा]दर्[स] ला[जा] आहा
जन[े] उच[ाव]ुचं मंगलं क[ल]ेति आवाधसि अव[ाह]सि

---

1. अन्यत्र बाढं।
2. नयासु (गिर०)।
3. अहुंसु (गिर०), हुसु (काल०), हुवंति नं (धौ०, जौ०)।
4. अयाय (गिर०)।
5. संबोधि (गिर०)।
6. बाम्हण-समणानं (गिर०)।
7. थैरानं (गिर०)।
8. अभिलामे (धौ० और जौ०)।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पंक्ति

विवाहसि पजोपदाने[1] पवाससि ए[ता]ये अंनाये चा एदिसाये
जने बहु मगल[ं] क्[ा]लेति
हेत [च] अबक-जनि[यो][2] बहु चा बहुविधं चा
खुदा[3] [च]ा निलथिया चा मगलं क[ल]ंति

२ से कटवि[4] चेव खो मंगले
अप-फले [च] खो [ए]स[े]
[इ]यं चु खो-मह[ा]-फ्[ा]ले ये धंम-मगले
हे[ता][5] इयं दास-भटकसि स्[ा]म्यापटिप्[ा]ति गुलुना
अपचिति [प]ा[न]ान्[ां] संयमे स्[ा]मन्[ा]-बंभना-
नं[6] दाने एसे अंने चा हेडिसे ।[7] धंम-मगले नामा
से वर्त[व]ये पितिना पि पुतेन पि भ[ा]तिना पि सुवामिकेन्[ा][8]
पि मित-संथुतेन[ा] अव पटिवेसियेना [पि]

३ इयं साधु इयं कटविये [म]ग्[ा]ले आव [त]सा अथसा
नि[व]तिया[9] इमं कछामि ति
ए हि इ[त]ले मगले स[ं]सयिक्ये से
सिया व तं अठं निवटेय[ा] सिया पुना नो
हि[द]लोकिके चेव्[ा] से
इयं पुना धंम-मगले अकालिक्य[े]
हंचे पि तं अठं नो निटेति[10] हिद अठम्[11] पलत
अनंतं पुना पवसति[12]
हंचे पुन तं अठं निवतेति हिदा ततो उभये[स]

४ लधे होति हिद चा से अठे पलत चा अनंतं पुना[13]
पसवति तेना धंम-मगलेन[ा]

---

१. कालसी के व्याकरण के अनुसार उपदान का सप्तमी का रूप '-असि' में अंत करना चाहिए । अत: यह पजोपदाये होना चाहिए जैसा कि धौ०, जौ० और गिर० में "पुत्र-लाभेसु" रूप मिलता है ।
२. महिडायो (गिर०), स्त्रियक (शाह०), इथी (धौ०) ।
३. छुदं (गिर०), पुतिक (शाह०) ।
४. कटविये के लिए भूल से ।
५. ततेत (गिर०), अत्र (मा०), ततेस (धौ०) ।
६. गिर० में सामान्य रूप "बम्हण-समणानं" ही है ।
७. इस विराम चिह्न को सेनार्ट और बुह्लर तं पढ़ते हैं ।
८. स्पंइकेन (शाह० और मा०) ।
९. निस्तानाय (गिर०), निफतिया (धौ०) ।
१०. निवटेति (मा०) के लिए भूल से ।
११. अथ (शाह०) के लिए भूल से ।
१२. पुंनं पसवति के लिए भूल से ।
१३. पढ़िये पुंनम् ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

९
(गिरनार का पाठ[1])

पंक्ति
६ अस्ति च पि वुतं
७ साधु दन[2] इति
न तु एतारिसं अस्ता[3] दानं व अन[ग]हो[4] व यारिसं
धंम-दानं व धमनुगहो व
त तु खो मित्रेन व सुहदयेन [व]ा
८ ञतिकेन[5] व सहायन[6] व ओवादितव्यं तम्हि तम्हि
पकरणे [इ]दं कचं इदं साध[7] इति इमिना सक्[ा]
९ स्वगं आराधेतु इति
कि च इमिना कतव्यतरं यथा स्वगारधि

१०
(कालसी)

१ देवा[नं]पिये पिय्[ा]दषा[8] लजा य्[ा]षो वा किति वा नो [म]ह-
थावा[9] मनति अन्[ा]ता [य]ं पि यसो वा किं[त] वा इछ्[ा]ि[त]
तदत्वाये अयतिये[10] चा जने धंम-सुसुषा सुसुषातु मे ति
धंम-वतं वा अनुविं[ध]य[ं]तु ति
धत[क]ाये[11] देवान[ं]पिये पियदसि
२ लाजा यषो वा किति वा इछ[12]
अं च[ा] किछि लकमति[13] देवनंपिये पियदषि लजा त

---

१. कालसी में पाठभेद तीसरी पंक्ति में निशुतिया शब्द से शुरू होता है। धौली और जौगड़ के पाठ गिरनार के आधार पर ही लिखे गए हैं।
२. दानं के लिए भूल से।
३. अस्ति के लिए भूल से।
४. अनुगहो के लिए भूल से।
५. ञातिकेन के लिए भूल से।
६. सहायेन के लिए भूल से।
७. साधु के लिए भूल से।
८. पियदषि के लिए भूल से।
९. गिर० में महात्पावहा।
१०. गिर० में तदात्पनो दिघाय।
११. एतकाये के लिए भूल से।
१२. इछति के लिए भूल से।
१३. पलकमति के लिए भूल से।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पंक्ति

[ष]व पालंतिक्याये[१] वा किति सकले अप-प्[ा]लाषवे[२]
षियाति ति
[ए]षे चु पलिसवे ए अपुने
दुकले चु खो एषे खुदकेन वा वगेना[3] उषुटेन वा
अन[त] अगेन[ा प]लकमेना षव[ं] पलितिदितु
[ह]ं[त चु] खो
३ [उ]षटे[न] वा दुकले

११
(शाहबाजगढ़ी)

१ देवन[ं]प्रियो प्रियद्रशि रय एवं हहति
नस्ति ए[दि]दशं दनं यदिशं ध्रम-दन ध्रम-
संस्तव[े] घ[्र]म-संविहगो घ[्र]म-संब[ं]ध
तत्र एतं[४] दस-भटकनं संम्म-पटिपति मत-
पितुषु सुश्रुष मि[त्]त्र-संस्तुत-अतिकनं श्रमरण-
ब्रमणन
२ दन प्रणन अनर[ं]भो
एतं वतवो पितुन पि पुत्रेन पि भ्रतुन पि [स्प]मिकेन
पि मित्र-संस्तुतन[५] अव प्रतिवेशियेन [इ]म[ं] सधु
इमं कटवो
सो तथ करत[ं] इअलोक च अ[र]धेति परत्र च
अनतं पुन प्रसवति[६]
३ [ते]न ध्रम-दनेन

१२
(गिरनार)

१ देवानंपिये पियद[ा]सि राजा सव-पासंडानि च [प]व-
जितानि च घरस्तानि च पूजयति द[ा]नेन च विवाधाय[७]
[च] पूजाय पूजयति ने

---

१. गिर० में पारत्रिकाय ।
२. -पलिषवे के लिए मूल से ।
३. गिर० में जनेन ।
४. गिर० में तत इदं भवति है ।
५. -संस्तुतेन के लिए मूल से ।
६. संस्कृत प्रसव्यते; गिर० में भवति है ।
७. विविधाय के लिए मूल से ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पंक्ति

२ न तु तथा दानं व पू[जा] व द[े]वानंपियो मंञते
यथा किति सार-वधी अस स[व-पा]संडानं
सार्[ा]-वधी तु बहुविधा

३ तस तु इदं मूलं य वचि-गुती किंति आत्प-पासंड-
पूजा व पर-पासंड-गरहा व नो भवे अप्रकरणंहि
लहुका व अस

४ तम्हि तम्हि प्रकरणे
पूजेतया तु एव पर-पासंडा तेन तन[1] प्रकरेण[2]
एवं करुं आत्प-पासंडं च[3] वढयति पर-पासं-
डस च उपकरोति

५ तद्-अंनथा करोतो आत्प-पासडं च छणति[4] पर-
पासंडस च पि अपकरोति
यो हि कोचि आत्प-पासंडं पूजयति पर-पासंडं व्[ा]
गरहति

६ सवं आत्प-पासंड-भतिया किंति आत्प-पासंडं दीप-
येम इति सो च पुन तथ करातो[5] आत्प-पासंड[ं]
वाधतरं उपहनाति
त समवायो[6] एव साधु

७ किंति [अ]ञमंञस धंमं स्रुणारु च सुसुंसेर च
एवं हि द[े]वानंपियस इछा किंति सव-पासंडा
बहु-स्रुता च असु कल[ा]णागमा च अ[सु]

८ ये च तत्र तत प्रसंना तेहि वतव्यं
देवानंपियो नो तथा दानं व पूजां व मंञते
यथा किंति सार-वढी अस सर्व-पासडानं
वहका[7] च एताय

९ अथा[8] व्यापता धंम-महामाता च इथीझख[9]-महा-
माता च वचभूमिका[10] च अञे च निकाया

---

१. तेन के लिए भूल से।
२. शाह० और मा० में अकरेन।
३. काल० और मा० में बढं।
४. शाह० में क्षणति।
५. करोतो के लिए भूल से। शाह० में यहाँ से पाँच शब्द भूल से फिर से लिखे गए हैं।
६. शाह० में सयमो।
७. बहुका के लिए भूल से।
८. एतायाठाये (का०)।
९. इथिधियख- (का०); इस्त्रिधियक्ष- (शाह०); इस्त्रिजक्ष- (मा०)।
१०. व्रच- (मा०)।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पंक्ति

अयं च एतस फल य अात्प-पासंड-वढी च होति
धंमस च दीप्[ा]ना

१३

(शाहबाजगढ़ी)

१ [अठ]-वष-अ[भि]f [स]त[स देवन]प्रि[अ]स प्रि[अ]द्रशिस र[ञो]
क[लिग] विf [ज]त[1]
दिअध-मत[ा॒]ॆ प्रण-शत-[सह]स्रॆ य[ॆ] ततो अंपवुढे
शत-सहस्र-मत्रे[2] तत्र हते[3] वहु-तवत[के व] म[ुटे]
२ ततो [प]च अ[धु]न लध[ॆ]षु [कलिगेषु तिव्रॆ ध्रम-
शिलन][4] ध्र[म-क]मत ध्रमनुशस्ति च देवन-
प्रियस
सो [अ]स्ति अनुसोचन देवनप्[रिअ]स विजिनिति कलिग[नि]
३ अविजितं [हि वि]जिनमनो यो तत[त्र] वध व मरणं व
अपवहो व जनस तं बढं व[ॆ]दनि[य]-म[तं]
गुरु-मत[ं] च देवनंप्रियस
इदं पि चु [ततो] गुरु-मततरं [देवनं]प्रियस ये
तत्र
४ वसति ब्रमण व श्रम[ण][5] व अ[ं]ञे व प्रषंद
ग्र[ह]थ[6]व येसु विहित एष अग्रभुटि-सुश्रुष मत-
पितुषु सुश्रुष गुरुन सुस्रुष मित्र-संस्तुत-सहय-
५ ञतिकेषु दस-भटकनं सम्म-प्रतिप[ति] दृढ़-भतित
तेष तत्र भोति [अ]पग][त्र]थो[7] व वढो व अभिरतन व
निक्रमणं[8]
येष व पि सुविंहितनं [सि]हो[9] अविप्रहिनो [ए ते]ष मित्र-
संस्तुत-सहय-ञतिक वसन

---

१. काल० में कलिग्या विजिता।
२. सत-सहस्र-मात्रम् (गिर०)।
३. तत्रा हतं (गिर०)।
४. धंमवायो (गिर०)।
५. यहाँ सभी वाचनाओं में ब्राह्मण श्रमण से पहले आता है।
६. गिहिथा (काल०)।
७. उपघाते (काल०)।
८. विनिखमण (गिर०)।
९. सिनेहो के लिए मूल से।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पंक्ति

६ प्रपुणाति [त]त्र तं पि तेष वो अपग्रथो भोति
प्रतिभगं च [ए]तं सव्र-मनुशनं गुरु-मतं
च देवनंप्रिय[स]
नस्ति[1] च एकतरे पि प्रषडस्पि न नम प्रसदो
सो यमत्रो[2] [ज]नो तद कलिगे [ह]तो च मुट[ो] च अप-
व[ुढ] च ततो

७ शत-भगे व सहस्र-भगं व [अ]ज गुरु-मतं व[ो]
देवनंप्रियस
यो पि च अपकरेयति क्षमितविय-मते व देवनं-
पि[्र]यस यं शको क्षमनये
य पि च अटवि देवनंप्रियस विजिते भोति त पि अनुनेति
अनुनिजपेति[3]
अनुतपे पि च प्रभवे

८ देवनंप्रियस वुचति तेष किति अवत्रपेयु न च [ह]-
ञेयसु
इछति हि द[े]वनंप्रियो सव्र-भुतन अक्षति स[ं]य-
मं सम[च]रियं रभसिये[4]
अयि च मुख-मुत[ा] विजये देवनंप्रिय[स] यो
ध्रम-विजयो
सो च पुन लधो देवनंप्रियस इह च सवेषु च
अंतेषु

९ [अ] षषु पि योजन-श[त] ेषु यत्र अंतियोको नम य[ो]न-रज
परं च तेन अतियोक[े]न[5] चतुरे ४ रजनि तुरमये
नम अंतिकिनि नम मक[6] नम अलिकसुदरो नम
निच चोड-पंड अव त[ं]बपं[णि]य
[ए]वमेव [हि]द रज-विषवस्पि[7] योन-क[ं]वोयेषु
नभक-नभितिन[8]

---

१. यहाँ कालसी (और मा० में) निम्नलिखित पाठभेद है :
नथि चा से जन[ा]पदे यता नथि इमे निकाया अानता य[ो]नेष[ु]। बंह्मने च[ा] षमने चा नथि चा कुवापि जन[ा]पदपि [य]ता न[ा]थि म[ा]नुषान[ा] एकतल[ि]ष पि पापडषि।

२. यावतको (गिर०)।

३. अनुनिझपेति के लिए मूल से; मा० में अनुनिझपयति पाठ है।

४. मादव (गिर०)।

५. अंतियोगेना (काल०)।

६. मगा (गिर०)।

७. राज-विसयम्हि (गिर०)।

८. नाभक-नाभपंतिषु (काल० और मा०)।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पंक्ति

१० भोज-पितिनिकेषु अंध्र-पलिदेषु[१] सवत्र देवनं-
प्रियस धमनुशस्ति अनुवटंति
यत्र पि देवनंप्रियस दुत नो व्रचंति[२] ते पि
श्रुतु देवनंप्रियस ध्रम-वुटं विध[ा]नं
ध्रमनुशस्ति ध्रमं [अ]नुविधियिशं[ति] च
यो [स] लधे एतकेन भो[ति] सवत्र विजयो सव[त्र] पु[न]

११ विजयो प्रिति-रसो सो
लध भ[ोति] प्रिति ध्रमं-विजयस्पि
लहुक तु खो सो प्रिति
परत्रि[क]मेव महु-फल मेव्रति देवन[ं]प्रियो
एतये च अठये अयि ध्रम-दिपि निपि[स्त] किति पुत्र
पपोत्र मे असु नवं विजयं व विजेत[ि]वम्र[३] मत्रिषु
स्प[कस्पि][४] यो विजय[े क्षं]ति[५] च लहु-द[ं]डत च
रोचेतु तं च यो विज[६] मत्र[तु]

१२ यो ध्रम-विजयो
सो हिदलोकिको परलोकिको
सव-चति-रति भोतु य [ध]त्रंम-रति
स हि हिदलोकिक परलोकिक[७]

१४

(गिरनार)

१ अयं धंम-लिपी[८] देवानंप्रियेन प्रियदसिना[९] र[ा]ञा
ल[े]खापिता[१०] अस्ति एव

---

१. पारिंदेसु (गिर०); पालदेपु (काल०)।
२. यंति (काल० और मा०)।
३. विजेतव्यं (गिर०), विजयतविय (काल०)।
४. सरसके (गिर०), पयकवि (काल०)।
५. छाति (गिर०)।
६. विजयं के लिए भूल से।
७. गिरनार के पाठ में बाइं ओर दो कटी-पिटी लाइनें हैं। पहली पंक्ति में हुल्ट्श ने त[था] शब्द पढ़ा है। इसे वे प्रसिद्ध बौद्ध मंत्र "हेतुं तेषां तथागतो ह्यवदत्। तेषां च" आदि का एक अंश मानते हैं। दूसरी पंक्ति में वे ि[पप]ा अक्षर पढ़ते हैं। उनका अनुमान है कि इसके बाद लिपिकरेण शब्द रहा होगा।

इसी पाठ में दाइं ओर ये शब्द हैं: [स]वं-स्वेतो हस्ति सर्व-लोक-सुखाहरो नाम", "पूरा सफेद हाथी, सबके लिए सुख लाने वाला।"
८. ध्रम-दिपि (शाह० और मा०)।
९. प्रिशि[न] (शाह०)। प्रियद्रशिन के लिए भूल से।
१०. शाह० में निपेसपित।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पंक्ति

२ संखित[ ]न अस्ति मझमेन अस्ति विस्ततन[1]
न च[2] सवं [प]वंत घटितं[3]

३ महालके हि विजितं बहु च लिखितं लिखापयिसं चेव[4]
अस्ति च एत कं[5]

४ पुन पुन वुतं[6] तस तस अथस माधुरताय किंति[7]
जनो तथा पटिपजेथ

५ तत्र एकदा[8] असमात्[ा] लिखितं अस देसं[9] व सछाय[10]
[का]रनं व

६ [अ]लोचेत्पा लिपिकरापरधेन व[11]

ङ. सात स्तंभ लेख

१

१ देवानंपिये पियदसि लाज हेवं आहा
सडुवीसति-

२ वस-अभिसितेन मे इयं धम-लिपि लिखापिता

३ हिदत-पालते दुसंपटिपादये अंनत अगाया धंम-
कामताया

४ अगाय पलीखाया अगाय सु[सू]याया अगेन भयेना

५ अगेन उसाहेन
एस चु खो मम अनुसथिया

---

१. विस्ततेन के लिए भूल से; वियटेना (काल० और जौ०); विस्त्रिटेन (शाह०)।
२. हि=के लिए, दूसरे पाठों में।
३. शाह० में गटिते, जो घटिते के लिए भूल से लिखा है।
४. काल० में इसके बाद निक्यं=नित्यं शब्द है।
५. काल० में एत कं के स्थान पर हेता शब्द है। शाह० और मा० में अत्र है।
६. लपितं (शाह०)।
७. काल०, शाह० और मा० में येन।
८. तत्र एकदा के ये भेद हैं :
काल० ये साया अत [ि]कछि
शाह० सो सिया व अत्र किछे
धौ० और जौ० ए पि चु हेत असमति
९. दिसा (का०), देशं (शाह०)।
१०. संखय (शाह० और मा०); संखेये (काल०)।
११. दिपिकरस व अपरधेन (शाह०)।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पंक्ति

६ धंमापेखा धंम-कामता चा सुवे सुवे वढिता
वढीसति चेवा

७ पुलिसा पि च मे उकसा चा गेवया चा मझिमा चा अनुवि-
धीयंती

८ संपटिपादयंति चा अलं चपलं समादपयितवे
हेमेवा अंत-

९ महामाता पि
एस हि विधि या इयं धंमेन पालना धंमेन
विधाने

१० धंमेन सुखियना धंमेन गोती ति

२

१ देवानंपिये पियदसि लाज

२ हेवं आहा
धंमे साधू कियं चु धंमे ति
अपासिनवे बहु कयाने

३ दया दाने सचे सोचये
चखु-दाने पि मे बहुविधे दिंने
दुपद-

४ चतुपदेसु पखि-वालिचलेसु विविधे मे अनुगहे कटे आ
पान-

५ दाखिनाये
अंनानि पि च मे बहूनि कयानानि कटानि
एताये मे

६ अठाये इयं धंम-लिपि लिखापिता हेवं अनुपटिपजंतु
चिलं-

७ थितिका च होतू ती ति
ये च हेवं संपटिपजीसति से सुकटं कछती ति

३

१ देवानंपिये पियदसि लाज हेवं आहा
कयानंमेव देखति इयं मे

२ कयाने कटे ति
नो मिना पापं द[े]खति इयं मे पापे कटे ति इयं वा
आसिनवे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पंक्ति

३ नामा ति
दुपटिवेखे चु खो एसा
हेवं चु खो एस देखिये
इमानि
४ आसिनव-गामीनि नाम अथ चंडिये निठूलिये कोधे माने
इस्या
५ कालनेन व हकं मा पलिभसयिसं
एस वाढ देखिये
इयं मे
६ हिदतिकाये इयंमन मे पालतिकाये

४

१ देवानंपिये पियदसि ल[ा]ज हेवं आहा
सडुवीसति-वस-
२ अभिसितेन मे इयं धंम-लिपि लिखापिता
लजूका मे
६ बहूसु पान-सत-सहसेसु जनसि आयता
तेसं ये अभिहाले वा
४ दंडे वा अत-पतिये मे कटे किंति लजूका अस्वथ अभीता
५ कंमानि पवतयेवू जनस जानपदसा हित-सुखं उपद-
हेवू
६ अनुगहिनेवु चा
सुखीयन-दुखीयनं जानिसंति धंम-युतेन च
७ वियोवदिसंति जनं जानपदं किंति हिदतं च पालतं
च
८ आलाधयेवू ति
लजूका पि लघंति पटिचलितवे मं
पुलिसानि पि मे
९ छंदंनानि पटिचलिसंति
ते पि च कानि वियोवदिसंति येन मं लजूका
१० चघंति आलाधयितवे
अथा हि पजं वियताये धातिये निसिजितु
११ अस्वथे होति वियत धाति चघति मे पजं सुखं पलि-
हटवे
१२ हेवं ममा लजूका कटा जानपदस हित-सुखाये
येन एते अभीता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पंक्ति

१३ अस्वथ संतं अविमना कंमानि पवतयेवू ति एतेन मे
लजूकानं

१४ अ[भि]हाले व दंडे वा अत-पतिये कटे
इछितविये हि[ह] एसा किंति

१५ वियोहाल-समता च सिय दंड-समता चा
अव इते पि च मे आवुति

१६ बंधन-बधानं मुनिसानं ती[ि]लत-दंडानं पत-
वधानं तिंनि दिवसा[न] मे

१७ योते दिंने
नातिका व कानि निझपयिसंति जीविताये तानं

१८ नासंतं वा निझपयिता[1] दानं दाहंति-पालतिकं
उपवासं व कछंति

१९ इछा हि मे हेवं निलुधसि पि कालसि पालतं आलाधयेवू ति
जनस च

२० वढति विविधे धंम-चलने संयमे दान-सविभागे ति

५

१ देवानंपिये पियदसि लाज हेवं आहा
सडुवीसति-वस-

२ अभिसितेन मे इमानि जातानि अवधियानि कटानि सेयथा

३ सुके सालिका अलुने चकवाके हंसे नंदीमुखे गेलाटे

४ जतूका अंबा-कपीलिका दली अनठिक-मछे वेदवेयके

५ गंगा-पुपुटके संकुज-मछे कफट्[ा]-सयके पंन-
ससे सिमले

६ संडके ओकपिंडे पलसते सेत-कपोते गाम-कपोते

७ सवे चतुपदे ये पटिभोगं नो एति न च खादियती
............[2]

८ [ए]लका चा सूकली चा गभिनी व पायमीना व अवधि[य्.
पं. त] के[3]

९ पि च कानि आसंमासिके
वधि-कुकुटे नो कटविये
तुसे सजीवे

---

1. निझपयितवे (बिहार के तीन स्तंभ लेखों में)।
2. अजका नानि (अन्य तीन पाठों में)।
3. इसे अवधिया पोतके पढ़िये।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पंक्ति

१० नो झापेतविये
दावे अनठाये वा विहिसाये वा नो झापेतविये
११ जीवेन जीवे नो पुसितविये
तीसु चातुंमासीसु तिसाय़ं[1] पुंनमासियं
१२ तिंनि दिवसानि चावुदसं पंनडसं पटिपदाय[ं]
धुवाये चा
१३ अनुपोसथं मछे अवधिये नो पि विकेतविये
एतानि येवा दिवसानि
१४ नाग-वनसि केवट-भोगसि यानि अंनानि पि जीव-निकायानि
१५ नो हंतवियानि
अठमी-पखाये चावुदसाये पंनडसाये तिसाये
१६ पुनावसुने तीसु चातुंमासीसु सुदिवसाये गोने नो नील-
खितविये
१७ अजके एडके सूकले ए वा पि अंने नीलखियति नो नीलखितविये
१८ तिसाये पुनावसुने चातुंमासिये चातुंमासि-पखाये
अस्वसा गोनसा
१९ लखने नो कटविये
याव-सडुवीसति वस-अभिसितेन मे एताये
२० अंतलिकाये पंनवीसति बंधन-मोखानि कटानि

६

१ देवानंपिये पियदसि लाज हेवं आहा
दुवाडस-
२ वस-अभिसितेन मे धंम-लिपि लिखापिता लोकसा
३ हित-सुखाये से तं अपहटा तं तं धंम-वढि
पापोवा
४ हेवं लोकसा हित-[सुखे] ति पटिवेखामि अथ इयं
५ नातिसु हेवं पतियासंनेसु हेवं अपकठेसु
६ किमं[2] कानि सुखं अवहामीति तथ च विदहामि
हेमेवा
७ सव-निकायेसु पटिवेखामि
सव-पासंडा पि मे पूजिता

---

१. तिसा=तिष्या से। अन्य पाठों में तिसि से बने तिसियं शब्द का प्रयोग होता है।
२. बिहार के पाठों में किमं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पंक्ति

८ विविधाय पूजाया
ए चु इयं अत्[ा] ना पचूपगमने

९ से मे मोख्य-मते
सड्वीसति-वस-अभिसितेन मे

१० इयं धंम-लिपि लिखापिता

७

१ देवानंपिये पियदसि लाजा हेवं आहा
ये अतिकंतं

२ अंतलं लाजाने हुसु हेवं इछिसु कथं जने

३ धंम-वढिया वढेया नो चु जने अनुलुपाया धंम-
वढिया

४ वढिया
एतं देवानंपिये पियदसि लाजा हेवं आहा
एस मे

५ हुथा
अतिकंतं च अंतल्[ा][1] हेवं इछिसु लाजाने कथं
जने

६ अनुलुपाया धंम-वढिया वढेया ति नो च जने अनुलु-
पाया

७ धंम-वढिया वढिथा
से किनसु जने अनु[प]टिपजेया

८ किनसु जने अनुलुपाया धंम-वढिया वढेया ति
[f]कनसु कानि

९ अभ्युंनामयेहं धंम-वढिया ति
एतं देवानंपिये पियदसि लाजा हेवं

१० आहा
एस मे हुथा
धंम-सावनानि सावापयामि-धंमानुसथिनि

११ अनुस[ा]सामि
एतं जने सुतु अनुपटीपजीसति अभ्युंनमिसति

१२ धंम-वढिया च वाढं वढिस[f]त
एताये मे अठाये धंम-सावनानि सावापितानि धंमा
नुसथिनि विविधानी आनपितानि [य]......[इस]ा[2] पि बहुने

---

१. अंतलं के लिए भूल से ।

२. पूरा पाठ यथा पुलिसा ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पंक्ति

जनसि आयता ए ते पलियोवदिसंति पि पविथलिसंति पि
लाजूका पि बहुकेसु पान-सत-सहसेसु आयता ते पि मे
आनपिता हेवं च हेवं च पलियोवदाथ

१३ जनं धंम-यु[त]

[देव]ानंपिये पियदसि हेवं आहा
एतमेव मे अनुवे-खमाने धंम-थंभानि कटानि
धंम-महामाता कटा धं[म].ा...[1] कटे
देवानंपिये पियदसि लाजा हेवं आहा
मगेसु पि मे निगोहानि लोपापितानि छायोपगनि होसंति
पसु-मुनिसानं अंबा-वडिक्या लोपापिता
अढ-[को]ि [स]क्यानि पि मे उदुपानानि

१४ खानापापितानि निंसि[ढ]या च कालापिता

आपानानि मे ब[हु]ुकानि तत तत क[ा]लापितानि पटीभो-गाये
प[ा]सु-मुनिसानं
[ल]......[2] एस पटीभोगे नाम
विविधाया हि सुखायनाया पुलिमेहि पि लाजीहि ममया च
सुखयिते लोके
इमं चु धंमानुपटीपती अनुपटीपजंतु ति
एतदथा मे

१५ एस कटे

देवानंपिये पियदसि हेवं आहा
धंम-महामाता पि मे ते बहुविधेसु अठेसु अनुग-
हिकेसु वियापटासे पवजीतानं चेव गिहिथानं च
सव.. [ड] ेसु[3] पि च वियापटासे
संघठसि पि मे कटे इमे वियापटा होहंति ति हेमेव
बाभनेसु आ[ज] ीविकेसु पि मे कटे

१६ इमे वियापटा होहंति ति निगंठेसु पि मे कटे इमे वियापटा

होहंति नाना-पासंदेसु पि मे [क]टे इमे वियापटा
होहंति ति पटिविसिठं पटीविसिठं तेसु तेसु [ते]...
माता[4] धंम-महामाता चु मे एतेसु चेव विया[प]टा सवेसु
च अंनेसु पासंडेसु
देवानंपिये पियदसि लाजा हेवं आहा

---

१. अर्थात् धंम-सावने ।
२. पूरा पाठ लहुके चु ।
३. पूरा पाठ सव-पासंडेसु ।
४. पूरा पाठ ते ते महामाता ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पंक्ति

१७ एते च अंने च बहुका मुखा दान-विसगसि वियापटासे
मम चेव देविनं च सवसि च मे ओलोधनसि ते
बहुविधेन आ[का]लेन तानि तानि तुठायतन[ा]नि पटी
......[1] हिद चेव दिसासु च
दालकानं पि च मे कटे अंनानं च देवि-कुमालानं
इमे दान-विसगेसु वियापटा होहंति ति

१८ धंमापदानठाये धंमानुपटिपतिये
एस हि धंमापदाने धंमपटीपति च या इयं दया
दाने सचे सोचवे मधवे साध[व][2] च लोकस हेवं
वढिसति ति देवानंपिये [प...स.[2] ल]ाजा हेवं आहा
यानि हि [क]ानिचि ममिया साधवानि कटानि तं लोके
अनूप्[ा]टीपंने तं च अनुविधियंति
तेन वढिता च

१९ वढिसंति च माता-पि[ि]तसु सुसुसाया गुलुसु सुसुसाया वयो-
महालकानं अनुपटीपतिया बाभन-समनेसु कपन-
वलाकेसु आव दास-भटकेसु संपटीपतिया
देवानं[ि]प[य्...य]दसि[3] लाजा हेवं आहा
मुनिसानं चु या इयं धंम-वढ़ि वढिता दुवेहि
येव आकालेहि धंम-नियमेन च निझतिया [च]

२० तत चु लहु से धंम-नियमे निझतिया व भुये
धंम-नियमे चु खो एस ये मे इयं कटे इमानि च
इमानि जातानि अवधियानि
अंनानि पि चु बहु[क्]...[4] धंम-नियमानि यानि मे
कटानि
निझतिया व चु भुये मुनिसानं धंम-वढि वढिता
अविहिंसये भुतानं

२१ अनालंभाये पानानं
से एताये अ[थ]ाये इयं कटे पुतापपोतिके चंदमसु-
लियिके होतु ति तथा च अनुपटीपजंतु ति
हेवं हि अनुपटीपजंतं हि[द]त-[पाल]ते आलधे होति

१. बुहलर के मत से पटीपावयंति; पटीवेदयंतु ।
२. पढ़िये पियदसि ।
३. पढ़िये-पिये पियदसि ।
४. पढ़िये बहुकानि ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पंक्ति·

सतविसति-वसाभि[ſ]सतेन मे इयं धंम-लिबि लिखा-
पापिता ति
एतं देवानंपिये आहा
इयं

२२ धंम-लिवि अत अथि सिला-थंभानि वा सिला-फलकानि वा
तत कटविय एन एस चिल-ठितिके सिया

च. चार लघु स्तंभ लेख

१

(सारनाथ)

१ देवा[1]...
२ एल्......
३ पाट[2]......ये[3] केनपि संघे भेतवे
ए् चुं खो
४ [भिख]ॢ [वा भिख]ुनि वा संघं भ[ाखſ]त[4] स[ॆ]
ओदातानि दुस[ा]ſ[न] [स]ंनंघापयिया आनावाससि
५ आवासयिये
हेवं इयं सासने भिखु-संघसि च भिखुनि-
संघसि च विंनपयितवे
६ हेवं देवानंपिये आहा
हेदिसा च इका लिपी तुफाकंतिकं हुवति संसलनसि
निखिता
७ इकं च लिपिं हेदिसमेव उपासकानंतिकं निखिपाथ
ते पि च उपासका अनुपोसथं यावु
८ एतमेव सासनं विस्वंसयितवे अनुपोसथं च धुवाये
इकिके महामाते पोसथाये
९ याति एतमेव सासनं विस्वंसयितवे आजानितवे च
आवते च तुफाकं आहाले
१० सवत विवासयाथ तुफे एतेन वियंजनेन
हेमेव सवेसु कोट-विषवेसु एतेन

---

१. पढ़िये देवानंपिय।
२. अर्थात् पाटलिपुत्र।
३. वोयर ने पूरा किया "न सकिये"।
४. वेनिस ने पढ़ा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पंक्ति

११ वियंजनेन विवासापयाथा

२

(कौशांबी)

१ [देवानं] पि[य]ये आनपयति
कोसंबियं महाम[ा]त

२ ....[स]मगे क]टे
स[ं]घ[ा]सि नो ल[ा]हिये

३ ....[संघं भा]खति भिख[ु] व[ा] भिख[ु]नि
वा [से पि] चा

४ [ओ]दात[ा]नि दुसानि [स]नंधपयितु अ[नावा]स[सि]स [आ]व[ा]-
सयिय[े]

३

(सांची)

१ ....

२ ...[य]ा भे[त]...[1]
...[घ] े[2]...मगे[3] कटे

३ [भि]खून[ं] च भि[खुन]ीनं च[ा] ति [पु]तु-प-

४ [पो]तिके चं[द]मू[ा-सू]रि[यि]के
ये संघं

५ भ[ा]खति भिखु वा भिखुनि वा ओदाता-

६ नि दुस[ा]नि [न] सनं[धाप]यि[य]तु अना[वा]-

७ससि वा[सा]पेतविय[े]
इछा हि मे कि-

८ ति संघे समगे चिल-थितीके सिया ति

४

(रानी का लेख)

१ देवानंपियषा व[ा]चनेना सवत महमता

२ वतविया
ए हेता दुतियाये देवीये दाने

---

१. पढ़िये भेतवे, जैसा सारनाथ लघु स्तंभ लेख की तीसरी पंक्ति में है।

२. पढ़िये संघे।

३. पढ़िये समगे, जैसा आठवीं पंक्ति में है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पंक्ति

३ अंवा-वडिका वा आलमे व दान-[गह] ॆ [व ए वा पि अ]ंने

४ कीछि गनीयति ताये देविये षे नानि
[हे]वं......[न]...[1]

५ दुतीयाये देविये ति तीवल-मातु कालुवाकिये

छ. स्मारक स्तंभ लेख

१

(रुम्मिनदेई)

१ देवान[पि]येन पियदसिन लाजिन वीसति-वसाभिसितेन

२ अतन आगाच महीयिते हिद बुधे जाते सक्यमुनी ति

३ सिला विगडभी चा कालापित सिला-थभे च उसपापिते

४ हिद भगवं जाते ति
लुंमिनि-गामे उबलिके कटे

५ अठ-भागिये च

२

(निग्लीव)

१ देवानंपियेन पियदसिन लाजिन चोदसवसा [भसि]-
त[ॆ]नु[ा]

२ बुधस कोनाकमनस थुबे दुतियं वढिते

३ ...साभिसितेन[2] च अतन आगाच महीयिते

४ ....पापिते[3]

ज. गुफा लेख

१

(निग्रोध)

१ लाजिना पियदसिना दुवाडस-[वसाभिसितेना]

२ [इयं निगोह-]कुभा दि[न अजीविकेहि]

२

(खलतिक पर्वत)

१ लाजिना पियदसिना दुवा-

२ डस-वसाभिसितेना इयं

---

१. हुल्‍ट्श ने पूरा किया विनती=सं० विज्ञप्ति ।

२. बुइलर ने पूरा किया वीसति वसाभिसितेन जैसा रुम्मिनदेई के लेख की पहली पंक्ति में है ।

३. रुम्मिनदेई में तीसरी पंक्ति के बाद बुइलर ने पूरा किया सिला-थभे च उसपापिते ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पंक्ति

३ कुभा खलतिक-पवतसि
४ दिना [आजीवि]केहि

३
(खलतिक पर्वत, सं० २)

१ लाज पियदसी एकुनवी-
२ सति-वसा [भ]सि[त] ` ज[लघ] ो-
३ [सागम]थात [मे] इ[यं कुभा]
४ सुं [पय] ` ख.........[1] [दि]-
५ ना[2]

---

१. पढ़िये खलतिकपवतसि ।

२. लेख के अंत में स्वस्तिक और छुरे की आकृतियाँ बनी हैं जिसके नीचे मछली की आकृति है। टी० एच० जैक्सन ने चौथी पंक्ति को यों पढ़ा है "सुपिये ख आजीविकेहि वि-" (ज० बि० उ० रि० सो०, १२, ५२)। उनका कहना है कि खाली जगह में पाँच अक्षरों के लिए ही स्थान है न कि दस अक्षरों के लिए जैसा हुल्ट्श का अनुमान है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परिशिष्ट ग

अशोक के लेखों की लिपि, विभाषा और व्याकरण

अशोक के लेख दो लिपियों में लिखे हैं जिनके नाम हैं खरोष्ठी और ब्राह्मी। खरोष्ठी एक घसीट लिपि है जो दायें से बायें लिखी जाती है। इसका मूल सेमेटिक अरामैक लिपि में खोजा गया है। इसी अरामैक में ईरान के अखमनी सम्राट दारा के लिपिक लिखा करते थे। किंतु इस महान् राजा के पर्सीपोलिस, नक्शी-रुस्तम या बेहिस्तुन के लेख एक दूसरी ही लिपि-स्मारक कीलाक्षर में लिखे मिलते हैं। सिल्वां लेवी ने इस लिपि को खरोष्ठी कहा है क्योंकि भारत से बाहर जिस प्रदेश में यह लिपि सबसे पहले मिली थी उसका नाम खरोष्ठ है। इस लिपि की एक विशेषता यह है कि इसमें दीर्घ स्वर नहीं हैं। अशोक के लेखों में शाहबाजगढ़ी और मानसेहरा के लेख इसी लिपि में लिखे हैं। मैसूर के ल० च० ले० २ के अंत में चपड़ लिपिकार का संक्षिप्त नोट भी इसी लिपि में है।

अशोक के अन्य सभी लेख ब्राह्मी में लिखे हैं। यह बायें से दायें लिखी जाती है और सभी भारतीय लिपियों की जननी है। बर्मी, तिब्बती और सिंहली लिपियाँ भी इसी से निकली हैं। इस लिपि का मूल भी बुइलर ने सेमेटिक में ढूंढा है। उसकी राय में ई० पू० ८०० के आसपास मेसोपोटामिया से व्यापारिक संपर्क के फलस्वरूप यह लिपि भारत में आयी। किंतु खरोष्ठी का जितना संबंध अरामैक से है ब्राह्मी का सेमेटिक लिपि से नहीं। अतः बुइलर के मत की मान्यता को अधिकांश विद्वानों ने अस्वीकार कर दिया है। इस मान्यता को अस्वीकार करने वाले विद्वानों में कनिंघम सबसे पहला है। उसका कहना है कि सेमेटिक लिपि हमेशा दायें से बायें लिखी जाती थी जबकि ब्राह्मी इसके ठीक उलटे। पर बुइलर ने दिखलाया है कि ब्राह्मी भी पहले दायें से बायें लिखी जाती थी। इसके कुछ चिह्न तो अशोक के लेखों में भी मिलते हैं। इनमें कुछ अक्षर जैसे ध्, त् और ओ उलटे लिखे मिलते हैं। कुछ संयुक्ताक्षर जैसे त्प, स्त, और व्य, ऐसे लिखे जाते हैं मानो वे प्त, त्स और य्व हों। अथवा धर्म, कर्म और मुर्गो जैसे शब्द ध्रम, क्रम और म्रुगो लिखे जाते हैं। पर ब्राह्मी की भारतीय उत्पत्ति का सिद्धांत कतिपय विद्वानों ने बड़े जोरदार शब्दों में कतिपय प्रागैतिहासिक लेखों के आधार पर प्रतिपादित किया है। ये लेख भूतपूर्व निजाम राज्य में कतिपय प्रस्तरचिति से मिले मिट्टी के वर्तनों पर मिले हैं और अशोक की लिपि से मिलते-जुलते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अशोक के लेखों में जो दो लिपियाँ इस्तेमाल में आयी हैं और उनमें प्रयुक्त वर्णमाला जितनी पूर्ण है उसके विकास में स्पष्ट ही काफी समय लगा होगा। इसके पूर्व सदियों से उनका विकास चल रहा होगा तब जाकर कहीं इतने पूर्ण रूप में वे इन लेखों में मिलती हैं। ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति पर विचार करते समय हमें उपर्युक्त तथ्य सदा ध्यान में रखना होगा। इस संबंध में वैदिक साहित्य में, जैसे शतपथ ब्राह्मण, पाणिनि और विनय पिटक में प्रचुर सामग्री मिलती है। शतपथ ब्राह्मण को लिंग और वचन का अंतर ज्ञात है। इन सभी ग्रंथों में मिले प्रमाणों से स्पष्ट है कि भारत में लेखन-कला का इतिहास काफी पुराना है।

अशोक के लेखों में रूप और व्याकरण के पर्याप्त भेदों के दर्शन होते हैं। इनसे स्पष्ट है कि ये लेख मोटे तौर पर दो विभाषाओं में लिखे गए थे। इनमें एक को पूर्वी और दूसरी को पश्चिमी कह सकते हैं। पूर्वी के उदाहरण धौली और जौगड़ के चट्टान लेख और अधिकांश स्तंभ लेख हैं। इनमें प्रथमा एकवचन शब्द एकारांत होते हैं र् के लिए ल् का प्रयोग और सप्तमी एकवचन -असि में अंत करते हैं, संयुक्त का लोप हो जाता है। पश्चिमी के उदाहरण गिरनार में हैं। इस विभाषा में प्रथमा एकवचन ओकारांत और र्, प्र् और त्र् का इस्तेमाल है और सप्तमी एकवचन -अम्हि में अंत करता है।

अशोक के दरबार की और मानक भाषा पूर्वी थी। यही समूचे साम्राज्य की राष्ट्रभाषा थी। स्थानीय आधार पर इसमें यत्किंचित रूपविकार अवश्य हो जाते हैं जैसा कि उत्तर में कालसी के लेखों में और दक्षिण में मैसूर में देखा जा सकता है। कालसी में अकारांत को दीर्घ करने की प्रवृत्ति है। ऊष्म ध्वनियों की इसकी अपनी विशेषता है। मैसूर में र् के स्थान पर ल् का प्रयोग नहीं मिलता। इसमें तालव्य और मूर्धन्य अनुनासिक का प्रयोग मिलता है (जैसे ञातिक, प्राणेसु में)।

पश्चिमी भाषा में शाहबाजगढ़ी और मानसेहरा के लेखों में स्थानीय भेद मिलते हैं। संभवत: इनमें तक्षशिला के वाइसराय की सरकारी भाषा का इस्तेमाल है। गिरनार, शाहबाजगढ़ी और मानसेहरा की एक विशेषता संस्कृत शब्दों के इस्तेमाल की है, जैसे, प्रिय, पुत्र आदि। इसका कारण लिपिक का संस्कृत ज्ञान नहीं जैसा कि तुरंत मान लिया जाता है, अपितु वहाँ की स्थानीय भाषा में पुरागत प्रयोग अधिक थे। अत: यह पूर्वी लेखों की पालि या मागधी की अपेक्षा संस्कृत के अधिक नजदीक थी।

पूर्वी अथवा अशोक के लेखों की मानक भाषा को मागधी नाम दे सकते हैं बशर्ते यह ध्यान में रखा जाये कि यह व्याकरण और नाटक ग्रंथों में प्रयुक्त हूबहू परंपरानिष्ठ मागधी प्राकृत नहीं है। उदाहरण के लिए अशोक की मागधी में सिर्फ दंत्य स, जैसे सुसूसा में (सिर्फ कालसी में ही षुषुसा का इस्तेमाल है), खास मागधी प्राकृत में तालव्य श का ही इस्तेमाल मिलता है (शुश्शुसा)।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्पष्ट है कि शाहबाजगढ़ी और मानसेहरा की विभाषा चौदहों लेखों की अन्य वाचनाओं की अपेक्षा संस्कृत के अधिक निकट है। किंतु साथ ही जैसा माइकेलसन ने कहा है कि इस विभाषा को हम सीधे संस्कृत से निकली नहीं मान सकते। इसके कुछ रूप संस्कृत की अपेक्षा अवेस्ता से इसका तदात्म्य स्थापित करते हैं, जैसे अतिक्रातम् (गिर०), सुस्रुसा, सुस्रुसताम् (गिर०), अवेस्ता के सुस्रुसेम्नो के अनुरूप है, गिर० का स्रुणारु, शाह० का श्रुणेयु और मान० का श्रुणेयु, अवेस्ता के सुरुनओइति से मिलते हैं न कि सं० शृणोति से। इन पुरागत रूपों के साथ-साथ इस विभाषा में अनेक नये रूप भी मिलते हैं जो मागधी, मध्य-भारतीय (प्राकृत) के हैं जैसे एक वर्ग के विराम का दूसरे वर्ग के विराम में लोप। गिरनार, शाहबाजगढ़ी, और मानसेहरा की वाचनाओं में मागधी के इन प्रयोगों से यही अनुमान होता है कि मूल पांडुलिपि से ये रूप यथावत् ले लिये गये हैं। स्थानीय बोलियों के लिए ये रूप विदेशी ही रहे होंगे। लेख मूलतः उसी भाषा में रचित हुए थे जिसका प्रतिनिधित्व धौली, जौगड़ और कालसी के चौदह चट्टान लेख और छह स्तंभ लेख करते हैं। शाह०, मान० और गिरनार की वाचनाएँ इसी मूल प्रति के अनुवाद हैं जिसमें इस मूल मागधी के भी कुछ तत्त्व ले लिए गए हैं जो उस समय की राजभाषा थी और उन स्थानों में भी समझ ली जाती थी जहाँ की वह विभाषा न थी। ध्यान देने की बात यह है कि जहाँ तक ध्वनि-विज्ञान का संबंध है ऋग्वेद में भी मध्य-भारतीय के चिह्न वर्तमान हैं। रूप-विधान की दृष्टि से महाकाव्यों की संस्कृत में मध्य-भारतीय (प्राकृत) के तत्त्व बिखरे पड़े हैं। इसलिए तथ्य यह है कि शाह० और मान० की विभाषा विकास की मध्य-भारतीय अवस्था का द्योतक नहीं है। भूगोल की दृष्टि से उम्मीद भी यही है।

प्रसंगतः ध्यान दिला दें कि अशोक के लेखों के इस उदाहरण से वह सिद्धांत भी संभव नहीं प्रतीत होता जिसमें यह माना जाता है कि वैदिक मंत्रों की रचना के युग में भी भारतीय विभाषाओं के दो स्पष्ट वर्ग बन चुके थे जो एक दूसरे से कत्तई नहीं मिलते थे। यदि अशोक के समय में भी इतनी स्पष्ट विभाजन रेखा नहीं खींची जा सकती तो उससे भी पहले के युगों में इसकी सभावना कैसे की जा सकती है? निष्कर्ष की बात जैसा कि माइकेलसन ने कहा है यह है कि संस्कृत बोलचाल की भाषा थी यद्यपि इसका वही रूप न था जो साहित्य में मिलता है। बाद की क्लासिकल संस्कृत भी नितांत कृत्रिम न थी। साहित्य के इतने विशाल भंडार से ही सिद्ध हो जाता है कि उसके पाठक और श्रोता रहे होंगे जिनकी बोलचाल की भाषा उससे नितांत भिन्न न रही होगी। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि यह श्रोता-वर्ग समाज का सभ्य वर्ग ही रहा होगा।

इस प्रकार अशोककालीन विभाषा मध्य-भारतीय (प्राकृत) भाषाओं की उत्पत्ति पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालती है (दे० माइकेलसन की कृतियाँ, विशेषकर ज० अ० ओ० सो०, ३० और ३३ जिसके आधार पर यह टिप्पणी लिखी गयी है)।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नीचे लिखे विशिष्ट उदाहरणों से लेखों की विभाषागत भाषागत विशेषताओं और भेदों का पता चल जाएगा :

संस्कृत	अशोक की पश्चिमी	अशोक की पूर्वी
मृगः	मगो (गिर०)	मिगे
	म्रुगो (शाह०)	
मयूराः	मोरा (गिर०)	मजुला
	मजुर (शाह०)	
वृक्षाः	व्रछा (गिर०)	लुखानि
	रुछनि (मान०)	
स्थित्वा	तिठिति (शाह०)	चिठितु
चिकित्सा	चिकीछ	चिकिस
अत्र	एत	हेत
तादृशम्	तारिसं	तादिसे
पुलिंदेषु	पारिंदेसु (गिर०)	पालदेषु (का०)
आत्ययिकम्	आचायिके	अतियायिके
गृहस्थ	ग्रहथ,	गहथ
	घरस्त	
मृतम्	मुटे, मतम्	मटे
व्युष्टेन		व्यूठेना, विवुथेन
विस्तृतेन	विस्ततन (गिर०)	विथटेन
	विस्त्रिटेन (शाह०)	
पृथिव्याम्		पुठवियम्
अधिकृत्य		अधिगिच्य
परित्यज्य	परिचजित्पा (गिर०)	पलितिदितु,
	परितिजितु (शाह०)	पलितिजितु
तोषः	तोसो	दोसे (काल०)
दुष्प्रतिवेक्ष्यम्		दुपटिवेखे
नित्यम्	निचे (?)	निक्यं (काल०)
		निचं
सत्यम्		सचे
दुष्कर	दुकरे	दुकले
	दुकरं	दुकलं
अवरोधने	ओरोधनम्हि (गिर०)	ओलोधनंसि
	ओरोधनस्पि (शाह०)	

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संस्कृत	अशोक की पश्चिमी	अशोक की पूर्वी
क्षुद्रक	छुदक (गिर०) खुद्रक (शाह०)	खुदक
इह	इध, इश्र, हिद	इद, हिद
क्षमितुम्	छमितवे, क्षमनये	खमितवे

ध्यान देने की बात यह है कि विभाषागत ये भेद मात्र ध्वनियों के हैं। इनमें व्याकरण का कोई मौलिक अंतर नहीं है। पूर्वी और पश्चिमी दोनों विभाषाओं का व्याकरण एक ही है, वह है पाटलिपुत्र की दरबारी भाषा मागधी का व्याकरण। इस व्याकरण के (क) संज्ञा और विशेषण, (ख) सर्वनाम, (ग) वचन, और (घ) क्रिया के रूप, जो लेखों में आये हैं, नीचे दिये जा रहे हैं। जिन रूपों का संस्कृत से कोई भेद नहीं, वे छोड़ दिये गए हैं।

(क) संज्ञा और विशेषण

१. पुंल्लिग और नपुंसकलिंग

		प्रथमा	द्वितीया	तृतीया	चतुर्थी	पंचमी	षष्ठी	सप्तमी
(१) अकारांत :								
	ए०व०	समाजे[1] फले(सं०)	जनं पापम्(सं०)	धंमेन	अथाये[2]	वियजनते[3]	जनस	विजितसि[4]
	ब०व०	अंता लुखानि[5] (सं०)	पुलिसानि युतानि[6] (सं०)	देवेहि	—	—	देवानं	अठेसु
(२) इकारांत :								
	ए०व०	पियदसि, असमति (सं०)	—	पियदसिना	पियदसिने	सुवंणगिरीते	—	—

१. मान० में कर्तभिकर में अकारांत ही है। शा० और गि० में प्राय: ओकारांत मिलता है, जैसे समाजो, जनो। का० में भी सतियपुतो, केतलपुतो है।

जहाँ तक न० लिं० का संबंध है सचं (ब्रह्म०), अनुसासनं (का०), दना (मास्की), ससन (मा०) पाठ मिलते हैं। शा० और गि० में प्राय: अंकारांत रूप मिलते हैं।

२. गि० में -आय है जैसे अथाय में।

३. शा०, मा०, गि० में -तो है जैसे मुखतो; गि० में ब्यंजनतो है।

४. विजिते (शा०), विजितम्हि (गि०) और विजयस्पि, विनितस्पि (मा० और गि०) भी। गि० में पाटलिपुते भी है।

५. जाता, हालापिता, लोपापिता जैसे रूप भी प्रथमा ब० व०, न० लिं० में मिलते हैं।

६. गि० में युते है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

	प्रथमा	द्वितीया	तृतीया	चतुर्थी	पंचमी	षष्ठी	सप्तमी
व०व०	आसिनव-गामीनि (सं०)	हथीनि	लाजीहि	—	—	नातीनं	नातीसु

(३) उकारांत :

	प्रथमा	द्वितीया	तृतीया	चतुर्थी	पंचमी	षष्ठी	सप्तमी
ए०व०	साधु, वहु (सं०)	—	—	—	हेतुतं[1]	—	पुना-वसुने, बहुने (सं०)
व०व०	बहूनि (सं०)	—	वहूहि	—	—	गुलूनं	गुलुसु, वहूसु (सं०)

(४) अन्-अंत :

	प्रथमा	द्वितीया	तृतीया	चतुर्थी	पंचमी	षष्ठी	सप्तमी
ए०व०	लाजा, कंमे (सं०)	अतानं, नाम (सं०)	लाजिना[2], अतना, कंमन (सं०)	लाजिने, अतने, कमने (सं०)	—	लाजिने,[3] अतने, कंमस (सं०)	—
व०व०	लाजाने	कंमानि (सं०)	लाजीहि	—	—	—	—

(५) ऋकारांत :

	प्रथमा	द्वितीया	तृतीया	चतुर्थी	पंचमी	षष्ठी	सप्तमी
ए०व०	पिता, परन्तु नति, पनति	—	पितिना, भातिना	—	—	मातु	मतरि, पितरि
व०व०	नताले	—	—	—	—	नातिनं, भातिनं	पितिसु, नातिसु

(६) स्कारांत :

	प्रथमा	द्वितीया	तृतीया	चतुर्थी	पंचमी	षष्ठी	सप्तमी
ए०व०	यशो (सं०) पर भूये	—	—	दिघावुसे	—	—	—

२. स्त्रीलिंग

(१) आकारांत

	प्रथमा	द्वितीया	तृतीया	चतुर्थी	पंचमी	षष्ठी	सप्तमी
ए०व०	सुसूसा	सुसूसं	सुसूसाया	वाष-	तखसिलाते	दुतीयाये	समापाय,

---

१. शा०, गि० में हेतुतो है।

२. राज (गि०)।

३. राजो (गि०)।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

	प्रथमा	द्वितीया	तृतीया	चतुर्थी	पंचमी	षष्ठी	सप्तमी
				निषिदियाये			तिसायं, तिसाये, पलि-साये, परिसये, परिसायं
ब०व०	अंबावडिका, उपासिका, चिकिसा, पलिसा, महिडायो (गि०)	—	—	—	—	—	—

(२) ईकारांत :

	प्रथमा	द्वितीया	तृतीया	चतुर्थी	पंचमी	षष्ठी	सप्तमी
ए०व०	इथी, पिति, वढी	संबोधि, पर छाति	निझतिया, भतिया	वढिये, वढिया (का०)	उजेनिते	देवीये	कोसंबियं, तोसलियं, तिसायम्
ब०व०	निंसि-धिया	धंमनु-सथिनि	—	—	—	देविनं, भागि-नीनं, भगि-निना	चतुं-मासीसु,

(ख) सर्वनाम

(१) उत्तम पुरुष :

	प्रथमा	द्वितीया	तृतीया	चतुर्थी	पंचमी	षष्ठी	सप्तमी
ए०व०	हकं, मं अहं (शा०, मा०, गि०)		मे, मया, मय, ममया	—	ममते	मे, मम	—
ब०व०	मये	अफे, अफेनि, ने (गि०)	—	—	—	अफाकम् ने (=नो)	अफेसु

(२) मध्यम पुरुष :

	प्रथमा	द्वितीया	तृतीया	चतुर्थी	पंचमी	षष्ठी	सप्तमी
ब०व०	तुफे	तुफे, तुफेनि वे	—	वे	—	तुफाकं तुपक (रू०)	तुफेसु

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(३) निश्चयबोधक सर्वनाम, त-, एत- :

	प्रथमा	द्वितीया	तृतीया	चतुर्थी	पंचमी	षष्ठी	सप्तमी
ए०व० पुंलि	से, सो (शा०, गि०), एसे	एतं, तं	एतेन, एतिना (रू०), तेन	एताये, एतिय (रू०), तये, एताय (गि०)	—, —	एतस, एतिस (शा०), तस, (तशा, तषा, का०)	तसि, एतम्हि, तम्हि (गि०) तशि (का०)
स्त्री०	एसा, सा	तं	—	ताये	—	—	—
नपुं०	से, एसे, एस, एतं (शा०)	एतं, तं, से	—	—	—	—	—
ब०व०							
पुंलि०	से, ते, एते	—	तेहि	—	—	एतानं, तेसं, तेषं (शाह०) तानं	एतेसु, तेसु
स्त्री०	एसा, ता (एष)						
नपुं०	एतानि, तानि						

(४) निश्चयबोधक सर्वनाम, अयम्, इम, आदि :

	प्रथमा	द्वितीया	तृतीया	चतुर्थी	पंचमी	षष्ठी	सप्तमी
ए०व०							
पुंलि०	इयं, अयो (शा०) अयं (गि०)	इमं	इमेन, इमिना (गि०, वै०, सि०)	इमाये, इमाय	इमस, इमिस (शा०)	इमम्हि (गि०)	
स्त्री०	इयं, अयं (शा०, गि०) अयि	इमं	—	इमाये, इमाय	—	—	

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

	प्रथमा (शा॰, मा॰)	द्वितीया	तृतीया	चतुर्थी	पंचमी	षष्ठी	सप्तमी
नपु॰	इयं, इय (शा॰, मा॰), इयो (शा॰) इमं, इदं (शा॰, गि॰)	इमं, इयं, इदं	—	—	—	—	इमसि
ब॰व॰							
पुंलि॰	इमे	—	इमेहि	—	—	—	
नपुं॰	इमानि	—	—	—	—	—	

(५) **संबंधबोधक सर्वनाम :**

	प्रथमा	द्वितीया	तृतीया	चतुर्थी	पंचमी	षष्ठी	सप्तमी
ए॰व॰							
पुंलि॰	ये, ए, यो (शा॰, गि॰)	यं	येन एन	—	यस, अस, असा (का॰)	—	
स्त्री॰	या, आ	यं	—	—	—	—	
	ये, ए,	ये, ए	—	—	—	—	
नपुं॰ लि॰	यं (य) अं	यं (य), अं					
ब॰व॰							
पुंलि॰	ये, ए	—	—	—	येसं	येसु	
स्त्री॰	या (गि॰)	—	—	—	—	—	
नपुं॰	यानि, आनि	—	—	—	—	—	

(ग) संख्याएँ

½, अढ

१, एके, इकं (सा॰ ना॰)

१½, दियढ-

२, दुवे, दुवि (शा॰), द्वो, द्वे (गि॰)

२½, अढ़ातियानि

३, तिनि,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

त्रयो (शा०),
त्रि (गि०)
४, चतु,
चतालि,
चतुरे (शा०),
चत्पारो (गि०)
५, पंचसु (सप्तमी)
६, षषु (शा०, मा०, का०, सप्तमी)
८, अठ, अस्ट (शा०)
१०, दस,
दश (शा०, मा०)
१२, दुवाडस, द्वादस (गि०),
वदय (शा०)
=बदश (हुल्ट्श)
१३, तेदस, त्रेदश (मा०)
१४, चावुदसं, चोदस (निग्ली०)
१५, पंनडस, पंचदसं
१९, एकुनवीसति
२०, वीसति
२५, पंनवीसति
२६, सडुवीसति
२७, सतविसति
५६, सपंना- (?)
१००, सत-, शत (शा०, मा०)
१०००, सहसानि, षहष (का०), सहस्र (शा०, मा०, गि०)

(घ) क्रिया

१. सामान्य वर्तमान :

	उ० पु०	मध्यम पुरुष	अन्य पुरुष
ए०व०	इच्छामि	—	इच्छति, मंनते (आत्मनेपदम्) दुखीयति (कर्मणि)
ब०व०	—	पापुनाथ	इच्छंति, आलभियंति आरभरे (गिर०), (कर्मणि)

२. विध्यर्थ :

ए०व०	—	—	सुसूसतु, सुस्रुसतां (आत्मने०)
ब०व०	—	लेखापयाथा	अनुपतीपजंतु, पटिवेदेतु भी

३. संभाव्य भविष्यत् वा विधिलिंग :

ए०व०	आलभेहं, व्रचेयम्	—	पटिपजेय, पटिपजेथ (आत्मने०)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

	उ० पु०	मध्यम पुरुष	अन्य पुरुष
ब०व०	पटिपादयेम	—	पापुनेवु, पापुनेयु (जौ०), सुसुसेर (आत्मने०) हंनेयसु (कर्मणि)

४. सामान्य भूत :

ए०व०	हुसं	—	निखमि, निखमिथा, वढिथा, हुथा (आत्मने०)
ब०व०	—	—	निखमिसु, नियासु, लोचेषु, हुसु, आलभियिसु (कर्मणि)

५. भविष्य :

ए०व०	निखामयिसामि, लिखापयिसं (गि०)	—	वढिसति
ब०व०	—	—	वढिसंति, आरभिसरे (कर्मणि)

६. पूर्ण-भूत के एकमात्र उदाहरण "आहा" और "अयाय" हैं।

७. प्रेरणार्थक वा णिजंत : वढयति, वढेति; आनपयामि; अनपेमि; विवासापयाथ। (प्रेरणार्थक ब० व०)।

८. कृदंत (i) वर्तमान कर्तृ : ए० व० प्रथमा अनुपटीपजंतं, संतं (संतो, गिर०, सतो, शा०); गिर० में करोतो, करातो ('करंतो' से) और करु=करु (तथा करु, इस प्रकार करते हुए, "कुर्वन्" से) हैं; षष्ठी, अशतस; ब० व०, तिष्टंतो।

(ii) आत्मनेपदस्र : भुंजमानस (षष्ठी), समाना (प्रथमा ब० व०)— "अमिसा समाना मुनिसा", '-मिना' अंत भी जैसे पकममिनेना, सम्पटिपजमीने, विपटिपादयमीनेहि में।

वर्तमान कर्मणि : विजिनमने, अनुवेखमाने।

(iii) कृदंत भूत : (क) तीलित, (ख) उपगते, विस्त्रित (शा०), (ग) आयता, निखिता, युतं, आलधे, (घ) दिंने, दिना।

(iv) कृदंत भूत प्रेरणार्थक : (क) साविते, सुखयिते, (ख) लिखापिता, निझपयिता, (ग) सावापिते (दुहरा प्रेरणार्थक)।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(v) कृदंत भविष्यत् कर्मणि : (क) 'तव्यम्' से : कटविये, सोतविया (स्त्री०), हंतवियानि (नपुं० पुं०); प्रेरणार्थे—निझपेतविये, वासापेतविये; गि० में "-तव्यं" है जैसे प्रजूहितव्यं, लोचेतव्या (स्त्री०), कतव्यो (पुंलि०); शा० में कटव, प्रयुहोतवे। (ख) "-अनीय" से : अस्वासनिया। (ग) 'य' से : कचं, देखिये, चकिये, पूजेतया (गि०) =पूजयितव्य।

९. क्रियार्थक संज्ञा (Infinitive) : (क) निझपयितवे, आलाघयितवे, पापोतवे; (ख) द्वितीया "-तुम्" से आराधेतु।

१०. क्रियावाची संज्ञा (Gerund) : परितिजितु, कटु, सुतु, संनंधापयितु ("-त्वा" से), किंतु गि० में '-त्प' है जैसे परिचजित्पा, दसयित्पा, अलोचेत्पा, आरभित्पा; शा० में एक अतिरिक्त रूप "-ति" है जैसे तीस्तिति, अलोचेति, द्रशेति (मा०)। "-य, -त्य" के भी कुछ रूप हैं जैसे आगच, अविगिच्य, अपहट।[1]

---

१. हुल्ट्श के कार्पस इंडि० इंस्क्रि० खंड १ अध्याय ६-११ में इस विषय का बड़ा सुन्दर और विस्तृत विवेचन है। यह टिप्पणी उसी के आधार पर लिखी गई है। इसमें वूलनर के अशोक टैक्स्ट एंड ग्लासरी में पृ० २५-३७ पर अशोक के लेखों के व्याकरण की जो रूपरेखा दी गई है उससे भी सहायता ली गई है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परिशिष्ट घ

१

तक्षशिला से अरमैक लिपि में प्राप्त अशोक का एक तथाकथित लेख

सर जान मार्शल ने सन् १९१४-१५ में तक्षशिला में अशोक के एक अभिलेख की खोज की थी। इस लेख में कुल बारह पंक्तियाँ हैं। इसकी भाषा व लिपि ई० पू० तीसरी शती की अरमैक है। इसकी एक प्रतिकृति उसी वर्ष की आर्कलाजिकल सर्वे की वार्षिक रिपोर्ट में प्रकाशित हुई है। तदनंतर डा० ई० हर्जफेल्ड ने इस अभिलेख को पढ़ा जो दाएँ से बाएँ को लिखा गया है। पर वे इसका अर्थ स्पष्ट नहीं कर पाये थे। हर्जफेल्ड ने ९वीं और १२वीं पंक्ति में दो शब्द पढ़े थे '*mran Prydr*' और '*imran Prydrsh*' जिसका अर्थ 'हमारे स्वामी प्रियदर्शी' किया गया है। १०वीं पंक्ति में वे एक शब्द '*hlkvth*' पढ़ते हैं। इसका सही रूप '*Vmlkvth*' करके वे इसका अर्थ 'और उसकी रानियाँ' या शायद 'उसके राज्यों से' करते हैं। ११वीं पंक्ति में एक शब्द '*Vap bnvhy*' पढ़कर वे उसका अर्थ 'और उसके पुत्रों' से लेते हैं।

अरमैक लिपि खरोष्ठी की भाँति दाएँ से बाएँ लिखी जाती थी। अखमनी राजाओं ने अपने लेखों में इसका प्रयोग किया था। पश्चिमी एशिया में कभी अरमैक भाषा व्यापार की भाषा के रूप में बड़े धड़ल्ले से प्रयोग में आती थी।

ध्यान देने की बात यह है कि पियदसि या प्रियदर्शी किसी राजा का नाम नहीं बल्कि एक उपाधि थी। उपाधि के रूप में अशोक और उसके दादा चन्द्रगुप्त मौर्य दोनों ने इसका प्रयोग किया है। किंतु इतना तो निश्चित ही है कि तक्षशिला का यह अभिलेख पियदसि चन्द्रगुप्त मौर्य का नहीं बल्कि उसके पोते पियदसि अशोक का है क्योंकि चन्द्रगुप्त मौर्य ने ऐसे अभिलेख जारी नहीं कराये थे। अशोक ही प्रथम भारतीय राजा था जिसने पुराने अखमनी राजाओं की भाँति ऐसे अभिलेख जारी किये थे। इन लेखों की विषयवस्तु भी बौद्ध मानी जाती है। इसलिए इनका श्रेय अशोक को ही देना ज्यादा युक्तिसगत लगता है। उदाहरण के लिए पांचवीं (?) पंक्ति मे जरथुसु धर्म में खूब प्रचलित एक शब्द आया है "Huh'=अच्छा अर्थात्

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अच्छे विचार, अच्छे कर्म या अच्छे वचन। इसकी तुलना बौद्ध धर्म के 'ऐरो अट्ठांगिको मग्गो'=आर्य अष्टांगिक मार्ग से की जा सकती है (सरकार: सेलेक्ट इंस्क्रिप्शंस, पृष्ठ ८१)। अपिच, इस लेख में रानियों और राजकुमारों का जिक्र आया है। इसकी तुलना अशोक के अन्य लेखों में रानियों और राजकुमारों और उनके दानों के उल्लेख से की जा सकती है।

यह भी ध्यान देने की बात है कि अखमनियों के राजा दारा प्रथम ने (लग० ५१६ ई० पू०) उत्तरी पश्चिमी भारत के कुछ भाग जीत लिए थे। अखमनी अभिलेखों में इसका जिक्र गदार (गंधार) और हिंदुश (=हिन्दू=सिंधु=सिंधभूमि) के रूप में आया है। दारा की इस विजय से उस काल में इन प्रदेशों में अरमैक लिपि और भाषा का प्रचार हुआ था। तभी महान् वैयाकरण पाणिनि अपनी जन्मभूमि गंधार में इस विदेशी भाषा और लिपि से परिचित हुए थे। इस विदेशी लिपि का उल्लेख उन्होंने 'यवनानी' (=यवनानां लिपिः=यवनों की लिपि) के रूप में किया है। डा० रामकृष्ण भंडारकर पाणिनि को ई० पू० ७५० में रखते हैं। पर वे कम से कम अखमनी साम्राज्य के समकालीन रहे होंगे।

इस प्रकार विदेशी बस्तियाँ इस देश में उस समय से रही हैं जब ईरानियों ने भारत को जीता था। जब चन्द्रगुप्त मौर्य ने सीरियाई साम्राज्य को शिकस्त दी तो उनके राजा सेल्यूकस को अपने साम्राज्य के पूर्वी भाग जिसमें गेद्रोसिया (बलूचिस्तान), एरिया (हेरात), अराकोसिया (कंदहार) और परोपम्सिदै (हिंदुकुश) शामिल थे, चन्द्रगुप्त मौर्य को समर्पित करने पड़े थे। इस घटना (लगभग ३०४ ई० पू०) के फलस्वरूप इन विदेशी बस्तियों का विस्तार और पूरब की तरफ भी हो गया।

मौर्य साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र में इन विदेशियों की बस्ती होने के कारण ही शहर के प्रबंध में इनके लिए विशेष व्यवस्था की आवश्यकता पड़ी थी। पाटलिपुत्र में यूनानियों की ओर से उनका राजदूत मेगस्थनीज रहता था। उसने स्वयं अपनी जानकारी के आधार पर लिखा है कि पाटलिपुत्र के नगर प्रबंध में विदेशियों की देखरेख के लिए एक विदेश समिति थी।

अशोक के समय में इन विदेशियों को साम्राज्य की परिधि में स्वशासन के अधिकार मिल गए थे। अशोक ने उनके राजनैतिक और सांस्कृतिक हितों को मान्यता दी थी। चट्टान लेख ५ और १३ में योन और कांबोजों के रूप में इनके उल्लेख आये हैं। अशोक ने तक्षशिला में, जो उस समय इन विदेशियों का सबसे महत्त्वपूर्ण केन्द्र था, अरमैक भाषा और लिपि में यह लेख उनकी सांस्कृतिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर ही खुदवाया था। अशोक ने नये धर्म के प्रति अपने उत्साह के कारण एक विदेशी बस्ती में उनकी भाषा और लिपि में इस धर्म के उपदेशों को लिपिबद्ध कराया था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उनकी सांस्कृतिक स्वतंत्रता की मान्यता की बात अशोक के इस कथन से भी पुष्ट होती है कि योन देश के समाज में जाति-व्यवस्था के लिए स्थान नहीं है। उनमें केवल दो ही वर्ण हैं, आर्य (स्वामी) और दास (गुलाम)। इसलिए उसके धाम धर्म का प्रचार इन लोगों में नहीं किया गया था।

अशोक के साम्राज्य में एक सशक्त योन-बस्ती रही होगी इस बात की पुष्टि इस तथ्य से भी होती है कि अशोक ने अपने अपरांत-सुराष्ट्र प्रांत के गवर्नर के रूप में एक योन राजा की नियुक्ति की थी। उसका नाम यवनराज तुषास्फ राष्ट्रीय था। इसके पहले अशोक के दादा चंद्रगुप्त के समय वैश्य पुष्यगुप्त इसी प्रांत का गवर्नर था (रुद्रदामन् का जूनागढ़ अभिलेख, लग० १५० ई०)।

सारांश यह कि प्रारंभ में यवन शब्द का प्रयोग ईरानियों की प्रजा आयोनियन यूनानियों के लिए होता था। किंतु साम्राज्य की भाषा और लिपि अरमैक थी। इस अरमैक का भारत में प्रवेश तब हुआ था जब अखमनियों ने गंधार और सिंध को जीता था। अतः जब पाणिनि 'यवनानी' शब्द का प्रयोग करता है तो उसके सामने एक विदेशी लिपि—अरमैक—का स्पष्ट उदाहरण था।

बाद में यवन शब्द से म्लेच्छ अर्थात् किसी भी विदेशी जैसे ईरानी या आयोनियन का बोध होने लगा। अशोक के समय तक योनों और कांबोजों की उसके साम्राज्य में महत्त्वपूर्ण बस्तियाँ थीं। इन योनों को आयोनियन यूनानी मानने की भूल नहीं करनी चाहिए। ये ईरानी थे जिनके लिए उनकी स्थानीय अरमैक लिपि में अशोक ने लेख खुदवाये थे। बाद के संस्कृत ग्रंथों, जैसे विष्णु पुराण में इन्हीं यवनों और कांबोजों के लोक-विरुद्ध आचारों जैसे, दाढ़ी रखना, सिर मुंडाना और गोमांस-भक्षण के वर्णन मिलते हैं।

अंत में हमें इस बात पर भी गौर करना है कि रुद्रदामन प्रथम ने ईरानी राजा तुषास्फ को यवनराज कहा है। उससे यही सिद्ध होता है कि सामान्य विदेशियों के लिए यवन शब्द का प्रयोग होता था। फिर उसके देश या जाति का उल्लेख आवश्यक न था।

२

येरंगुडि के अभिलेख

खोज : येरंगुडि कुर्नूल जिले की दक्षिणी सीमा से करीब ८० मील उत्तर-पूर्व में है। गूटी से इसकी दूरी ८ मील है। गूटी दक्षिण रेलवे के रायचुर-मद्रास सेक्शन में एक रेलवे स्टेशन है। स्वर्गीय श्री अनु घोष, एफ०सी०एस०, एफ०जी०एस० ने कई साल पहले इस गाँव के पड़ोस में येनकोंडा (हस्ति पर्वत) की छह बड़ी-बड़ी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चट्टानों पर खुदे अशोक के चौदह चट्टान लेखों की इस माला की खोज की थी। इसके साथ ही एक लघु चट्टान लेख भी था। श्री घोष एक भूगर्भ शास्त्री थे। वे मेरे सहपाठी भी थे। उन्होंने वर्षों तक यह खोज गुप्त ही रखी थी। एक बाल-सखा के रूप में मुझसे इसका भेद खोला था। बाद में उन्होंने पुरातत्त्व विभाग को भी इसकी सूचना दी। स्वर्गीय दयाराम साहनी ने फिर आर्कलाजिकल सर्वे की सन् १९२८-२९ की वार्षिक रिपोर्ट में पृ० १६१-६७ पर इन्हें प्रकाशित कराया।

लिपि : इसकी लिपि ब्राह्मी है जिसके लिए और किसी स्पष्टीकरण की आवश्यकता नहीं सिवा इस बात के कि इसकी तेईस में से आठ पंक्तियाँ (२, ४, ६, ६, ११, १३, १४ और २३) दाएं से वाएँ को खोदी गई हैं और शेष यथा सामान्य हैं। यदि हम ८वीं और १४वीं पंक्तियों को छोड़ दें तो पहली पंद्रह पंक्तियाँ गोमूत्रिका (बरदमुतान) शैली में खोदी गई हैं अर्थात् ये एक बार वाएँ से दाएँ फिर दाएँ से वाएं—जैसे हल जोतने से बैल मूतते चलते हैं—चलती हैं। कोई दूसरा ब्राह्मी या खरोष्ठी अभिलेख इस शैली में लिखा नहीं मिलता है। इन लेखों की विभाषा मागधी है जैसा डा० डी० सी०. सरकार ने बताया है।

पाठ : चौदह चट्टान लेखों का पाठ कालसी वाचना के समीप है।

लघु चट्टान लेख में प्रारंभिक भाग बारहवीं पंक्ति के मध्य तक ब्रह्मगिरि के पाठ और दूसरी वाचनाओं से मिलता है। दूसरा अंश अर्थात् बारहवीं पंक्ति के मध्य से अंत तक एक नई इबारत है जिसका पाठ और अनुवाद कतिपय टिप्पणियों के साथ नीचे दिया जा रहा है।

येरंगुडि लघु चट्टान लेख

पाठ

१२. ....हेवं देवानंपिये आह यथा देवानं-

१३. पिये आहा तथा कटविय येपि राजूके आनपितविये

१४. ते दानी जानपदं आन-

१५. पयिसति राठिकानि च मातापितूसु

१६. सुसुसितविये हेमेव गरूसु सुसूसितविये पानेसु दयितविये सच वतविय

१७. सुसुम धंमगुना पवतितविया हेवं तुफे आनपयाथ देवानं-पियस वचनेन हेमेव आनप-

१८. यथ हथियारोहानि कारनकानि यूग्यचरियानि बंभनानि च तुफे हेवं निवेसया-

१९. थ अंतेवासीनि यारिसा पोराना पकिति इयं सुसूसितविये अपचायना य वा सव मे आचरियस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

२०. यथाचारिन आचरियस नातिकानि यथारह नातिकेसु पवतितवियं हेसापि
२१. अंतेवासीसु यथारह पवतितविये यारिसा पोराना पकिति यथारह यथा इयं
२२. आरोके सिया हेवं तुफे आनपयाथ निवेसयाथ च अंतेवासीनि हेवं दे-
२३. वानंपिये आनपयति

अनुवाद

देवानांप्रिय (देवताओं के प्यारे राजा) ने इस प्रकार कहा : जो भी देवानांप्रिय कहता है उसे अवश्य करना चाहिए। (महामात्र) राजूकों (प्रांतीय गवर्नरों) को इस प्रकार कहें : वे सब देहात की जनता (जानपदम्) को तुरंत (इदानीम्) कहें और वे राष्ट्रिकों को इस प्रकार कहें : माता-पिता की शुश्रूषा करें; इसी प्रकार गुरु की शुश्रूषा करें; सभी जीवों पर दया करें; सच बोलें। इन महान् (शुष्म) धर्म-गुणों का आचरण करें।

इसी प्रकार आपको (महामात्रों को) देवानांप्रिय की आज्ञा से कहा जाता है : आप विभिन्न लोगों जैसे (१) हाथियों के गुल्म (हस्त्यारोहण); (२) कारणकों [कायस्थों=लेखकों या जजों (प्राडविवाकों)]; (३) रथारोहियों (युग्याचार्यों=रथारोहों); (४) ब्राह्मणों अर्थात् अध्यापकों को कहना चाहिए।

इसी प्रकार और भी आप ब्राह्मणों (अध्यापकों) को भी कहें कि वे भी अपने शिष्यों (अंतेवासियों) को समझाएँ (निवेशयत) कि वे भी सदाचार के इन प्राचीन नियमों (पुराणी प्रकृति) का पालन करते हुए इन कर्त्तव्यों का अनुसरण करें : (१) आचार्य की आज्ञा मानें (शुश्रूषितव्य); (२) आचार्य के योग्य भक्त (यथाचारिणः आचार्यस्य) के रूप में अंतेवासी (विद्यार्थी) उनकी पूरी तरह से (सर्वं) सेवा (अपचायना=पूजा) करें; और (३) वे (अंतेवासी) अपने संबंधियों के साथ भी ऐसा ही व्यवहार करें।

इसी तरह उनके संबंधियों को भी कहें।

इसी प्रकार शिष्यों के लिए आचार्य की सेवा (अपचायना) का जो प्राचीन सिद्धांत चला आ रहा है उसे ब्रह्मचर्य के नियमों के अनुसार उनमें विधिवत् (यथार्हं) स्थापित (प्रवर्तयितव्य) करना चाहिए।

इसी प्रकार आप (आचार्य लोग) विद्यार्थियों को आज्ञा दें (आज्ञापयत) और उपदेश करें (निवेशयत) कि विद्यार्थी जीवन के इन नियमों का दृढ़ता (अरोका)[1] से पालन करें।

---

१. कुछ विद्वानों ने इसे तिरोक पढ़ा है जिसका अर्थ "तीनों लोकों में सुख की प्राप्ति" (ओक=आश्रय) लिया है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस प्रकार देवानांप्रिय ने आज्ञा दी।

इस नई सामग्री की दृष्टि से यह लघु चट्टान लेख अनोखा है। यह सामग्री अन्य लेखों में नहीं मिलती है। किन्तु इसका अर्थ पूरी तरह से स्पष्ट नहीं हुआ है। इसमें अशोक अपने धर्मोपदेश का विस्तार करता प्रतीत होता है। इसमें वह इसका प्रचार सेना और आम जनता दोनों के बीच, विशेषकर विद्यार्थियों में जो देश के भावी नागरिक हैं और जिन्हें अनुशासित जीवन के लिए तैयार करना है, इसका प्रचार करता प्रतीत होता है। इस कार्य में उसने महामात्रों के अलावा अध्यापकों को भी नियोजित किया है कि वे विद्यार्थियों में भी धर्म का प्रचार करें। राष्ट्रिकों को भी, जो गाँवों में नियुक्त थे, यही करने की आज्ञा दी गई है।

३

गवीमठ और पालकीगुंडू लघु चट्टान लेख

कोपवाल (पुराना नाम कोपननगर) के पास अशोक के लघु चट्टान लेख को दो नई वाचनाएँ मिली हैं। कोपवाल शिद्दापुर से करीब ६० मील पर दक्षिण रेलवे में हास्पेट और गडग जंक्शनों के बीच एक रेलवे स्टेशन है। कोपवाल कस्बे के पास ही सन् १९३१ में वहीं के श्री एन० बी० शास्त्री ने दो नये ब्राह्मी अभिलेखों की खोज की थी। इनमें से एक गवीमठ की चट्टान पर और दूसरा पालकीगुंडू पहाड़ी पर खुदा है।

इन दोनों लेखों की इबारत प्रायः एक ही है। इसमें अशोक के लघु चट्टान लेखों की एक दूसरी ही वाचना है जो इसके पूर्व इससे किंचित् दूसरे रूपों में रूपनाथ, सहसराम, बैराट (यह गवीमठ से बहुत मिलता है), ब्रह्मगिरि, शिद्दापुर, जटिंग-रामेश्वर, मास्की और येरंगुडि में मिलती है। इन अभिलेखों में अशोक के बारे में कोई नई बात नहीं है सिर्फ इस बात के सिवाय कि रूपनाथ को छोड़कर गवीमठ का पाठ ही पूर्णतया सुपाठ्य[1] है।

४

राजुल मंदगिरि चट्टान लेख

अभी हाल में अशोक का एक लघु चट्टान लेख आंध्र राज्य के कुर्नूल जिले में पट्टिकोंड तालुक में चिन्नतुलटी गाँव में मिला है। यह स्थान येरंगुडि से करीब २० मील पर है।

---

१. ये दोनों वाचनाएँ डा० आर० एल० टर्नर द्वारा सम्पादित हैं और हैदराबाद आर्कि० सीरीज, नं० १०, 'दि गवीमठ एण्ड पालकीगुंडु इंस्क्रिप्शंस ऑफ अशोक' (१९३२) में प्रकाशित की गई थीं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

५

विंध्य प्रदेश में गुजर्रा में मिला लघु चट्टान लेख

आर्कलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया के उप महानिदेशक, डा० बहादुर चंद छावड़ा ने अभी हाल में विंध्य प्रदेश के गुज़र्रा नामक गाँव में अशोक के एक लघु चट्टान लेख की खोज की है। गुजर्रा दतिया से ११ मील और झांसी से भी इतनी ही दूरी पर है। जिस चट्टान पर लेख खुदे हैं उनके पीछे की पहाड़ी को 'सिद्धन-की-तोरिया' कहते हैं जिसका अर्थ है 'सिद्धों की पहाड़ी'।

अभिलेख में अशोक के लघु चट्टान लेख की दसवीं वाचना है।

ये दस लघु चट्टान लेख इन दस स्थानों पर मिले हैं (१) राजस्थान में बैराट (जयपुर के पास), (२) विहार में सहसराम, (३) मध्य प्रदेश में रूपनाथ, (४) आंध्र में येरंगुडि, (५) आंध्र में राजुल मंदगिरि, (६) मैसूर में हैदराबाद में मास्की, (७) मैसूर में ब्रह्मगिरि, (८) मैसूर में शिद्दापुर, (९) मैसूर में जटिंग-रामेश्वर, और (१०) विंध्य प्रदेश में गुजर्रा।

इस अभिलेख का महत्त्व इस बात में है कि यद्यपि अशोक के लगभग २०० अभिलेख मिले हैं तथापि केवल इस अभिलेख में पूरी पदवी के साथ उसका नाम देवानंपियस पियदसिनो अशोकराजस मिलता है। इस माला के छठे अभिलेख अर्थात् मास्की के लेख में भी अशोक का नाम आया है, पर उसमें उसके पूरी पदवी का उल्लेख नहीं जिससे अन्य अभिलेखों में उसे अभिहित किया गया है। अर्थात् उस अभिलेख में (१) देवानंपिय पियदसि राजा (२) देवानंपिय पियदसि (३) देवानंपिय या (४) प्रियदसि लाजा मागधे (बैराट) जैसी किसी पदवी का उल्लेख नहीं है। मास्की में देवानंपियस अशोकस का प्रयोग हुआ है। (डा० छावड़ा के एक नोट के आधार पर जिसे भेजने की कृपा के लिए मैं उनका आभारी हूँ।)

निष्कर्ष यह कि लघु चट्टान लेख भी उसके स्तंभ लेखों या चट्टान लेखों के भाँति उसके पूरे राज्य (विजित) में खुदवाये गये थे। ये उसके विस्तृत साम्राज्य के प्रायः सभी प्रांतों में—उत्तर में राजस्थान से दक्षिण में आंध्र और मैसूर में मिलते हैं। इसका कारण अशोक की प्रचार की नीति है। लघु चट्टान लेखों में उसने अपने धर्म के बारे में अपने उपदेशों का सार बड़ी सूक्ष्मता और सरलता से रख दिया है। अन्य लेखों में जो बात किंचित् विस्तार से कही गयी है वही इन लेखों में संक्षेप में कह दी गई है ताकि सभी श्रेणियों के लोग चाहे वे छोटे हों या बड़े—खासकर बड़े लोग जिन्हें समय की कमी रहती है—उनका अनुगमन कर सकें। इस अभिलेख में अशोक ने बड़े विश्वास से कहा है कि यदि मनुष्य अपने सारे संबंधों में धर्म और सदाचार का मार्ग अपना ले तो उससे वह इस पृथ्वी को ही स्वर्ग बना सकता है (अम्मिसं देवा संत मुनिसा मिसं देवा कटा)।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यही विचार एक दूसरे वाक्य में व्यक्त हैं : खुदाके चा उदारे चा धंमं चरंता योगं युंजांता 'सब बड़े और छोटे (समान रूप से) सदाचार के पालन में अपने को लगायें जिससे कि दिव्यात्मा के साथ उनका संयोग हो सके'।

६

अशोक का कंदहार (शर-ए-कुना) का लेख

अफगानिस्तान में कंदहार के पास यह लेख हाल ही में मिला है। यह अरामैक और यूनानी दोनों भाषाओं में है। इस दृष्टि से यह अपने ढंग का अकेला लेख है। इसमें यूनानी रूप अशोक की उस प्रजा के लाभार्थ था जो यूनानी (योन—यवन) थी और अरमैक रूप वहाँ के उन लोगों के लिए था जो यूनानी न थे जैसे, अशोक के चट्टान लेख ५ और १३ में उल्लिखित कांबोज।

मूल पाठ : दी० च० सरकार ने (ए० इं० XXXIII) में अशोक की प्राकृत में इसका निम्नलिखित रूप दिया हैं :

यूनानी—(क) दश-व्रश-अभिसितेन रञ प्रियद्रशिन जनस्मि, ध्रमनुशस्ति प्रवटित।

अरमैक—(क) दश-वश-अभिसितेन रञ प्रियद्यशिन पमिकेन नो (=नः) तद ध्रमनुशस्ति प्रवटित।

यूना०—(ख) तत चु तेन मनुश वढतरम् ध्रमयुत कट प्रए च वढित हित-सुखेन सव्रपुथ वियं।

अर०—(ख) तत अपयस हिं जत सव्रस्पि च जनस्पि तेन दुपटि-भग निवटित ! अस्ति पि सं ति च प्रिति च सव्रपुथवियं।

यूना०—(ग) रञ चु प्रए-अरंभो परितिजित सव्रे हि च मनुश्चि लुदकेहि च सव्रे हि केवटेहि च रञो परितिजित विंहिस भुतनं।

अर०—(ग) एत च पि भुतं। सुपठय चु रञो नो स्पमिकस लनुकं अरभियति। तस च द्रशन सव्र मनुश न अरभंति एवं पि ये च केवट ते पि च नियमेन संयत।

यूना०—(घ) येसं चुन्=असि संयमो ते पि च संयत भुत यथ तेन तेन शकम्।

अर०—(घ) एवं पि येसं च न्=असि संयमो ते पिच संयत भुत।

यूना०—(च) ते पि च मत-पितुषु वुढेषु च सुश्रूषंति : वदिशं नो भुत-प्रुवं।

अर०—(च) सव्रे च मत पितुषु सुश्रूषन्ति वुढेषु च सुश्रूषन्ति यथरहं यदिशम् तस तस कटवं अरोपितं।

यूना०—(छ) एवं च करमिन ते पच हित-सुखेन वढिसंति वाढं च अो वढिसंति।

अर०—(छ) ध्रम-युतनं चु खो परत्र न्=अस्ति विचरण।

अर०—(ज) सव्रे च मनुश ध्रम-चरणेन अभुंनत अभुंनमिशंति च=एव।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अनुवादः

यूनानी पाठ—अभिषेक के दस वर्ष बाद ('हमारे स्वामी' स्पमिकेन नो०—अरमैक पाठ में) राजा प्रियदर्शी ने जनता में (जनस्पि) धर्म प्रचार प्रारंभ (प्रवर्तित) किया।

और तब से (तत चु) लोग उसके धर्म प्रचार से (धर्मानुशस्ति) अधिक धर्मवान् (धर्मयुत) हो गये हैं। और सर्वत्र (सर्वपृथिव्यां—भारत में) सभी प्राणियों के हित और सुख की वृद्धि हुई है।

अरमैक पाठ—तब से कष्टों (अपाय) की कमी हुई है (जत) और उसके प्रयत्न से सभी प्राणियों का दुर्भाग्य रुका है (दुष्प्रतिभागाः निर्वर्तिताः)। और सारे संसार में शांति और प्रीति विराज रही है (अस्ति)।

यूनानी पाठ—राजा ने प्राणियों के वध का परित्याग कर दिया है (परित्यक्त) और दूसरे लोगों ने राजा के शिकारियों (लुब्धकैः कैवर्तैः) ने भी।

अरमैक पाठ—और इसके अतिरिक्त भोजन में (सूपार्थाय) यह भी हुआ है। (पशुओं और पक्षियों के) वध में हमारे स्वामी ने कमी (लघुकं) की है और यह देखकर (तस्य च दर्शनात्) दूसरे सभी लोगों ने भी वध बंद कर दिया है (न आलभंते) और यह भी कि जो पेशेवर कैवर्त्त (मछली पकड़ने वाले) हैं वे भी नियम से संयत हुए हैं।

यूनानी पाठ—और इस प्रकार (च तु) जो संयम के अभ्यस्त न थे वे भी यथा शक्य (यथा तेन शक्यं) संयत हो गये हैं (संयतः भूतः)।

और भी (अपि च), वे अपने माता-पिता और वृद्धजनों की शुश्रूषा करने को उद्यत रहते हैं। जैसा पहले नहीं था।

और इस प्रकार अब से (पश्चात्) उनके हित और सुख में वृद्धि होगी और वह बराबर बढ़ेगा (बाढम्)।

अरमैक पाठ—विभिन्न लोगों में अब कर्त्तव्यों के अनुसार (आरोपितम्) माता, पिता और वृद्ध जनों के प्रति आदर का भाव आया है।

और जो लोग धर्मवाम् (धर्मयुत) हैं उनकी अगले लोक (पारत्र) में विचारणा नहीं होगी।

धर्म के आचरण से (धर्माचरणेन) सभी मनुष्यों का अभ्युदय हुआ है (अभ्युन्नत) और भविष्य में भी होगा।

इस लेख को डाक्टर सरकार ने ठीक ही अशोक का लघु चट्टान लेख कहा है। वे इसे लघु चट्टान लेख ४ कहते हैं। इस लेख का विषय सीमित है। उसके मुख्य चट्टान लेखों या स्तंभ लेखों की भाँति इसका विषय व्यापक नहीं है। किंतु इससे अशोक के जीवन और उसके शासन पर एक नया प्रकाश पड़ता है। इसकी प्राप्ति का स्थान महत्त्वपूर्ण है। साहित्यिक प्रमाणों के अनुसार भारत (अविभाजित) की सीमा ईरान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की सीमा को छूती थी। यह लेख इसे पुष्ट करता है। यूनान के ऐतिहासिक ग्रंथों में भारत के उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत के वारे में जो उल्लेख आए हैं यह लेख उनकी पुष्टि करता है। यह लेख कंदहार (अराकोसिया) में मिला है। ई० पू० ३०४ में सीरिया के राजा सेल्यूकस ने भारत पर चढ़ाई की थी और उस समय उसका भारतीय राजा चंद्रगुप्त मौर्य से युद्ध हुआ था। इस युद्ध में सेल्यूकस पराजित हुआ था और उसे विजयी राजा को अपने चार पूर्वी इलाके गेड्रोसिया (वलूचिस्तान), अराकोसिया (कंदहार), एरिया (हेरात) और परोपमिसदै (हिंदुकुश) देने पड़े थे। यह लेख इस तथ्य की पुष्टि करता है। अशोक को यह विस्तृत साम्राज्य उत्तराधिकार में मिला था। चट्टान लेख २ (और चट्टान लेख १३) में वह सीरिया के राजा अंतियोक को अपना पड़ोसी (अंत) कहता है। चट्टान लेख ५ और १३ में वह योनों (यूनानियों) और कांवोजों को अपनी प्रजा कहता है जो अफगानिस्तान में रहते थे।

इस लेख से यह भी निश्चित हो जाता है कि अशोक ने अपने अभिषेक के दसवें वर्ष में अर्थात् ई० पू० २६० के वाद अपना धार्मिक प्रचार प्रारंभ किया। उसके अन्य लेखों में उसके धर्म संवंधी विकास के विभिन्न चरण दिये हुए हैं। इस संवंध में उसके अभिषेक का आठवाँ वर्ष अर्थात् ई० पू० २६२ सवसे महत्त्वपूर्ण है जिसने उसके जीवन की दिशा ही बदल दी। अशोक के १३वें चट्टान लेख से पता चलता है कि इसी वर्ष में उसने कलिंग को जीता था। इस युद्ध में धन-जन की अपार क्षति हुई थी और वीर कलिंग के निवासियों को अनेक कष्ट भुगतने पड़े थे। उन्होंने अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के लिए डटकर संघर्ष किया था। इस युद्ध के कारण अशोक के जीवन में भारी परिवर्तन हुआ। वह हिंसा के स्थान पर अहिंसा का पुजारी वन गया। अब तक (अर्थात् ई० पू० २६२ से पूर्व) वह वौद्ध धर्म का मात्र उपासक था। उसने इसके लिए कोई विशेष यत्न नहीं किया था। वह २½ साल से अधिक उपासक बना रहा। इस बीच बौद्ध धर्म के उपदेशों के विपरीत वह विजयों की हिंसा में लिप्त रहा। ई० पू० २६२ से पूर्व ई० पू० २६५-२६२ के वीच बौद्ध धर्म के प्रति उसकी उदासीनता की स्थिति बनी रही। ई० पू० २६२ के वाद वौद्ध धर्म में उसकी आस्था तीव्र हो गई। फिर वह अपने जीवन से अहिंसा (धर्मशीलन) का अनुयायी वन गया। धर्म में रुचि (धर्मकामता) और उसके धर्मोपदेश (धर्मानुशस्ति) में वृद्धि हुई। लघु चट्टान लेख १ के अनुसार उसके हृदय-परिवर्तन में 'एक साल से अधिक' ही लगा अर्थात् यह ई० पू० २६० में संपन्न हुआ। इस नये लेख के अनुसार ई० पू० २६० के वाद, अपने अभिषेक के १०वें वर्ष में, अशोक ने अपने धार्मिक प्रचार (धर्मानुशस्ति) का प्रवर्तन वड़े तीव्र पराक्रम के साथ प्रारंभ किया (लघु च० ले० १)। उसके प्रयत्नों के फल भी शीघ्र ही मिले। इस लेख में इसी का नए ब्योरों के साथ वर्णन है। अब तक इस संवंध में जो कुछ ज्ञात था उसकी पुष्टि होने के अतिरिक्त इस लेख में कुछ नये तथ्य भी हैं। इस संवंध में ल० च० ले० १ में सिर्फ इतना ही लिखा है "जंबुद्वीप के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मनुष्य अब देवताओं से अधिक घुलमिल गए हैं (अमिसा समाना मुनिसा जंबुदीपसि मिसा देवेहि)।

जैसा कि चट्टान लेख ८ से विदित होता है प्रायः इसी के आसपास अपने अभिषेक के दस वर्ष के वाद अशोक वौद्ध धर्म के तीर्थों जैसे गया आदि की यात्रा पर निकला था। इस लेख से अशोक के धर्मोपदेश के कार्यों (च० ले० १३ में इसके लिए धर्मानुशस्ति शब्द का प्रयोग हुआ है) पर कुछ नया प्रकाश पड़ता है। अरमैक पाठ से विदित होता है कि उसने अपने भोजन के लिए पशुहत्या बंद कर (परित्यक्त) अहिंसा का उदाहरण प्रस्तुत किया। अब वह शाकाहारी हो गया। उसका उदाहरण (तस्य च दर्शनाद्) देखकर आम लोग प्राणि-हिंसा (विहिंसा भूतानाम्) से विरत होने लगे। इसमें लुब्धक (बहेलिये) और कैवर्त्त (केवट जो मछली मारने का काम करते हैं) भी शामिल थे जिनका पेशा ही हिंसा था।

अशोक के धर्म-प्रवर्तन का जो नतीजा निकला उसका वर्णन इस लेख में दिया गया है। अब लोग अधिक धार्मिक (धर्मयुत) हो गये और अब सभी प्राणियों का हित और सुख अहिंसा के कारण बढ़ गया। अब लोगों के कष्टों (अपाय) और कठिनाइयों (दुष्प्रतिभाग) में काफी कमी हो गई और सर्वत्र शांति और प्रीति और संयम का प्रचार हो गया। अहिंसा के आचरण के कारण अब लोगों का नैतिक स्तर ऊँचा हो गया। अब छोटे लोग माता-पिता और अन्य गुरुजनों का अधिक आदर करने लगे। इससे पारिवारिक जीवन अधिक सुखद हो गया। धर्म और अहिंसा के आचरण लोगों के सामाजिक उन्नयन (अभ्युन्नत) में हमेशा के लिए योगदान किया।

इस प्रकार अशोक शांति का अग्रदूत सिद्ध होता है। उसने ठीक ही पहचान लिया था कि शांति की नींव अध्यात्म और अहिंसा पर आधारित धर्म (विहिंसा भूतानाम्) ही हो सकता है। यही "विश्व में शांति और प्रीति के युग का प्रारंभ कर सकता है।" उसने अनुभव किया युद्धों का जन्म मनुष्यों के मन में ही होता है। (प्रीति रस के विपरीत) घृणा और संघर्ष को निकालकर मन को शुद्ध करना होगा और इनके स्थान पर लोगों के मनों में प्रीति की स्थापना करनी होगी। अशोक ने अपने राज्य (विजित) में शांति स्थापित की। इसका आधार धर्म-चक्र को बनाया गया। अशोक ने जिन आदर्शों की स्थापना की थी उनकी प्राप्ति के लिए संसार अभी तक संघर्ष कर रहा है।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि अहिंसा के धर्म का बड़ा व्यापक असर हुआ। इससे घर और परिवार के जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा। इससे छोटे अपने गुरुजनों का सम्मान करने लगे। सभी लोगों के बीच सम्यक् संबंधों (संप्रतिपत्ति) का विकास हुआ। समाज अब अधिक सुरक्षित हो गया। अब वह हिंसा के भय (अपाय) से मुक्त हो गया। सर्वत्र शांति स्थापित हो गई और प्रीति बढ़ी। अशोक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ने सर्व प्राणियों के हित और सुख के लिए अहिंसा (शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार की) का रास्ता अपना लिया।

७

अहरौरा

लघु चट्टान लेख की एक वाचना चुनार (उ० प्र०) के पास अहरौरा में मिली है। अभी तक यह लेख प्रकाशित नहीं हुआ है।

८

अमरावती

अमरावती में एक लेख का टुकड़ा मिला है। भाषा और लिपि दोनों दृष्टियों से दी० च० सरकार (ए० इं०, खंड ३५) के मतानुसार यह अशोक के किसी स्तंभ का टुकड़ा है। इसकी विषयवस्तु भी अशोक के लेखों से मिलती-जुलती है। फिर तो जैसा डाक्टर सरकार का मत है अमरावती का बौद्ध स्तूप मूलतः अशोक का ही बनवाया हुआ है।

९

रानी के लेख का संशोधित पाठ और उसका अनुवाद (श्री चरण दास चटर्जी, एम० ए०, लखनऊ विश्वविद्यालय)

मूलपाठ[1]

(१) देवानंपियषा वचनेना सवत महमता

(२) वतविया (//) ए हेत दुतियाये देवियै दाने (/)

(३) अंबावडिका वा आलमे व दान (ग)हे व (/)
[ए वा पि अ]ने

(४) किचि गनीयति ताये देवियै (/) षे नानि
हे वंग न ये (/)

(५) दुतीयाये देवियै ति (/) तिवलमातु कालुवाकिये (//)[2]

---

१. पाठ जो पूरा किया गया है। दे० अनल्स आफ भंडार० ओरि० रिसर्च इंस्टि. xxxlv पृ० ४३-४७।

२. ये विराम चिह्न पाठकों की सुविधा के लिए लगाये गये हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अनुवाद

देवानंपिय के आदेश से सभी स्थानों (विभागों) के महामात्रों से इस भांति कहना :

"दूसरी रानी जो भी दान दे, चाहे वह आम का बगीचा हो या विहार या दानगृह और भी चाहे जिस (दान) की गिनती रानी के (दान) में आती हो उस सबकी (सरकारी तौर से) गिनती इस रूप में करनी चाहिए :

'द्वितीय रानी चारुवाकी ('मृदु बोलने वाली') तिवर ('तीन वर' : बुद्ध, धर्म और संघ के) की माता का दान'।"

———

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अनुक्रमणिका

अकबर, बादशाह, १, १३, ७३, १६७ टि।
अकिञ्चनता, नितान्त, अशोक द्वारा वकालत नहीं, १३२ टि।
अग्निब्रह्मा, अशोक का भागिनेय, ८, ६, ३७, ६२ टि।
अग्रभूति (या भूत), ऊँची जाति के लोग, के प्रति शुश्रूषा, ५८, १३७ टि।
अच्छे काम, ५६, ११७, १४६, १६० ।
अजन्ता का भित्ति-चित्र, ३० ।
अण्टिगोनस गोनोटास, मैसिडोनिया का, २५, ४७, १३६।
अतिभोग, १४६ ।
अनन्तवर्मन्, राजा, ७५ ।
अनागत-भयानि, ५६, ६६ ।
अन्त, १४ टि, ११८ टि, १४०-१ १७६ (देखिये सीमान्त-जातियाँ)
अन्त-महामात्र, ३५, ४७, १४५, १७६ ।
अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, प्रगत, अशोक के, ४६ ।
अन्तियोकस थिओस, सीरिया का, १४, २५, ३२, ४७, १३६ ।
अन्याय, परिहार, २६ टि, ३६, १०१-२, ११६-२०, १७५ ।
अपरान्त या अपरान्तक, पश्चिम भारत, २८, ८६, ११८, १४० टि, १४१ टि।
अपुण्य, ५६, ८५ ।
अभिषेक-वर्ष, अशोक की उल्लेख-तिथि, १०, ३१-४, ३७, १७६ ।
अमरत्व, में अशोक का विश्वास ६३, १३३ ।
अरामैक लिपि, २१५ ।
अरोकोशिया, ११, १४ ।
अलकदेव, २८ ।
अलिय-वसानि, ५६, ६६ ।
अलेक्जाण्डर, एपिरस का, २५, ३३, १३६ ।
अल्फ्रेड, १ ।
अवशेष-मञ्जूषाएँ, ८२ ।
अविजित जातियों की स्वतन्त्रता, धर्माचरण पर सापेक्ष, १६, ४६, १०६-७, १३८-६ ।
अवेस्ता, से तादात्म्य, लेखों की पश्चिमी विभाषा का, २१७ ।
अशोक, धर्मप्रिय राजा, (१०५), इतिहास में स्थान, १, ८६-७; दन्त-कथा में, १-२, ८६-७; लेखों में आत्म-कथा, २; माता-पिता, २-३; माता-पिता पर आजीविक प्रभाव, ३; उज्जैन या तक्षशिला में वाइसराय,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

३-४, ४३, १०५; पाटलिपुत्र के सिंहासन पर अधिकार, ३, ३७; उत्तराधिकार के लिये युद्ध, ३-४, ३७; क्रूरता की दन्त-कथाएँ और उनका उद्देश्य, ४-५, ५२; सम्बन्धियों के प्रति प्रेम, दन्त-कथाओं और लेखों में, ५-७, ६०, ९७, ११४, ११६, १२१, १३३, १३७, १६०-१, १६८; भाई वाइसराय, ५-६, ४३, १०४, १०५टि; अनुज के साथ सम्बन्ध, ६; भाई उपराज और भिक्षु, ६-७, ३७-८, ४३-४; परिवार और सम्बन्धी, ५-६; घरेलू और सार्वजनिक घटनाओं की तिथियाँ, ८-९, ३१-४, ३७-९, १७९; सिंहासन पाने और अभिषेक की उम्र, १०; विरुद और उनका मूल, १०-१, ८६-७, ९०; साम्राज्य का विस्तार, १२-१५, ४२-३, १२१, १४४; दौरे, यात्राएँ, १५, १७-८, ४२-३, ४६, १२८-९; कलिङ्ग से युद्ध—युद्ध के क्रूर परिणामों पर अशोक, १५-६, ३१, १३७-८; धर्म और अहिंसा-ग्रहण, १६-२१, ६३टि, ९०-१, १३७-९, १७८-९; बौद्ध-धर्म-ग्रहण १६-७, २०-१, ३१, ३४, ३८, ५१-३, ९०-१, १७९; प्रचार-कार्य, १६-७, ९०-२, १३६-७; लेखों की मनःकल्पना, १७, २२, १५५-७; जीवन और आचार-विचारों में परिवर्तन, १७-८, ५१, ११०, १२७-८, १५५; क्रूर आमोद-प्रमोद समाप्त, १७-८, ३२, ५१, १०८-१०; धर्म के लिये राज-नीति का त्याग—शस्त्र नहीं, धर्म साम्राज्य का आधार, १८-२०, १४२-३; प्राणि-वध निषेध, १८-९, ३२-३, ५१, ५५, १०८-१०, ११४, ११६, १३३, १४७, १५२-४; दागने, वधिया करने, मछली मारने का निषेध, १९, ३३, १५४-५; सार्वजनिक हित के कार्य, १९, ३२-३, १११-२, १५८; भिक्खु नहीं, किन्तु शासक और सङ्घ का सेवक, २०-१, ३८-९, ५२-३, ९०-१, ९१-२टि, ९८-१००, १५९, १६२-४, १६७; बौद्ध-धर्म-प्रचार—जुलूस और प्रदर्शन, २१-२, ३२-३, ११५-६; धर्म-यात्राओं का श्रीगणेश, २२-४, ३३, ३९, ५१-२, १२७-९; पदाधिकारियों द्वारा दौरे, २४-५, ३२, १०३-५, ११२-४; धर्म-महामात्र, अशोक की सूझ, २४-६ ३१-६, ४६-७, ५१, ६२, ११८-२१, १५७, १५९, १६३-४; स्त्री-अध्यक्ष-महामात्र, २६, ३३, ३६, ४७,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

१३४; विदेशों में शान्ति, सद्-भावना और सामाजिक कल्याण के लिये दूत-मण्डल, २५, २७-३०, ३२, ४७, ६४-५, ११८, १३९; दूत-मण्डल—जनश्रुतियों से प्राप्त सूचनाएँ, २७-८; दूत-मण्डल — अवशेषों और लेखों से पुष्टि, २९-३०; समुद्री जहाजों का बेड़ा, ३०-१; लेखों की प्रकाशन-तिथि, ३०-१, १७९; लेखों से पहले के कार्य, ३२-३; लेखों के आधार पर कालक्रम, ३०-६, १७९; और जनश्रुतियों के आधार पर ३७-९; अशोक की मृत्यु, ३२, ३९; अन्तिम दिनों सम्बन्धी जनश्रुति, ३१टि; उसकी प्रशासनिक सेवा, ३५-६, ४७-९, १०६-७, १२२-५, १३४-६, १४५, १४८-५०, १५७, विहारों और चैत्यों का निर्माता ३८, ६६-९, १२८ टि; स्वयं-मर्यादित निरङ्कुश शासक, पितृ-तुल्य सम्राट् और परि-श्रमी राजा, ४१-२, १२२-६ १२८-९; शासन, शाही और स्थानीय—उसका अपना हिस्सा, ४५-६; राजा की परिषद्, ४६; ११४, १२४; भेद का भय, ४६, ५३-४, ५७; भेद के विरुद्ध आदेश, १६२-७; राजा के आदेश, कैसे जारी होते थे, ४६; सीमान्त नीति और प्रशासन, ४८, १०६-७; साम्राज्य की नीति, ४९, १०६, ११५, १३८-९; निजी धर्म बौद्ध, ५०-४, ५६-८, ९०-२, १४३टि १५९; सार्वजनिक धर्म—सहिष्णुता, ५४-५, ५७-६२, ८४, ९२-४टि, ११४-५, १२६, १२८-९, १३०-१, १३४, १५५-६, १५९, १६०-१; लेखों का धर्म—नैतिक नियम—सभी धर्मों का सार—५७-६५, ८४; अशोक के सन्देश और शब्दावलि की मौलिकता—६०-३, ९४-५, ११६, १३०-५, १४५-८, १६०-१, उसका परलोक में विश्वास, ६२-३, १०१, १२६, १३१, १४२-३, १४५, १५१, १६१; उसका धर्म एक विश्वजनीन धर्म का आधार, ६३-४, १३३-६; नगरों का निर्माता और सुधारक, ६६, ७९-८०; स्तूप, ६६-९, ७४, ८७; स्तम्भ और उनका स्थानान्तर, ६९-७८; गुफा-वास, ७५, १७२-३; सिंचाई कार्य, ७८-९; पाटलीपुत्र में राजधानी, राजमहल, और उद्यान ७९-८१; अशोक-कालीन कला, वस्तुतः भारतीय, ८१-३; तत्कालीन सामाजिक अवस्था, ८४-८।

अशोक—अवदान, ४, १५०टि।

अशोक की लिपि—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दो प्रकार की, ८५ (देखिये ब्राह्मी, खरोष्ठी)।
अशोक के भाई, २-८, ३७-८, ४३, १०४, १०५टि, १२७टि (देखिये सुसीम, तिष्य वीताशोक)।
अशोक के समकालीन राजा, २५, २७, ३३-४, ४७, ८६, १३९।
अशोक, सम्बन्धी ज्ञान, प्रगति, (७)-(१०)
अशोक स्तम्भों की नकल, ७६टि।
अश्व-प्रतीक, ५१, ७१, ७६, ७७, १६९टि।
असन्धिमित्रा, अशोक की अग्रमहिषी, ८, ३७ ३९।
अस्पताल और चिकित्सा, १९, ३२।
अहिंसा, १६, १८, ५८, ११६, १३१, १३३, १७७; लक्षित, ३६, १०८, ११४।
आचरण-संहिता (धर्म), ५७-९।
आचार या मङ्गलाचार, ८५, सार्थक और निरर्थक, १२९-३१।
आचार्य, की पाँच प्रकार से सेवा, १३०टि।
आजीविक, ३, २६, ५४, ८४, १५९, १७५; गुफा-दान, ३१, ५४, ६८, ७५, १७२, १७३।
आत्मन्, ब्राह्मण-धर्म में ५५टि।
आत्म-पराक्रम, ६१, ९१-२, ९४, १३२।
आत्म-परीक्षण, ५६, ५९, ६२, १४५, १४६-८।
आदर, ५८, ९७।
आध्यात्मिक दृष्टि, ५५-६, ६०, १४७।
आनन्द, २३।
आन्तरिक उपाय, स्तम्भ-लेख ७ सारांश ३४-५, १५६-६२, १७७।
आन्ध्र, १९, २५, १४२।
आपगीव, २९।
आमुख, राजा के आदेश का, ४६, ९०, ९७, १०२, ११२।
आम्र-वाटिकाएँ, १९, ३३, ४८ १५८, १६८।
आयुपाला, ३८।
आर्थर, १।
आश्रित-पालन, १३०टि।
इ-त्सिङ्ग, उल्लेख, भिक्षु-वेश में अशोक की मूर्ति ५३टि; विहार-अतिथि २०टि; बुद्ध की भविष्यवाणी, ३टि।
इन्द्रजी, डॉ भगवानलाल, (१०)।
इसिपतन (सारनाथ), २३।
इसिल, १२, १४, ४४, ८९।
इसेनेज, ६५टि।
ईरानी और भारतीय कला, एक समान डिजाइन के महल, ८०; स्तम्भ, ८२-३; अभिव्यञ्जित एक समान मूल, ८०-१ टि, ८३।
ईरानी और भारतीय लेख-सूत्र, ९० टि।
उज्जैन या उज्जैनी, १४;—में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अशोक, ३, ४, ७, ३७, १०४ टि, दौरे, २४, ४८,१०४, १७४; कुमार वाइसराय, ४३, १०४।
उत्तर, २८-९।
उत्रिय, २८।
उद्यान, ४८, १२३।
उद्यान-शास्त्री ४८।
उपगुप्त, मथुरा का, (मौग्गलिपुत्त तिस्स), अशोक का गुरु, २३,९१-२टि, १७०; विनय का पञ्चम उपदेष्टा, ५२; गुफा-दान, ७५; अशोक द्वारा निर्माण की इच्छा सूचित, ६६; ८४००० विहारों की कथा, ६६-८; महेन्द्र को दीक्षा, ३८; तृतीय बौद्ध सङ्गीति की अध्यक्षता, २७, ५०-१, ५२;—के अवशेष, २९; विरक्त, किन्तु फिर बुलाया जाना, ३८; थेरों (दूतों) को भेजा, २७, ३९ (देखिये तीर्थ-यात्रा)।
उपतिस पसिने, ९९।
उपनिषद्, लेखों में प्रतिध्वनित, ५५ टि, ९७टि
उपराज, ४३।
उपासक, १६३।
उपोसथ दिन, ५१, १५३-५, १६३ टि।
उमर, खलीफा, १।
ऋण, मनुष्यों के और राजाओं के ४२।
ऋष्यिय, २८।
एकतन्त्र, मर्यादित, हिन्दू राज्यशास्त्र में ४०-२।
एकता, धर्मों की, ९३टि।
एकवतना, ७९।
एडमण्ड्स, ए. जे., ९८टि।
एण्टियोकस, सोतर, ६५ टि।
एरिया, ११, १४।
एलियट, सर वाल्टर, (९)।
एलिस, (९)।
ओझा, लेखों का हिन्दी संस्करण, ११७ टि।
ओर्टेल, (१०)।
औषधि-उद्यान, १९, ३२, ४८, १११-२।
औषधियों के पौधे, १९, ३२, ४८, १११-२।
कटरा, ७४।
कथावत्थु, ५१।
कनिङ्घम्, कार्पस् इंस्क्रिप्शनम् इन्डिकेरम्।
सङ्किसा में खोज, ७० टि, अशोक के स्तम्भों की नकलें, ७६ टि; अशोक से पहिले के स्तम्भ, ७३ टि; ब्राह्मी लिपि का मूल, २१५; भरहुत का स्तूप, ५१ टि; वैशाली का स्तम्भ, ७२; अशोक के स्तम्भों का वजन, ७८।
कपिस (काफिरिस्तान), १४।
कपिलवस्तु, २३;—के निकट स्तम्भ, ७१।
कमल और मधुमक्खी का छत्ता फलक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

७६; शीर्ष, ७५, ८२; प्रतीक, १७१ टि।
कम्बोज, १४, १६, २५, ११८, १४१।
कर्न का मैनुअल आफ इण्डियन बुद्धिज्म, ५६।
कर्म, ८५।
कलिङ्ग, अशोक की एकमेव विजय; तिथि, ३१, १७६; स्थानीय महत्त्व के लेख, १२, १०६, १७६, १७६; युद्ध-हानि का आकलन, १५, १३६-८; युद्ध-शक्ति, १३६, टि; विजय-पूर्व धर्म का पालन करने वाले, ६३ टि, १३७; आदिम अवस्था, २४; युद्ध की प्रतिक्रियाएँ, १५-६, ६३ टि, १३६-६, १७६; पुनराश्वासन, ४१, १३८।
कलिङ्ग चट्टान-लेख १ (धौली:) सटिप्पण अनुवाद, १००-५; वच्चे, ६, १०१; नगर-व्यावहारिक, ४७, १०३; विभाषा, २१६; खोज प्रान्तीय अधिकारी उत्प्रेरित, ४४-५, १०२; न्याय-निरीक्षकों की पूर्व-कल्पना, १०३, १७४-५; राजा के आदेश, ४६, १०२; स्थान, १२; परलोक, ६२, १०१; शासकीय दौरे, २४, ४८, १०३, १०५; सीमान्त नगर, १४, १०४-५; राजकुमार वाइसराय, ५-६, ४३, १०४; अन्याय-सुधार, २६ टि, ३६, १०२; मूल-लेख, १८३-६; वाइसराय के मन्त्री, ४४।
कलिङ्ग चट्टान-लेख २ (जौगड़): सटिप्पण अनुवाद, १०६-८; धर्म-महामात्रों की पूर्व-कल्पना, २४, ३६, १०७, १७४; विभाषा, २१६; राज्यों की समता, १८, १०६; स्थान, १२; पिता के रूप में शासन, ४१, १०७; प्रान्तीय अधिकारी, ४४, १०६; लेख का पठन-श्रवण, ४५, १०८; मूल-लेख, १८६-७; तिष्य-दिन, ४५, १०८; अविजित सीमान्त जातियाँ, ४६, १०६-७, १७६; वाइसराय के कर्मचारी, ४४-१०६।
कल्हण, अशोक की इमारतों पर, ६६।
कश्मीर, १४, २७, २८; परम्परानुसार सङ्घ को दान, ६६;—में विहार, ६६, ६९।
कश्मीरी इतिवृत्त, उल्लेख, ८।
कस्सपगोत्त (कोतिपुत्त), २८-३०।
कांस्टैण्टाइन और ईसाई धर्म १।
काञ्चीपुर (सतियपुत्र), १४।
कार्ड्रिंग्टन, भारतीय और ईरानी घण्टा-शीर्षों पर ८२।
कानून, अशोक के लेखों द्वारा निर्दिष्ट, ४५।
कानून, जातीय जीवन का स्वाभाविक विकास, ४०-१;—के स्रोत, ४०।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कारुवाकी, ७, ८, १२१ टि; —का लेख १६८।
कालक्रम, अशोक का, लेखों से, ३१-४, १७६; जनश्रुतियों से, ६, ३७-६।
कालसी चट्टान-लेख, विभाषा, २१६; खोज, स्थान, १२; हाथी-प्रतीक, ५१, १४३ टि, (देखिये लेख ६ और १०)।
किट्टो, धौली में (८)।
कुएँ और आपान, १६, २५, ३२, ३३, ४८, ११२, १५८।
कुणाल (धर्म-विवर्धन), पद्मावती का पुत्र, ८, ६, ३८; तक्षशिला में वाइसराय, ३६ ४३, ४४, १०५ टि।
कुमार और दालक, ६।
कुमारदेवी द्वारा अशोक की प्रशंसा, ८७।
कुमारस्वामी, डॉ आनन्द के, भारतीय लोक-कला पर, ८१।
कुशीनगर या कुशीनारा, २३;
—में स्तम्भ, ७१;
—में अवशेष, ५० टि।
कृतज्ञता, ५६, १२६।
केरलपुत्र (मलावार), १४, १६, १११।
केसरिया में स्तूप, ६६।
कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, उल्लेख, २१ टि०, ३३, ३८, ४७ टि, ६६, १४० टि; उद्धरण, २६, ४०, ५७, ८१-२।
कोडिणीपुत, २६।
कोर्त, (८)।
कोर्याट टाम, दिल्ली-स्तम्भ पर,७७।
कोसाम्वी (देखिये कौशाम्वी)।
कोसिकीपुत, २६।
कौटिल्य, निर्देश, अर्थशास्त्र की लेखों से तुलना, (११), ८६ टि, ६० टि; जानवरों के वाड़े, १२२ टि; विजयी का कर्तव्य, १३६ टि; विजयी, तीन प्रकार के, १३६ टि; 'पान', १०६ टि; हस्त्यध्यक्ष, ४६; निःशुल्क आयात, ११२ टि; प्रत्यन्त, ११० टि; अन्तपाल, ४८ टि; मृगवन, १२३; अधिकारीवर्ग, १०४टि०, १०५टि, १०७ टि, ११२ टि, ११३ टि; विवीताध्यक्ष, १३५ टि; मृगया, १२७ टि; जेल से रिहाई, १५५ टि; राजा और उसकी मन्त्रिपरिषद् १२५टि; राजा पितृवत्, १०१ टि; राजा के कर्तव्य, १२३ टि, १२५ टि; राजा की परिषद्, ४६; राजा के आदेश ४६, ६० टि; महामात्र, ८६ टि, १०० टि, १०७ टि, १२१ टि, १४५ टि; गूढ़पुरुष, ४८, १२४ टि; रक्षित प्राणी, १५३ टि; लोकवित्त, ११५ टि; सार्वजनिक कार्य, १५८-६ टि; उद्धार-मूल्य, १५१ टि; राजकीय सूत्र, ६० टि; अन्तःपुर, १६० टि; सचिवालय, ४७ टि;

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जातिपृथक्करण, १२६ टि; दास और नौकर-चाकर १३० टि; दुःखी जनों के प्रति राजा का कर्तव्य, १०१ टि; १२० टि; ताम्रपर्णी, १११ टि; दापक, १२४ टि; कैदियों से व्यवहार, १०२-३टि, १२१ टि; पश्चिमी भारत (अपरान्त), ११६ टि।
कौशांम्बी (कोसम), ४४, ७३;—में स्तम्भ, ७८ (देखिये लघु स्तम्भ लेख २)
क्रामवेल, ग्रालिवर, १, ६१।
खरोष्ठी या खरोष्ट्री लिपि, (६), ६८ टि; सेमेटिक मूल, २१५।
खलतिक पर्वत (बरवर पहाड़ी), १७२ टि (देखिये गुफालेख १, २)।
खल्लाटक, प्रधान-मन्त्री, ३ टि, ४३।
खारवेल, कलिङ्ग का, १०, १७२ टि।
गङ्गा, ७६ टि, ८७।
गन्धार, ८, २७, २८, ४३।
गरुड़-प्रतीक, ७६, ७६ टि।
गाय, रक्षित, १६, १५३ टि, १५४।
गिरनार चट्टान-लेख, (८), १२, १२ टि, ५१; नीचे कटी-पिटी लाइनें, १४३ टि विभाषा, २१६।
गिरनार, सुराष्ट्र की राजधानी १२-, १३ टि, ४३।
गिरिदत्त थेर, ७।
गुप्त, वाराणसी का, २३।
गुफा-लेख—
(१)(निग्रोध) सटिप्पण अनुवाद, १७२; आजीविकों को दान, १७२; मूल-लेख, २१३। (२) (खलतिक पर्वत) सटिप्पण अनुवाद, १७३; आजीविकों को दान, १७३; मूल-लेख, २१३-४। (३) (खलतिक पर्वत गुफा सं २) सटिप्पण अनुवाद, १७३, वर्षा से बचाव के लिये दान, १७३; मूल-लेख, २१४।
गुफा-वास, ७५।
गुरु-जन, वृद्ध-जन, के प्रति व्यवहार, १८, ५७-८, ११६, १२८, १३७।
गृहस्थ, ८५, ११६, १५६, १७६; —के गुण, ८५, १३७-८।
गृहस्थ या पारिवारिक जीवन, ५८-६, ८५।
गेड्रोसिया, ११, १४।
गैंडा, १५२।
गोतिपुत, २६।
गोल्ट्ज, राष्ट्र की युद्ध-शक्ति पर, १३६ टि।
ग्नोस्टिक सम्प्रदाय और बौद्ध-धर्म ६५।
चक्र-प्रतीक या धर्म-चक्र, ६६, ७०, ७६, ८३।
चटर्जी, चरणदास, उल्लेख, ३ टि, ७ टि, २० टि, ३० टि, ५२ टि, ६६ टि, ७७ टि, १०५ टि, ११० टि, १३८ टि, १५२ टि।
चट्टान-लेख १ (शाहबाजगढ़ी)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

: सटिप्पण अनुवाद, १०८-१०; बलि-निषिद्ध, १८, ५१, १०८, ११०, १७७; विभाषा, २१६-७; समाज, निषिद्ध, १८, ३२, १०८; अहिंसा अभिप्रेत, ३६, १०८, राजा की रसोई, १८, ११०; मूल-लेख, १८८।

चट्टान-लेख २ (गिरनार) : सटिप्पण अनुवाद, ११०-२; अन्त (सीमान्तवासी), २५, ३५, १११, १७६; विभाषा, २१६-७; औषधियाँ, जड़ी-बूटियाँ, मूल, फल, मँगवाये गये और रोपवाये गये, १६, २५, १११-२; चिकित्सा-सहायता, मनुष्यों और पशुओं के लिये, देश-विदेश में, २७, ३२, ४८-६, ११०-१; मार्गों पर कुएँ और वृक्ष, २५, ३२, ३५, ४८, ११२; ताम्रपर्णी या लङ्का, ३०, १११; मूल-लेख, १८८-६; कल्याण-कार्य, ३४, ११०-२, १७७।

चट्टान-लेख ३ (गिरनार) : सटिप्पण अनुवाद, ११२-४; विभाषा, २१६-७; दान, ५४, ११४; परिमितता, ११४; अहिंसा अभिप्रेत, ३६, ११४, १७७; दौरे, २४, ३२, ४८, ११२-४; १७४-५; प्रादेशिक, ४४, ११२-३; आमुख ४६, ११२; राजूक, ३५, ४८, ११२, १७७; सम्बन्धी, ५, ११४, मूल-लेख, १८६-६०; युक्त, ४८, ११२, ११४।

चट्टान-लेख ४ (गिरनार) : सटिप्पण अनुवाद, ११५-६; विभाषा, २१६-७; राजा का श्रेष्ठ कार्य, धर्म-प्रचार, ६१, ११६, अहिंसा, ३६, ११६, १७७; शुश्रूषा, (सेवा), ५७-८, ११६; सम्बन्धी, ५, ११५-६; धार्मिक प्रदर्शन और जुलूस, ३३, ११५; मूल-लेख, १६०-१; संन्यासियों के प्रति अनादर की निन्दा, ५४, ११५; युद्ध के नगाड़े खामोश, १८, ३२, ४६, ११५।

चट्टान-लेख ५ (मानसेहरा) : सटिप्पण अनुवाद, ११७-२२; संन्यासी, ब्राह्मण, ८५-६, ११६; सीमान्तवासी, पश्चिमी, १५, ३४, ११८, १७६; अनाथ और अशक्त, ११६; धर्ममहामात्र, २५, ३२, ३५-६, ४७, ११७-२२, १७५-६; विभाषा, २१६-७; 'यहाँ' अर्थात् पाटलिपुत्र, १४, १२१; गृहस्थ, ८५, ११६; लेखों का उद्देश्य, १७, १२२; अन्याय को सुधारना, २६ टि, ३६, ११६-२१, सम्बन्धी, ५, १२१; सैनिक, ८५, ११६; स्त्रियों की देखरेख, ३६, १२१, १७६; मूललेख, १६१-३।

चट्टान-लेख ६ (गिरनार) : सटिप्पण अनुवाद, १२२-६; विभाषा, २१६-७; राजा के कर्तव्य, १५,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

४२, १२२-६; राजा का प्रधान कर्तव्य, ६१, १२५; महामात्र, ४७, १२४; उद्यान, ४८, १२३; व्रज या पशुशाला ४८, १२२; लेख का उद्देश्य, १२६; मूल-लेख, १९३-४।

चट्टान-लेख ७ (शाहबाजगढ़ी) : सटिप्पण अनुवाद १२६-७; विभाषा, २१६-७; सम्प्रदायों का पृथक्करण नहीं, ५४, १२६; मूल-लेख, १९४-५।

चट्टान-लेख ८ (शाहबाजगढ़ी) : सटिप्पण अनुवाद, १२७-९; बोधगया, १४, ३१ १२७-८, १७९; विभाषा, २१६-७; निरीक्षण दौरे, १५, १८, ४२-३, १२८-९; राजा के नैतिक उपदेश, ६१, १२९; राजा का विरुद, १०, १२७, १२९; धर्म-यात्रा, १६, १८, १२८; विहार-यात्रा, अतीत, १७, २२, ३२, १२७; मूल-लेख १९५; संन्यासियों और वृद्धों के दर्शन और दान, १८, ५४, १२८।

चट्टान-लेख ९ (कालसी) : सटिप्पण अनुवाद, १२९-३१; संन्यासियों को दान, ५४, १३१; मङ्गलाचार, सच्चा, ५५,६१,८५,१२९-३१; विभाषा, २१६-७; परलोक, ६२, १३१; अहिंसा, ३६, १३१, १७७; दास और सेवक, ८५, १३०; मूल-लेख और पाठ भेद, १९५-७।

चट्टान-लेख १० (कालसी) : सटिप्पण अनुवाद, १३१-२; विभाषा, २१६-७ ; यश, ६२, १३१; राजा के पराक्रम, परलोक के लिये, ६३, १३२; आत्म-पराक्रम, ६१, १३२; मूल-लेख, १९७-८।

चट्टान-लेख ११ (शाहबाजगढ़ी) : सटिप्पण अनुवाद, १३२-३, संन्यासी, ८५, १३३; धर्म, सबसे बड़ा दान, ६०, ६१, १३२-३; विभाषा, २१६-७ ; अहिंसा, ३६, १३३, १७७; सम्बन्धी और मित्र, ५, १३३; दास और सेवक, ८५, १३३; मूल-लेख, १९८।

चट्टान-लेख १२ (गिरनार): सटिप्पण अनुवाद, १३३-६; विभाषा, २१६-७ ; धर्मों का सार, ६४, १३३-४; सभी सम्प्रदायों का आदर, ५५, ६१, १३३-४; स्त्री-अध्यक्ष-महामात्र, २६, ३३, ३६, १३४, १७६; मूल-लेख, १९८-२००; व्रजभूमिक या वचभूमिक, ४८, १३५।

चट्टान-लेख १३ (शाहबाजगढ़ी) : सटिप्पण अनुवाद, १३६-४३; अन्त, ३५, १३९, १४० टि, १७६, संन्यासी, ८५, १३७; १३८; अशोक का बौद्ध-धर्म, १६, १३७-८, १७८-९; लङ्का, ताम्रपर्णी, ३०, १४०; विजय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समाप्त, ३२, ४६, १३७-६; विजय सच्ची, ६२, १३६-४०; तिथि, ३४,१३६; विभाषा २१६-७ दूत और उनकी नैतिक विजय, २५, ३२,४७, १३८-४२, १७६-७; शत्रुओं को क्षमा, १८,१३८; यूनानी समकालीन राजा, २७, ३३-४, १३६; गृहस्थों के गुण, १३७-८; कलिङ्गविजय के लिये राजा का पश्चात्ताप, १५-६, १३७-६; राजा द्वारा धर्मोपदेश, ६१, १३७; परलोक, ६२, १४२-३; कलिङ्ग में प्रकाशन नहीं, १२, १३६ टि; वाह्य जन आश्वासित, किन्तु उपदिष्ट, १८-६, ४६, १३८-६; कलिङ्ग की आदिम अवस्था, २४, १३८; सम्बन्धी, ५, १३७-८; सेवक और आश्रित, ८५, १३७; मूल-लेख, २००-२।

चट्टान-लेख १४ (गिरनार): सटिप्पण अनुवाद, १४३-४; विभाषा, २१६-७; विजित राज्य विस्तृत, १३, १४४; लेख उपसंहार-रूप, १७, १४३-४; अपूर्णताएँ, १४-५, ४३, १४४! राजा के आदेश, लिखे गये, ४६, १४४; मूल-लेख, २०२-३।

चट्टान-लेख, तिथि, जारी करने की, ३१, ३६, ११६ टि, १७६; विभाषाएँ, २१६-७; स्तम्भ-लेखों से पूर्व, ३४-६; दो बार जारी हुए, या कालक्रम, ३६; उद्देश्य, १६-७, १५५-६।

चण्डाशोक और धर्माशोक, ४-५, १६ टि, १३६ टि।

चन्द्रगुप्त मौर्य, ६, ११; वार्षिक खेल, ११० टि; कार्य-रत, १२२ टि; राजधानी, ७६-८०; सेल्यूकस को हराया, ११, १४; साम्राज्य, ११; विदेशों से सम्बन्ध, ८०-१ टि ८३; अनुश्रुत सिंहासन-त्याग और मुनित्व, ११; राज्यकाल ३४; शिकार-प्रेम, १२७ टि; मील के पत्थर, १८८ टि।

चपड़ लिपिकार, ६८, २१५।

चाइल्डर्स, बौद्ध-धर्म में पाप पर, ६० टि।

चारुमती, अशोक की पुत्री, ६, ६६।

चार्लमैग्ने, १।

चिकित्सा-सहायता, २७, ३२, ४८-६, १११-२।

चितलद्रुग, मैसूर, में लघु चट्टान-लेख, १२।

चिन्तन, ६२, १६१।

चुनार की पहाड़ियाँ, ७८।

चोल, या चोड़, १४, १६, २५, ४७, १११, १४०।

छोटे राज्य, के अधिकारी, अशोक द्वारा सम्मान, १८-६, ४६, १०६-७।

जनसान, आजीविक साधु, ३, ५४ टि।

जम्बूद्वीप, अशोक का देश, ४-५ टि,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

८७;—का अनुश्रुत दान, ५३; —में प्रचार, २१, ९२;—की आध्यात्मिकता, ९३-४ टि।
जलौक, अशोक का एक पुत्र, ८, ९।
जहाजरानी, ३०-१।
जाति, धर्म की अपेक्षा अमुख्य, ८६।
जातियाँ और वर्ग, अशोक-कालीन समाज में, ८५।
जाव, उद्धरण, २।
जायसवाल का. प्र., ११४टि, ११७ टि, १२४टि, १२९टि, १४१टि, १४२टि, १४८टि १४९टि। लेखों की स्मृतियों से तुलना, १२०टि; कलिङ्ग की जनसंख्या का अनुमान, १३६टि।
जिला अधिकारी, या डिवीजन कमिश्नर, प्रादेशिक, २४, ४४, ४७, ४८, ११२-३।
जीवन, अशोक द्वारा मूल्याङ्कन, ५५, ९७;—का दान, ३३, ६१, १४७।
जीवन में धार्मिक परिवर्तन आदिष्ट, १८, १५५।
जेल से कैदियों की रिहाई। अभिषेक के दिन, ३३, ५५, १५५।
जैकसन, वी. एच., द्वारा लेखों की खोज, १७२टि।
जैन (देखिये निर्ग्रन्थ)
जैन-धर्म और अशोक, ५०, ६०टि; और चन्द्रगुप्त, ११;—के प्रवर्तक, ७२;—के ग्रन्थ, ६०टि।
जोन्स, सर विलियम, (८)।
जौगड़ा चट्टान-लेख (देखिये कलिङ्ग चट्टान-लेख)
जौहरी और मणिकारी की कला, ८१-८२।
टाड, (८)
टामस, एफ. डब्ल्यू, (१०); उल्लेख, १२६टि, १३२ टि, १५१ टि, १६३टि, १६४ टि, १७१ टि; अधिकारियों पर ४७टि, ८९टि, ११२टि, ११३ टि, १५९ टि; पलिगोध और पलिबोध पर, १२०टि; सम्प्रदाय, २६, (और देखिये कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया)।
टालेमी फिलाडेल्फास, मिस्र का, २५, ४७, ६५टि, १३९।
टालेमी, भूगोल-विद्, उल्लेख, १११टि।
टीफेनथेलर, (८)।
टोपरा स्तम्भ लेख, १३, ७२; स्तम्भ को दिल्ली ले जाया जाना, ७८;—का मूल-लेख, अनुवाद का आधार, १४५टि (देखिये स्तम्भ-लेख)।
डायोडोटस, बैक्ट्रिया का, ३३, —के सिक्के, ८२।
डायोनीसियस, यूनानी दूत, ६५टि।
डेईमीकस, यूनानी दूत, ६५टि।
डेविड, इजराइल का, १।
डेविड्स राइज, (उद्धरण), १, ६४; अशोक द्वारा धातुओं के विभाजन पर, ६७-८ टि। 'आज्ञापालन' पर, ११६टि।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तक्षशिला या तक्खसिला, १४; सुसीम के स्थान पर अशोक वाइसराय, ३, ४३; अशोक के भाई वाइसराय, ५, १०४टि; अशोक के पुत्र वाइसराय, ४३, १०४टि, १०५;—में प्राप्त सिक्के और रत्न, ८२;—की सरकारी भाषा, २१६; कुणाल वाइसराय, ३६, ४३; दौरे, २४, ४८, १०५, १७४;—में विद्रोह, ३, ३६, ४३-४, १०५ टि ।

ताम्रलिप्ति, १४, ३० ।

तारानाथ, अशोक पर, ४ ।

तिथियाँ (देखिये कालक्रम)

तिष्यदिन, ४५, १०३, १०८, १५४ ।

तिष्य या तिस्स, अशोक का सहोदर भाई, २, ४, ८, ३८, ५२; अनुश्रुत अशोक द्वारा परिवर्तन ६-७, ३८; दीक्षा, ३८, ६१-२टि;—के दूसरे नाम, ६-८; अशोक का उपराज, ७, ३७, ४३ ।

तिष्य-रक्षिता, अशोक की अन्तिम अग्रमहिषी ८, ३६; बोधिवृक्ष से अनुश्रुत द्वेष ४-५, ३६ ।

तिस्स, लङ्का का राजा, १०, ३० ।

तीर्थ-यात्रा, एक भारतीय व्यवस्था, १६-२०; अशोक की उपगुप्त के साथ, २३, ३६; ५१, ५२, १२८टि, १६८,टि, १७०टि ।

तीर्थिक, ६, ११६टि ।

तीवर, कारुवाकी का पुत्र ७, ८, १६८ ।

तुषास्फ, राजा, गिरनार का वाइसराय, ४३, ७६, १४०टि ।

तोसली (धौली), ५, १४; कुमार वाइसराय, ४३, १००, १०४टि ।

त्रिवर्षीय दौरे, २४, ४८ ।

त्रिशूल-प्रतीक, ८३ ।

थेर-गाथा-टीका, ७, ८ ।

थेरापेन्ते, ६५टि ।

दत्त सुकुमार, उल्लेख, १६६टि ।

दया, ५६, १४६, १६० ।

दशरथ, अशोक का पौत्र, ७, ६, ११, ७५ ।

दान, २६, ५४, ५८, ५६, ११४, १५६-६०, १६८, १७६; सबसे बढ़कर, १३१टि ।

दान-गृह, १६८ ।

दान, सच्चा, ६०-१, १३१टि, १३२-३ ।

दारा, घसीट लिपि, २१५, 'ऐसा कहते हैं सूत्र', ६० टि ।

दास और भृत्य, या आश्रित, शूद्र, ८५;—के प्रति पांच प्रकार से व्यवहार, १३०टि;—से उचित व्यवहार, १३०, १३३, १३७, १६१ ।

दास, के प्रति उचित व्यवहार १३०, १३३ ।

दिल्ली टोपरा स्तम्भ, (८), अनुवाद के लिये आधार, १४५टि ।

दिल्ली में स्तम्भों का लाया जाना,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(८), १३, ७२-३, ७८।
दिल्ली मेरठ स्तम्भ, खोज (८)
दिव्यावदान, उल्लेख, ३, ६, ८, ९; ४३, ५३टि, ५४टि; अशोक निर्माता, ६६; अशोक का बौद्ध-धर्म, ९२टि; अशोक के अन्तिम दिन, ३१टि; कालक्रम, ३७-९; सांची में पत्थरों पर चित्रण, ८७-८।
दीदार-गञ्ज, ८१।
दीप-वंश, उल्लेख, २, १० २८।
दुन्दुभिस्सार (ददभिसार) २८, ३०।
दूत, २५,, २९टि, ३०, ३२, ४७, ६५टि, १४२; पहले राजनैतिक फिर धार्मिक, १४२टि।
दृढ़-भक्तिता, ५९, १२६, १३७।
देवता, लोकप्रिय करना, २१, ३१, ९२-३।
देवपातन, अशोक-निर्मित प्रसिद्ध नगर, ६६।
देवपाल क्षत्रिय, अशोक का एक जामाता, ९, ६६।
देवप्रतिमा, जुलूसों में प्रदर्शन, २१-२, —की मौर्यों द्वारा बिक्री, २२।
देव, हरितकृष्ण, कालक्रम पर, ३४टि; स्वस्तिक चिह्न, १०६ टि।
देवानंपिय और पियदसि विरुद, १०-१, ८६; अर्थ का अवमानन, ८६, ९०टि।
देवी, अशोक की प्रथम पत्नी, ७, ८, ३७, ३९।
दौरे, १५, १८, ४२-३, ४६, १२८।
दौरे, युक्तों, राजूकों और प्रादेशिकों के, २४, ३२, ४८, १०३-५ ११२-४।
धम्मचेति लेख, ८७।
धर्म, अशोक द्वारा स्वीकृत, १६;—के पांच प्रयोग, अशोक द्वारा, १३३टि; सभी धर्मों में एक समान; ६३-४;—की विजय, १६, १९, ३०, ३२, ४९, ६२, १३९, १४२-३; परिभाषित, ५९, ६३टि, १४५-६;—का निर्देश, जैसा कि लेखों में व्याख्यात है, ५७-९;—का उपदेश, १८, ३५; अशोक के प्रचार की मौलिकता, ६३टि; अशोक-पूर्व, ७५टि;—द्वारा नियमन, ६२-३, १४५-६, १६०-१, १७८; सार, ३५, ५९, १५६-६१, १७८, पारिभाषिक शब्दावलि, ७४, १३२-३३टि।
धर्म के अनुसार शासन, ६२, १४५-६।
धर्मतन्त्र और अशोक, १।
धर्मपाला उपाध्याया, ३८।
धर्म-महामात्र, आभास, ३६, १०७; सृष्टि, २५, ३१-२, ३५, ४७, ६२, ११८, १५७;—के अनेक कार्य, २५-६, ३५-६, ११८-२१, १५९, १६३-४, १६८टि; १७७-८;—सारे सम्राज्य में ४६; न्याय का काम राजूकों को सौंप दिया गया, १५०टि।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

धर्म-यात्राएँ, राजा की, १६, १८, २२-४, ३३, ३६, ५१, ५२, १२८; वाइसरायों और गवर्नरों की २४-५, १०३-५, ११२-४।

धर्म-रक्षित, या धम्मरक्खित, २८, ८६।

धर्म-रति, ५६, १४३।

धर्म-लिपि, धर्म-लेख, ३४, ६२, १५५।

धर्म-लेखों का, ५७-६५; अशोक द्वारा स्वयं आचरण, ६०।

धर्म-विजय, १६, ३०, ३२, ६२, १३६, १४२-३।

धर्मशाला, सराय, १६, ३३, ४८, १५८।

धर्म, सभी धर्मों का सार, ६२-४ १३३-६।

धर्म, स्वतन्त्रता की शर्तें, ४६।

धर्मा; (देखिये सुभद्राङ्गी)

धातुएँ, बुद्ध की, ५०टि, ६७टि; दूतों की २६-३०।

धार्मिक उदारता, हिन्दुओं की ८६।

धार्मिक-प्रचार, १६-७, २१-३, १५५-७, १७७-८।

धार्मिक-प्रतीति, ८३।

धार्मिक-प्रदर्शन और जुलूस, २१-२, ३३, ११५।

धार्मिक-सम्मेलन, ३३, ४३, ८४।

धौली चट्टान-लेख (देखिये कलिङ्ग चट्टान-लेख १)

धौली हाथी, ५१।

नगर (जलालाबाद), १४।

नगर-व्यावहारिक, २४, ४७, १०३।

नन्द, साम्राज्य, ११।

नरक, अशोक का, ४, ७२।

नाग, नागी, प्रतीक, चित्र, ८७।

नागार्जुनी पर्वत गुफाएँ, वर्णन; ७५, १७२टि; प्रथम यात्रा, (८); आजीविकों को दान, ७५, १७२टि; दशरथ के लेख, १०-१, ७५, १७२-३टि।

नाभपन्ति, या नाभक, १६, २५ १४१।

नाभित, १४२।

निग़ालि-सागर स्तम्भ-लेख, (१०)।

निग्रोध, अशोक का भतीजा, १६टि, ३४, ३७, ३८, ५२, ६१टि।

निग्रोध-गुफा, १७२, २१३।

निग्लीव में स्तम्भ, १३, २३, २४, ७१, ७३, (देखिये स्मारक स्तम्भलेख २)

निजी सचिव, ४६।

निर्ग्रन्थ (जैन), ६-७, २६, ५४; १५६, १७५।

निर्धन और दुःखी, ५८, १६१।

निर्धन या अनाथ, २५, १४२।

निर्वाण, अशोक द्वारा उपदिष्ट नहीं, ५७।

नेपाल, १४, २३, २४, ६६, ७८।

नैतिक उत्थान विभाग, २४-७।

न्याय सुधार, ३३।

पक्षी, रक्षित, १८, ३३, ६०, ११०, १४७, १५२-३।

पञ्च-वर्षीय दौरे, २४, ३२, ४४, ४८, १०३, ११२-५।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पटना, ८१, ८२।

पतञ्जलि, मौर्यों द्वारा देव-मूर्तियों के विक्रय पर, २२।

पत्थरों की कटाई कला, ८२।

पद्मावती, अशोक की तीसरी या चौथी पत्नी, ८, ३८।

परलोक, में सुख, धर्म द्वारा, ६२-३, १०१, १२६, १३१, १४२-३, १४५, १५१, १६१।

पर्वतगुफा (बरबर नागार्जुनी गुफा-वास), (८), (१०)।

पर्वदिन, ब्राह्मण-पद्धति, १५४टि।

पशुओं की लड़ाइयाँ, १०६टि। ११०टि।

पशु-दया, १६, ५८-६, ६०-१, ८५, १४७।

पशु, दागने और बधिया करने की मनाही, १६, १५५;—प्राण दान, ६१, १४७; वध-प्रतिबन्ध, १८-६, ३३, ३६, ५२, ५५, ५८, १५२-४, १६१, १७७।

पाटलिपुत्र, अशोक की राजधानी, १४, २४, २५, ७५, ७६, ८६, १६२,१७६;—में बौद्ध सङ्गीति, २७, ५६,—के सिंहासन का युद्ध, ३-४; मेगस्थनीज द्वारा वर्णन, ७९-८०;—में राजपरिवार, ५; उदय द्वारा नींव ७९; अशोक द्वारा सुधार, ८०; दूत-मण्डल, लङ्का को, लङ्का से, ३०;—में विहार, ६७; राजमहल, ७९-८०, १२३ टि; तीर्थयात्रापथ, २३-४, ६६टि, ७८, ८३; जुलूस २२;—में निषेध, १८, ३२;—के विषय में भविष्यवाणियाँ, ७९, ८१; स्थान की खुदाई—बाढ़ और आग के चिह्न, ८०-१;—में तिष्य, ६;—में स्तूप और स्तम्भ, ५३,७२।

पाण्ड्य, १४, १९, २५, ४७, १११, १४०,

पाप, आसिनव, बन्धन, १३२;—के प्रति अन्धता, १४७;—का भय ५९, १४५;—के लिये क्षमा, ६३, १५०-१;—का अर्थ, १४६टि;—का दलन, ११८।

पारिभाषिक शब्दावलि, अशोक की मौलिक, ६२।

पालियर, (८)।

पाषण्ड, ८४, १३७।

पिङ्गलवत्स, ३टि, ५४टि।

पिटक, ७, ८९टि।

पितनिक, १९, २५, ११८, १४२।

पिपरहवा स्तूप, ८२।

पुण्यवर्धन, १४।

पुनर्वसु-दिन, १५५।

पुराण, उल्लेख, ३४, ११८टि।

पुलिन्द, १९, २५, १४२टि।

पुलिस, प्रादेशिक के अधीन, ११३टि।

पुष्यगुप्त, ४३, ७९।

प्यू, मेजर पी. एल., (८)।

प्रतिवेदक, १२३।

प्रदर्शन और जुलूस २१-२।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रयाग-कौशाम्बी स्तम्भ-लेख, (८), १४, ७३, १६७टि।
प्रवर्तक, अशोक-विषयक अनुसन्धान के, (७)-(१०)।
प्रशासन, अशोक के विचार, १०१-१०२।
प्रशासनिक आदेश, ४६।
प्रश्न-व्याकरण-सूत्र, उल्लेख, ६०टि, १५२टि।
प्रान्तीय अधिकारी, रज्जुक, धाय से तुलना, ४१, ४५, १४९-५०; स्वतन्त्र अधिकार, ३३, १४८-९; प्रमादी, उपदिष्ट, ४५, १०१-२।
प्रान्तीय गवर्नर, राजूक, प्रादेशिक, ३५-६, ४४-५, ४७-८, ११२-३, १४८-५०, १५७, १७५; -को उपदेश, ४५, १०२; स्वतन्त्र अधिकार, ३३, १४८।
प्रान्तीय प्रशासन, ४३-५, ४६-८।
प्रीति, धर्म-विजय में, १४२।
फाङ् चिह्, २०४टि।
फारेस्ट (९)।
फाहियान, उल्लेख, अशोक और उसका भाई, ६; सङ्घ को अशोक का दान, ५३; अशोक का नरक ४टि; वोधिवृक्ष, जनश्रुति, ४; वौद्ध-रथयात्रा, २२; अशुद्ध वाचन, (७); धर्म-विवर्धन, ८, ४३; ८४००० स्तूपों की जनश्रुति, ६७-८; अशोक के छह स्तम्भ, ६९।
फिरोज शाह, द्वारा स्तम्भों को दिल्ली ले जाया जाना, १३, ७३, ७८, १६७टि।
फूशर, विगिनिंग्स आफ़् बुद्धिस्ट आर्ट, ५१टि, ७६टि; सांची के शिल्प पर, २३, ८७।
फूहरेर, (१०)।
फ्रैंक, (१०)।
फ्लीट, (१०), २८टि, ६८टि, ७८टि।
वखरा, के पास स्तम्भ, ७२।
वनर्जी-शास्त्री, डॉ० ए० पी०, क्षत गुफा-लेखों के विषय में, १७३टि।
वनारस, ७१, ७९।
वरगद के छायादार वृक्ष १९, ३३, १५८।
वरवर पहाड़ी गुफाएँ, वर्णन, ७५, प्रथम दृष्ट, (१०); आजीविकों को दान, ३१, ६८, १७२-३ (देखिये गुफालेख, १, २, ३)।
वरुआ, डॉ० वेणीमाधव, (१०); लेखों के कालक्रम का नया दृष्टिकोण, ३६टि; लघु चट्टान-लेख १ की स्थिति पर, २१३; अन्य उद्धरण, ९२टि, ९९टि, १५१टि, १५२टि, १५७टि, १६९टि।
वर्ट, (८), (९)।
वर्नोफ (९), (१०)।
वर्मा, में साक्षरता अधिक, ८५।
वर्मी लेख, अशोक पर, ८७।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वलि, पशुवध, समाप्त, १८, ५१, ५५, १०८, ११०।
वहु-पत्नीत्व और बाल-विवाह, ८६।
वालपण्डित, या समुद्र, ९२टि।
विन्दुसार, अशोक के पिता, २, ८, ११, ३७, ५४टि, ६५टि; —द्वारा ब्राह्मण-भोजन, ११०टि; राज्यकाल, ३४; मन्त्री, ३टि; प्रधान-मन्त्री, ३टि, ४४; परिषद्, ४६।
वुद्ध, कोणाकमन (कनकमुनि), २४, ३२, ५४, ६८, ७१, ७४, ८५, १७२।
वुद्ध ककुच्छन्द, ७१।
वुद्ध गौतम (शाक्य-मुनि):—के प्रतीक पशु, ५१; ८४००० खण्ड का धर्म, ६७; —के स्मारक, ६६-७, ६९, ८३, १६८-७१; परलोक के विषय में, ६३; —के लिये स्तम्भ-लेख, १६८-७१; अशोक के शासन की भविष्यवाणी, ३-४ टि; —के अवशेष, ५०-१टि, ६७-८टि; —की छह दिशाएँ, ९७टि।
वुद्धघोष, फूट डालनेवालों के साथ अशोक का व्यवहार, ५३; भिक्खुगतिक, २३; आदर्श भिक्षु, ९९टि; जंगली मोर, ५२, ११०टि; प्रदर्शन, १०८टि।
वुद्ध-जन्म-शिल्प, रुम्मिनदेई में, १६९-७१टि, दूसरे उदाहरण, १७१टि।
वूढ़े और अपंग, २५, ३३, ५८, ११९-२१, १६०-१।
वूहलर, लेखों का सम्पादन, (१०); ब्राह्मी लिपि का मूल, २१५।
वृहत्तर भारत की आध्यात्मिक नींव ८६।
वेसनगर, ८१, ८२।
वैराट लघु चट्टान-लेख, (९); १२, ९८टि।
वोधगया, १४; —में अशोक का चैत्य, १२८टि; अशोक की यात्रा, १६, २३, ३१, ३९, १२७, १७९; —में वर्मी लेख, ८७।
वोधिवृक्ष, गया में, ४; अशोक की यात्रा २३, ३९, ८७; —की शाखा लङ्का को भेजी गई, ३०; —से तिष्यरक्षिता का द्वेष, ४-५, ३९, ८७।
वोधिसत्त्व, २२, ५१टि; शिल्प में, १७०-१टि।
वौडेन (१०)।
वौद्ध, २७, ५४, ८४; की निन्दा, अशोक द्वारा भूल वतलाना, ६।
वौद्ध आगम, अशोक द्वारा चयन, ५५-६, ९८-९।
वौद्ध त्रिरत्न, ९८।
वौद्ध-धर्म के विषय में अशोक का आध्यात्मिक दृष्टिकोण, ५५-६; —में अशोक का स्थान, २०-१; कारण के अन्वेषण पर आधारित, १४९टि; अशोक के धर्म-परिवर्तन की तिथि महत्त्वपूर्ण,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

३८; अशोक द्वारा राजाश्रय देने का प्रभाव, १; थेर, २७-३०; मूलभूत-सिद्धान्त, ५७; तीर्थ, २३, १००; मूर्तिपूजा, अशोकोत्तरकालीन प्रथा, २२; —का पश्चिम की विचारधारा पर प्रभाव, ६४-५; लोकप्रिय सिद्धान्त, ८५; —में अशोक की श्रद्धा के प्रमाण, ५०-३, ५६-७; थेरों द्वारा उपयोग किये गये मूलग्रन्थ, २८-९।
बौद्ध-विहार, अशोक-निर्मित, ६६।
बौद्ध-सङ्गीति, दूसरी, ५६-७; तीसरी, २७-९, ३९, ५०-२, ५६।
बौद्ध-सङ्घ, अशोक लौकिक अध्यक्ष, ४५-६; —को अशोक के विख्यात दान, ५३, ६६; तरुण कुलीनों के लिये चर्यास्थान, ८६; —में विभाजन, ५६-७।
ब्रह्मावर्त, ९४टि।
ब्राह्मण, १५, १८, २५, २६, ३३, ५४, ८४, ८५, १५९, १७५; अशोक द्वारा भोजन कराना, १८, ११०टि; जाति नहीं, संन्यासी, ११९टि; —द्वारा भेद के लिये दण्ड, ११६टि।
ब्राह्मण-धर्म और अशोक, ५५।
ब्राह्मी-लिपि, २९; मूल दिशा परिवर्तित, २१५; भारतीय लिपियों की जननी, २१५; मूल विवादग्रस्त, २१५-६।
ब्लाख, डॉ०, भरहुत की उभरी हुई मूर्ति पर, १२८टि, बोधिवृक्ष, १३०टि।
भट्टिप्रोलु स्तूप, ८२।
भण्डारकर, डॉ० देवदत्त रामकृष्ण, (१०); अशोक द्वारा जैन कल्पना-ग्रहण, ६०टि; पश्चिमी विचारों पर बौद्ध प्रभाव, ६५टि; कालक्रम, ३४टि; लघु चट्टान-लेख, १२टि; लेखों में उल्लिखित जन, ११८टि, १४२टि; सम्बोधि, २२टि; सफेद हाथी, ११५टि।
भण्डारकर, सर आर० जी०, उद्धृत, २५टि, १६९टि।
भद्रसार, २८।
भरहुत का स्तूप, ६८, ७४, १२८टि।
भाब्रू या बैराट सं० २ चट्टान-लेख, सटिप्पण अनुवाद, ९८-१००, सङ्घ को अशोक का शासन, ३१, ३६, ५६, ९८, १७६; अशोक का अधिकार लक्षित, ४५-६, ५०, १००; अशोक द्वारा बौद्ध आगमों का चयन, ५६, ९८-९; बौद्ध त्रिरत्न के प्रति श्रद्धा की घोषणा, ९८; लेख की खोज, (९); स्थिति, १२, ९८टि; मूल-लेख १८२-३।
भारत, के भाग, ११८-९।
भारतीय आर्य परम्पराएँ, भारत और ईरान में एक समान, ८०-१टि, ८३।
भारतीय सङ्ग्रहालय, ६८।
भाषा, लेखों की, पूर्वी और पश्चिमी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विभाषाओं की तुलना, २१६-६; व्याकरण एक, २१६-२६; मूल और अनुवाद, २१७।
भिक्खुगतिक, अशोक, २०।
भिक्खु, बौद्ध संन्यासी, योग्यता, २०।
भिक्षु और भिक्षुणी, विपथगामी, कैसे दण्डित, १६२-७।
भिक्षु, क्या अशोक था ? २० १, ५०-३, ६०-१।
भिटा, ७४।
भितरगाँव मन्दिर, ७४।
भूराजस्व, १७१।
भेद, बौद्धों में, ४६, ५०, ५३, ५६-७, १६२, १६७।
भेरी-घोष का धर्म-घोष में बदलना, १८-६, ३२, ४६, ११५।
भोज, १६, २५, १४२टि।
भोजकगिरि, चट्टान, ७।
भ्रातृत्व, में अशोक का विश्वास, १६, ४६।
मगध, विहार, का राजा अशोक, ६८; लङ्का से सम्बन्ध, ३६।
मगस (मैगास), सीरीन का, २५, ३३, ४७, १३६।
मछलियाँ, रक्षित, १६, १४७, १५२, १५४।
मज्झन्तिक, २७, २८।
मज्झिम, दूत, २७, २६।
मणिकारी का काम, ८१।
मथुरा, ७४;—के पास मूर्तियाँ, ८१, ८२।
मध्यभारतीय (प्राकृत) विभाषाएँ, २१६-७।
मनु, ब्रह्मावर्त की परिभाषा, ६४टि; धर्म पर, ४०; युक्तों पर १०७टि।
मनोरञ्जन, समाज, और अशोक १८, ३२, १०८-६।
मन्त्रि-मण्डल, परिषद्, ४६-८, ११४, १२४।
महादेव, २८, ३८।
महाधर्मरक्षित, योनक आचार्य, ७, २८, ३८।
महाबोधिवंश, उल्लेख, ३, ७।
महाभारत, उल्लेख, संवर्तक अग्नि, ११६ टि; राजा मातृवत्, १०१ टि; समाज एक शैव उत्सव १०६टि।
महामात्र, २४।
महामात्र, का स्थान, लेखों और कौटिल्य में, ८६।
महामात्र, मन्त्री, के वर्ग, ४४, ४७, १००; —के कर्तव्य, १०२-७, १२४; लेखों में निर्देश कालक्रम निर्धारण में सहायक, १७४-६।
महामाया, बुद्ध की माता, १६६-७१टि।
महायान बौद्ध धर्म, २२।
महारक्षित या महारक्खित, २७, २६।
महाराष्ट्र, २८।
महावंश, अशोक-सम्बन्धी जनश्रुतियाँ, ३, ४, ७, ३४, ६१टि, ११० टि; —का कालक्रम, ६, ३; ३७-६; —में अशोक के दूत

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मण्डलों का श्रेय बौद्ध-सङ्घ को, २७, २९टि; ८४००० विहारों की कथा, ६६-७।

महावंश-टीका, उल्लेख, ३, ५४टि।

महावनार्य, २९।

महिष-मण्डल, २८।

महेन्द्र, देवी का पुत्र, ७-९, ३७; उपराज नियुक्त, ३८, ४३; सङ्घ का अध्यक्ष, ३८; लङ्का को दूतमण्डल, २८, ३०; दीक्षित, ३८, ८६, ९२टि; पाटलिपुत्र से जलयात्रा, ७९टि; माता के दर्शन, ३९।

मांस-भोजन और अशोक, १८, ३२, ५१-२।

माइकेलसन, (१०); उल्लेख, ९९टि, १२२टि, १४५टि, १४६टि, १५०टि; संस्कृत पर, २१७।

मागधी, अशोक के दरबार की भाषा, २१६-७; —की व्याकरण, २१९-२६।

माता-पिता की सेवा, ५७, ९७, ११४।

मानसेहरा-चट्टान-लेख, (१०), १२, १३टि; विभाषा, २१६ (देखिये चट्टान-लेख ५)।

माप दूरी का, ६९टि, १५८टि।

मॉरिस, १५२टि।

मार्शल, सर जॉन, गाइड टू साँची। ३०टि, ८७; अशोक-कालीन शिल्प पर, ७७।

मास्की लघु चट्टान-लेख, (१०), १२, ५०; —में ही अशोक का नामोल्लेख, ११, ९०टि।

मिट्टी की कला के नमूने, ८१।

मित्र, एस० एन०, ९९टि।

मित्र, के प्रति व्यवहार, ५८, ११४, १३३; सेवा के पाँच प्रकार, ११४टि।

मिलिन्द पञ्ह, अशोक पर ८६।

मुखर्जी, पी. सी., पाटलीपुत्र में खुदाई पर, ८०; रुम्मिनदेई में बुद्ध-जन्म शिल्प, १७०टि; रुम्मिनदेई स्तम्भ, ७१।

मुखर्जी, राधाकुमुद, उल्लेख, ४०, ९४टि, ११७टि, १६४टि, १६६टि।

मुद्राराक्षस, ११।

मुनि-गाथा, ५६, ९९।

मुर्गों को बधिया करना मना, १५३।

मूर्तिकला, ८१।

मूलकदेव, २८।

मृगदाव, बुद्ध का, अशोक की यात्रा, ८७-८।

मृगया (शिकार) समाप्त, १७, २२, ३२, १२७।

मृत्यु-दण्ड, ५५, १५०।

मृत्यु-दण्ड, तीन दिन की मोहलत देना, ३३, ५५, १५०।

मृदुता, मार्दवम्, ५९, १३९, १६०।

मेगस्थनीज, पाटलिपुत्र में राजदूत, ६५टि, ८३; संन्यासियों पर, ११९टि; राजधानी का वर्णन,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

७९-८०; भारतीय विदेश विभाग पर, ६४, ८३; सिंचाई-अधिकारी, ७९, ११३टि; कलिङ्ग, १५; राजा द्वारा शिकार, १२७; ओवरसियर या इन्स्पैक्टर, १२३टि; राजा के हाथी, ४९; नदी या समुद्र-तट पर लकड़ियों से वने नगर, ७९।
मेसन, सी०, (९)।
मेरठ स्तम्भ और लेख, १३, ७२।
मैसूर में लघु चट्टान-लेख, (१०), विभाषा की विशेषताएँ, २१६; लिपिकार के हस्ताक्षर; ९८, २१५।
मोग्गलायन, २३।
मोग्गलिपुत्त तिस्स (देखिये उपगुप्त)।
मोनेय सुते, ५६, ९९।
मोर, मौर्यों का राजचिह्न, ७७, ८७।
मोर, राजाओं का भोजन, ५२, ११० टि; —का वध परिमित, १८, ३२, ५२, ११०, १५३टि, १७७।
मोरिय (देखिये मौर्य)।
मौर्य इञ्जीनियरी, सिंचाई, ७८-९; नगर-निवेश, ७९-८०; अशोक के स्तम्भों का स्थानान्तर, ७७-८।
मौर्य-कालीन ईंटें, ७४।
मौर्य-कालीन गौण कलाएँ, ८१-२; पालिश किये गये पत्थर, ७५, ७७, ८०; बढ़ईगिरी, ८१।
मौर्य या मोरिय, का वंश, ३; —का राजचिह्न, मयूर, ७७।
यवन-प्रदेश, एक यूनानी उपनिवेश, २७, १४१; हिन्दू नहीं, ८५; संन्यासियों रहित, १३८।
यवन या योन देश, यूनानियों का, ८६।
यवन (योन, आयोनियन या यूनानी), १४, १९, २५, ६४, ६५टि; ११८।
यश, सच्चा, ६२, १३१-२।
यातना, २६टि, १०२टि, १०३, १२१टि, १७५।
युद्ध, धातुओं के लिये, ५०टि।
युद्ध-परित्याग, सर्वप्रथम अशोक द्वारा घोषित, १८-९, ४९।
युद्ध-हानि, कलिङ्ग की, १५-६, १३६-८।
युवाङ् च्वाङ्, उल्लेख, अशोक और तिष्य, ६; अशोक का बौद्ध गुरु, २३, ५२; —निर्माण कार्य, ६६; —कश्मीर का दान, ६६; —नरक, ४टि; —के अन्तिम दिन, ३१टि, —के स्तूप, ६७टि, ६८-९; —के विहार, ६६, ६८-९; वोधिवृक्ष की दन्तकथा, ४, १३० टि; गुफा-वास, ७५; दूरी की भारतीय नाप, १५८टि; लेख अशुद्ध पठित, (७); लेख न पहचाने हुए, १३टि; काञ्चीपुर, १११टि; स्तम्भ, अशोक के नहीं, ७३-४टि; रुम्मिनदेई स्तम्भ, ७१, १६९टि, १७१ टि; उल्लिखित स्तूपों द्वारा साम्राज्य की विशालता सूचित, १४।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यूनान, से अशोक के सम्बन्ध, ६४, ६५टि, ८३, १४२टि (और देखिये यवन)।

यूनानी तत्त्व, भारतीय कला में अनुमानित, ८२।

यूनानी समकालीन राजा, पाँच, २५, २७, ३३-४, ४७, ८६, १३६।

यूरोपीय महायुद्ध, १८।

योन-रट्ठम्, २६।

रक्षित या रक्खित, २८।

रथ और घोड़े, १२३टि।

रथों की दौड़, ११०टि।

रनिवास, ५, २६, १२१, १२२, १५६, १७६; विहार-यात्राएँ समाप्त, १७, २२, ३२, १२७; रसोई, १८, ५१, ११०; विरुद, १०-१, ८६, ६०, १२७टि।

राइज़, (१०), २८टि।

राजगृह, में स्तम्भ, ७२; —में समाज, १०६।

राजत्व, भारतीय धारणा, ४०-१; अशोक का, लोकतन्त्र, ४१-२।

राजा, का सबसे बड़ा कर्तव्य, धर्मोपदेश, ६१,११६, १२८-६, १३७; —का आदेश, प्रायः लिखित, ४६, १२४-५टि; —के पुत्र, स्थिति, ८-६, १६०।

राजा का सभी के लिये ख्याल, ६०, १५५-६।

राजा के कर्तव्य, १५, ४२, १२२-६; जरूरी काम, १२५टि।

राजूक, प्रान्तीय गवर्नर, से अशोक का निवेदन, ४४-५, १०२; स्थिति और अधिकार, ४४, ४७-८, १४८-५१, १७५।

राज्य, समता, १८, १०६-७।

राज्यों की समता, अशोक द्वारा आधुनिक सिद्धान्त की पूर्वकल्पना, १८, १०६-७, १३८-६।

राधगुप्त, अशोक का मन्त्री, ३, ४४।

रानी का लेख (देखिये लघु स्तम्भ-लेख ४)।

रामग्राम, में स्तूप, ६८टि; अशोक की यात्रा, ८७।

रामपुरवा, स्तम्भ-लेख, (६), १३, २४; —का स्तम्भ, ७३, ७४।

राविंशा, ई० एल०, (६)।

राष्ट्रिक, २५, ११८।

रुद्रदामन् का शिला-लेख, उल्लेख, ४३, ७८-६, ८७।

रुम्मिनदेई (लुम्मिनी), की लेखक की यात्रा, १६६टि; —में स्तम्भ, ७१, ७३, १६६-७१टि; —में मन्दिर और शिल्प, १६६-७१टि (देखिये स्मारक स्तम्भ लेख १)।

रूपनाथ लघु चट्टान-लेख, (६), १२, ३६, ५०।

लघु चट्टान-लेख १ (ब्रह्मगिरि) : सटिप्पण अनुवाद, ८६-६६; अन्त सीमान्तवासी, ३५, ६४, १७६; अशोक का बौद्ध-धर्म, १६, ५०, ८६-६२, १७८-६; तिथि, १७६; लेखों में पहला,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

१६-७, १७८; इसिल, ५४, ८६; स्थान, १२; वाइसराय के मन्त्री, महामात्र, ४४, ४७, ८६; सन्देश का चिर-स्थायित्व, १७, ७३, ६४टि; देवताओं को लोकप्रिय बनाना, २१, ३१, ६२; राजा के आदेश का आमुख, ४६, ८६; कुमार (वाइसराय, अशोक का भाई) सुवर्णगिरि में, ५-६, ४३, ८६; आत्मपराक्रम, ६१, ६२, ६४; मूल-लेख, १८०-२।

लघु चट्टान-लेख २ (मैसूर) : सटिप्पण अनुवाद, ६७-८; राजा के आदेश, ४६, ६७; सम्बन्धी, ५, ६७; जीवन के प्रति सम्मान, ६७-१७७; लिपिकर, ४८, ६८; मूल-लेख, १८२।

लघु चट्टान-लेख, चट्टान-लेखों से पहले के, ३६; के स्थान, १२-३, ६४टि।

लघु स्तम्भ-लेख १ (सारनाथ) : महामात्रों को सम्वोधित, १७५-६; सटिप्पण अनुवाद, १६२-६; तिथि ३५-६; खोज, (१०); सङ्घ-भेद के विरुद्ध राजा का आदेश, ४६, ५०, ५३-४, ५७टि, १६२; स्थान, १३, ७३, ७८; राजा के आदेश का विज्ञापन, १६२-४; मूल-लेख, २११-२।

लघु स्तम्भ-लेख २ (कौशाम्बी) : महामात्रों को सम्वोधित, ४४, १७५-६; सटिप्पण अनुवाद, १६७; कनिङ्घम, का कार्पस (१०); सङ्घ-भेद के विरुद्ध राजा का आदेश, ४६, ५०, ५३-४, १६७; स्थान, १३, ७३, ७८; मूल-लेख, २१२।

लघु स्तम्भ-लेख ३ (साँची) : महामात्रों को सम्वोधित, १७५-६; सटिप्पण अनुवाद, १६७-८; तिथि, ३५-६; कनिङ्घम का कार्पस, (१०); सङ्घ-भेद के विरुद्ध राजा का आदेश, ४६, ५०, ५३-४, १६७; स्थान, १३, ७३, ७८; मूल-लेख, २१२।

लघु स्तम्भ-लेख ४ (रानी का लेख) : सटिप्पण अनुवाद, १६८; स्थान, १२१टि, १६७टि; सम्बन्धी, ५, १६७; राजकीय दान, २६, १६७; मूल-लेख, २१२-३।

ला एन०, उल्लेख, १५४टि।

लाघुलोवाद, ५६।

लासेन, ग्रीक राजाओं की पहचान, १४०टि।

लिपिकर, ४६, ४८, ६८, १४४।

ली, कप्तान, (१०)।

लुइडर, (१०), १०२टि, १३६टि, १५०टि, १५८टि।

लुई, राजा और सन्त, १।

लुम्बिनी वन (रुम्मिनदेई), २३, ३२, ३६, ७१, १७०।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लुम्मिनी ग्राम (देखिये रुम्मिनदेई)।

लेख, अशोक के, रोमान्स, (७)-(११); सुन्दर खोदे गये अक्षर, ८२।

लेख, अशोक के, अनन्य निजी दस्तावेज, २; —का कालक्रम, १७४-७६; अभिषेक से समय का उल्लेख, १०; प्रकाशन का समय, ३१, १७६; —का उपसंहार, चट्टान-लेख, १४, १४३-४; —अत्युक्ति, १८, ११०, १३६; राजा के आदेश व्यक्त, ४६; —में कुछ त्रुटियाँ, ४३; प्रारम्भ और उद्देश्य, १६-७, १२२, १२६, १५६-७; भौगोलिक वितरण, १२-३, ४३; व्याकरण, की रूपरेखा, २१६-२६; —में गृह-जीवन, ८५; त्रुटियों के लिये क्षमा-याचना, १४, ४३, १४४; नीति, सिद्धान्त और कानून का निर्देश, ४५, १५६-७; —का धर्म, ५७-६; —में उल्लिखित जातियाँ और स्थान, १४; —का चिर-स्थायित्व, १७, ४६, ६४टि, १६१; पठन-श्रवण, ४५, १०८; अशोक के विरुद्ध का निर्देश, ११; —में सम्बन्धियों का निर्देश, ५-७; —की लिपियाँ, २१५-६; —की शैली, १; —में उपनिषदों की प्रतिध्वनि, ५५ टि; ६७टि; लोक-भाषा में लिखे गये, ८४, २१६-६।

लेख, अशोक के स्मारक, ८७।

लेख, जो खोजे नहीं जा सके, १३टि।

लेखन-कला, की प्राचीनता, भारत में, २१५-६।

लैङ्ग, (८)।

लोकतन्त्र, आंशिक सफलता ४१-२।

लौड़िया अरराज स्तम्भ और लेख, (८), १३, २४, ७३।

लौड़िया नन्दनगढ़ स्तम्भ और लेख, (८), १३, २४, ७३।

वचोगुप्ति, ६१।

वध, पर रोक, ५८ (देखिये पशु-वध)।

वन-जातियाँ, ४८-६, ६४; सभ्यता में उपदिष्ट, १३८।

वनवासी, २८।

वर्तनी (पारगमन शुल्क), आयातित माल पर, ४८।

वर्धमान महावीर, जैन धर्म के प्रवर्तक, ७२।

वर्षा से बचाव, के लिये गुफा-दान, १७३।

वाइसराय, अशोक के भाई या पुत्र, १०४; कुमार, लेखों में और अनुश्रुतियों में, ५, ४३-४, १२१ टि; —के अधीनस्थ अधिकारी, ४४, ४७-८, ८६, १०४-७।

वाछी सुविजय, २६।

वासुदेव, के लिये गरुड़ध्वज, ८६।

विजय, सैनिक, समाप्त, ३२, ४६, १३७, १४२; सच्ची या नैतिक (देखिये धर्म-विजय)।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विडूडभ, ७ ।

विदेश विभाग, ६४, ८३ ।

विदेशों को दूत-मण्डल, अशोक के, २५, २७-३०, ३२, ४७, ४६, १३६-४२; शान्ति, सद्भावना और समाज-सेवा के सन्देश-वाहक, ६४; दूतों के नाम और गन्तव्य-स्थल, २७-६; साँची में अवशेष और लेख, २६-३० ।

विनय के उपदेष्टा, ५२ ।

विनय पिटक, २०, ८६ टि, २१६ ।

विनय समुकस, ६८ ।

विभागाध्यक्ष, मुख, ४७, १५६ ।

विभाषाएँ, लेखों की, २१६-६; व्याकरण एक, २१६-२६ ।

विमान-वस्तु, स्वर्ग का विवरण, ६३ ।

विल्सन, (८), (६) ।

विहार, अशोक-कृत, ६६-८; युवाङ् च्वाङ् द्वारा दृष्ट, ६६, ६८-६ ।

विहार और शिक्षा, ८४-५ ।

विहार का संसरण, १६२-३ ।

वीताशोक, अशोक का भाई, २, ४, ६, ८; कभी-कभी तिष्य के लिये प्रयुक्त नाम, ६, ८; अध्ययन करना, भिक्षु बनना, ६-७ ।

वूलनर, ए० सी०, (१०), १२१ टि, १४४ टि, १४५ टि, २२६ टि, धर्मशालाओं पर, १५८ टि ।

वृक्ष, मार्गों पर लगाये गये, ३२, ३५, ४८, ११२ ।

वृज्जि के भिक्षु, ५७ ।

वृषभ प्रतीक, ५१, ६६, ७०, ७६, ७७ ।

वेतन, के नियम, १३०टि ।

वेद, ४० ।

वेदिसगिरि, का महाविहार, ७ ।

वेदिसा (विदिशा), ७, ३७, ३६ ।

वैटर्स, बोधिवृक्ष की दन्त-कथा पर, ४; रुम्मिनदेई के जन्म-शिल्प पर, १७० टि; वुकुङ् द्वारा दृष्ट स्तूप, १७१टि ।

वैडल, उल्लेख, ५२ ।

वैदिक मूल, अशोक स्तम्भों का, ८३ ।

वैश्य, ८५ ।

वैशाली, (आधुनिक बसाढ़), में बौद्ध सङ्गीति, ५६-७; —के निकट स्तम्भ, ७२ ।

व्यवहार, ५४-५, ५७-६, ६७, १३२-३, १३७, १६०-१ ।

व्याकरण, लेखों की, २१६-२६ ।

व्रज, ४८, १२२, १३५;—का अधिकारी, ४८, १३५ ।

व्रजभूमिक, मार्गों और चरोखरों का रक्षक, ४८, १३५ ।

शतपथ ब्राह्मण, २१६ ।

शत्रुओं को क्षमादान, १८, १३८ ।

शाक्य, बौद्ध, ७, ५०-१, ६०-१टि ।

शाक्य-सिंह, बुद्ध का एक नाम, ५१ ।

शान्ति, अशोक के साम्राज्य का आधार, १८-२०, ४६ ।

शासकीय सेवक; प्रतिवेदक, १२३; पुरुष, ३५, ४७-८, १४५, १४६, १७७; युक्त, ४८, १०७टि, ११२, ११४, १७५ ।

शास्त्री, विधुशेखर, १२३ ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शाहबाजगढ़ी, चट्टानलेख, (८), १२, १३टि, ३३ (देखिये चट्टान-लेख, १, ७, ८, ११, १३)।
शाही शासन, ४२-६।
शिकार वन, १२३टि।
शिला-विग्रह, १६८।
शुक्र-नीति, वृक्ष और जल-साधन पर, १५८टि।
शुद्धता, शौच, ५६, १४६, १६०; चित्त की, भाव-शुद्धि, ५६, १२६।
शुल्काध्यक्ष, ४८।
शुश्रूषा, आज्ञापालन, ५७-६, ११६ टि।
शेक्सपियर, उल्लेख, १५।
शोरवा, वनाने के लिये प्राणि-वध, १८, ११०।
श्रमण, संन्यासी, १५, ५४, ८४, ८५, ११९टि।
श्रावस्ती, २३; —में जैतवन विहार और स्तम्भ, ६६, ७०।
श्रीनगर, सम्भावित अशोक-निर्मित नगर, ६६।
संन्यास, अशोक के समय, ८६।
संन्यासी, (ब्राह्मण और श्रमण); —और अशोक, १८, ३३, ५४, ६४, १२८, १५६, १७५-६;—के प्रति व्यवहार, ५८, ८६, ११४, ११६, १३१, १३३, १३७, १६१; —सम्प्रदाय, ११९टि; सेवा के पाँच प्रकार, ११४टि, ११६-२०; यवनों में नहीं, १३८।
संयम, ५६, १२६, १३६; वचन का, ६१; हिंसा का, ५८, १३१।
संयम या मध्यमार्ग, ५६, १०२, ११४।
संयुक्त प्रान्त, (उत्तर प्रदेश), में साक्षरता, ८५।
संस्कृत और अशोक-कालीन विभाषाएँ, २१६-९।
सङ्कास्य या सङ्कस्स, में स्तम्भ, ६६, ७०टि।
सङ्किसा में स्तम्भ, ७०।
सङ्ख्या, २२३-४।
सङ्घ, अर्थात् समूचा बौद्ध-सङ्घ, ५६; —और अशोक, ३१, ३८-९, ४६, ५०-७, ९१, १००टि; अशोक द्वारा सच्चे धर्म का उपदेश, ३६, ९८-९९; सङ्घ-भेद के विरुद्ध अशोक के आदेश, ४६, ५३-४, ५६-७, १६२, १६७; —और धर्म-महामात्र, २६, ५१, १५९, १७५-६; —में सम्प्रदाय, ५६; —की अध्यक्षता, ३८-९; —के नियम, सङ्घ-भेद सम्बन्धी, १६४-६टि।
सङ्घमित्रा, देवी की पुत्री, ८, ६, ३० ३७-८, ८६, ९२टि।
सतियपुत्र, १४, १९, १११।
सत्य, ५९, ९७, १४६, १६०।
सन्तान, अशोक का अपनी सन्तान के लिये प्यार, ६, १०१; —द्वारा मातापिता की शुश्रूषा, ५७, ९७, ११४; —की तरह प्रजा, ४१,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

१०१, १०७।
सफेद हाथी, प्रतीक, ५१, ६३, ११५टि, १४३टि।
समतट, १४।
समन्तपासादिक, २८, ९१।
समाज, १८, ३२।
समाज, संयुक्त परिवार पर आधारित, १५; वर्ग और जातियाँ, १५, ८४-५।
समापा, जौगड़, १४, ४४, १०६।
सम्प्रति, अशोक का पोता, ८, ९; —का विश्वासघात, ३१टि।
सम्प्रदाय, अशोक की पक्षपातहीनता, ५४-५, ६०-१, ६४-५, ८४, १३३-४, १५५-६; पृथक्करण नहीं, ५४-५, १२६; —की देखरेख, २६-७, ८४, १७५-६; लोकप्रिय ब्राह्मण धर्म से व्यवहार, अपवाद, ५५।
सम्बन्धी, के लिये अशोक का प्रेम, लेखों में उल्लेख, ५-६, ९७, ११४-६, १२१, १३३, १३७, १५९-६०, १६८; —से उचित व्यवहार, ५८, ९७, ११६, १३७।
सम्बल, २८।
सम्बुद्ध सिद्धान्त, ३८।
सम्बोधि, ज्ञान, बोधिवृक्ष, २३, ३९, ८७।
सम्यक् (उचित) व्यवहार, ५८, १३३, १३७, १६१।
सम्राट् का लक्ष्य, २०।
सहदेव, २८।
सहसराम लघु चट्टान-लेख, (९), १२, ३६।
सहिष्णुता, की अशोक की कल्पना, ५४-५, ६०-१, १३३-४; की सीमाएँ, ५५-७।
साँची, में स्तम्भ, ७३, ७८ (देखिये लघु स्तम्भ-लेख ३); —में प्राप्त अवशेष, २९; —में शिल्प, २३; —में स्तूप, ६८, ८७-८; अशोक ने क्यों चुना, ७।
साक्षरता, अशोक के समय में अधिक, ८५।
साधुता, ५९, १६०।
सामूहिक जीवन विकास, ४३; प्राचीन भारतीय एकतन्त्र में, ४२।
साम्राज्य, अशोक का, विस्तार, ११-४, ४३, १२१, १४४; कलिङ्ग युद्ध के पश्चात् शान्तिवादी, १८-२०, १०६-७, १३७-४३।
सारनाथ, लघु स्तम्भ-लेख, (देखिये लघु स्तम्भ-लेख १); —में स्तम्भ, १३, ७३, ७८।
सारिपुत्त, २३।
सार्वजनिक धर्म, अशोक का, ५७; नैतिक नियम, व्यावहारिक और शास्त्रीय, ५७-६५; बौद्ध धर्म नहीं, ५७।
सार्वजनिक निर्माण, सम्राट् के अधीन, ४५; निगरानी, ४८; वर्णन, १९, २५, ३५; लेखपूर्व, ३२, ३३; का सारांश,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

१५८।
सार्वजनिक मनोरञ्जन, समाज, निषिद्ध, ३२, १०८।
सार्वभौम धर्म, के लिये अशोक का आधार, ६३-४।
सिंह, चेत, (८)।
सिंह प्रतीक, ५१, ६६, ७०, ७१, ७६, ७७।
सिंह, महाराजा रणजीत, (८)।
सिंहल (ताम्रपर्णी, लङ्का), को दूत, ४७, १४०; अशोक सम्बन्धी दन्तकथाएँ, १, २, १८; —में चिकित्सा-प्रबन्ध, १११; —को दूत, महेन्द्र, २८, ३०; —से अशोक के पास दूत-मण्डल, ३०।
सिंहासन-प्राप्ति और अभिषेक की तिथियां, १०, ३१, ३३-४, ३७।
सिक्के, ८१-२।
सिलवाँ लेवी, देवपातन पर, ६६; खरोष्ठी लिपि पर, २१५।
सीमान्त जातियां, अविजित, (अन्त), १४, १८-६, २५, ३५, ४८-६, ६४, ६४, १०६-७, १११, ११८, १३६-४२, १४०-१टि।
सीमान्त प्रशासन, ४८, १०६-७, १४५-६टि।
सील, ब्रजेन्द्रनाथ, प्रतिनिधि सरकार पर, ४१।
सुख, के लिये अशोक का सूत्र, ५६; राजा का, १२५टि।
सुदत्त और सुगात्र, तिष्य के नाम, ६, ८।
सुदर्शन, कृत्रिम झील, १२, ७८-६।
सुभद्राङ्गी, या धर्मा, अशोक की माता, २, ८; ब्राह्मण, २; क्षत्रिय, ३।
सुमन, अशोक का पोता, ८, ६, ३०, ३७।
सुमित्त या सुमित्र, ३८, ५२।
सुवर्णगिरि, ५, १४, ८६: —के कुमार वाइसराय, ४३, १०४टि; सोने के क्षेत्र में सम्भावित स्थिति, ८६टि।
सुवर्णभूमि, २८-६।
सुसा, ७६।
सुसीम या सुमन, अशोक का भाई, २, ८; उत्तराधिकार युद्ध में मृत्यु, ३, ५टि; —का पुत्र, १६टि, ३४, ५२; तक्षशिला का वाइसराय, ३, १०५टि।
सेनार्ट, लेखों के सुविज्ञ, (१०); अपरान्तों और अन्तों पर, ११८टि; अशोक द्वारा बौद्ध आगमों के चुनाव पर, १००टि; अशोक की अनुश्रुत क्रूरता, ४, १६; चट्टान-लेख, १०८टि।
सेल्यूकस, चन्द्रगुप्त द्वारा पराजित ११, १४।
सैनिक, क्षत्रिय, ८५, ११६; कलिङ्ग के, १३६-७टि।
सोण, २८, २६।
सोनारी, ३०।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सोने की खुदाई, प्राचीन, ८९टि ।
सोपारा चट्टान-लेख, (१०), १२, १३टि, ११९टि, १४४टि ।
सोलोमन, १ ।
स्टीवेन्सन, श्रीमती, हार्ट ग्राफ जैनिज़म, ५९टि ।
स्ट्राबो, गङ्गा में जहाज चलना, ७९टि ।
स्तम्भ, अशोक कृत, प्रयाग, ७३; दिल्ली टोपरा, ७२, ७७; कपिलवस्तु, ७१, ७६; कोलुहा, ७२, ७६, ७७; कुशीनारा (दो), ७१; लौरिया-अरराज, ७३, ७६; लौरिया नन्दनगढ़, ७३, ७६, ७७; महाशाल, ७२, ७६; मेरठ, ७२; निग्लीव, ७१, ७३, ८३; पाटलिपुत्र (दो), ६९-७०, ७२; राजगृह, ७२, ७६; रामपुरवा, ७३, ७४, ७६, ७७; रुम्मिनदेई, (लुम्बिनी), ७१, ७३, ७६, ८३; साँची, ७३, ७६, ८७; सङ्काश्य (सङ्किसा), ७०, ७६; सारनाथ मार्ग (दो), ७१-३, ८३; श्रावस्ती (दो), ६९, ७०, ७६; वैशाली-कुशीनगर मार्ग, ६९ ।
स्तम्भ, अशोक के, डिजाइन, माप, गुणवत्ता और प्रतीकात्मकता, ७५-७, ८०, ८२; विदेशी प्रेरणा कल्पित, ८०-१टि, ८२; भारतीय मूल प्रतिपादित, ८२-३; बाद की नकलें, ७६टि; लेख-रहित, ७३टि; गुप्तों द्वारा प्रयोग, ७३-४टि ।
स्तम्भ, अशोक-पूर्व, ७२-३टि, ७३, ८० ।
स्तम्भ-लेख १ :
सटिप्पण अनुवाद, १४५-६; अन्त-महामात्र, ३५, ४७, १४५, १७६; तिथि, ३१, १४५; परलोक, ६२, १४५, १७७; धर्म के अनुसार नियमन, ६२, १४५-६; आत्म-परीक्षा, ६२, १४५; मूल-लेख, २०३-४ ।
स्तम्भ-लेख २ :
सटिप्पण अनुवाद, १४६-७; प्राणदान, ३३, ६१, १४७; अच्छे काम, ६०, १४६; आध्यात्मिक दृष्टि, ६०, १४७; मूल-लेख, २०४ ।
स्तम्भ-लेख ३:
सटिप्पण अनुवाद, १४७-८; आत्म-परीक्षण, ६२, १४७-८; पाप, १४७; मूल-लेख, २०४-५ ।
स्तम्भ-लेख ४ :
सटिप्पण अनुवाद, १४८-५१; तिथि, ३१, १४८, राजूकों की धाय से तुलना, ४१, ४५, १४९-५०; राजूकों की स्वतन्त्रता, ३३, १४८; परलोक, ६२, १५१; पुरुष, ३५, ४७-८, १४९, १७७; राजूक, ३५, ४४, १४८-५०, १७७; मृत्युदण्ड पानेवालों को मोहलत, ३३,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

५५, १५०; मूल-लेख, २०५-६।

स्तम्भ-लेख ५ :
सटिप्पण अनुवाद, १५१-५; तिथि ३१, १५१, १५५; नागवन (हाथियों का वन), ४६, १५४; मछलियों को संरक्षण, १६, १५४; कैदियों की रिहाई, ३३, ५५, १५५; प्राणियों को संरक्षण, ३३, ३६, ५२, १५२-४, १७७; पुनर्वसु दिन, १५४; मूल-लेख, २०६-७; उपोसथ दिन, ५१, १५३-४।

स्तम्भ-लेख ६:
सटिप्पण अनुवाद, १५५-६; धर्म द्वारा परिवर्तित जीवन आदिष्ट, १७, १५५; तिथि, ३१, ३४, १५६; राजा द्वारा सभी सम्प्रदायों का आदर, ५५, १५६; केवल सम्बन्धियों का ही नहीं अपितु सभी लोगों का ध्यान, ६०, १५५, चट्टान-लेखों का उद्देश्य, १७, १५५; मूल-लेख, २०७-८।

स्तम्भ-लेख ७:
सटिप्पण अनुवाद, १५६-६२; संन्यासी, ८५, १५६, १६१; कालक्रमानुसार स्थिति, १७७-८; तिथि, ३१, ३४-५, १६१; धर्म-महामात्र, १५७, १५६, १७५-८; धर्म-प्रचार सारांश, ३५, १५६-६१; रनिवास, ५, १५९; गृहस्थ, ८५, १५६; दान, २६, १५६-६०; महामात्र, १५६, १७७; मुख, विभागाध्यक्ष, ४७, १५०; पर-लोक, ६२, १६१; सन्देश का चिर-स्थायित्व, ७३, १६२, १७८; उचित व्यवहार, १६१; धार्मिक सन्देश घोषित, १५६-७; पुरुष, ३५, ४७, १५७, १७७; राजूक, १५७, १७७; चिन्तन, ६२, १६१, १७८; सम्बन्धी, ५, १६०-१; घरेलू उपायों का सारांश, ३५, १५६-६२, १७७; सङ्घ, ५१, ५६, १५६; दास और भृत्य, ८५, १६१; पुत्रों का स्थान, ६, १६०; मूल-लेख, २०८-११; सार्वजनिक हित के कार्य, १६, २५, ३३, ३५, ४८, १५८-६०, १७७-८।

स्तम्भ-लेख, अशोक का विवरण, १६-७; तिथि, ३१-२, १४५टि; विभाषाएँ, २१६-७; पूर्व उपाय, ३३; चट्टान-लेखों के पश्चा-द्वर्ती, ३४-६, १७७-८; धर्म-स्तम्भ, १५७, प्रतीकात्मक पशु-शीर्ष, ५१, ७६।

स्तूप, अशोक-कृत, ६६-८; भरहुत, ६८, ७४, १२८; केसरिया, ६९; महाशाल, ७२; निग्लीव, ६८, ७१; फाहियान द्वारा सूचित, ६७; युवाङ् च्वाङ् द्वारा सूचित, ६७टि, ६८-७१; साँची, ६८, ७४, ६७-८, की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

चतुर्दिक् स्थिति, १२-४।

स्तूप, अशोक-पूर्व, ७४।

स्त्रियाँ, देखरेख, २६, ३२-३, ३६, १२१, १३४, १५९-६०, १७६।

स्त्री-धर्म, २६, ३३।

स्थानान्तर समस्या, अशोक के स्तम्भों की, २८८।

स्पूनर, डॉ० डी० बी०, पाटलिपुत्र में खुदाई, ८०-१।

स्मारक स्तम्भ लेख,

———१. (रुम्मिनदेई): सटिप्पण अनुवाद, १६८-७१; खोज, (१०), इतिहास, २३, ३९; स्थान, १३, २३; मूल-लेख, २१३।

———२. (निग्लीव): सटिप्पण अनुवाद, १७२; स्थान, १३, २३-४; मूल-लेख, २१३।

स्मिथ विन्सेन्ट, (१०); उल्लेख, अशोककालीन संगतराशी, ७७-८; अशोक का जहाजी बेड़ा, ३१; पश्चिमी विचारों पर बौद्ध प्रभाव, ६५; काल-क्रम पद्धति, ३८; अशोक-कालीन उच्च साक्षरता, ८४-५; कला में भारतीय मौलिकता, ८२; राजा का जन्म-दिन और कैदियों की रिहाई, १५५टि; लेखों की भाषा, ८४; सिंह या गरुड़, ७६; लाट भैरों स्तम्भ, ७१; बौद्ध धर्म के प्रति अशोक के उत्साह का प्रमाण, ५७; सङ्किसा, ७०टि; सतियपुत्र, १११टि; रुम्मिनदेई में शिल्प, १७०टि; स्तम्भों का ले जाना, ७७-८।

स्मृति, ४०, १२०।

स्वर्ग, अशोक के जीवन का लक्ष्य ६२-३, ८५, १३१-२, १४२ लोकप्रिय प्रदर्शन, ११५टि (देखिये परलोक)।

स्वस्तिक, चिह्न, १०६ टि, २१४ टि

हंस, ७६।

हाथी प्रतीक, ५१, ७६-७, ८२, ८ १४३टि, १७१टि।

हाथी वन, ४९।

हारितीपुत, २९।

हिन्दू यूनानी, ८६।

हिमालय देश, २७, ७८।

हिरन या मृग, १८, ३२, ५२, ११ १५३टि, १७७।

हुल्ट्श, (१०), ५०, अशोक-काली व्याकरण पर अधिकारी, २२ लघु चट्टान-लेख १ की प्रा मिकता पर, १७८; आजीविको शब्द को मिटानेवाले पर, १७ टि; दूसरे उल्लेख, ९२टि, ९५टि ९७टि, ९९टि, १०५टि, १०८टि ११८टि, १२०टि, १२१टि १२६टि, १२९टि, १३१टि १३२टि, १३४टि, १३७टि १३९टि, १४२टि, १४४टि १४५टि, १४६टि, १४७टि १४८टि, १५०टि, १५१टि १५२टि, १५६टि, १५७टि १५८टि, ६०टि, १६२टि, १६४टि १६७टि, १६८टि, १७२टि, १८ टि, २०२टि, २१४टि।

हेबर, विशप, दिल्ली स्तम्भ पर, ७७

हेरिङ्गटन, जे० एच०, (८)।

हेलियोडोरस, ८६।

हैवेल, ईरानी और मौर्य महल के न पर, ८०टि; कमल पर, ७५, ८

होजेज, (८)।

होर, जेम्स, (८)।

RajGuru Ma... vala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2.

Raj Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.